आयुर्वेदमहामण्डल का [रजतजयन्ती ग्रन्थ]

in 2 vols. - Edited by रसायनाचार्य कविराज प्रतापसिंह, Poona, 1935-1936.

Contributors are eminent आयुर्वेदाचार्यs of their own times.

1st & last pages of Vol. I is slightly pinholed and neatly repaired.

(120)

Bill No. 3 / 07-08

109.

2008-0267 (vol.1)
-0268 (vol.2)

श्री धन्वन्तरयेनमः।

निखिलभारतवर्षीय

आयुर्वेदमहामण्डल

का

[रजतजयन्ती ग्रन्थ]

दिसम्बर सन् १९३६.

द्वितीय भाग

सम्पादक—
रसायनाचार्य कविराज प्रतापसिंह, प्राणाचार्य,
भिषङ्मणि, सुपरिन्टेडेन्ट आयुर्वेदिक फार्मेसी
बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी।

भू० पू० अध्यक्ष—चतुर्विंशतितम निखिलभारतवर्षीय
आयुर्वेदमहामण्डल।
प्रधान मंत्री—नि० भा० आ० महामंडल।

प्रथम संस्करण.] सन् १९३६ ई० [[redacted]

Indira Gandhi National
Centre for the Arts

प्रकाशक—
प्रधान मंत्री, निखिल भारतीय
आयुर्वेदमहामण्डल, बनारस।

...NIDHI
Rare Book Collection
ACC No.: R-268
IGNCA Date: 25.3.08

DATA ENTERED
Date 24/06/08

मुद्रक—
एन० पी० भारती
महाशक्ति-प्रेस, बुलानाला
बनारस सिटी।

Indira Gandhi National
Centre for the Arts

प्राक्कथन

जगन्नियन्ता जगदीश्वर की असीम कृपा का यह फल है कि निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद महामंडल और विद्यापीठ के रजतजयन्ती ग्रन्थ का द्वितीय भाग प्रकाशित करने का सौभाग्य भी मुझे ही प्राप्त हुआ है। यद्यपि प्रथम भाग प्रकाशित हुए अभी एक ही वर्ष हुआ है; किन्तु प्रथम भाग के संकलन-समय में ही इतना विषय अवशिष्ट रह गया था कि द्वितीय भाग का शीघ्र ही प्रकाशन करना अनिवार्य समझा गया।

महामंडल के गुणज्ञ सदस्यों ने इसके व्यय के लिये सम्मति प्रदान कर इस ऐतिहासिक कार्य को समाप्त करने में परम सहायता की है, अतः उनका मैं हृदय से आभारी हूँ।

मैंने इस भाग के सङ्कलन में प्रान्तीय और अवशिष्ट वैद्य सम्मेलन के सभापतियों और मंत्रियों के चित्र-चरित्र के अतिरिक्त, प्राप्य प्रसिद्ध स्वर्गीय वैद्यों के एवं प्रसिद्ध पुस्तक लेखक तथा पत्र-सम्पादकों के चित्र-चरित्र के प्रकाशन करने का प्रयत्न भी किया है। यह प्रयत्न कितना सफल हुआ है यह तो विज्ञ पाठक ही समझ सकेंगे; किन्तु मुझे यह खेद अवश्य है कि जिनका मैंने चित्र-चरित्र प्रकाशित करने का यत्न किया, उनकी ओर से मुझे पूर्ण सहायता नहीं मिली। अनेकानेक पत्र लिखने पर भी कई स्थल से तो उत्तर से भी वंचित रहा। इसलिये मैं अपनी इच्छा के अनुसार क्रमबद्ध, यथेच्छसुन्दर सुशृंखलित स्वरूप में इसे प्रकाशित न कर सका। एक सज्जन ने तो अपना भाषण पुस्तक के समाप्ति काल के समय साग्रह प्रकाशनार्थ भेजा है; ऐसी दशा में विषयों का इतस्ततः होना अवश्यम्भावी है।

यद्यपि निरंतर प्रयत्न करने से काश्मीर से लंका (सीलोन) और गुजरात से उड़ीसा तक के वैद्यों का परिचय इसमें समावेश करने की आयोजना की है; पर बहुत-सी उपयोगी सामग्री के उपलब्ध न होने से अपूर्णता रह गई है। आशा है, भविष्य के प्रकाशक इस काम को पूरा कर आयुर्वेद महामंडल के इतिहास-भंडार को पूरा करेंगे।

मैंने प्रान्तीय सरकार, म्युनिसिपल बोर्ड, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के पत्र व्यवहार भी इस आशा से प्रकाशित कर दिये हैं कि समय आने पर अपने-अपने प्रान्तों में वैद्यगण इसका सदुपयोग कर लाभ उठा सकें।

निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ अनेक वर्षों से पाठ्यप्रणाली प्रस्तुत कर आयुर्वेद के संस्कृत पाठ्यक्रम का प्रचार कर रही है, तथापि अपना अष्टांग आयुर्वेद महाविद्यालय न होने के कारण जो त्रुटियें हो रही हैं उसका वैद्यसमाज अनुभव कर रहा है, इसलिये मैंने प्रान्तीय सरकारों की सहायता से चलने वाले विद्यालयों की पाठ्यप्रणालियाँ भी एकत्र प्रकाशित कर दी हैं कि उनका तुलनात्मक अध्ययन कर आयुर्वेद महामंडल के सदस्य एक ऐसी सर्वोपयोगी पाठ्य विधि निर्माण करें कि जिसको सारे देश के विद्यालय अपना कर एक ही प्रकार की पदवी प्रदान करने की समुचित व्यवस्था कर समस्त आयुर्वेद शिक्षा प्रणाली को एक सूत्र में बाँध सकें।

इस समय देश में अनेक प्रकार की पदवियों के प्रदान करने की प्रणाली से आयुर्वेद विद्या को बड़ी हानि हो रही है और एक ऐसी अव्यवस्था उपस्थित हो गई है कि जिसका परिहार परमावश्यक है।

Indira Gandhi National
Centre for the Arts

आजकल कई एक प्रान्तों में वैद्यों का सरकार की तरफ से रजिस्ट्रेशन होने लगा है इसलिये वैद्य समाज की जानकारी के लिये संयुक्तप्रान्त के रजिस्ट्रेशन के नियम भी इस ग्रन्थ में प्रकाशित कर दिये हैं।

मैं प्रयत्न यह कर रहा था कि देश के सम्पूर्ण आयुर्वेद विद्यालय, धर्मार्थ औषधालय, आयुर्वेदिक ट्रस्ट, और जंगलात से प्राप्त होनेवाली वनस्पतियों का विवरण एवं हस्तलिखित पुस्तकों की सूची भी इस भाग में संकलित की जावे; किन्तु छोटा टाइप देने पर भी एक सौ से अधिक फार्म और चित्र अब तक छप चुके हैं, ऐसी दशा में इस पुस्तक की अत्यधिक कायावृद्धि स्वीकृत धन और समय की सीमा के अन्तर्गत समाविष्ट करना सर्वथा असम्भव समझ कर अगले भाग में प्रकाशित करने की असम्भावित अशालता के उद्गम को अभिलाषा मात्र की प्रेरणा से प्रेरित होकर संग्रहीत सामग्री हृदय सन्निहित रख दी गई है। किसी ने सच कहा है "उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी"।

इस भाग के संकलन में सर्वतोऽधिक सहायता बम्बई निवासी श्रद्धेय आचार्य श्री यादव जी त्रिकम जी महाराज से प्राप्त हुई है। अतः मैं आपकी इस असीम कृपा के लिये हृदय से आभारी हूँ। आप ही के उत्साहवर्धन और पथप्रदर्शन का यह फल है कि यह भाग इस सजधज के साथ इतनी शीघ्रता से अत्यल्प समय में प्रकाशित करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है।

अनेक मित्रों ने इस संग्रह के प्रकाशित करने में अनेकानेक प्रकार की सहायता प्रदान की है, उनको भी मैं हार्दिक धन्यवाद समर्पण करता हूँ।

यद्यपि प्रूफ संशोधन में मेरे सहयोगियों ने अतिशय प्रयत्न किया है; तथापि सूक्ष्म-अक्षर और शीघ्रता के कारण अनेकानेक त्रुटियें रह गई हैं। आशा है, विज्ञ पाठकवृन्द "अशुद्धं शोधयेत् विद्वान्" की कहावत के अनुसार सुधार कर अभिप्रेत अर्थ निकालने की कृपा करेंगे। विज्ञेषु किमधिकम्। पुनः कृतज्ञता प्रकाशनार्थ संस्कृत पद्य नीचे लिखकर सहयोगी मित्रों को हार्दिक धन्यवाद समर्पित करता हुआ विरति ग्रहण करता हूँ।

कार्यैरनेकैर्न यथाक्रमेण दृष्टं मयातः सुलभोऽत्र दोषः।
तदर्थमाप्तैर्गुणपक्षपातैः क्षन्तव्य एषो भिषजां वरेण्यैः॥
श्रीमन्मुकुन्दो बुधभैरवाख्यो नागेश्वरः श्री हनुमत्प्रसादः।
राजेश्वरो वैद्यवरोऽपि दुर्गादत्तश्च धन्याः सहयोगिनोऽत्र॥
एषां सुश्रमशीलानां यादवाचार्यकस्य च।
ये भद्राश्चित्रदातारस्तेषाञ्चाभारिणो वयम्॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

विदुषां विनयावनत
क. प्रतापसिंह
बनारस

प्रताप-प्रासाद
१२ दिसम्बर १९३६.

Indira Gandhi National Centre for the Arts

विषयानुक्रमणिका

[विषय-सूची निर्माण के पूर्व यह कह देना आवश्यक है कि अत्यधिक चेष्टा करने पर भी समय पर लोगों ने भाषण, जीवन चरित्र या अन्य आवश्यक सामग्री नहीं भेजी, जिसका परिणाम यह हुआ कि क्रम नितान्त असंगत हो गया और यथा स्थान सामग्री का उपयोग न हो सका। अक्टूबर मास के प्रथम सप्ताह में ग्रन्थ का मुद्रण कार्य आरम्भ हुआ था और अति मंथर गति से कार्य होता था किन्तु इस पर भी बीच-बीच में आवश्यक सामग्री का इंतजार कर लिया था; अन्त में नवम्बर के द्वितीय सप्ताह में मुद्रण कार्य बड़ी तेजी से आरम्भ किया गया। आज दिसम्बर की १२ तारीख हो गई और अभी तक कुछ-न-कुछ सामग्री आ ही रही है। अस्तु आज तक जो कुछ उपलब्ध हो सका है, दिया गया है और अब यहीं से यह समाप्त किया जाता है। क्योंकि १८-१२-३६ को इसका प्रकाशन नितान्त आवश्यक हो गया है।]—

विषय	पृष्ठ
१—प्राक्कथन	प्रारम्भ में
२—कुँवर सरयूप्रसाद नारायण सिंह जी का जीवन चरित	३
३—अखिल भारतीय नवम वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण	५
४—अखिल भारतीय चतुर्दश वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण	३२
५—अखिल भारतीय पंचविंशतितम वैद्यसम्मेलन के सभापति का जीवन चरित	५६
६—अखिल भारतीय पंचविंशतितम वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण	६०
७—अखिल भारतीय द्वादश वैद्यसम्मेलन के सभापति का जीवन चरित	७६
८—अखिल भारतीय षोड़श वैद्यसम्मेलन के स्वागताध्यक्ष का भाषण	८३
९—अखिल भारतीय द्वाविंशतितम वैद्यसम्मेलन के स्वागताध्यक्ष का भाषण	९०
१०—अखिल भारतीय त्रयोविंशतितम वैद्यसम्मेलन के स्वागताध्यक्ष का भाषण	९६
११—अखिल भारतीय चतुर्विंशतितम वैद्यसम्मेलन के स्वागताध्यक्ष का भाषण	९८
१२—अखिल भारतीय पंचविंशतितम वैद्यसम्मेलन के स्वागताध्यक्ष का भाषण	१०८
१३—श्री० कविराज गंगाधर जी का जीवन चरित	१२२
१४—श्री० कविराज श्यामादास जी का जीवन चरित	१२६
१५—श्री० कविराज धर्मदास जी का जीवन चरित	१२९
१६—गुजरात प्रान्तीय प्रथम वैद्यसम्मेलन के सभापति का जीवन चरित	१३१
१७—गुजरात प्रान्तीय प्रथम वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण	१३६
१८—गुजरात प्रान्तीय द्वितीय वैद्यसम्मेलन के सभापति का जीवन चरित	१५९
१९—गुजरात प्रान्तीय द्वितीय वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण	१६१
२०—गुजरात प्रान्तीय तृतीय वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण	१७८
२१—गुजरात प्रान्तीय पंचम वैद्यसम्मेलन के सभापति का जीवन चरित	१८९
२२—गुजरात प्रान्तीय पंचम वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण	१९१

Indira Gandhi National Centre for the Arts

विषय	पृष्ठ
२३—कर्णाटक प्रान्तीय तृतीय वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण	२०७
२४—कर्णाटक प्रान्तीय सप्तम वैद्यसम्मेलन के सभापति का जीवन चरित	२२५
२५—कर्णाटक प्रान्तीय सप्तम वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण	२२८
२६—श्री० द्रविड़ आयुर्वेद मण्डल का इतिहास	२६१
२७—आंध्र प्रान्तीय त्रयोदश वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण	२६९
२८—डा० पी० वी० कृष्णराव का जीवन चरित	२७३
२९—डा० पी० वी० कृष्णराव का भाषण	२७५
३०—बिहार प्रान्तीय षष्ठ वैद्यसम्मेलन के सभापति का जीवन चरित	२८१
३१—बिहार प्रान्तीय सप्तम वैद्यसम्मेलन के सभापति का जीवन चरित	२८३
३२—बिहार प्रान्तीय सप्तम वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण	२८४
३३—बिहार प्रान्तीय द्वादश वैद्यसम्मेलन के सभापति का जीवन चरित	२९१
३४—बिहार प्रान्तीय त्रयोदश वैद्यसम्मेलन के सभापति का जीवन चरित	२९२
३५—बिहार प्रान्तीय त्रयोदश वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण	२९३
३६—बिहार प्रान्तीय चतुर्दश वैद्यसम्मेलन के सभापति का जीवन चरित	३०८
३७—बिहार प्रान्तीय चतुर्दश वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण	३१०
३८—हिज़हाइनेस श्रीमान् स्वर्गीय महाराजा सर रामेश्वरसिंह जी बहादुर अफ़ दरभंगा, जी० सी० आई० ई०, के० बी० ई० महोदय का जीवन चरित	३१७
३९—संयुक्त प्रान्तीय प्रथम वैद्यसम्मेलन के सभापति का जीवन चरित	३१९
४०—संयुक्त प्रान्तीय षष्ठ वैद्यसम्मेलन के सभापति का जीवन चरित	३२४
४१—संयुक्त प्रान्तीय षष्ठ वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण	३२६
४२—संयुक्त प्रान्तीय अष्टम वैद्यसम्मेलन के सभापति का जीवन चरित	३३५
४३—संयुक्त प्रान्तीय अष्टम वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण	३३७
४४—मध्य प्रान्तीय द्वितीय वैद्यसम्मेलन के सभापति का जीवन चरित	३५४
४५—मध्य प्रान्तीय द्वितीय वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण	३५७
४६—राजपूताना प्रान्तीय तृतीय वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण	३८९
४७—पंजाब प्रान्तीय वैद्यसम्मेलन का संक्षिप्त विवरण	४०७
४८—पंजाब प्रान्तीय पंचम वैद्यसम्मेलन के सभापति का जीवन चरित	४११
४९—पंजाब प्रान्तीय पंचम वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण	४१२
५०—पंजाब प्रान्तीय सप्तम वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण	४२२
५१—सिंध प्रान्तीय द्वितीय वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण	४३२
५२—बंगाल प्रान्तीय वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण	४४६
५३—पंजाब प्रान्तीय षष्ठ वैद्यसम्मेलन के सभापति का जीवन चरित	४६८
५४—पंजाब प्रान्तीय षष्ठ वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण	४७०
५५—स्वर्गीय शंकर दा जी शास्त्री पदे का जीवन चरित	४७३
५६—स्वर्गीय कविराज द्वारकानाथजी सेन का जीवन चरित	४८४
५७—स्वर्गीय कविराज विजयरत्न सेन का जीवन चरित	४८९

Indira Gandhi National Centre for the Arts

विषय	पृष्ठ
५८—वैद्यरत्न कविराज योगीन्द्र नाथ सेन का जीवन चरित	४९२
५९—स्वर्गीय राजवैद्य पं० छन्नूलाल जी भिषग्रत्न का जीवन चरित	४९४
६०—स्वर्गीय आयुर्वेदमार्तंड पं० अर्जुन जी मिश्र का जीवन चरित	४९९
६१—स्वर्गीय कविराज हरिदास जी का जीवन चरित	५०२
६२—स्वर्गीय आयुर्वेद महोदधि पं० क्षमापति जी का जीवन चरित	५०५
६३—वैद्यरत्न पं० सोहनलाल जी पाठक का जीवन चरित	५०८
६४—स्वर्गीय झंडु विट्ठल जी का जीवन चरित	५१०
६५—प्राणाचार्य वैद्य सुखराम दास ओझा का जीवन चरित	५१२
६६—वैद्य ठाकुरदत्त शर्म्मा अमृतधारा का जीवन चरित	५१४
६७—भिषक् चूड़ामणि पं० मणिराम शर्म्मा का जीवन चरित	५१८
६८—चरक-चतुरानन चक्रपाणिदत्त का जीवन चरित	५२०
६९—कविराज शिवदास सेन का जीवन चरित	५२०
७०—कविराज राजेन्द्रनाथ सेन का जीवन चरित	५२०
७१—कविराज श्री पूर्णचन्द्र रथ का जीवन चरित	५२१
७२—वैद्य श्रीनन्दलाल जी कौल का जीवन चरित	५२२
७३—वैद्य श्री कन्हैयालाल शर्मा जी का जीवन चरित	५२५
७४—वैद्यरत्नम् पी० एस० वैरियर का जीवन चरित	५२५
७५—वैद्य रामगोपाल जी शास्त्री का जीवन चरित	५२७
७६—वैद्य जेठालाल देवशंकर दवे का जीवन वृत्तांत	५२९
७७—वैद्यराज ख्यालीराम जी द्विवेदी का संक्षिप्त परिचय	५३२
७८—राजवैद्य जीवराम कालिदास महोदय का संक्षिप्त जीवनेतिवृत्त	५३७
७९—स्वर्गीय श्री कृष्णरामजी भट्ट का जीवनेतिवृत्त	५४०
८०—राजवैद्य पं० नन्दकिशोरजी शर्म्मा का संक्षिप्त जीवनेतिवृत्त	५४४
८१—चिकित्सक-चूड़ामणि श्री श्यामलालजी का जीवनेतिवृत्त	५४५
८२—वैद्यरत्न श्रीकान्त शर्मा जी का जीवन चरित	५४७
८३—ग्रंथकार	५४८
८४—प्राणाचार्य, कविराज प्रतापसिंहजी का संक्षिप्त परिचय	५४८
८५—वैद्य राजेश्वरदत्तजी शास्त्री का परिचय	५५०
८६—प० हनूमानप्रसाद शर्म्मा वैद्यशास्त्री का संक्षिप्त परिचय	५५१
८७—पत्र और पत्रकार	५५३
८८—संयुक्त प्रान्तीय द्वितीय वैद्यसम्मेलन के सभापति का संक्षिप्त भाषण	५६४
८९—आयुर्वेद	५६६
९०—आयुर्वेद	५७२
९१—मध्य प्रान्तीय प्रथम वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण	५७६
९२—बंगाल प्रांतीय वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण	५९२
९३—भिषग्रत्न पं० शिवनारायण जी का जीवन परिचय	६०१

Indira Gandhi National Centre for the Arts

विषय	पृष्ठ
९४—श्रीमान् कविराज सत्यनारायण जी शास्त्री का परिचय	६०७
९५—वैद्य श्यामसुन्दराचार्यजी का जीवन चरित	६०९
९६—नूतनव्याधिविचार सम्भाषापरिषद् के सभापति का भाषण	६११
९७—रजतजयन्ती उत्सव के सभापति का भाषण	६२२
९८—स्वर्गीय कविराज श्री विश्वनाथ सेन जी का परिचय	६२८
९९—कविराज श्री सुधीरकुमार सेन जी का परिचय	६३०
१००—पं० ब्रजविहारी जी चतुर्वेदी का वैद्यरत्न का प्रमाणपत्र	६३२
१०१—वैद्यरत्न एम० दुरायस्वामी आयंगर का परिचय	६३३
१०२—वैद्यवर स्वर्गीय पं० बाबूनन्दन जी भट्ट का परिचय	६३५

Indira Gandhi National
Centre for the Arts

विषय-सूची

[प्रान्तीय सरकार]

विषय — पृष्ठ

१—प्रान्तीय सरकारों का विवरण — १
२—आयुर्वेदिक इन्स्टीटयूशन्स अफ़ नेटिव स्टेट्स — २१
३—यू० पी० म्यूनिसिपल बोर्ड — ३४
४—बिहार म्युनिसिपल बोर्ड — ४२
५—बंगाल म्युनिसिपल बोर्ड — ४३
६—आसाम ,, ,, — ४७
७—आंध्र-द्रविड़ ,, ,, — ४८
८—बम्बई, गुजरात, महाराष्ट्र, सिंध म्युनिसिपल बोर्ड — ५१
९—सेंट्रल प्राविंन्स ,, ,, — ५५
१०—युक्त प्रान्तीय डिस्ट्रिक्ट बोर्ड — ६१
११—बिहार ,, ,, — ७०
१२—बंगाल ,, ,, — ७२
१३—आंध्र-द्रविड़ ,, ,, — ७६
१४—बम्बई, गुजरात, महाराष्ट्र, सिंध डिस्ट्रिक्ट बोर्ड — ७९
१५—पंजाब ,, ,, — ८३
१६—मध्यप्रान्तीय ,, ,, — ८६
१७—रूल्स फार दी रजिस्ट्रेशन अफ़ प्रैक्टिशनर्स अफ़ इण्डियन मेडिसिन यू० पी० — ८९
१८—संयुक्त प्रान्तीय वैद्य-हकीमों के रजिस्टरी सम्बन्धी नियम — १००
१९—संयुक्त प्रान्तीय इण्डियन मेडिसिन बोर्ड के चुनाव सम्बन्धी नियम — १०७
२०—संयुक्त प्रान्तीय बोर्ड अफ़ इंडियन मेडिसिन आयुर्वेदिक स्कूल की नियमावली — १११
२१—दी प्रासपेक्टस अफ़ दी गवर्नमेंट स्कूल अफ़ इण्डियन मेडिसिन मद्रास — १३०
२२—रूल्स फार दी गवर्नमेंट आयुर्वेदिक स्कूल, पटना — १४२
२३—सिलिबस अफ़ दी गवर्नमेंट आयुर्वेदिक स्कूल, पटना — १५१
२४—कालेज अफ़ इन्डिजिनस मेडिसन, जफ़ना — १६७
२५—प्रासपेक्टस अफ़ दी कालेज अफ़ इन्डिजिनस मेडिसन, जफ़ना — १६९
२६—बिहारोत्कल संस्कृत समिति की नियमावली — १९७
२७—आयुर्वेदिक कालेज, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी की नियमावली — २०१
२८—भिषगाचाराः — २३१
२९—कोड अफ़ मेडिकल एथिक्स — २३७
३०—वद्यरत्न पदवी का प्रोग्राम, पटना — २४४
३१—अखिल भारतीय षड्विंशतितम वैद्यसम्मेलन के सभापति का जीवन चरित्र — २४६

© Indira Gandhi National Centre for the Arts

चित्र-सूची

[इस रजत-जयन्ती ग्रंथ के द्वितीय भाग में जो चित्र गए हैं, उनकी अनुक्रमणिका यहाँ दी जाती है। इसके अतिरिक्त प्रथम भाग रजत-जयन्ती ग्रंथ में कुल ३३ चित्र हैं और इस द्वितीय भाग में ११७ चित्र हैं। कुल १५० चित्र दोनों भाग में हैं]

नाम	पृष्ठ
१—स्वर्गीय शंकर दा जी शास्त्री पदे	४
२—ग्रूप गवर्नमेंट आयुर्वेदिक कालेज, मैसूर	३०
३—ग्रूप मंत्रिमंडल नि० भा० आ० महामंडल विद्यापीठ, काशी।	३२
४—श्री पं० गोवर्द्धन जी शर्मा छांगाणी, भिषक्केसरी, नागपुर।	५६
५—स्वर्गीय रामकृष्ण सेवराम दुबे जी नागपुर।	५८
६—श्रीमान् सेठ रामनिवास जी गोयनका, नागपुर।	७२
७—स्वर्गीय कविराज हाराणचन्द्र जी चक्रवर्ती, राजशाही (बंगाल)	७६
८—स्वर्गीय कविराज गंगाधररायजी, मुर्शिदाबाद।	१२२
९—स्वर्गीय कविराज श्यामादासजी, कलकत्ता।	१२६
१०—कविराज श्री विमलानन्द जी, कलकत्ता।	१२८
११—स्वर्गीय कविराज धर्मदास जी, काशी।	१२९
१२—डा० श्री पोपट प्रभुराम जी, बम्बई।	१३१
१३—ग्रूप अध्यापक मंडल पोपट यूनिवर्सिटी, बम्बई।	१३५
१४—ग्रूप अध्यापक मंडल राजकीय आयुर्वेद विद्यालय, बड़ोदा।	१७६
१५—स्वर्गीय त्र्यम्बकलाल त्रिभुवन मुनि जी	१७८
१६—ग्रूप संस्थापक और संचालक मंडल धूतपापेश्वर औषधालय, पनवेल।	१८६
१७—श्री सूरजमल शर्म्मा वैद्यराज, बंबई।	१८९
१८—डा० श्रीमान् एच० वी० सावनूर।	२०८
१९—वैद्य पंचानन श्री गंगाधरजी शास्त्री गुणे।	२१६
२०—डा० श्रीमान् सी० वी० रामराव।	२२२
२१—वैद्यराज श्री भिकाजीविनायक डेग्वेकर।	२२५
२२—ग्रूप अध्यापक मंडल आयुर्वेद महाविद्यालय, पूना।	२३२
२३—ग्रूप अध्यापक मंडल विदर्भ आयुर्वेद विद्यालय, अमरावती।	२३७
२४—ग्रूप पदवीदान समारंभ श्री भारतीय आयुर्वेद विद्यालय, अमरावती।	२४०
२५—ग्रूप अध्यापक मंडल राजकीय संस्कृत विद्यालय, बड़ोदा।	२४४
२६—ग्रूप अध्यापक मण्डल आर्याँग्ल आयुर्वेद विद्यालय, सतारा।	२४८
२७—श्रीमान् डा० पी० वी० कृष्णराव, मद्रास।	२७३

Indira Gandhi National Centre for the Arts

नाम	पृष्ठ
२८—श्रीमान् वैद्यरत्न पं० ब्रजविहारीजी चतुर्वेदी, पटना ।	२८१
२९—श्री पं० हरिनारायण जी चतुर्वेदी, पटना ।	२८३
३०—श्रीमान् आनरेबुल कृष्णसहाय जी, पटना ।	२८६
३१—श्रीमान् आनरेबुल जस्टिस सर ज्वालाप्रसाद जी, पटना ।	२८८
३२—कविराज श्रीविधुभूषण सेनजी, पटना ।	२९१
३३—वैद्य पण्डित श्रीचन्द्रशेखरधर जी मिश्र, चंपारन ।	२९२
३४—श्रीमान् राजा हरिहरप्रसाद नारायणसिंह जी, अमावां ।	३०४
३५—कविराज श्रीनृत्यगोपाल जी, मुंगेर ।	३०८
३६—स्वर्गीय श्रीमान् सर रामेश्वरसिंह जी बहादुर, दरभंगा ।	३१७
३७—स्वर्गीय श्री पं० गणेशदत्त जी त्रिपाठी, काशी ।	३१९
३८—स्वर्गीय श्री पं० गोपाल जी त्रिपाठी, काशी ।	३२१
३९—श्री० पं० रामनारायण जी मिश्र, लखनऊ ।	३२३
४०—श्री० पं० जगन्नाथ जी वाजपेयी, काशी ।	३३५
४१—साहित्याचार्य पं० श्रीशालग्राम जी शास्त्री, लखनऊ ।	३५४
४२—श्री० पं० पुरुषोत्तम जी शास्त्री हिर्लेकर, अमरावती ।	३९८
४३—वैद्य पं० श्रीठाकुरदत्त जी मुलतानी, लाहोर ।	४०७
४४—वद्यपंचानन पं० श्री मस्तराम जी शास्त्री, रावलपिंडी ।	४०८
४५—श्रीमान् पण्डित शिवशर्मा जी आयुर्वेदाचार्य, लाहौर ।	४१०
४६—वैद्यराज पं० श्री मनोहरलाल जी, दिल्ली ।	४११
४७—श्री पं० देवकीनन्दन जी शर्मा आयुर्वेदाचार्य, दिल्ली ।	४१२
४८—श्री पं० शंकरदेव जी आयुर्वेदाचार्य, दिल्ली ।	४१२
४९—ग्रूप अध्यापकवर्ग तिब्बिया कालेज, देहली ।	४१६
५०—बाबा कालीकमलीवाले का आयुर्वेद विद्यालय तथा औषधालय, हृषीकेश ।	४१९
५१—ग्रूप अध्यापक मंडल डी० ए० वी० कालेज, लाहौर ।	४२०
५२—वैद्यराज पं० श्रीदत्त जी शर्मा, भिवानी ।	४२२
५३—ग्रूप अध्यापक मंडल एस० डी० प्रेमगिरि आयुर्वेदिक कालेज, लाहोर ।	४२४
५४—श्रीमान् डा० गणेश दत्तात्रय आपटे, पूना ।	४३२
५५—कविराज श्री गणनाथ सेन जी, कलकत्ता ।	४४६
५६—कविराज श्री नरेन्द्रनाथ जी मित्र, लाहोर ।	४६९
५७—स्वर्गीय कविराज श्री विजयरत्न सेन जी, कलकत्ता ।	४८९
५८—कविराज श्री ज्योतिषचन्द्र सेन जी, कलकत्ता ।	४८९
५९—कविराज श्री हेमचन्द्र सेन जी, कलकत्ता ।	४८९
६०—स्वर्गीय राजवैद्य पण्डित छन्नूलाल जी, काशी ।	४९४
६१—स्वर्गीय आयुर्वेदमार्तण्ड पं० अर्जुन जी मिश्र, काशी ।	४९९
६२—स्वर्गीय कविराज हरिदास जी, काशी ।	५०२
६३—स्वर्गीय वैद्य पं० उमापति जी वाजपेयी, लखनऊ ।	५०५

Indira Gandhi National Centre for the Arts

नाम पृष्ठ

६४—वैद्यरत्न श्रीमान् पं० सोहनलाल जी शास्त्री, मथुरा । ५०८
६५—वैद्यराज श्री० पं० दुर्गाशङ्कर केवलराम जी शास्त्री, ५०९
६६—स्वर्गीय झंडु विट्ठल जी, बंबई । ५१०
६७—राजवैद्य श्रीजुगतराम शङ्करप्रसाद जी भट्ट, बंबई । ५११
६८—प्राणाचार्य श्री सुखरामदास जी ओझा, करांची । ५१२
६९—वैद्य श्री ठाकुरदत्त जी शर्मा, अमृतधारा, लाहोर । ५१४
७०—वैद्यराज श्री विष्णुकान्त जी, मुरादाबाद । ४१६
७१—कविराज श्री उपेन्द्रनाथ दास जी, देहली । ५१६
७२—स्वर्गीय वैद्य शङ्करलाल जी, मुरादाबाद । ५१७
७३—कविराज श्री पूर्णचन्द्र जी रथ, पुरी । ५२१
७४—वैद्यराज श्री नन्दलाल जी कौल, काश्मीर । ५२२
७५—वैद्यरत्नम् पी० एस० वैरियर ५२५
७६—वैद्य श्री कन्हैयालाल जी, बंबई । ५२५
७७—वैद्य जेठालाल देवशङ्कर जी दवे, अहमदाबाद । ५२९
७८—श्रीमान् महाराजा श्री भगवतसिंह जी गोंडल-नरेश । ५३७
७९—राजवैद्य पं० श्री जीवराम कालिदास जी शास्त्री, काठियावाड़ । ५३७
८०—स्वर्गीय राजवैद्य पं० कृष्णराम जी भट्ट, जयपुर । ५४०
८१—अध्यापक मण्डल जयपुर संस्कृत कालेज, जयपुर । ५४४
८२—वैद्य श्यामलाल जी भट्ट, जयपुर । ५४५
८३—कविराज श्री रामचन्द्र जी मलिक, कलकत्ता । ५४६
८४—वैद्य पं० हरिप्रपन्न जी, बंबई । ५४८
८५—श्री० पं० राजेश्वरदत्त जी शास्त्री, काशी । ५५०
८६—श्री० पं० हनूमानप्रसाद शर्म्मा, वैद्यशास्त्री, काशी । ५५१
८७—स्वामी श्री हरिशरणानन्द जी, अमृतसर । ५५३
८८—कविराज श्री० ए० सी० विशारद, कलकत्ता । ५५५
८९—वैद्यराज श्री विश्वेश्वरदयालु जी, इटावा । ५५६
९०—वैद्य श्री रूपेन्द्रनाथ जी शास्त्री, इटावा । ५५७
९१—कविराज श्री गोपालप्रसाद जी शर्म्मा, मथुरा । ५५९
९२—वैद्यराज श्री गोपाल जी कुँवर जी ठक्कुर, कराची । ५६०
९३—वैद्यराज श्री रविशङ्कर जटाशङ्कर त्रिवेदी, अहमदाबाद । ५६१
९४—वैद्य श्री गोपीनाथ जी गुप्त, अहमदाबाद । ५६३
९५—वैद्यराज श्री हरिदत्त जी शास्त्री, लाहोर । ५६४
९६—कैप्टन ए० एन० एन० पनिक्कर, मद्रास । ५६६
९७—श्रीयुत डा० गिरीन्द्रनाथ मुकर्जी, कलकत्ता । ५६८
९८—श्रीयुत के० बालासिंघम, जफ़ना, (सीलोन) ५७२
९९—भिषग्रत्न श्री शिवनारायण जी मिश्र, कानपुर । ६०१

Indira Gandhi National Centre for the Arts

नाम	पृष्ठ
१०० कविराज श्रीयुत् पण्डित सत्यनारायण जी शास्त्री, काशी।	६०७
१०१—रसायनाचार्य स्वर्गीय श्री श्यामसुन्दराचार्य, काशी।	६०९
१०२—स्वर्गीय कविराज श्री विश्वनाथ सेन जी, कलकत्ता।	६२८
१०३—कविराज श्री सुशीलकुमार सेन जी, कलकत्ता।	६३०
१०४—स्वर्गीय पण्डित बाबूनन्दन जी भट्ट, राजवैद्य, काशी।	६३५
१०५—स्वर्गीय पण्डित रघुनन्दन जी भट्ट, राजवैद्य, काशी।	३६
१०६—प्राणाचार्य पण्डित श्री सदानन्द जी शास्त्री, गढ़वाल।	४१
१०७—कविराज श्री भूदेव मुकर्जी कलकत्ता।	४३
१०८—स्वर्गीय डा० वामनगणेश देसाई, बम्बई।	५०
१०९—वैद्य श्री नागरलाल मोहनलाल पाठक, पाटन (गुजरात)	५२
११०—श्री पं० विश्वेश्वर दयालु जी स्वामी, अजमेर।	६०
१११—ग्रुप अध्यापक मंडल महाराष्ट्र आयुर्वेद विद्यालय, बंबई।	७६
११२—श्रीमान् वैद्यराज नगीनदास छगनलाल जी, बंबई।	८०
११३—श्रीमान् वैद्यराज अमृतलाल जी प्राणशंकर पट्टणी, कठियावाड़।	८८
११४—अज्ञात	९६
११५—श्रीमान् वैद्यराज रङ्गलाल जी ओझा।	१०४
११६—ग्रुप अध्यापक मंडल आयुर्वेदिक कालेज, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी।	२०१
११७—प्राणाचार्य श्री नारायणशङ्कर देवशङ्कर जी, अहमदाबाद।	२४६

Indira Gandhi National Centre for the Arts

SANS
615.536
AYU

आयुर्वेदमहामंडल

का

[रजतजयन्ती ग्रंथ]

द्वितीय भाग

दिसम्बर सन १९३६.

Indira Gandhi National Centre for the Arts

प्रथम वैद्यसम्मेलन के सभापति

कुँवर सरयूप्रसाद नारायणसिंहजी बरांव

कुँवर सरयूप्रसाद नारायणसिंहजी इलाहाबाद जिले की बरांव रियासत के राजा राघवप्रसाद नारायणसिंह बहादुर के चचेरे भाई थे। प्रथम वैद्यसम्मेलन के समय जो सनातनधर्म महापरिषद् हुई थी उसके सभापति राजा साहब और वैद्य-सम्मेलन के सभापति कुँवर साहब हुए थे। आप भूमिहार ब्राह्मण जमीनदार थे। आपका आयुर्वेद पर अटल अनुराग था। आप केवल आयुर्वेद का अध्ययन ही नहीं करते थे बल्कि आयुर्वेदिक औषधियाँ और रसादि तैयार भी किया करते थे। अब आप स्वर्गवासी हो चुके हैं। आपका चित्र प्रथम भाग में प्रकाशित हो चुका है।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

स्वर्गीय आयुर्वेद महामहोपाध्याय शङ्करदाजी शास्त्री पदे

नि० भा० आयुर्वेद महामण्डल-प्रवर्तक

[ब्लाक अहमदाबाद निवासी श्री पं० वैद्यरत्न, माधवप्रसाद नारायणशंकरजी की कृपा से प्राप्त।]

Indira Gandhi National Centre for the Arts

श्रीमद्धन्वन्तरये नमः

"यस्मिन् देशे हि यो जातः तज्जं तस्यौषधं हितम्"

लाहोरनगरे १९१८ एप्रिलमासे २७ शुभदिने नवमवैद्यसंमेलने अभिभाषितम् ।

आयुर्वेदमार्तंड, भिषङ्मणि, प्रभृतिविरुदभाजः

वैद्यरत्न पं० डि० गोपालाचार्लु ए० वि० एम्० महाशयस्य अभिभाषणम् ।

ओम् "शं नो मित्रः शं वरुणः । शं नो भवत्वर्यमा ।
शं न इंद्रो बृहस्पतिः । शं नो विष्णुरुरुक्रमः......
ओं शांतिः शांतिः शांतिः"

नमामि धन्वंतरिमादिदेवं सुरासुरैर्वंदितपादपद्मम् ।
लोके जरारुग्भयमृत्युनाशं दातारमीशं विविधौषधीनाम् ॥

आर्याः सोदरविद्वद्वैद्याः ! प्रियवैद्यप्रतिनिधयः !

सोदरी मतल्लिकाः !

श्रीमद्भारतजननी गर्भशुक्तिमुक्ताफलानाम् अदूरत्रिंशत्कोटिपरिमितानाम् जनानाम् संततारोग्यभाग्यस्य निधानम् एतन्निखिलभारतायुर्वेदवैद्यकमहासंमेलनम्, धीरधिषणासमुल्लसितैः ज्ञानवयोवृद्धैः विविधविद्याविशारदैः सौशील्यशौचसदाचारादिगुणसंपन्नैः विद्वद्वैद्यवर्यैश्च विजेजीयतेतराम्; इति विदितचरमेवार्यमिश्रैःतादृशेऽस्मिन्नातिमहति सदसि आयुर्वेदीयविषयविमर्शनादिकार्यजातम् निष्प्रत्यूहं साधयितुमलमस्मि वा न वेति मे मनसि विचिकित्सा जागर्ति । तथापि भारते धरामण्डले अनेकप्रदेशेषु विद्यमानैः प्रतिनिधिसंघैः स्वागतकारिण्याः सभायाः पारिषदैश्च ऐककण्ठ्येन नियोजितेऽस्मिन् इति कार्ये यदि न प्रविशेयम्, आंग्लेतोविराजिते आयुर्वेदे औदासीन्यम् धाष्टर्यं अनादरश्च मयाऽवलंबितो भवेत्; तत्र भवतामाज्ञातिवर्ती च भवेयमिति भीतभीतेन चेतसा कथंकथमिमां परिषत्पतिपदवीमवनतशिरसा भवदनुकंपाकुसुममालिकामिवाग्रहिषम् ।

तत्रभवतामकुटिलया करुणया भारतमहीमण्डलवर्तिनः प्रियसोदरवैद्यवृन्दस्य सेवमानेन व्याजेनैकदैव कर्तुमवकाशः समजनीति कौतुकमेदुरम् मे मानसम् ।

दुःसाधमपि चैतत् कार्यनिर्वहणम् इतः पूर्वमेतत्पदवीमधिष्ठितानाम् महतां कृपालेशेन तत्रभवतां भवतां साहाय्येन च निरंतरमयमेव साधयितुं शक्नुयामिति दृढतरम् विश्वसिमि ।

मम तु अष्टांगायुर्वेदवैद्यमहासंमेलनदास्यमुत्पाद्य अतितराम् गौरवमुत्पादयताम् भवतां समर्प्यंते मया अवनतशिरस्केन साष्टांग प्रणामसहस्रं सविनयं सप्रश्रयं च ।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

त्रिकालज्ञानसंपन्नैः भरद्वाजादिमहर्षिवर्यैर्विज्ञानसमुल्लसितैः चरकाद्यायुर्वेदाचार्यैः सर्वतः प्रसारितमायुर्वेदविज्ञानम् एतत्पीठमलंकुर्वाणैः सभाविनाथैरितः पूर्वमेव सविमर्शम् बहुधा प्राकाशि। ततोऽप्यधिकं समग्रं निर्भीकं वर्णयितुं तत्रभवतां दास्यमनुतिष्ठता मया अस्मिन्महासदसि न पार्यतेति संदिह्यते मे मनः।

तथापि जगदवनसमर्थं विषयमिमं दीनावनबद्धदीक्षस्य श्रीपतेरनुकंपया आयुर्वेदप्रवर्तकानां भवतामकुटिलेनाभिमानेन च निवेद्यकृती भवेयमिति निरचिनवम्।

स्वर्गीयस्मरणं

श्रेष्ठाः! इदं किलास्माभिरस्मिन्नानंदसमये अवश्यं स्मरणीयम्:—यो वा आयुर्वेदीयाः विविधा ओषधीः विषौषधानि च आधुनिकरसतंत्रसाहाय्येन बहुधा परिशोध्य, तत् प्रतिपादकग्रन्थान्विरचय्य, मुद्राप्य चायुर्वेदमपूपुषत्। येन च मथुरानगरे पञ्चमायुर्वेद संमेलनं स्वयमेवाधिकृत्य विजयपूर्वकमुदवाहि। यश्च वाराणसीपुरवरे हिंदूविश्वविद्यालयशंकुस्थापन महोत्सवसमये आशतेभ्यो वत्सरेभ्यः प्रवृत्तं अनुदिवसंप्रवर्धमानंवैद्यकसमुदायमुद्दिश्य बहुधा प्रपंचितवान्; यश्च सेनानीपदमधितिष्ठन् महाराष्ट्रीयेषु वीराग्रेसर इति विख्यातिमलभत्; सोऽयं महाशयः लेफ्टनेंट-कर्नल् कीर्तिकर् इति विख्यातः भारतवीराग्रगण्यः स्मर्तव्यां दशामापन्न इति महदिदम् विचारस्थानम्। अनेनैव लोपेनायुर्वेदस्य तदनुसारिणां विद्वद्वैद्यानां च अतितरां कष्टमुदपद्यत।

किञ्च—पूतचरितः गुणैकपक्षपाती पाश्चात्यवैद्यकविधाननिष्णातः सर् पार्डीलूकीस् महाशयः "वैदेशिकवैद्यविदः आर्यवैद्यविद्योतमानेषु विधानेष्वेकदेशमपि न जानंतीति, शोथरोगे लवणः पथ्यतमः, मकरध्वजो रसायनः" इत्यपि न जानंतीति सोपहासं प्रत्यपादयत्। न्यरूपयच्च "ईदृशा विषयाः त्रिकालवेदिभिर्मुनिपुङ्गवैः द्विसहस्रवर्षेभ्यः प्रागेव प्रकाशिता" इत्यपि। पाश्चात्यवैद्यपुङ्गवोऽप्ययं एवमादिभिः कृत्यविशेषैर्दूरीकृत्य पक्षपातमायुर्वेदमुद्दिधीर्पुरनितरसाधारणीं प्रशस्तिमगमत्।

तादृशगुणगरिष्ठः भारतजननीमपहाय भगवत्सान्निध्यमलभतेत्यन्यदेवैतन्मनसो वैलक्ष्यजनकम्। तादृशे लोकोपकारदीक्षाधरेये तस्मिन्नतरिते न केवलं भारतसाम्राज्यस्यैवातिकष्टमापतितं परंत्वायुर्वेदस्य तत्प्रचारकाणां चासोढव्या दशा समापतितेति सर्वैरप्यस्माभिर्ज्ञातमेव।

अभ्यर्थयामहे च भगवन्तमेतादृशां ज्ञानवयोवृद्धानां महनीयानामंतरात्मनः सर्वदा शांतिमुत्पादयितुम्।

सार्वभौमप्रशंसा

न्यायैकदीक्षाधुरन्धरस्य प्रजाः धर्मेण परिपालयतः अखण्डभूमण्डलाधिपतेः श्री० श्री० श्री० पञ्चम जार्जसार्वभौमस्य अकाण्डसमापतितेऽस्मिन् घोरसंग्रामे जय श्रीपरिष्वङ्गः तूर्णमेव भूयादिति आर्तशरण्यं भगवन्तं प्रार्थयामहे।

आर्यवैद्यमहाशयाः! अस्याः विद्वद्वरपरीतायाः महापरिषदस्सन्दर्शनेन चिरन्तनादपि कालात्पूर्वं हिमाचलपर्यन्तिकाश्रमवनेषु भरद्वाजादिमुनिपुङ्गवैः अधिष्ठिता काचनसभा प्रवृत्तेति चरक सूत्रस्थाने प्राथमिकेऽध्याये यदुपवर्णितं तदद्य स्मृतिपथमधिरोहतीव। त्रैकालिकज्ञानसंपन्नानां ऋषिपुङ्गवानां पादरजोवहनेऽपि सामर्थ्यमस्माकं नास्त्येव, तथापि तेषामेव सन्ततिषु जनि-

Indira Gandhi National Centre for the Arts

मुपलभमानैरस्माभिस्तत्प्रदर्शितेन पथा यथामत्यायुर्वेदसेवारूपकार्यं आचरणीयम्। तादृशमहर्षितेजः पुञ्जविकासितान् विषयान् विमृश्य यथाशक्ति कार्यं निर्वोढुं वयमिहैकदा समभूम। न केवलं पाण्डिती समुल्लसितं ज्ञानगरिमाणं प्रकटय्य कृतार्थतामुपलभेमहि। भारतधरातलवर्त्तिनां त्रिंशत्कोटिपरिमितानां प्रियसोदरजनानामारोग्यसंरक्षणं सर्वस्वसमर्पणेनापि अनवद्यमायुर्वेदं संसेव्य निरन्तरं तत्तन्निर्णीतकार्याचरणेन संभवेत्; न केवल मुपन्यासादि वाग्व्यापारमात्रेण।

आयुर्वेदे उदारभावः

आर्यविद्यानां प्रधाननिलयेऽस्मिन् भारतमहामण्डले सन्ततं रोगाक्रान्तानां प्राणरक्षणाय त्रिकालज्ञाननिधिभिर्मुनिवर्यैस्तुलितदयापराः केचन महान्तः ऐहिकभोगवैभवं तृणायमन्वानाः सर्वस्वव्ययेनापि प्राणसंरक्षणं कुर्वन्त आसन्निति विदितचरमेवास्माकम्।

तामेवसरणिमनुसृत्यः—

"भिषगप्यातुरान् सर्वान् स्वसुतानिव यत्नवान्।
आबाधेभ्यो हि संरक्षेदिच्छन् कीर्तिमनुत्तमाम्॥"
"नात्मार्थं नापि कामार्थमथभूतदयां प्रति।
यो वर्तते चिकित्सायां स सर्वमतिवर्तते॥"
(चरकचिकित्सा प्रथमाध्याये)

इति चरकोक्तिमवलम्ब्य तत्रभवद्भिस्सर्वैरपि सन्त्यज्य आत्मीयं कार्यजातं दूरीकृत्य धनादिकांक्षितं भूतेषु पारमार्थिकीं कृपामवलम्ब्य सर्वानप्यातुरान् स्वसुतनिर्विशेषं उपचरद्भिः प्रतिकर्तुं यतनीयमिति प्रतिपाद्यते मया।

शिष्टैरक्षुण्णां तादृशीं सरणिमनादृत्य केवलं वृत्त्यर्थमेव यदि चिकित्सा क्रियेत महान् प्रत्यवायस्समापततीति—

"कुर्वते ये तु वृत्त्यर्थं चिकित्सापण्यविक्रयम्।
ते हित्वा काञ्चनं राशिं पांसुराशिमुपासते॥"

एवमादिवचनैः चरकचिकित्साप्रथमाध्याये प्रतिपादितम्।

एतादृशाः उदारगुणाः आर्षतेजः पुञ्जविराजिते अखिलायुर्वेद एव स्फुटतरं समुल्लसन्ति।

एवं महोदारविशिष्टार्षवैद्यविधानमवलम्ब्य तत्रतत्र पट्टणेषु जनपदेषु च देशीयवैद्यवराः व्याधितानुपचरन्तः, प्रत्युपकृतिमनपेक्ष्यैव प्रतिकुर्वन्तः, केवलमकिञ्चनानां जावकोपकरणानि संघटयन्तः, आरोग्यमुपजनयन्तीति लोकेविदितमेवैतत्. एवंविधप्रात्यक्षिकार्षचिकित्साविधानमेतद्भारतभूभागादृते न हि अन्यत्र कुत्रापि दृश्यते।

आर्याः! किमेतेन बहुधा कथनेन? भारत धरातले आर्षचिकित्सा कोविदानां सर्वाण्यपि सदनानि धर्मवैद्यभवनानीव औषधादिसंभारनिबिडितानि प्राणरक्षणसमर्थानि समुल्लसन्ति।

सांप्रतमस्मिन् भूभागे राजकीयधर्मवैद्यशालाः सर्वतः प्रसृताः आर्तानामुपकुर्वाणाः विलसन्ति परश्शतं. तत्साहाय्येन सर्वेपि जनाः असाधारणं फलमनुभवन्तीति प्रथितमेव. तथापि एतत्कालिकजनसंख्यामपेक्ष्य राजकीयवैद्यकशालानामपर्याप्तत्वात्, पट्टणेषु जनपदेषु च शस्त्रचिकित्सां विना इतरचिकित्साविधानेषु आर्षविधानैरेव साहाय्यस्य सुलभत्वात्, प्रकृतराजकीयवैद्यशालापेक्षया आयुर्वेदधर्मवैद्यकपद्धतिरेव नितरामुपकुरुत इति सगर्वं मुक्तकण्ठं वक्तुं प्रभवामि।

Indira Gandhi National
Centre for the Arts

इममेव विषयमुपादाय साम्राज्यशासनसभायां सर 'पार्डी लूकीस्' महाशयेन प्रापञ्चि त्रिकालज्ञानसंपन्नानां महर्षिणां विविधविज्ञानप्रकाशितानि आर्षचिकित्साविधानानि सर्वथा प्राणिसमुदयस्य आरोग्यमुत्पाद्य परिपालयन्तीति निर्विवादमेतत्। वैदेशिकवैद्यविधानैर्बहुधा चिकित्सितेपि चिरादपि फलमलभमानाः ये पीडामनुभवन्ति, तेषां आरोग्यजनननिपुणैषा आर्यचिकित्सा सरणिरित स्फुटमुपलभ्यते। परन्तुः—

एवमुन्नतस्थितेः परां कोटिमधिरूढं आर्षचिकित्साविधानं देशीयवैद्यैः राजकीयैर्देशबान्धवैश्च नाद्रीयत इति महदिदं विचारस्थानं। एवं सकलजनोपकारसमर्थमष्टाङ्गविशिष्टं इदमायुर्वेदविधानं बहोः कालात् बलवत्तरैः कारणैः तदातदा विनाशोन्मुखदशायाः अभिमुखे स्थितमपि स्थिरतरं रूढमूलत्वात् कथंचिदपि उज्जीवितुमशकत्।

तादृशमिममायुर्वेदं राजकीयाः देशबान्धवाश्च सत्संप्रदायमनुसृत्य लक्ष्यलक्षणपुरस्सरं सम्यग्विज्ञाय सर्वतो यदि प्रसारयेयुः तदा पुरातनादपि कालात् अधिकफलप्रदः प्राणरक्षणकरश्च भवेदिति सम्यङ्निरूप्यते।

आयुर्वेद स्थानादित्वम्

ऋग्वेदादिश्रुतिषु आयुर्वेदस्याङ्गभूतानां शल्यशालाक्यादि विधानानां बोधकाः ऋचः बहुधा दृश्यन्त इति निमित्तेनास्य वेदान्तः पातित्वं ऋषिपुङ्गवैः प्रतिष्ठितमासीत्— तत्र ऋग्वेदे 'युवं च्यवानमश्विना जरन्तं पुनर्युवानं चक्रथुश्शचीभिः" "तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष आधत्तं दस्रा भिषजा वनर्वन्" "सद्यो जङ्घा आयसीं विश्पलायै"

इत्यादीनां शल्यतन्त्रादिबोधकत्वात् चरणव्यूहे एवमादिभिश्श्रुतिवाक्यैः आयुर्वेदस्य ऋग्वेदोपवेदत्वं प्रतिपादितम्। आयुर्वेदविज्ञानबोधकैः चरकसुश्रुतादितन्त्रैः "इहखलु आयुर्वेदोनामयदुपाङ्गमथर्ववेदस्य" (सुश्रुत)

भिषजावै पृष्टेनैव "चतुर्णां वेदाना मात्मनो भक्तिरादेश्या" (चरक)

एवमादिवचनैः अथर्ववेदस्योपवेदोयमिति सर्वेषां, वेदानामनुगत इति च बहुधा प्रतिपादितम्। समुदितेनानेन प्रपंचेन आयुर्वेदस्यानादिता सर्वथा प्रतिपादितैव।

आयुर्वेद शब्दनिरुक्तिः

आयुर्वेदशब्दस्य प्राचीनेषु तन्त्रेषु बहुधा निर्वचनं प्रतिपादितम्। तत्र "आयुर्हिताहितं व्याधेर्निदानं शमनं तथा विद्यते यत्र विद्वद्भिरायुर्वेदस्स उच्यते।"

"अनेन पुरुषो यस्मादायुर्विन्दति वेत्ति च। तस्मान्मुनिवरैरेष आयुर्वेदः प्रकीर्तितः।

इत्येवमादिभिर्वचनैर्यत्रायुर्निर्णयः व्याधेः हिताहितं शमनोपायश्च दृश्यते स आयुर्वेद इति, रसायनादि सेवयाऽनन्तपुरुषायुषं प्राप्तुं साधनभूत प्रक्रियाबोधक आयुर्वेद इति च अन्वर्थकता प्रतिपादिता। वैद्यकतन्त्रेषु निदानचिकित्सादीनां सामान्यतः प्रतिपादने उपलब्धेपि अस्मिन्नायुर्वेदे दीर्घजीवनसाधनभूतानां रसायनादीनां प्रक्रियाबहुधा प्रपञ्चयन्ते इति अस्मिन्महान्विशेषोदृश्यते हि अस्मिन्नभयामलकीयादिरसायनिकौषधानां प्रक्रियाः परश्शतम्। प्रत्यक्षमनुभूयते च तत्सेवनयाऽनन्यसाधारणमनिर्वाच्यं फलं सर्वैरपिजनैः वलीपलितादिनिवृत्तिं यौवनास्थापनादिकं व्याधिनिवृत्तिपूर्वकमुत्पादयतां तेषां महिमा ईदृशीति केन वा उपवर्णितुं पार्येत। न ह्यन्येषु वैद्यविधानेषु एतादृशमौषधजातं कदाप्युपलभामहे।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

उपरि निर्दिष्टभावगर्भया आयुर्वेदनिरुक्त्या शब्दार्थे विचारिते गज, तुरग, लतादि-संबन्धवैद्यतन्त्राणामपि आयुर्वेदाङ्गत्वेनैव ग्रहणं सूचितम्। इमं विषयमुपादाय अग्निपुराण शालिहोत्रादि ग्रन्थेषु बहुधा प्रपञ्चितम्।

आर्याः किमत्र वक्तव्यं ? एवमादिका अपूर्वविषयबोधका अनेके ग्रन्थाः दैवदुर्विधिवैप-रीत्येन नाममात्रावशिष्टाः इति वक्तुं नोत्सहते मे चेतः।

एवमनेकोपांगविशिष्टोयमायुर्वेद स्सांप्रतं मनुजमात्रोपयोग्यअष्टांग विशिष्ट एवोपलभ्यते। स एवाऽयुर्वेद इति प्रख्यातिमुपलभ्य सर्वतो विस्तरमुपगम्य जागर्तीति निर्श्रुतुमवकाशस्समजनि।

आयुर्वेदस्य कलात्वनिरूपणम्

लोके विज्ञानं विद्याकलाभेदेन द्विविधम्। तत्र विद्यावाङ्मयं केवलमाश्रित्य समुल्लसति। कला प्रक्रियोपबृंहित वाङ्मयमनुसरति। हेतु लक्षणौषधरूपस्कंधत्रैयात्मकः आयुर्निगमस्तु कलास्वन्तर्भूत इति प्राञ्चो निरणैषुः। तदुक्तं शुक्रनीतौ :—

"पाषाणधात्वादिद्रुतिस्तद्भस्मीकरणं कला।
धात्वौषधीनां संयोगक्रियाज्ञानं कला स्मृता।
धातुसांकर्यपार्थक्यकरणन्तु कला स्मृता।
संयोगपूर्वविज्ञानं धात्वादीनां कला स्मृता।
क्षारनिष्कासनज्ञानं कलासंज्ञन्तु तत्स्मृतम्।" इति।

वात्स्यायनमहर्षिणा कामतन्त्रे "सुवर्णरत्नपरीक्षा, मणिरागकरणज्ञानं, धातुवादः" इत्या-दिभिरायुर्वेदसंबन्धिन्यः कलाः स्पष्टं प्रतिपादिताः। तत्र हेतुस्कन्धः अंगप्रत्यंगादि शारीरक-शास्त्रपरिज्ञानमधितिष्ठति। औषधस्कन्धः खनिजप्राणिजकाष्ठौषधादिपरिज्ञानम् तत्तदौषधकल्प-नादिविभागज्ञानञ्चाऽश्रयते। यस्तु लोके वैद्यकपदवीमधिजिगमिषति सत्सम्प्रदायानुगत शास्त्रपरिज्ञानं क्रियाकौशलमित्येतदुभयमपि तस्यावश्यकम्। न हि शास्त्रपरिज्ञानेन वा क्रिया-परिचयमात्रेण वा कृतार्थता स्यात्। शास्त्रपरिज्ञानविहीनो वैद्यब्रुवो राज्ञाऽनुशासनीयः। तथाचोक्तं सुश्रुते।

"यस्तु केवलशास्त्रज्ञः कर्मस्वपरिनिष्ठितः।
स मुह्यत्यातुरं प्राप्य प्राप्यभीरुरिवाहवम्॥
यस्तु कर्मसु निष्णातः धाष्ट्यच्छास्त्रबहिष्कृतः।
न सत्सु पूजामाप्नोति वधञ्चार्हति राजतः।" इति।

अभ्यासावश्यकतातत्क्रमः

किञ्च—"एतदवश्यमध्येतव्यम्, अधीत्य च कर्माप्युपासितव्यं, उभयज्ञो हि भिषग्रा-जार्हो भवति" एवमादिभिर्वचनैर्भिषज्जालक्ष्यलक्षणपुरस्कृतमेवाऽयुर्वेदशास्त्रपरिज्ञानमवश्यं सम्पा-दनीयम् इतिस्फुटमेवोक्तं सुश्रुतेन॥

एवं सम्यगधीतशास्त्रेण सुशिक्षितकर्मपथेन भिषजा चिकित्साकरणीयेति उपरिष्टात्प्रद-र्शितमासीत्। तादृशमुभयपरिज्ञाननैपुण्यं सद्गुरुमुखतोऽध्ययनादेव सम्भवति, न केवलं पुस्तकपर्यालोकनमात्रेण। अध्यापनक्रमपठनपद्धत्याचार्यगुणसंपत्त्यन्तेवासिसदाचारादयश्चरक-

Indira Gandhi National Centre for the Arts

विमानस्थाने रोगभिषग्जितीयाध्याये, सुश्रुतसूत्रस्थानेशिष्योपनयनीये अध्ययनसम्प्रदानीये च निपुणतरं सुविपुलं प्रपञ्चितम्। तत्सर्वं आयुर्निगमनिष्णातारः सभासदो जानन्त्येव; तानेव विषयाननूद्य किञ्चिद्विमृश्य संक्षेपतः प्रतिपाद्यते—

अध्ययनप्रकारः आचार्यादिगुणसंपत्तिः

अद्यतनकलाशालासु राजकीयासु यथाकर्मपथबोधनपूर्वकं वैद्यकविद्या बोध्यते तथा पूर्वकालेऽपि चरकसुश्रुतादिविद्यापीठेषु आयुर्वेदाभ्यासः प्रचारित इति ज्ञायते। तत्र शास्त्रलक्षणमेवं चरकेः—"यन्मन्येत महद्यशस्वि, धीरपुरुषानुमोदितमर्थबहुलं, आप्तजनपूजितं, त्रिविधशिष्यबुद्धिहितं, अपगतपुनरुक्तदोषं, आर्षंसुप्रणीतसूत्रभाष्यसंग्रहक्रमं, स्वाधारमनवपतितबीजं, पुष्कलाभिधानं, क्रमागतार्थमर्थतत्वनिश्चयप्रधानं, संगतार्थमसंकुलप्रकरणं, आशुप्रबोधकं, लक्षणवच्चोदाहरणवच्च तदभिप्रपद्येत शास्त्रं; शास्त्रं ह्येवंविधममल इवादित्यः तमोविधूय प्रकाशयति सर्वं इति" लोके वैद्यशास्त्राणि बहुधा प्रचारमुपगतानि संति। तत्र वैद्यशास्त्रं पिपठिषता देशकाला दीन्सम्यगवबुध्योपरिनिर्दिष्ट गुणसंपन्नं वैद्यकतन्त्रं परीक्ष्य तत्पठने अप्रमत्तेन यतितव्यम्। यद्येवं यथा सूर्यः अमलैः स्वकिरणजालैर्लौकिकान्पदवीन्प्रकाशयति तथाऽस्मिन्शास्त्रे प्रतिपादनीयमर्थजातं बोधयितुं समर्थं भवति। अन्यथा स्वाभिलषितस्य पूर्णता न संभवति।

"ततः पर्यवदातश्रुतं परिदृष्टकर्माणं दक्षं दक्षिणं शुचिं जितहस्तं उपकरणवन्तं सर्वेन्द्रियोपपन्नं प्रकृतिज्ञं" इत्यादिभिराचार्यलक्षणं निपुणमुपपादितम्। अनेन सम्यगवबुद्धशास्त्रः अवाप्तकर्मकौशलः अविगीतचारित्रः अहंकारादिनिवृत्तः अकुटिलशिष्योपदेशे अकृत्रिमप्रेमा आचार्यः आयुर्वेदमुपदेष्टुमर्हतीति सूचितम्। शिष्यलक्षणमपि तत्रैव विशेषेण प्रतिपादितम्। शान्तगुणप्रधानेनाक्षुद्रेण मेधाविना ऊहापोहस्मृतिशालिना तद्विद्यकुलजेन तद्विद्यवृत्तेन वा शिष्येण भवितव्यमिति विज्ञायते।

एवं विधलक्षणशिष्यवरः पूर्वोदितगुणगरिष्टमाचार्यं देववद्राजवत् पितृवच्चाऽप्रमत्तः उपचरन्स्वाभिमतं कृत्स्नं शास्त्रार्थमधिगन्तुं यतेत।

आचार्यस्तु यथायोग्यं शास्त्रार्थं कर्मपथं च बोधयितुमुद्यतस्तस्य अभिवर्धनानि कानिचिन्नियमान्तराणि सम्यगवबोधयेत्। तत्प्रकारोपि तत्रैव विस्तरेण प्रतिपादितः—"देवताग्निद्विजातिगुरुवृद्धसिद्धाचार्येषु तेषु सम्यग्वर्तितव्यम्" इत्यादि। यथाविधिपरिज्ञातशास्त्रार्थः पर्यवगत कर्मपथश्च वैद्यविद्याविद्भिः पण्डितवरैस्संभाषेत। तेनैव ज्ञानातिशय उत्पद्यते. वैशारद्यं वचनशक्तिरभिवर्धते. अवगतार्थेषु यदि संशयाः स्युः ते पुनः पुनस्संघर्षणेन दूरतोऽपसरन्ति। अश्रुतचरमपि कंचित् विषयमवगंतुमवकाशस्संभवति। इत्येवमादिका गुणाः तद्विद्याकुशलैः परस्परसंभाषणेन संगृह्णीरन्। तेनैवोपायेनाऽधीतस्य शास्त्रस्य दार्ढ्यमुदेयात्. तद्विद्यासंभाषापि तत्रैव चरके बहुधा प्रपञ्चिताः—"द्विविधा खलु तद्विद्यासंभाषा भवति, सन्धायसंभाषा विगृह्य संभाषेत्यादि"—उपरि निर्दिष्टक्रमेण चरके प्रतिपादिताः पठन नियमा आचार्यपरिस्थिति शिशष्यगुणसम्पत्तिरित्यादीनाकलतामिदानीन्तनानां मनसि प्राचीनबोधनापद्धतिषु विशेषतोऽभिमानः आदरः विस्मयश्च उत्पद्यन्त एव।

आचार्यानुशासनम्

एवं शास्त्रपरिज्ञाने कर्मपथे च लब्धप्रज्ञेन वैद्यकपदव्यां यथावर्तितव्यं तत्सर्वं चरके सुश्रुते

च प्रतिपादितम् । यथा—"न चातुरकुल प्रवृत्तयो बहिर्निश्चरितव्याः । साध्वनाथाभ्युपगतानाञ्च आत्मबान्धवानामिव स्वभेषजैः प्रतिकर्तव्यम्" इत्यादि । एवमादिर्नि हितबोधनानि चिरन्तनां विद्यागुरूणां करुणारसपूरितं महोदारमाशयं अन्तेवासिनां प्रवृत्तेरकलंकतां चाविष्कुर्वन्ति ।

अंगप्रत्यंगादिपरिज्ञानम्

लोके मनुजकोटीनामागंतुकादयो ये व्याधयः उत्पद्यन्ते तेषांविनिश्चये अंगप्रत्यंगादिविशिष्टं शारीरक परिज्ञानमावश्यकं तच्च न हि विभागादिविशेषज्ञानमन्तरा लोकोपकारदक्षमायुर्वेदपरिज्ञानं कृत्स्नशो लभ्यते इति विज्ञायते । तदुक्तं चरके शारीरे षष्ठ्यध्याये—

"शरीरं सर्वथा सर्वं सर्वकाले च यो भिषक्
आयुर्वेदं स कार्त्स्न्येन वेद लोकसुखप्रदम् ॥" इति ॥

शरीरे विद्यामानास्सूक्ष्मसूक्ष्मा विभागाः प्रत्यक्षदर्शनमन्तरा न शास्त्रोपदेशमात्रेण निस्संशयं ज्ञातुं शक्येरन् । संशयाक्रान्तं च केवलं परिज्ञानं न च क्रियाकरणसमर्थं भवेत् । उक्तंहि सुश्रुतेः—

"प्रत्यक्षतो हि यद्दृष्टं शास्त्रदृष्टञ्च यद्भवेत् ।
समासतस्तदुभयं भूयो ज्ञानविवर्धनम्" ॥ इति ॥

तस्मात्प्रत्यक्षतश्शास्त्रपरिज्ञानार्थं मृतशरीरमानीय परीक्षणीयं इति तत्रैवसुश्रुते तद्विधानं सम्यक्प्रपंचितम् । सकलावयवपूर्णं विषादिभिरनुपहतं चिरन्तनैर्व्याधिभिरक्लिष्टं निस्सारितान्त्रपुरीषं पुरुषशवमानीय पञ्जरे निक्षिप्य मुञ्जवल्कलादिभिरावेष्ट्य अप्रकाशे प्रदेशे अप्रवहन्त्यामापगायां सप्तदिनावधि संस्थाप्यप्रकुथितकलेबरं जलाद्बहिरुद्धृत्य उशीरवालादीनामन्यतमेन वेणुदलवल्कलादिभिर्वा कूर्चनैः त्वगादीन् शनैः शनैरपाकुर्वन् बाह्याभ्यन्तरगतानंगप्रत्यंगविभागांस्तत्सूक्ष्मभागांश्च शास्त्रपरिज्ञानमनुसृत्य चक्षुषा प्रत्यक्षतः द्रष्टव्यम् ।

पूर्वोदितविधिना प्रत्यक्षज्ञानमवाप्य निस्संशयं क्रियाकरणदक्षो भवति । एवं चोक्तं सुसृतशारीरे पञ्चमाध्यायेः—

"तस्मान्निस्संशयं ज्ञानं हर्त्रा शल्यस्य वाञ्छता ।
शोधयित्वामृतंसम्यग्द्रष्टव्योंऽगविनिश्चयः ॥
शरीरे चैव शास्त्रे च दृष्टार्थःस्याद्विशारदः ।
दृष्टश्रुताभ्यां सन्देहमवाप्योद्विचरेत्क्रियाः ॥" इति ॥

एतेन प्राचीनानां त्रिकालविद्वराणां शरीरतत्वोपदेशे तदभ्यासविधौ च परिश्रमोऽन्यादृश इति स्पष्टतरमेव दृश्यते । अपिच सप्तदिनावधि जलक्षेपणेन शरीरसंबंधिविषं ('सेप्टिक्पायिजन्') अपनोद्य परीक्षणीयमिति सूचितम् । अहो महोदयाः अनेनास्मदीयानां आयुर्वेदकोविदानां शरीरपरीक्षणे तन्निश्चयेच कीदृशी ज्ञानगरिमेति भवंत एव विमृशंतु ॥

आर्यमहोदयाः !

अस्थ्नांपरिज्ञानम्

शरिरस्य प्रधानतयाऽधारभूतानामस्थ्नां संख्याने चरके षष्ट्यधिकशतत्रयमिति (३६०) सुश्रुते त्रिशत (३००) मिति च भेदो विद्यते । अधुनातनाः द्विशत (२०७) सख्या परिमि-

Indira Gandhi National Centre for the Arts

तानीति पर्यगणयन्। तानि च कपाल, वलय, रुचक, तरुण, नलक भेदेन पंचधा विभक्तानीत्युपलभामहे। एतत्संख्यावैषम्यं विमृशता "प्रोफिसर् हार् नल्" इति विख्यातेन पाश्चात्यविद्वद्वैद्यशिखामणिना स्वीयग्रंथे, (Ostiology of the Hindus) "एतादृशसंख्याभेदजनिताः दोषाः तत्संस्कर्तॄणां प्रमादादिजनिता एव, न हि ग्रंथकर्तृभिः पुरातनैराचार्यैः कदाप्येवमाचरितं भवेत्। अस्थि विभागपरिज्ञाने तेषां निपुणता गरीयसीति" निरबध्नात्।

अस्मदीयेषु प्राचीनतंत्रेषु हस्तपादादीनामंगानां मस्तकोदरादिप्रत्यंगानांप्लीह, यकृत, क्लोम, वृक्क, बस्ति, हृदय, पुप्फुस, आमाशय, गर्भाशय, पक्वाशयादीनां च स्वरूपाणि तेषां संनिवेशान् स्थानविशेषांश्च सुनिपुणमदर्शयन्। सिराधमनीस्नायूनां कंडराणां स्रोतसां च स्थानानि निरूप्य विशेषतः तत्कृत्यानि न्यरूपयिषतः। उपरिनिर्दिष्टान्यंगादीनि संछाद्य परिपालनार्थं भगवता कल्पितानि सप्तविधानि चर्माणि च दृश्यंत इति निरणैषुः तेषु अधुनातनपाश्चात्यवैद्यपुंगवपरिकल्पिताणुवीक्षणयंत्रस्य साहाय्येनापि वीक्षितुमगोचराः सुसूक्ष्मा भागाः विद्यंत इति आंग्लायुर्वेदतंत्रनिपुणेन महामहोपाध्याय गणनाथसेन् महोदयेन प्रत्यक्षशारीरेनिरूपितम्।

कलापरिज्ञानम्

अपिच धात्वाशयान्तरमर्यादाभूतानां कलानां स्वरूपं तत्सन्निवेशश्च रम्यतया सुश्रुतेन निरणायि। एतेन शवच्छेदनपूर्वंशारीरपरिज्ञानेन प्रांचः अतिनिपुणं विज्ञानमलभन्निति स्फुटमेव प्रतीयते।

पुंसवनादि परिज्ञानम्

पिण्डोत्पत्ति पुंसवनादिविषयाः पाश्चात्य वैद्यधुरीणेषु प्रशस्ति मुपगतवता प्रोफेसर् "ओन् आटन्" महाशयेन परिशोधितसिद्धांतविषयानप्यतिशेरत इति आंग्लायुर्वेदतंत्रज्ञानां बलवती प्रतीतिः।

मर्मपरिज्ञानम्

शवच्छेदने परिज्ञातेषु शारीरकविभागेषु प्राधान्येन ज्ञातव्यानि संति मर्माणि। तानि, मांस, सिरा स्नायुः वस्ति, संधीनाश्रित्य पंचप्रकाराणि। तानि स्वभावत एव प्राणानाश्रित्य तिष्ठंति। अभिहतेषु तेषु अतितरां बाधामाप्नुवंति प्राणिनः। अत एव तेषां मर्मसंज्ञेति चरके प्रतिपादितम्। तान्याश्रयभेदेन पंचप्रकाराण्यपि क्रियाभेदेन सद्यः प्राणहर, कालांतरप्राणहर, विशल्यप्राणहर, रुजाकर, वैकल्यकरभेदेन पुनः पञ्चधाविभक्तानि। शस्त्रावचारं कर्तुमुद्यतेन शल्यतन्त्रज्ञेनैतान्यवश्यं ज्ञातव्यानि। तदुक्तं सुश्रुते "मर्माणि शल्यविषयार्धमुदाहरन्ति" इति। अन्यथा मर्मस्थलेपि शस्त्रमवचार्य कदाचिदपराध्येत।

सर्वप्राणायतनानामेतेषां न क्वापि आंग्लवैद्यकतंत्रेषु जागर्ति परिगणनम्। तेनैव बलवता कारणेन शस्त्रचिकित्सानिपुणा इति प्रख्यातिमुपगतैरपि पाश्चात्यवैद्यकविशारदैः शस्त्रचिकित्सायां विफलमनोरथैरद्यापूर्यते मनःक्लेश इति समुन्नीयते चास्माभिः। यदि आंग्लवैद्यनिष्णाता अपि अस्माकीं धान्वंतरीयां सरणिमवलंब्य, अनुसृत्य सौश्रुतं मतं, शवच्छेदनाभ्यासेन मर्मविभागज्ञाने निष्णातारो भवेयुः, नहि कदापि शस्त्रचिकित्सासु प्रत्यावृत्तमनोरथाः कुण्ठितयत्नाश्च भवेयुरिति मुक्तकण्ठमेव धरितुं प्रभवेयम्।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

रक्तसंवहन परिज्ञानम्

आर्यमिश्राः—

अस्मदीयेषु आर्षसंप्रदायेषु रक्तसंवहनक्रिया मुद्दिश्यावश्यमालोचनीयम्। इदमपि अद्वत्सरद्वयकाले "सर् विलियम् हार्वे" इति प्रख्यातेन पाश्चात्य वैद्यकोविदेन स्वेनैव मनसा समुन्मीलितमिति सोच्छ्रासं भाषन्ते तदभिमानिनः। किमिति वदामो वयं! इदमेव किलास्माकं विस्मयस्थानं! यतः वत्सरसहस्रद्वयात् पुरातने काले ऋषिपुङ्गवैः स्वनिबन्धनग्रन्थेषु सुष्टुप्रतिपादितमपि विषयमुपादाय अस्माभिरेव योगदृष्ट्यानुमितमेतदपूर्वामिति मुधा विकत्थन्तेऽधुनातनाः। प्रत्यपादि किल महर्षिणा चरकेण सुनिपुणं साभिप्रायञ्च—

"तेन मूलेन महता महामूला मता दश।
ओजोवहाश्शरीरे वा विधम्यन्ते समन्ततः॥
येनौजसा वर्तयन्ति प्रीणिताः सर्वदेहिनः।
यदृते सर्वभूतानां जीवितं नावतिष्ठते॥
यत्सारमादौ गर्भस्य योऽसौगर्भरसाद्रसः।
संवर्धमानं हृदयं समाविशति यत्पुरा॥"

(चरकसूत्रस्थान ३० अध्याय) वाग्भटेपि हृदयस्थाः दश मूलसिराः सकलचेष्टाकारणभूतं रसात्मकं सारमादाय शरीरं समंततः वाहयंतीति स्फुटतरमेव प्रतिपादितम्। तत्रहि—

"दश मूलसिराः हृत्स्थाः ताः सर्वं सर्वतो वपुः।
रसात्मकं वहंत्योजः तन्निबद्धं हि चेष्टितम्॥"

इत्यनेन सुष्ठु प्रतिपादितम् रक्तप्रसारमुद्दिश्य। किंच "संवर्धमानं हृदयं समाविशति यत्पुरा" यत्यनेन चरकवाक्येन हृदयस्थानगतं रक्तं सर्वतः शरीरमभिव्याप्य यथापूर्वं पुनः हृदयमेवाविशतीति तत्संचारक्रमोपि निपुणमेवोक्तः।

"तन्निबद्धंहि चेष्टितम्" इति वाग्भटवाक्येन,

"देहस्य रुधिरं मूलं रुधिरेणैव धार्यते।
तस्माद्यत्नेन संरक्ष्यं रक्तं जीव इति स्थितिः॥"

रक्तमेवप्राणधारणम्

इत्यनेन सुश्रुतवाक्येन च रुधिरमेव सर्वशरीरपोषकं धारकं च भवति। आंगिकादिचेष्टाः सर्वा अपि तदेवाश्रयंते, इति स्फुटमेव प्रतीयते। अनेन समुदितेन चरकसुश्रुतादिवाक्यजातेन रुधिरस्य प्रधानं धाम, तत्संचारक्रमः, तत्कृत्यं इत्येवमादीनि सर्वाणि बहोः कालादर्वागेवास्मदीयैराचार्यैः सम्यगवगतानीति स्तनंधयेनापि ज्ञातुं शक्यते।

स्रोतोधमन्यो परिज्ञानं

प्राचीनैरस्मदीयैराचार्यैः धमनीनां स्रोतसां च स्थानं तत्प्रसारणक्रमः कृत्यादीनि च बहुधा परिज्ञातानि। तत्र उदकवहनाड्यौ तालुक्लोमनी चाश्रित्य वर्तेते। तत्र विद्धे पिपासा सद्योमरणं च भवेदिति पर्यज्ञासिषुः। एवमेव रसवहानां रक्तवहानां आर्तववहानां च प्रधानाश्रयादिकं तद्वेधेन संजातान् रोगांश्च निपुणतरं जानंत आसन्।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

तदुक्तं सुश्रुते शारीरे—

उदकवहे द्वे, तयोर्मूलं तालु क्लोम च; तत्र विद्धस्य पिपासा सद्योमरणं च।"

"रसवहे द्वे, तयोर्मूलं हृदयं रसवाहिन्यश्च धमन्यः, तत्र विद्धस्य शोषः प्राणवहविद्धवच्च मरणम्।"

"रक्तवहे द्वे, तयोर्मूलं यकृत् प्लीहानौ; रक्तवाहिन्यश्च धमन्यः। तत्र विद्धस्य श्यावांगता ज्वरो दाहः पाण्डुता शोणितातिगमनं रक्तनेत्रता च।"

"आर्तववहे द्वे; तयोर्मूलं गर्भाशयः; आर्तववाहिन्यश्च धमन्यः; तत्र विद्धायां वन्ध्यात्वं मैथुनाऽसहिष्णुत्वम् आर्तवनाशश्च" इति।

एवमेव प्राणवहादीनां मलमूत्रादिस्रोतसां च आश्रयादीनि चरकसुश्रुतादौ सुष्टूपपादितान्युपलभ्यन्ते; एतादृशसूक्ष्मपरिज्ञानं न हि प्रात्यक्षिकशारीरज्ञानमन्तरा उपलभ्यते; एतदपि द्रढयति चिरंतने काले शरीरपरीक्षणेन जनितस्य अस्मदीयानाम् आयुर्वेदपरमाचार्याणां परिज्ञानस्यौत्कृष्ट्यं सर्वातिशायितां च।

माननीयाः! एतावता प्रपंचेन प्राचीनानां वैद्यकाचार्याणां शारीरकपरिज्ञानं परीक्षणेन प्रत्यक्षतश्शवशरीरे यावदुपलब्धं ज्ञानं तस्यौत्कृष्ट्यं निरूपितं। तेनैव पथा शिष्यगणमपि कर्मपथेषु बोधनापद्धतिं प्रादर्शयन्निति च प्रत्यपादि।

तेन अंगप्रत्यंगादिविभागे सम्यगवबोधिते शल्यतंत्रांतर्गतछेदनभेदनादिषु अष्टस्वपि कर्मसु हस्तकौशलमभ्यसनीयम्। तत्राभ्याससमये एव शरीरेप्रयुक्तान्येतानि कर्माणि कदाचित् शिरास्नाय्वादीनां अन्यथा भेदनेन शरीरस्य हानिरपि जायेत। तदर्थमवश्यं अन्यत्र तत्तदर्हेषु वस्तुषु तत्तत्कर्मपथं प्रदर्श्य आचार्येण हस्तनैपुण्यं बोधनीयं शिष्यजनेभ्यः। तत्प्रकारस्तु सुश्रुतेन निपुणतरमुपदिष्टः; तत्रदिङ्मात्रमत्रप्रदर्श्यते; छेदन, उत्कर्तनोपकर्तनानि पुष्पफलालाबू प्रभृतिषु, भेदनं उदकपरिपूर्णचर्ममयकोशेषु, लेखनं सलोमनि चर्मणि, वेधनं पश्वादीनां मृतशरीरे स्नायुप्रभृतिषु, एषणम् कीटादिभिः कृतरंध्रेषु दारुषु, आहार्यं पनसबिंबीफलादिषु, निस्राव्यं शाल्मलीफलकादिषु मधूच्छिष्टोपलिप्तेषु, सीवनं मृदुतरचर्मादिषु च बोधनीयमिति छेदनादीनां कर्मणामभ्यासक्रमः दृश्यते।

एवमेव चतुर्दश प्रकारेषु बन्धनेषु क्रियाभ्यासः दारवपुत्तलिकादिसाधनैः अवगन्तव्यः। नेत्रवस्ति, व्रणवस्ति, वस्तिपीडनक्रियाः अलाबूप्रभृतिषु बोधनीया। एवमधीतशास्त्रः अभ्यस्तकर्मकौशलश्च कृतहस्ततामवाप्य ज्ञानपूर्ण एव न जातुचिदपि चिकित्सासु भ्रान्तिमवाप्नोति।

तदुक्तं सुश्रुते—"एवमादिषु मेधावी योग्यार्हेषु यथाविधि द्रव्येषु योग्यां कुर्वाणो न प्रमुह्यति कर्मसु" इति। उपरि सूचितानि बन्धनानि सुश्रुते चतुर्दशधा विभज्य नामतः प्रदर्शितानि; तानि च कोशदाम स्वस्तिक अनुवेल्लित उत्तोली मंडल स्थगिक यमक खट्वा चीना विबंध वितान गोफण पंचांगी इति नामत एव प्रशस्तसन्निवेशानि भवंति। तदुपयोग्यानि क्षौमकार्पासाविकादीनि द्रव्याण्यपि निर्णीय तत्तत्स्थानभेदेन बंधनबोधनप्रकारः बंधनार्हद्रव्याणां धूपजादिसंस्कार विशेषाश्च निपुणं निरूपितः।

शस्त्रकर्माणि तद्भिर्वृद्धिः—

कायचिकित्सकाग्रगण्यः भगवान् चरकाचार्यः शस्त्रकर्माणि पाटनव्यधनछेदनलेखनप्रच्छानसीवनभेदेन षड्विधानि भवंतीति उक्तवान्; शल्यतंत्रप्रवर्तकः सुश्रुतः आहार्य विस्राव्य भेदेन अधिकतया संयोज्य अष्टधाभवंतीति अजीगणत्; वाग्भटाचार्यः अष्टांगसंग्रहे उत्पाटन कुट्टन

Indira Gandhi National Centre for the Arts

मंथन उद्धरण नामकानि चत्वारि पूर्वोदितैस्संयोज्य द्वादशधा व्यभजत् तेनैव अष्टांगहृदये दाहकर्मापि एकं संयोज्य त्रयोदशधा शस्त्रकर्माणीति प्रत्यपादि।

तादृशशस्त्रकर्मसाधनभूतानि शस्त्राणि विंशतिप्रकाराणि भवंतीति सुश्रुते उक्तमस्ति। अष्टांगसंग्रहे शलाका कर्तरी सर्पमुख कर्णव्यधनसूची सूचिका कूर्चभेदेन षड्विधानि शस्त्राणि सुश्रुतप्रतिपादितेभ्यः अधिकतया अग्रहीत्। बंधनेषु सुश्रुतपरिगणितेभ्योऽप्यधिकः उत्सङ्गनामक बन्धविशेषः चतुर्दशसंख्यातीतः वाग्भटेन संगृहीतः। उपरि निर्दिष्टक्रमेण चरकापेक्षया सुश्रुतकाले शस्त्रकर्मसु द्वितयाधिकता, वाग्भटकाले ततोपि पंचाधिकता च श्रूयते। एवं शस्त्रविषयेऽपि सौश्रुतात् वाग्भटकाले क्रमाभिवृद्धिः, बंधनेषु एका अभिवृद्धिः, उपलभ्यते। एतेन वाग्भटकालपर्यंतं शस्त्रचिकित्सा विधिं तत्तत्कालानुगुणं अभिवृद्धेः परांकोटिं प्रापयन्तः प्राचीनतन्त्रकाराः प्रतिभायास्सर्वातिशायित्वं अलभन्निति स्फुटतरमेव विज्ञायते। एतत्कालावधि पूर्वोदितक्रमेण यदि वर्धेत तदा कीदृशी समुन्नतिः चिकित्सानैपुण्यं च जायेतेति भवन्त एव विमृशंतु! चिरादपिकालात् पूर्वं औन्नत्यमापन्ना अस्मर्याहरणादिविधयः इदानीमपि अव्याहतप्रसरा दरीदृश्यन्ते।

वृद्धिपत्रमंडलाग्रादिशस्त्राणां छेदनादिकृत्येषु धारणपद्धतिः तत्तद्धेतु विनियोजनप्रकार इत्यादीनि बहुधा प्रापञ्चयन्। एवं प्राचीनाः पूर्वोक्त नयेन सदाचार्यसन्निधाने लक्ष्यलक्षणसमुपेत आयुर्वेदं अधीत्य बोधना पद्धतिमवलम्ब्य बाह्याभ्यन्तरावयवादिसन्निवेशप्रत्यक्षतो निस्संशयं ज्ञात्वा कर्मसु नैपुण्यमुपलभ्य तत्तदुचितांश्चिकित्साविधीन्यथाक्रमं विनियोजयन्त अनुदिनाभिवृद्धं प्रतिभाविशेषेण कानिचिदपूर्वाणि लोके प्रकटयन्त अनन्यसाधारणीं कीर्तिं प्राप्तुं यतमाना आसन्निति स्फुटतरमेव वयमवगच्छामः।

अपितु प्रात्यक्षिकबोधनापद्धतिसमुल्लसितोऽयं शस्त्रविधिः अधुनातनशस्त्रपरिपाटीं सर्वथाऽतिशेत इति उच्चैरेव वक्तुं प्रभवामि।

आर्याः! उपरिष्टात्कर्मपथाभ्यासो बहुधोपवर्णितः। तत्राभ्याससमये आतुरालयः, प्रसूतिशाला, आरोग्यसदनं, औषधागारश्च अत्यन्तमुपकुर्वन्ति। तैरपिसाधनैः कर्मपथं सम्यगवबोधयन्निति अनेकैः कारणैरवगच्छामः। न केवलं क्रियाभ्यासमेवोपकुर्वंति ते। नानामयपीडितानां बहूनामारोग्यजननेनाऽत्यन्तोपकृतये समर्था अभूवन्। पुरा अशोकस्य काले देशांतरेपि तत्रतत्र जन्तुसामान्यं चिकित्सुतुमर्हा आतुरालयः प्रचारमुपगता इति तदीयशासनाद्विज्ञायते।

तेष्वातुरालयः यथोचितवातातपप्रसरणशीले रम्यतमे प्रदेशे परिकल्पनीयः। तत्रैकतमे प्रदेशे नात्यल्पवातसंचारक्षमं प्रेक्षावतां मनस्यानन्दोत्पादकनिकेतनमेकं निर्मातव्यं। गेहेऽस्मिन्धूमपरागादिभिस्समं कदापि न भवितव्यम्। तच्चेन्द्रियोद्वेजकशब्दस्पर्शादिविषयैस्संस्पृष्टं मनोज्ञैस्सुखारोहणैस्सोपानैरुपनिबद्धेन सौधभागेनोपस्कृतश्च कल्पनीयं। अन्यतमे भागे मलमूत्रादिविसर्जनोचितमेकं निकेतनं निर्मातव्यम्। औषधप्रेषणार्हास्सुश्लक्ष्णा उपलोपेताः खल्वास्तत्तत्क्रियासाधनानि पात्राणि स्थापनीयानि। कालोचितक्रियाकरणचतुराः सेवका आतुरानुपचरितुं समर्थाः परिचारकानि योजनीयाः। तस्मिन्निकेतने निवसतां व्याधितानां मनसो वैकल्यमपनेतुं वेदनायाः मनः प्रत्यावर्तयितुंचाख्यानकाख्यायिकेतिहासबोधकाः केचनपुरुषा आह्लादजनकाः शारीशुकलावकादिमनोहरजन्तुनिचयाश्चाऽभ्यासितव्याः। आतुराणां सुखशयनार्हाः स्वास्तृताः सोपधा नातिन्नतनीचाः मञ्चाः शीतादिनिवृत्तिदक्षाणि उपबर्हाणि स्थापयेयुः। शल्यचिकित्सोचित यन्त्रशस्त्रादीनि साधनानि उपयन्त्राणि तत्तदुचितप्रदेशेषु निवेशयेत्। यानि चान्यानि चिकित्सोपयोग्यानि आतुराणां सुखोपजननानि च भवन्ति सर्वाण्यपि तानि उचितस्थले सङ्गृह्य णि संक्षेपणीयानि।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

एवं निर्मितः आतुरालयः आरोग्यायोपकल्पते। एतच्च चरके निपुणंप्रतिपादितं "दृढनिवातं प्रवातैकदेशं सुखप्रविचारं अनुपत्यकं परिसंख्यायोपकरणं विद्यते यत्र प्रतिभोगार्थं तत्तदुपकल्पयेत्" (चरक. सू.) शस्त्रचिकित्सावसरे पूर्वमेवातुरालये संगृहीतव्यानि द्रव्याणि सुश्रुते अग्रोपहरणीयेऽध्याये एवं प्रतिपादितानि—"अतोऽन्यतमं कर्मचिकीर्षता वैद्येन पूर्वमेवोपकल्पयितव्यानि भवन्ति। तद्यथा यन्त्रशस्त्रक्षाराग्नि शलाकाश्रृङ्गजलूकालाबुजाम्बवौष्ठ पिचुप्लोत सूत्रपत्र पट्टमधुघृत पयस्तैल तर्पणकषाया लेपनकल्क व्यजन शीतोष्णोदककटाहादीनि परिकर्मिणश्च स्निग्धाः स्थिराः बलवन्तः" इति। अनेनोपदेशेन शस्त्रकर्मचिकीर्षता भिषजा अप्रमत्तेन शीघ्रकारिणा च भवितव्यमिति सूचितं भवति।

अपिच चरकशारीरे अष्टमेऽध्याये सूतिकागृहनिर्माणपद्धतिः शिशुनिवासार्हं निकेतनप्रकारश्च सम्यक्प्रतिबोधितः। शस्त्रविधिना चिकित्सितस्य आतुरस्य निवासार्हं निकेतनं समुचितोपकरण संभृतं पृथगुपकल्पनीयमिति सुश्रुत एकोनविंशोऽध्याये दृश्यते। पूर्वोदितप्रकारेण सुश्रुताद्याचार्यैः उपवर्णितः आतुरालयनिर्माणपद्धतिः प्रसूतिशालारचनाप्रकारश्च इदानींतन वैद्यकशालापरिकल्पनामतिशेत इति स्फुटतरमेव प्रतीयते। आलयनिर्माणं समुचितवातसंचारे शुचौ रम्यतरे प्रदेशे परिकल्पनीयमिति उक्तवतामाचार्याणां निर्माणकौशलं आधुनिकवास्तुविद्याविदां मनसि आश्चर्यं मुत्पादयेत्। अत्र निरूपितैः परिचारकादीनां नियमैः तत्तदुचितकृत्यैः आचार्यैः स्वापाश्रयाणां परिशुध्यादिगुणैश्च व्याधितानामारोग्यसंपादने परिरक्षणे परिचरणे च आचार्याणां बलीयानुद्योग इति सूचितं भवति।

सुश्रुते व्याख्यात शस्त्रचिकित्साशालाक्रमः अनन्यादृशः। आधुनिकशस्त्रचिकित्साशालानिर्माणरीतिमपि अतिशेते। शस्त्रचिकित्सासमये पूर्वमेव संभारादिकं संनिधापितव्यमिति बोधयन् आचार्यः शस्त्रचिकित्साकौशलं तत्राप्रमत्ततां च परमुत्तेजयति। प्रसूतिशिशुपाकशालानां निर्माणक्रममनुस्मृत्य को वा विस्मयाक्रांतचेतसो न भवेयुः।

एवंपूर्वोदित नयेन विद्यालयातुरालयेषु सानुभवं वैद्यकतंत्रमधीत्य लब्धप्रज्ञः अभ्यस्तसकलक्रियाकलापः वैद्यधुरीणः त्रिजप्राणाचार्येत्यादिबिरुदैस्संभावयितुमर्हतीति चरकश्लोकस्थानेनावगम्यते।

अपिच तादृशपरिज्ञानेन लब्धबिरुद एव चिकित्सकपदवीमधिरोढुमीष्टे। ततश्च राजानुमतिमुपलभ्य बहिर्व्याधिचिकित्सासु प्रतिकर्तुं यतनीयम् नान्यथेति सुश्रुतसूत्रविशिखानुप्रवेशनीयाध्याये "राज्ञानुज्ञातेन" इत्यादिवाक्यैः स्फुटमेव प्रतीयते। राजानुमतेनापिसंशयाक्रांतफलेषु मूढगर्भादिचिकित्सितेषु तात्कालिकीं राज्ञानुमतिं पृष्ट्वैव शस्त्रमवचारणीयमिति "अथापृच्छेश्वरं वैद्यः" इत्यादि वचनैर्मुक्तकण्ठमवादीत्सुश्रुताचार्यः।

उपरिनिबद्धैः निबंधनैर्वैद्यकशासनं तदनुसरणं च चिरादपि कालात्सदाचरणमनुभवतीति विज्ञायते। एवमत्युन्नतां गतिमवलंब्य सर्वतः प्रचारितोयं सांगायुर्वेदः अद्यतने काले राजावलंबनादिराहित्यदोषेण विरलप्रचारः कामपि अनवस्थितां दशामनुभवतीति वक्तुमपि नोत्सहते मे चेतः। तादृशीं भगवतीमिमां आयुर्वेदविद्यांतमोग्रस्तामिव चंद्रप्रभामुद्दिधीर्षवः अस्मदीयाः भारतीयाः सकलेष्वपि देशेषु तदुचितानुद्यमान् कर्तुं प्रोत्सहंते। अतीतदशवत्सरप्रभृति अनेन विद्यापीठेन महासंमेलने क्रियमाणं कार्यमतं जानन्त्येव तत्रभवन्तः महोदयाः। पुनानगरे प्रवृत्तमहासंमेलने आयुर्वेदसंबन्धिनी काचन निबन्धनापद्धतिरुपक्रांता। तस्याः अभिवृद्धये अप्रमत्तैरस्माभिः प्रयतितव्यं लक्ष्यपरिज्ञानमनुसृत्य सुशिक्षितानां वैद्यानां संख्याधिकता यदा भवेत्

तदैवायुर्वेदीयानि निबन्धनानि चिकित्साविधानानि च सर्वतः प्रचारयितुं वयं शक्नुमः।

शासनानि।

आर्यमहोदयाः !

उपान्तप्रदर्शितैः चरकसुश्रुतादिवाक्यैः आतुरालयादिनिर्माणं तदनुसरणे कर्मपरिशीलन-पद्धतिः तदनुबन्धतया आरोग्यपरिपालनं च चिरादपि कालात् प्रचारितमासीदिति विज्ञायते; तामेव सरणिमनुसरद्भिः कैरपि आतुरालयादीनि निरमायिषतेति शासनैः अवगच्छामः। पुरा किल अशोकस्य परिपालनावसरे न केवलं मनुजमात्रोपयोगीति, अपितु पश्वादिजन्तूनामपि संरक्षण-दक्षाणि आतुरालयादीनि निर्मितानीति तदीयशासनेष्वेकतरेणावगम्यते।

वीरचोलातुरालयशासनम् !

शासनेषु तेषु वीरचोलातुरालयनाम्ना विख्यातमेकं प्राथमिकमित्यनुमीयते। शासनमिदं चोलदेशाधीशेन राजकेसरिवीरराजेन्द्रदेवनाम्ना नरपतिना (१०६२—६७) क्रैस्तवशके प्रति-ष्ठितम्। तेनैव निर्मितायाः विष्ण्वालयानुबन्धिन्याः संस्कृतपाठशालायाः संबन्धी तत्र अध्ये-तृणामारोग्यपरिपोषणचणः एकः आतुरालयोऽपि स्थापितः। तत्र पंचदशातुराणाम् उचितवसतिः चिकित्सोपयोगीनि द्रव्याणि चिकित्सकः परिकर्मिणश्च नियुक्ताः।

तथाहि—कायचिकित्सकः एकः। अन्यस्तु शल्यचिकित्सकः। द्वौ पुरुषपरिचारकौ स्त्रीपरि-चारिके अपि द्वे. ओषधि प्रभृति द्रव्यजातमानेतुमेकः परिचारकः। अन्यस्तु औषधपाकादि निर्वर्त-यितुं नियुक्तः पाकादिक्रियोपयोज्यानां पात्राणां परिकल्पनार्थं कुलाल एकः। रुग्णानां परिधानीयादि संशोधकः एको रजकः नियोजितः। आलयपरिपालनार्थं दौवारिक एको नियमितः वत्सरपर्यन्त-मुपयोग्यानां तैलघृतासवादीनामुपकल्पनाय आवश्यकं द्रव्यजातं, उपरिप्रदर्शितानां वेतनादि-विशेषाश्च प्रतिपादिताः; आतुरालयस्य धर्मतः परिपालनार्थं कार्यनिर्वाहकसंघोपि निर्दिष्टः। एव-मादीनि विवरणानि तस्मिन्नेव शासने विलिखितानि दृश्यन्ते।

मलकापुरशासनम्

अस्मिन् चेन्नपुरराष्ट्रे गुंटूरुमंडलांतर्वर्तिनि मंगलगिरिपरिसरे मलकापुरग्रामे प्रतिष्ठितमेकं शासनं परिदृश्यते। शासनमिदम् एकादशक्रैस्तवशताब्दमध्यवर्तिनि काले काकतीयवंशजातेन गणपतिदेवेन निरमायि। अयं हि धर्मरतः अग्रहारमेकं विरचय्य केषांचिदार्याणां वृत्यादिकं निर्णीय तत्र अधिवसतां स्वास्थ्यपरिपालनार्थं आरोग्यशालां प्रसूत्यालयं च परिकल्प्य तेषां चिर-कालप्रवर्तनाय कानिचिन्निबन्धनान्यकरोदिति

"प्रसूत्यारोग्यशालाभ्याम्"
"पंचव्याख्याकृतो वैद्यः"
"प्रत्येकं पुट्टिकाद्वयम्"

इत्येतैः शासनविलिखितैः वाक्यैरवगम्यते।

इतरशासनानिः—

एवमादीनि आतुरालयादीनां विवरणशासनानि मदीये ह्यायुर्वेदीयशासनपुस्तके निपुण-मुपपादितानि।

उपरि निर्दिष्टशासनविमर्शनेन तस्मिन् काले प्रवृत्तः शस्त्रचिकित्साप्रचारः सूच्यते। स्त्रीपरिचारकनियोजनेन रोगिणां परिचरणे स्त्रीणामेव प्रीतिपूर्वकप्रवृत्तिस्सम्भवतीति, तादृशक्रिया-

करणदक्षाः विद्यावत्यश्च योषितस्समभूवन् इति विज्ञायते। नह्येतत्सर्वं पाश्चात्यकवैद्यप्रचारेणैवोपलब्धं पुरेतिवक्तुमवकाशः एवं किल मन्वते केचन पाश्चात्यवैद्याः "स्वीयैवैद्यकविद्यया आतुरालयादीनां प्रचारः लोके परिदृश्यते। नह्यीतः पूर्वम् भारतीयैर्विज्ञातमेतद्विषयजातम्" इति चिरन्तनैश्चरकादिभिराचार्यैः प्रदर्शितेषु राजयैः प्रचारमुपनीतेषु च विषयेषु वयमेवाग्रेसराः तत्प्रवर्तका इति साभिमानं वदताम् अधुनातनानां जल्पितानि आत्मस्तुतिमात्रपर्यवसन्नानीति वक्तुं को वा प्रत्यवायः।

मान्याः! एवं विधानि शासनानि वैद्यकप्रतिपादकानि बहूनि संति ; तत्रैकम् "११९१" क्रैस्तवशके निर्मितं नंदल्लूरुशासनम्।

(१७६८) क्रैस्तवशके निष्पन्नं अकलपूडिशासनं ; (१४२३) क्रैस्तवशके कल्वयेरु शासनम्।

अंतिमशासनद्वयं विषचिकित्साकौशलं निरीक्ष्य तदर्थं कल्पितमिति तस्मिन्नेव शासने विलिखितमस्ति। एवमादीनि शासनानि वैद्यकविद्योपयोगीनि मन्ये तत्र तत्र बहूनि संतीति।

शासनान्वेषणक्रियासु नियुक्ताः राजकीयाः एतदन्वेषणाय यदि यतेरन् भारतीयानामत्यन्तोपयोगीनि वैद्यकविषयजातानि तूर्णमेव वैद्यानामितरेषां च अत्यंतमुपकुर्युरिति विश्वसिमि। आर्माः प्रियसोदरवर्याः !

वस्तुगणपाठ विमर्शनम्

एतावता प्रबन्धेनाऽयुर्वेदचिकित्साभ्यासप्रधानोपयोगिनामन्यतमं शारीरकविभागज्ञानं तद्बोधनापद्धतिं चाधिकृत्य यथोचितं निरूपितमासीत्। इतश्च चिकित्साविधानेषु प्रधानभूतानां द्रव्याणां गणपाठानुद्दिश्य किञ्चिद्विमर्शना कर्तुमुत्सहते मे मनः—

चरकसुश्रुतादयः औषधोपयोगीनि द्रव्याणि खनिजप्राणिजकाष्ठौषधभेदेन त्रिधा विभज्याऽग्रहिषुः। तेषां स्वरूपपरिज्ञानं तापसगोपालकिरातादिमुखेनाऽवगन्तव्यमिति प्रतिपादितत्। उक्तंहि सुश्रुतेः—

"किरातास्तापसा व्याधा ये चान्ये वनचारिणः।
मूलाहाराश्च ये तेभ्यः भेषजव्यक्तिरिष्यते॥" इति।

तत्र काष्ठौषधानि ओषधि वनस्पति वीरुत् वानस्पत्येति भेदेन चतुर्धा विभक्तानि। खनिजानि महारस साधारणरस लोहादिभेदेन पर्यगणयन्। प्राणिजानि च महामृगादिभेदेनाऽष्टधोपदिष्टानि। एतानि द्रव्यजातानि तत्तदाश्रितेन प्रमाणेन वर्णनाऽऽकृत्यानामभेदेन जात्या च परिज्ञातव्यानीति पञ्चोपायानुपादिशन्। तैरुपायैस्स्वरूपतो वस्तूपलभ्य प्राणिनामनेकशो उपयुज्य तदाश्रिताणान्त्ररसवीर्यविपाकप्रभावास्तदधिष्ठितान्दीपनपाचनादिशक्तिविशेषांश्चाऽऽबोधिषुः ओषधीनां स्वरूपनिरूपणसमये तत्तदवयवविन्यासभेदेनाऽयं द्विपत्रोऽस्य पत्राणिस्निग्धानि इदं च पत्ररहितम् इत्यादिभेदान्विशिष्य प्रादर्शयन्। प्रमाणत इदं पञ्चरत्नि विस्तृतम्। मूले द्व्यङ्गुलायतमिति, आकृत्याऽयंसर्पाकारो हंसपादवविच्छिन्नपत्रः इत्यादिभेदैस्तत्तद्वस्तुबोधकचिह्नानि सम्यङ्निरूपितानि।

भगवांश्चरकाचार्यः ओषधीनां परिगणनसमये विरेचन द्रव्याणि षट्शतानीति पर्यगणयत्। सुश्रुतवाग्भटयोरियती संख्या न दृश्यते। चिकित्सासौकर्यार्थं चरकादिभिराचार्यैर्द्रव्याणि गणशो विभज्य प्रदर्शितानि। ते गणास्सप्तत्रिंशतिसंख्याका भवन्तीति सुश्रुतेन प्रत्यपादि। वाग्भटाचार्य-

Indira Gandhi National Centre for the Arts

स्त्रयस्त्रिंशदित्यवदत्। चरकमते एतदुभयापेक्षयाऽऽधिक्यं दृश्यते। चरकसुश्रुतवाग्भटानां वर्गीकरणविषये परस्परभेदोदृश्यते। तद्भेदमधिकृत्य किञ्चिद्विमृश्य प्रदर्श्यते।

चरकसूत्रस्थाने चतुर्थाऽध्याये प्रतिपादितो जीवनीयादिगणिवाग्भटेन जीवन्त्यादिगण इति निरूपितः। तमेवगणं सुश्रुताचार्यः काकोल्यादिनाम्नाऽग्रहीत्। एतेषां त्रयाणामपि मते नामतः भेदः परिदृश्यते क्रमपरिगणितानां पदार्थानामपिपरस्पर भेदः स्फुरति।

सुश्रुते—आमलक्यादिलाक्षादि प्रभृतयो गणा उपवर्णिताः, वाग्भटे भद्रादार्वादि दूर्वादिप्रभृतयो निरूपिताः। एतेषां परस्परभेदोऽतीव दृश्यते।

सुरसादिगणस्सौश्रुते वाग्भटे च गृहीतः। तत्र सुश्रुतेन सुमुखखरपुष्पनिर्गुण्डी प्राचीबलेत्येति अधिकतया नियोजिताः।

वेल्लादिगणे चरकसंगृहीतेषु वस्तुषु लशुन हरिद्रा तुन्दुरु सुरसा कुठेरक फणिज्झक ज्योतिष्मती सैन्धवा ऽजाजीप्रभृतीनुत्सृज्य वाग्भटस्त्वजीगणत्। एवमेव चरकसुश्रुतवाग्भटानां वर्गीकरणे तत्तद्वर्गीयद्रव्येषु च महान्भेदो दृश्यते। चरकसुश्रुतोपदिष्टेषु पदार्थेषु स्नेहादिवर्गगताः मांसवर्गप्रभृतिषु परिगणिताश्च पदार्थाः केचन वाग्भटेन परित्यक्ताः।

सङ्घाङ्गीकृतवर्गाः।

चरकसुश्रुतवाग्भटेषु तत्तद्वर्गेषु निरूपिताः पदार्थाश्चिकित्सासूपयुज्यमानाश्च तत्तद्ग्रन्थकर्तॄणां समये विमर्शनाबलेन प्राचीनैस्संघाङ्गीकृतानङ्गीकृतभेदेन द्विधा विभक्ता इति वक्तुमवकाशो लभ्यते। तत्र लक्षणे प्रत्येकं निर्णीतेषु वर्गेषु संगृहीतानां पदार्थानां परस्परभेदः परिदृश्यते अयं च भेदस्तन्त्रकाराणां विमर्शनाबलेन देशकालाद्यनुगुणं केषांचिद्द्रव्याणां त्यागेन सग्रहेण च समजनीति द्योत्यते। लक्षण्येषु ये परिगणिता वर्गीयद्रव्यनिचयास्तेषामेव चिकित्सासु उपयोगोदृश्यते ग्रन्थेषु एतेनैतन्निश्चीयते, प्राचीनाः ग्रन्थरचनासमये केचन संघीभूय प्राचीनतन्त्रेषु परिगणितान् कालाद्यनुगुणं कांश्चन विहायाऽन्यास्संगृह्यच तैरेव नामभिर्वर्गान्परिगणय्य तन्त्रेषु प्रथयन्त आसन्। तेषामेव द्रव्याणां संघांगीकृतता संभवति।

संघानांगीकृतवर्गाः

प्राचीनवर्गीयेभ्य इतराणि सर्पनिर्मोक श्वानास्थि गोचर्म हस्तिदन्त मार्जालविष्ठा प्रभृतीनि द्रव्याणि तदधिष्ठितगुणवीर्यादिभिश्चिकित्सोपयोगितामुपलक्ष्य नवीनतया संगृह्य तत्तदुपयोग्येषु चिकित्सासु प्रायुञ्जकेचन तन्त्रकाराः। एतान्निस्वानुभवेनैव चिकित्सोपयोगितां सम्यगनुमीय नवीनां कांचन सरणीमवलंब्य लोकोपकृतये संयोजितानि। न हि बहवस्सम्भूयैककण्ठ्येन पर्यालोच्य निरणैषुः।

अस्मादेव हेतोरेवंविधानि संघानङ्गीकृतानीत्युच्यन्ते। ईदृश्यः द्रव्यसन्ततयः तत्तद्देशीयवैद्यकवरैः क्रमेण उपयुज्यमानाः प्रदर्शितफलाः यदि भवेयुः, तदा संघाङ्गीकृतेष्वन्तर्भूता एव भवितुमर्हन्ति। तथैव दृश्यन्ते केचन क्रमोपयोगेन संघाङ्गीकृताः पदार्थाः। अष्टनवत्युत्तर अष्टशताधिके सहस्रे वत्सरे (१८९८) सिद्धान्तिते ब्रिटिश फर्माकोपियां नामकग्रन्थे अजण्डनामकप्रकरणे प्रदर्शितवस्तुजातानि चतुर्दशोत्तरनवशताधिके सहस्रे वत्सरे सिद्धान्तिते ब्रिटिशफर्माकोपिया ग्रन्थे संघाङ्गीकारेण अनुमतान्युपलभ्यन्ते। तत्रैव पूर्वाङ्गीकृतेषु केषुचिद्वस्तुषु भूसार ऋतुदोषादिकृतं गुणवैपरीत्यमुपलक्ष्य पर्यत्यजन्। एवमेव अनेकैः भिषग्वरैः उपयुज्यमानानि

Indira Gandhi National Centre for the Arts

गुणोत्तराणि यदि भवेयुः तानि अवश्यं संघैरनुमतानिभवेयुः अनया दिशा प्राचीन ऋषिपुङ्गवैः चरकसुश्रुतादिभिः परिगणितेषु वर्गेषु ऋतुकालादिजनितवैपरीत्यं प्रत्यक्षत उपलभ्य केषां चिद्वस्तूनां त्यागः, अन्येषां संयोगश्च दृश्यते इति निश्चिनुमः। समंजसंचैतत्, यतः—न्यग्रोधः मूत्रसंग्राहीति चरकेण गृहीतः। तस्मिन्नेव वस्तुनि रक्तपित्तदाहमेदोहरत्वादिगुणान्, योनिदोषहरत्वं, व्रणेषु हितकारित्वं च समुन्नीय सुश्रुतः प्रकाशितवान्। अन्येपि ये केवन गुणग्राहिणः एतादृशेषु अनधिगतपूर्वान् अन्यानपि गुणान् स्वानुभवेन विमृश्य निश्चिनुयुः। तर्हितेषामपि लोके प्रचारः भवेदिति मन्ये। एतादृशे विषये चराचर वस्तुजालनिर्मात्रा भगवता निर्मिता अनिर्वचनीया शक्तिरेव गरीयसी जागर्ति कारणम्। एवं किल दृश्यते लोके—निर्दुष्टे तपनीये गुणाधिकतां उपलभमानैः प्रज्ञाबलेन उच्चावचान्याभरणानि बहुधा निर्मीयन्ते; अलंक्रियन्ते तैरेव तत्तत्समुचितान्यङ्गानि।

परिशोधनानि

उपरि प्रदर्शित नयेन प्राचीनैस्सविमर्शं सङ्गृहीताः पदार्थाः अदूरद्विसहस्रसंख्याकाः भवेयुः। तेषां परिशोधनविषये आचार्याणां कौशलं स्मरणमात्रेण सर्वेषां विस्मयमुत्पादयति। सर्वाण्यपि द्रव्याणि रसवीर्यादिभिः उपनिबद्धानि तत्तदुचितदीपनपाचनादि क्रियासु उपयुज्यमानानि न कदापि व्यभिचरन्ति। तत्तु द्रव्यमधिकृत्य रसवीर्यादयः त्रैकालिकज्ञानसंपन्नैः ऋषिपुङ्गवैः चिरन्तनात् कालात् पूर्वं निर्णीता अपि एतत्कालावधि न कदापि व्यत्यासमधितिष्ठन्ति।

भोजनोत्तरकाले आमाशयमुपगतानां द्रव्याणां परिणामसमुद्भूताः कटु-अम्ल-मधुर-विपाकाः प्राचीनैर्निपुणमुन्नीताः, एतादृशेपरिज्ञाने आचार्याणां शारीरकपरिज्ञानेन अवश्यं बलवता कौशलेन भवितव्यम्। एवंविध परिज्ञानेन विमर्शनेन च सिद्धान्तितद्रव्याश्रित रसवीर्यादीनां त्रिदोषस्यापि सम्बन्धमुपकल्प्य दोषसाम्यं च तैरेव द्रव्यैः जायेतेति निरणैषुः।

रसशालाः

उपरि निरूपितानां उपयुज्यमानपदार्थानां कल्ककाथादि परिकल्पनाय सिन्दूरभस्मादि परिणामान्तरमुपकल्पयितुं, सिद्धानामौषधानां शुद्धाशुद्धपरीक्षणाय च रसशालाः निर्माय तत्र तथोक्तेन विधिना तत्तत्परिकल्पनेन अबोधयन्निति स्फुटमेव प्रतीयते। तथाचोक्तं रसार्णवे रसरत्नाकरे चः—

> "स्वहस्तेन कृतं सम्यक् जारणं न श्रुतं मया।
> स्वहस्तभवयोगेन कृतं सम्यक् श्रुतेन हि।
> धातुबन्ध स्तृतीयोऽसौ स्वहस्तेन कृतो मया।
> दृष्टप्रत्यययोगोयं कथितो नात्र संशयः।
> यद्यद्गुरुमुखाज्ज्ञातं स्वानुभूतं च यन्मया।" इति

तत्रैव रसशाला निर्माणप्रकारः परिशोधन साधनानि यन्त्रादीनि बहुधा उपवर्णितानि दृश्यन्ते इति वैद्यविद्यानिपुणैः भवद्भिः ज्ञायत एव।

आर्याः! औषधनिर्माणे वस्तुपरिशोधनादिविषये आवश्यकाः रसशालादि निर्माण विधानादयः यन्त्राग्निसाधनविशेषाश्च अस्मदीयैः परमाचार्यैः निपुणमुपवर्णिताः किल। अधुनातनाः

Indira Gandhi National Centre for the Arts

प्राचीनैः रसशालादि विषयाः न परिज्ञाताः, अपरीक्षितान्येव औषधानि इति जल्पमानाः विस्मयमुत्पादयन्ति मनसि ।

सिद्धौषध परिज्ञानं

रसशालासु तत्तद्विधानमनुसृत्य सिद्धान्यौषधानि अग्निनिक्षेपणेन घर्षणेन तोलनादिना सम्यक् परीक्ष्य प्राचीनैः तत्तत्क्रियासु उपयुक्तानीति प्रमाणवचनानि दृश्यन्ते ।

"रसौषधानि सर्वाणि त्वग्निमध्ये विनिक्षिपेत् ।
किंचिद्गन्धं धूमयुक्तं रसयुक्तं सुपाचितम् ॥
वल्मीकशिखराकारं भङ्गे नीलोत्पलद्युति ।
घर्षणे रक्तवर्णं स्यात् सिन्दूरं तत् प्रशस्यते ॥
चांपेयकुसुमाभासं तद्गन्धेन च संयुतम् ।
लघुवारितरं श्लक्ष्णं वसन्तकुसुमाकरम् ॥" इत्यादि ॥

आर्याः वैद्यविशारदाः !

ज्ञानगरिष्ठाः प्राचीनऋषिपुङ्गवाः एवमादिभिः परिशोधनैः विमर्शनैश्च स्वप्रतिभाकौशलेन अपूर्वानपिविषयान् रचनापद्धतीश्च विज्ञाय शिष्यगणायोपदिशन्तः स्वनिबन्धनेष्वासंजयन्तः आयुर्वेदविद्याम् अनुदिनमऽवर्धयन्निति स्फुटतरमेव प्रतीमः । प्राचीनाचरितोऽयमाचारः स्मृति पथाद्पेतः आचरणदूर एव अभूदिति जनयति मनसः वैलक्ष्यमस्माकम् ।

स्त्रीवैद्यक शिक्षणम्

मान्याः !

नवनागरिकतायाः परमां कोटिमुपगतेऽस्मिन् काले पाश्चात्याः काश्चन नारीमणयः वैद्यकपद्धतिषु सुशिक्षिताः अभ्यस्तकौशलाः चिकित्सामाचरन्तीति विदितमेवास्माकम् । तादृशं नैपुण्यमस्मदीयानां भारतधरावलयमलंकुर्वतीनां आचारदूरमासीत् । अयमपि स्त्रीवैद्यकशिक्षणाचारः भारतीयानामनभ्यस्तपूर्वः अश्रुतचर इति, पाश्चात्यवैद्यकपद्धतिषु स्त्रीवैद्यकशिक्षणमुपलक्ष्य भारतीयेष्वपि काचन तादृशी पद्धतिः तत्रतत्रेदानीमंकूरयतीति पाश्चात्यवैद्याभिमानिनः अभिमन्वते । इदमप्येकम् स्वोत्कर्षप्रविलसितम् । पुरातनेष्वार्षेषु तंत्रेषु स्त्रीणां प्रसूतिसमये तत्परिरक्षणाय वयोवृद्धाः प्रजननदक्षाः परिकर्तितनखाः स्त्रियो नियोक्तव्या इति बहुधा प्रतिपादितम् । तदुक्तं सुश्रुते "चतस्रः स्त्रियः परिणतवयसः प्रजननकुशलाः परिकर्तितनखाः परिचरेयुः इति (सुश्रुत, शा, अ, १०) ।

अपिच मूढगर्भशल्योद्धरणोचिताः योनि यकृत्प्लीहांत्रविवरगर्भाशयानां मध्यप्रदेशे कर्तव्याः स्पर्शेन उत्कर्षणापकर्षणादयः सुश्रुते चोपवर्णिताः । योनि व्यापद्रोगेषु दुःस्थित संवृतनिःसृतविवृत स्थानाय वृत्ताभिधेषु कर्तव्यानि विविधानि सुष्ठूपदिदेश भगवन् चरकः । तत्र "पाणिना नामयेज्जिह्मा" मित्यादि वाक्यैर्हस्तप्रसारणादिकर्तव्यानि क्रियांतैरपि बहुधा निरूपितानि । नहीदृशाः विकाराः हस्तकौशलेन विना औषधैरेव केवलं साधयितुं शक्येरन् । न वा अनधीतशास्त्राः अपरिचितकर्मपथाश्च एवंप्रकारेषु दुःसाध्येषु रोगेषु चिकित्सितुमुद्युञ्जानाः सफलोद्यमा भवेयुः ; नापीदृशेष्वापत्सु विधिदुर्विलसितेन समुपस्थितास्वपि आभ्यन्तरे अनुपलक्ष्ये एक-

Indira Gandhi National Centre for the Arts

देशे पुरुषैश्चिकित्सामुपलभ्य जीवितुमुत्सहेरन् मानवत्याः। लज्जैव हि भूषणानामप्यलंकारो भामिनीनां सहजोऽकृत्रिमश्च भवति।

अतः प्रसूतिसमयेषु मूढगर्भादिषु आंतरंगिकेषु विकारेषु अधिगतशास्त्राः अभ्यस्तकर्माणः समयोचितकृत्यनिपुणाः स्त्रियः प्रतिविधातुमवश्यं नियोजनीयाः अयं च समुदाचारः शिष्टैरनुज्ञातः आर्यैरादृतश्चेति किल पूर्वोदितैश्चरकादिवाक्यैरवगच्छामः। द्रढयति चेवमेव पक्षम् "कुशला पाणिनाभ्यक्तेन हरेत्" इत्यादि वाग्भटवाक्यजातम् "कुशला तद्व्यापारनिपुणा, योषित्, पाणिना सर्पिषाभ्यक्तेन तं हरेत्" इति तदीयव्याख्यावसरे अरुणदत्तवाक्यम्। न केवलमागममात्रेणानुगृहीतः, अपिचाचारपरं परास्वनुस्यूत इत्यपि उपरिप्रदर्शित वीरचोलशासनेन आतुरपरिचरणार्थं स्त्रीजननियोजनबोधकेन जानीमः।

एवं सन्मूलः सदाचरणानुगतोप्ययम् स्त्रीवैद्यकशिक्षणक्रमः अनतिचिरात्कालादारभ्य विस्मृतः अनादृतश्चेतीदमेकं विचारस्थानम्।

नवनागरकविराजिते अस्मिन् काले क्रियासु निपुणाः पाश्चात्यवैद्यविद्याविदुष्यः राजकीयानि स्त्रीवैद्यसदनानि च यदि न भवेयुः तदा सोदर्यविशेषाणाम् भारतयुवतीमतल्लिकानां प्रसूत्यादिसमयेषु मूढगर्भादिषु समुपजातेषु का वा परिस्थितिः? किं वा शरणं, कः प्रतिविधेय उपायः इति? दयमानाः तत्र भवन्त एव विदांकुर्वंतु एकाग्रेण चेतसा। एतस्मिन् विषये राजकीयनियोगः अतितरामुपकुरुत एवास्माकम्। तथापि विपुलतरे अस्मिन् भारते विद्यमानानां योषितामुपकर्तुं न पर्याप्तोयं राजकीयस्त्रीवैद्यकसमुदायः सदाचारपरायणः काश्चन भारतनारीमणयः वैदेशिकाचारभूयिष्ठामिमां चिकित्सासरणिमसहमानाः कुसुमकोमलं शरीरं दुःसाध्यैर्व्याधिसमूहैः दूषयंति, विपद्यन्ते च केवलम्।

आर्याः! एतादृशीमनर्थपरंपराम् सम्यगाकलय्य वयमितः संभूयार्षसंमतं सदाचरितं सद्यः प्राणरक्षणदक्षं च भगवन्निर्मितमायुराम्नायं भारतसोदरीमणीनां साभ्यासमुपदिश्य जगद्वनाय प्रयतेमहि।

अस्मत्प्रियमित्रवरः नासिकापुरनिवासी वैद्याचार्यः कृष्णशास्त्री महाशयः अस्मिन्नेव कार्ये बद्धादरः स्त्रीणां वैद्यकपद्धतिं बोधयतीति विदितमेवास्माभिः। एतादृशे कार्योद्यमे तेषां महांतमुत्साहमभिवर्धयद्भिरवश्यं कृतज्ञैर्भवितव्यम्।

गैर्वाण्यां वाण्यां आयुर्वेदीयेषु विधानेषु च सहजनिपुणानां केरलीयानां स्त्रीणामतितरामुत्साहः अवश्यं संपद्येतेति विश्वसिमि। तासामेव प्रोत्साहपरिकल्पनेन शास्त्रीयां सरणिमूरीकृत्याभ्यासे यदि प्रयतेमहि तर्हि तूर्णमेवायमाचारः सर्वतः प्रसृतो भवेदिति मन्ये।

संस्करणम्

आर्याः! सोदरवर्याः!

एतावता आयुर्वेदीयानां कांश्चन विषयानधिकृत्ययथौपयिकमसूसुचम्। इतः परमायुर्वेदसंस्करणमुद्दिश्य प्रत्यवतिष्ठामहे। अस्मिन्विषये केचनैवंसंविवदन्तिः— बहोः कालात्पूर्वं मुनीनां पद्वीमाश्रित्य जनोपकृतिदक्षाण्यप्यायुर्वेदविधानानि इदानींतने काले उपयोगार्हाणि न भवंतीति केचिदनुमन्यते। तान्येवैतत्कालाद्यनुगुणं संस्कारासंजितानि फलवन्ति भवेयुरिति केचिदनुमोदन्ते। अपरे केचिद्यथाश्रुताभिमानिनः अतीतानागतवेदिभिः ब्रह्मज्ञानिभिः मुनिवरैः कालत्रयानुगुणमुपलक्षितानि उपनिबद्धानि चेमानि न कदापि संस्करणमपेक्षंत इत्यभिमन्यंते। अवश्यमेतदस्माभिर्विमृश्य सिद्धांतयितुं यत्नः करणीयः।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

पुरातनेपि काले तंत्रकाराः संघीभूय तद्विषयान् प्राचीननिबद्धानपि देशकालाद्यनुसरणानुरोधेन संस्कृत्य सिद्धांतान् ग्रंथेष्वाससंजुरिति द्रव्यपरिशीलनावसरे उपरि प्रदर्शितमासीत्।

एतदेव बोधयति संस्करणपद्धतिः प्राचीनैरप्युररीकृता, निपुणमाचरितेति, संस्करणसमये न केवलमस्मदीयं विज्ञानमेवानुसृतं, अपितु द्वीपान्तरेषु प्रथितम् आचरितं च विज्ञानमवलम्ब्य संस्कुर्वन्त आसन्निति हेतुभिरनेकैरनुश्शृणुमः। द्वीपान्तरे प्रसिद्धेऽपि रोमकलवणे गुणाधिकतामालोच्य भगवता चरकेण तमधिकृत्य स्वग्रन्थे प्रतिपादितम्। अनार्यदेशसुप्रसिद्धा अनार्योक्तिषु श्रुतादिभिः सुगृहीता। यावनसरण्यां प्रख्यातिमुपगतान् रेवाचीनी खस्-खसमाचीफलफिरंगादीनुपादाय तेषां रसवीर्यविपाकादीनुपलक्ष्य सम्यक् न्यरूपयत् भावमिश्रः। निदानेषु फिरंगस्नायुकप्रभृति रोगानुद्दिश्य निदानपूर्वरूपादीन् विशदमवर्णयत् आधुनिकेषु ग्रन्थेषु, एवमादिभिः कारणैः प्राचीनानां संस्करणसमये गुणैकग्राहितां परिशीलन चातुरीमनन्यादर्शीं प्रतीमः। तमेव पन्थानमनुसरद्भिरस्माभिः एतत्कालौचित्यमनतिक्रम्य काचन पद्धतिः आयुर्वेदीयसंस्करणाय अवश्यमन्वेषणीयेति प्रचीनाचरितेषु अनुगृहीतेषु मार्गेषु संचरतादस्माकं न कदापि प्रत्यवायी हानिर्वा जायेतेति स्फुटतरमभिधास्ये।

शस्त्रचिकित्सा संस्करणम्

अपिच शस्त्रचिकित्सा विधानानि तत्साधनानि यन्त्र शस्त्रादीनि शारीरिकपरीक्षणविधानानि च केवलम् ग्रन्थमात्रप्रतिनिबद्धानि अतिक्रान्तकर्मपथानि दृश्यन्ते। शास्त्रे निरवद्यं परिज्ञानमुपलभ्यापि तदाचरणे निरुत्सुकानामस्माकं न्यूनतैव गरीयसी सर्वकार्यपरिपन्थिनी जागर्तीति प्रतिजाने। इदानीम् शल्यतंत्रप्रक्रियासु निपुणानाम् आंग्लवैद्यनिष्णातानां सुश्रुतादिनिबद्धानि शल्यतंत्रविधानानि शारीरिकपरिज्ञानं चोपदिश्य तेन मूलेन प्रचारमुपनेतव्यानीति मे बलवानभिनिवेशः :

इतरे संस्करणविशेषाः

आयुर्वेदनिबन्धनानुसारेण रसशालाः निर्माय चिकित्सोपयोज्यानां पदार्थानां सिद्धौषधीनां च परीक्षणमवश्यं विधेयं। आधुनिकरसायनशास्त्रमुपादाय तदनुसारेण वस्तूनि शोधनीयानिति केषांचिदाशयः। अधुनातन पद्धत्यवलम्बनेपि परिशोधनेनावगतानां विशेषाणां प्रकाशनं आयुर्वेदीयपरिभाषा अनतिक्रम्य यदि भवेत् तदा न कापि हानिरिति मे मतिः।

मिथ्याहारादिसंजातानां रोगाणामुत्पत्त्यनन्तरं चिकित्सितुम् यतन्ते भूयसास्मिन्काले उत्पत्तेः प्रागेव तदनुत्पादकानामाचाराणामनुसरणं समुचितमिति आयुर्वेदाचार्याणाम् धर्मशास्त्रादिरचयितॄणां च बलवानुद्देशः तदुपायाः चरकादिभिराचार्यैः स्वस्थवृत्ते मुनिवरैः मन्वादिषु स्मृतिषु अनेकशो निरूपिताः। तेषामाचारपथे प्रवर्तनं विना न हि संस्कारान्तरमन्वेषणीयम् प्राचीनैस्सन्दर्शितान् स्वस्थवृत्तसंरक्षणोपायान् दूरीकृत्य, आर्यसदाचारविरुद्धान् भारतीयानाम् शीतोष्णपरिस्थितेः प्रत्यनीकान् असात्म्यान् वैदेशिकपरिकल्पितान् आरोग्यरक्षणोपदेशानादृत्य तेषाम् परिशीलनेन मारिविपूच्यादिक्रूररोगव्याघ्रमुखेषु पतन्त्यस्मदीया इति शोचनीयमभूतव। इतः परं लब्धावबोधैरस्माभिः प्राचीनसंदर्शितस्वारोग्यपरिपालनोपायानाम् समुचिताचारप्रवर्तनेन परिपोषणे प्रयतितव्यमवश्यम्।

रोगनिदानादिसंस्करणविषये भावमिश्रादिसरणिमादृत्य एतस्मिन् काले सर्वतोविसृत्वरा-

Indira Gandhi National
Centre for the Arts

णाम् । प्रशस्तिमुपगतानाम् आंग्लसंप्रदाये, बेरि, डिंगीफीवर् न्यूमोनिया, प्रभृतीनां क्रूतराणां व्याधीनाम् निदानादिपरिकल्पने न संस्कृत्याचारनुप्रवेशनमावश्यकमिति मन्ये ।

एवमादीन् विषयानधिकृत्य विमर्शयितुमस्मिन् महासदसि महान्तमवकाशमुपकल्पयतां स्वागतकारिणीं सभामलंकुर्वतां महोदयानां समर्प्यते प्रणामसरणिरियम् ।

आयुर्वेदयूनानिवैद्यमेलनम्

आर्याः !

लोकेस्मिन् देशीयवैद्येषु यवनवैद्यविधानमपि जनानामत्यन्तमुपकुरुत इति सर्वैरपि विदितचरमेव, एतद्विधानमपि अत्युन्नताम् स्थितिमधिष्ठाया अनतिचिरात्कालात् राजावलम्बनराहित्यादिजनितदोषेण समालीढम् सत् आयुर्वेदस्यैव सहचरीभूय मन्दप्रचारमभूत् । एतद्विधानेषु रासायनिकवाजीकरणतन्त्रविहितानि औषधानि विराजन्ते बहूनि । तेषां गुणाः सर्वातिशायिनो भवन्ति । भावमिश्राचार्यः तन्निबद्धान्येव कानिचित् रेवाचीनाप्रभृतीनि द्रव्याणि समग्रहीदिति पूर्वमवादिषम् । अस्मिन् सम्प्रदाये ततोपि बहूनि ग्राह्याणि संति वस्तूनि तानि । परिशोधनादिभिः संस्कृत्य आयुर्वेदीयेष्वासंजयितुम् अर्हाणि भवेयुः ।

आयुर्वेदवैद्याः यवनवैद्याश्च परस्परसम्मेलनेन समुचितं कार्यजातमालोच्य कर्तुं यदि यतेरन् तदादुर्घटान्यपि कृत्यानि कर्तुं समर्थाभवितुमर्हतीति मन्ये संघानामेकीभावेन किल दुस्साध्यान्यपि कार्याणि सुखेन साधनीयानि भवंति ।

आर्याः !

एतावता विमर्शनेन आयुर्वेदीयसंस्करणमुद्दिश्य तत्तत्प्रमाणवचनैः आचारैश्च किंचिदुपपादितं मया विद्वद्वैद्यानां इदमेकं प्रधान करणीयम् । व्याधितानां चिकित्सोपयोगेन यत्प्राणसंरक्षणमिति उक्तं हि भगवता चरकेन—

"तदेवयुक्तं भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते ।
स चैव भिषजां श्रेष्ठः रोगेभ्यो यः प्रमोचयेत् ॥"

इत्येवमदीनि आचार्यसुशिक्षितानि मनसि निधाय जनानामारोग्यपरिपालने अस्माभिस्सर्वदायतनीयमिति विज्ञाप्यते मया ।

भेषजोद्यानानि

भिषक्पदमधितिष्ठता कुशलेन व्याधिपरिपीडितानां तत्तदुचितचिकित्साचरणेन आरोग्यपरिकल्पनाय अवश्यं यतनीयमयमेव प्राथमिको धर्मः यदार्तपरिपालनमिति उपरिष्टात् कैश्चिद्वाक्यजातैरवोचं सा च चिकित्सा निस्संशयं भेषजद्रव्यपरिज्ञानमनुवर्तते, तदुक्तं क्रियाकमीभेषजं लभेम" इति न ह्यजानता भेषजवस्तुभेदान् औषधनिर्माणे कौशलं लभ्यते संशयाक्रान्तानि भैषज्यानि किल कदाचिदन्यथीष्वयुक्तानि प्रतीपपरिणामानि भवेयुः । अद्यतने काले आचूरणमनुप्रविष्टानामपि भेषजद्रव्याणां परिमाणे संशयसमालीढचेतसः मुह्यन्ति केचन विपश्चितोपि विपणिं गतेन यत्किंचन वस्तु नाम निर्दिश्य पृष्टः आपणिकः अवश्यं ददात्येव यच तेन दीयते तदेव वस्तुविश्वसनीयं तदेवा अन्यद्वेति विवेचयितुं न शक्नोति वैद्यवरः तत्रापणिकवचनमेवैतेपमिति मन्तव्यम् । अयमेव बलवत्तरो लोपः चिकित्साकार्यपरिपंथी वैद्यकवरेषु जागर्ति अनेकावारमज्ञानवतामपि महर्षीणां विज्ञानस्य कलंकः व्यापाद्यते तं च कलंकमपनेतुम् अन्वेषणीयः

Indira Gandhi National Centre for the Arts

IGNCA RAR
ACC. No. R-268

कश्चिदुपायः भेषजद्रव्याणि तु तत्तदोचितकालेषु च समुत्पन्नानि सारवंति भवंतीति अनुश्रूयन्ते भिन्नदेशेषूत्पन्नानाम द्रव्याणां परिज्ञानमेकदा न हि संभवितुमर्हति अतः विविधेषु देशेषु उत्पन्नानामोषधीनां परिपोषणाय एकमोषधिप्रस्थम् निर्माय तत्रसर्वाऽप्यौषधयः निक्षिप्य परिपालनीयं तेन मूलेन सर्वासामप्योषधीनां निस्संशयं स्वरूपज्ञानमुद्रेच्यात् इदमेकम् प्रयाससाधनम् द्रव्यपरिज्ञानाय ।

SANS
615.536
AYU

वस्तुप्रदर्शनानि

अयमन्यः विविधदेशीयानां वस्तुनिचयानां परिज्ञाने साधीयानुपायः वस्तुप्रदर्शनशालाः निर्माय तत्र विविधदेशप्रथितानि द्रव्याणि आनाय्य तेषां सुप्रसिद्धानि नामानि गैर्वाण्यां देशभाषासु स्फुटं विलिख्य तत्तदवयवान् पृथग्विभज्य स्थापनीयानि । द्रव्यबोधनसमये तत्स्वरूपादीन् गुणादींश्चसम्यग्बोधयेदाचार्यः । प्राचीना अपि एवमेव वस्तुप्रदर्शनशालाः संस्थाप्य तन्मूलेन स्वाश्रितानां द्रव्यपरिज्ञानमजनयन्नित्यनुश्रृणुमः । तदुक्तं तन्त्रेषु—

"अष्टाश्रश्चाष्टफलकः षट्कोणो मसृणो गुरुः"
"पञ्चवर्णसुवर्णवत्"

इत्यादिवचनैः वैक्रान्तमाक्षिकादीनां लक्षणानि स्वरूपादिबोधकानि सुष्ठु उपवर्णितानि ।

हरीतकी सप्तविधेत्युपक्रम्य सप्तविधानामपि तेषां प्रत्येकपरिज्ञानाय पृथक् लक्षणानि एवमुपनिबद्धानि—

"विजया रोहिणी चैव पूतना चामृताऽभया ।
जीवन्ती चेतकी चेति विज्ञेयास्सप्त जातयः ॥
अलाबुवृत्ता विजया वृत्ता सा रोहिणी स्मृता ।
पूतनास्थिमती सूक्ष्मा कथिता मांसलाऽमृता ॥
पञ्चरेखाऽभया प्रोक्ता जीवन्ती स्वर्णवर्णिनी ।
त्रिरेखा चेतकी ज्ञेया सप्तानामियमाकृतिः ॥" इति ॥

एवं प्राचीनपद्धतिमनुसृत्य वस्तुस्वरूपबोधनार्थं भेषजोद्यानानि वस्तुप्रदर्शनशालाश्च आवश्यका भवन्ति । तदिदानींतनकालपरिस्थितिमनुचिन्त्य तत्परिकल्पनाय कश्चिदुपायश्चिन्तनीयः ।

आयुर्वेदवाङ्मयम्

लोके ऋषिवर्यैः प्रचारमुपनीतानां आयुर्वेदविषयाणां बोधकाः ग्रन्थरत्नाः परश्शतं चकासति । तेष्वनेके नाममात्रावसिष्टाः परिदृश्यन्ते । चरकसुश्रुताऽऽदिव्याख्याकारैः तत्तद्व्याख्यासु प्रदर्शितानि हरिचन्द्रजैजटचक्रपाणिप्रभृतीनां तन्त्राणि न हि इदानीं काऽप्युपलभामहे । चिरन्तने काले उपनिबद्धाः जतूकर्ण, हारीत, पराशर, खरनादादि संहिताः रुग्हृदयसारादिसूत्रग्रन्थाश्च बहवः व्याख्याकारैः तत्रतत्र संगृहीतवाक्यमात्रा एवावशिष्यन्ते।

चिरात् प्रवृत्तानां एवमादीनां अनुपलम्भेऽपि प्रख्यातिमुपगतैः अग्निवेशादिकृततन्त्रैः रक्तसंचलन वाक्सिनेषन् प्रभृतीन् विषयान् पाश्चात्यवैद्यकापेक्षया वयमेव प्रथमं जानीम इति प्रतिज्ञातुमलं प्रभवेम । उपरिनिर्दिष्टाः ग्रन्थाः यदि लभ्येरन् तदा एवमादिकाः प्रसिद्धिमनुपगता विषयाः विज्ञानगोचरा भवेयुरिति स्फुटमेव वदेयं । इदानीन्तनराजकीयपुस्तकान्वेषणशाखातः

Indira Gandhi National Centre for the Arts

अविदितचराः बहवो ग्रन्थाः संपादितास्तत्रतत्र पुस्तकभाण्डागारेषु प्रकाशमुपलभते। तत्रापि अष्टाङ्गानां बोधकानि पृथक् स्वतन्त्राणि तन्त्राणि न दृश्यन्ते। शालाक्य तन्त्र प्रधानाचार्येण विदेहेन रचितः ग्रन्थः तत्तद्व्याख्यासु उपात्तविषयमात्रमख्यातः श्रूयते।

इदानीमुपलभ्यमानेषु ग्रन्थेषु सूत्रात्मकः केचन समुल्लसन्ति। तत्र आयुर्वेदसूत्रनामकग्रन्थराजः मन्निकटे विद्यते। अयं च सप्तदशप्रश्नात्मकः अत्र प्रतिपादितानां विषयाणां पर्यालोचनेन असमग्रोयमित्यनुमिनोमि। अस्य पञ्चमप्रश्नमभिव्याप्य योगानन्दसनाथविरचिता व्याख्या चकास्ति मन्निकटे। महर्षिणा अगस्त्येन भगवता विरचितमस्य भाष्यमस्तीति प्रवादश्श्रूयते। अस्मिन् उपनिबद्धाः विषयाः चरकसुश्रुतादि प्रतिपादितानपि अतिशेरते। तेषु कानिचित् सूत्राणि निवेद्यन्ते भवतां समवधाने—

"लालारूपो रसादिभेदान विभज्य जिह्वया रसं गृह्णाति" (प्रश्न० २. सूत्र २२)

"मातृजं रक्तमांसमेदः, पितृजं मज्जास्थिरेतः" अ० १

"रक्तातिरिक्तपूर्णसिरा न वेध्याः" अ० २

"तास्सिराममशियगताः" अ० २

"सिरासृग्विभागविधिं ज्ञात्वा विमोचयेत्" अ० २

"एवमादीनि रम्यतमानि सूत्राणि विराजन्ते।

एतद्व्याख्यावसरे अनूद्य प्रतिपादितानि वाक्यानि भूयोवाग्भटे दृश्यन्ते। एतत्सजातीयाः रुग्हृदयसार रुग्विलास रुग्हृदयप्रभृतयः सूत्रात्मकाः ग्रन्थाः भौतिकविद्याविधानबाधकाः अनेके विलसंतीति तत्रतत्र व्याख्याग्रन्थेषु अनूदितस्सूत्रैरनुमातुमवकाशो विद्यते।

इयं च सूत्ररचनापद्धतिः दक्षिणभारते प्रवृत्तेति कैरपि हेतुभिरनुमीयते। दक्षिणभारते चतुः शतवत्सरेभ्यः प्राचीन काले प्रख्याताः बसवराजादयः स्वकीयेषु ग्रन्थेषु वातरोगप्रकरणे सूत्रग्रन्थेभ्यः अनेकानि सूत्राणि संगृह्य प्रादर्शयन्। सूत्रग्रन्थानां व्याख्याप्रणेतारोपि दक्षिणापथे प्रसिद्धा इत्येव विज्ञायते।

आर्याः—

न केवलमीदृशाः चिरन्तने काले प्रवृत्ताः सूत्रसंहितारूपाः ग्रन्था एव विलीनाः, परन्तु वत्सरसहस्रेभ्य अर्वाचीने काले प्रख्यातिमुपगतैः पशुपतिगौतम कुंभदत्त हस्तचारि श्रीधर पण्डित पूज्यपादादिभिरायुर्वेदनिपुणैर्विरचिता अपि ग्रन्थाः जलदमालान्तर्हितचन्द्रपादा इवान्तर्दधुः; इति विस्मयेनाक्रम्यते चेतः एवमन्तर्हितानां ग्रन्थानां संपादनाय बद्धपरिकरैरस्माभिः प्रयत्नैः काचिदुद्योगसरणिर्निर्णेतव्या। तादृशग्रन्थपर्यालोचनबलेनैवापूर्वान्विषयानुद्धृत्येदानींतनदेशकालाद्यनुसारेणायुर्वेदीयान्विषयान्संस्कर्तुं वयं शक्नुमः।

एतत्कालिकाः केचिदायुर्वेदपारदृश्वानः अस्माकीनेषु निदानग्रन्थेषु 'जीर्णतां गतेन ज्वरेण प्लीहाभिवर्धते' इति न काप्युपदिष्टम्। इदमपि पाश्चात्यपण्डितैर्निपुणमुपपादितमिति मन्वते। एकविंशति दिनावधि अनुगतो ज्वरः जीर्णतामुपगतः अन्तर्लीनः प्लीहानमभिवर्धयति; अग्निं च सादयतीति अर्थबोधकत् "त्रिसप्ताहे व्यतीते तु ज्वरो यस्तनुतां गतः प्लीहाग्निसादं कुरुते" इदं जातूकर्ण वाक्यमनूद्य वृन्दमाधवव्याख्यावसरे श्रीकण्ठदत्तेन प्रत्यपादि। वचनमिदमनालोकयतां हि केषांचिदस्मदीयानां एवमादीन्यर्वाचीनैरेव समुन्नीतानि नास्मदीयैरिति भ्रान्तिमुपगच्छति मनः। तादृशान् ग्रन्थविशेषान् यद्युपलभेम एवमादिकमतीतप्रचारपथं विषयजातं ज्ञातुमवकाशः

Indira Gandhi National Centre for the Arts

संपद्येत। ग्रन्थोद्धृतेष्वपिविषयेषु अनुक्तंमन्वानाः "अनुक्तमन्यतो ग्राह्यम्" इत्यार्योक्तिमनुसृत्य अर्वाचीनपद्धतिमेवाश्रित्यास्माभिरवगन्तव्यमिति निश्चिन्वानाः मुह्यन्त्यस्मदीयाः।

आर्यवैद्यसोदराः! उपरि निर्दिष्टैः कारणैः प्राचीनर्षिपुंगवैरुपनिबद्धमायुर्वेदवाङ्मयं संपादयितुमुद्यमः आयुर्वेदकर्तव्येषु विधानेषु प्राथमिकोविधिरिति- सहस्रशाभिधास्ये। प्राचीनग्रन्थसंपादनं तत्परिशीलनमन्तरा आयुर्वेदीयसंस्करणेषु प्रयत्नः साहसिकोयमिति पुनरपि वक्तुमुद्युंक्ते मे चेतः। तेन हि संपादनेन स्थिरमूला अनश्वराः कालत्रयानुबन्धिनः प्राचीनर्षिवरैरद्वितीयप्रतिभाविशेषेण उपनिबद्धाः बहवो विषयाः अद्यतने काले सर्वतः प्रचारमुपगच्छेयुः। आर्षसंततिषु लब्धजनुषामस्माकं तन्निबद्धविषयप्रचारणकृत्येनैव किल जन्म फलवत्संपद्येत।

आयुर्वेदवाङ्मय-परिवर्तनम्

आयुर्वेदीयग्रन्थविततिः गैर्वाण्या वाण्याउपनिबद्धः विराजते। सा च भाषा अनतिचिरादारभ्य कालात् न व्यावहारकी संवृत्तेति न सर्वतः प्रचारमुपगता आसीत्। न केवलमायुर्वेदीया एव, सर्वे वेदाः सर्वाण्यपि शास्त्रादीनि ग्रन्थजातानि च तामेव भाषामलंकुर्वन्ति। अतएव कारणात् अनधिगतगीर्वाणभाषैः बहुभिः प्राचीनोपनिबद्धाः मुख्यतमाः अनेके विषयाः विज्ञानदूरा अभूवन्। तेषां दुरधिगमतामुपलक्षयन्तः केचन देशभाषासु अभिज्ञाताः प्राचीनग्रन्थान् सर्वतः प्रचारमुपनिनीषन्तः तत्तद्देशभाषासु परिवर्तयितुमयतिषत।

तत्र प्रथमतः वेदादीन् वेदान्तशास्त्राणि वैद्यकशास्त्राणि च द्राविड्यां पर्यवतिष्ठेति श्रूयते। द्राविड्यां परिवर्तितस्य निगमनिचयस्य चतुस्सहस्रग्रन्थपरिमितस्य (नालायिरंप्रबन्ध) इति विख्यातस्य विशिष्टाद्वैतसंप्रदाये विशेषतः प्रचारो दृश्यते। इतश्च दक्षिणापथे द्रविडभाषायामुपनिबद्धानि स्वतन्त्राण्यपि वैद्यकतन्त्राणि भूयसा उपलभ्यन्ते। इयं च द्रविडवैद्यग्रन्थरचनापद्धतिः इतरासु देशीयभाषासु प्रचारणात् प्रथमत एव प्रवृत्तेति वक्तुं कानिचित्कारणान्तराणि विद्यन्ते—

यथा वा उत्तरापथे चरकसुश्रुतादिविद्यापीठानि वैद्यविद्याभिवृद्धये समर्थानि व्यराजन्त एवमेव दक्षिणापथेऽपि अगस्त्यविद्यापीठनाम्ना प्रथितमेकं आयुर्वेदविद्यापीठमवर्तत। इदं च भगवतो रावणनिषूदनस्य दाशरथेः दक्षिणापथगमनात् पूर्वमेव प्रवृत्तमिति विज्ञायते। एतस्य अगस्त्यविद्यापीठस्य संबन्धिनः परम्पराः चिकित्सारचनाविधानानि च मयाविरचिते अगस्त्यवैद्यसंप्रदायनामकग्रन्थे सविस्तरमुपवर्णितानि।

सन्ति अत्र सम्प्रदाये तेरय्यर् भोगय्यर् प्रभृतयःअष्टादश सिद्धवराः। रसतन्त्रोदितप्रक्रियाः परश्शतमत्र प्रतिपादिताः एताः नागार्जुनादिभिरुपवर्णितेभ्यः प्रक्रियाभागेभ्यः विभिन्ना एव दृश्यन्ते। साधारणरसमहारसादीनां विभजनमनन्यादृशमेव विद्यते।

प्रक्रियाविधानानि सर्वाण्यापि संस्कृतरसतन्त्रप्रकियाभागेभ्यः सुलभतराणि फलवन्ति च दृश्यन्ते। अत्र दक्षिणापथप्रसिद्धानामोषधीनां उपवर्णनं भूयसा चकास्ति। एतदधिकृत्य मया विरचिते पूनासम्मेलन संबन्धिनि दक्षिणभारतायुर्वेद प्रचारनामकपुस्तके प्रकाशितमस्ति विशेषतः

तेरय्यर्प्रभृतिभिः विरचिताः ग्रन्थाः केचिदस्मदीयां आयुर्वेदीयां ग्रन्थसरणिमनुसृत्य प्रवर्तन्त। एवमादीनि ग्रन्थरत्नानि द्रविडभाषाप्रचुराणि अदूरद्विशतसंख्याकान्युपलभ्यन्ते। एते ग्रन्थाः इदानन्तिने काले प्रवृत्तां परिवर्तनसरणिमनवलम्ब्य सत्परिवर्तनेन प्रवृत्ताः प्रकाशमाप्नुवन्ति। एवमेवमङ्गराजादिकाले क्रैस्तवचतुर्दशशताब्दे वैद्यकतन्त्राणां परिवर्तनपद्धतिः प्रवृत्तेति विजानीमः।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

प्रकृते काले वैद्यशास्त्रग्रन्थानभिज्ञाः ज्ञानगर्विताः दुरभिमानिनः केचिदायुर्वेदीयान् ग्रन्थान् देशभाषासु परिवर्तयन्ति । ते च ग्रन्थाः अपेतवैद्यसत्संप्रदायाः तदध्येतृमूलेन जगतो विरुद्धमेव फलमुत्पादयन्ति । विषयेऽस्मिन् अतीते मासे प्रचारमुपगतायां 'इण्डियन् मिडिकल् गजेट्' नाम्ना प्रख्यातायां आंगलवैद्यमासपत्रिकायां सुश्रुतमुद्दिश्य विरचितानि विरुद्धविमर्शनान्येव साक्षिपदमधितिष्ठन्ति । इयं च सौश्रुती संहिता प्रोफिसर् हार्नेल, डाक्टर् वैज, डाक्टर क्लार्क प्रभृतीनां पाश्चात्यवैद्यपंडितवराणां श्लाघापात्रतामयासीत् । तादृशोयं ग्रन्थराजः यद्यनेन गैर्वाण्यां उपनिबद्ध एवं सान्तमधीतो भवेत् तदा अस्य मनस्येवंविधाः विरुद्धाः अभिप्रायाः नोदेयुः यदि कदाचिदुदेयुः अनवधानतः पुनरपि समाहितेन चेतसा सम्यगालोच्य परिवर्तयितुं शक्नुयादेवैषः आंग्लभाषायां परिवर्तितं सौश्रुतं ग्रन्थं आपाततस्समवलोकयतः किल अस्य मनस्येवं विधाः अनर्थपरंपराः उदवभूवन् ।

आर्याः सोदरवैद्याः !

एवं अपरिचितवैद्यशास्त्रैः अनभ्यस्तवैद्यसंप्रदायैः परिवर्तितानां ग्रन्थानामवलोकनेन प्रचारेण च प्राचीनर्षिवरप्रणीतानां ग्रन्थानां कलङ्कमुत्पादयन्ति केचनावहितचेतसः स्तोकविषयपरामर्शिनः अदूरदर्शिनः एवमादीनि विरुद्ध परिवर्तनान्यपहाय वैद्यसंप्रदायमनुसृत्य देशभाषासु आयुर्वेदीयान् ग्रन्थान् परिवर्त्य लोकोपकृतये आयुराम्नायस्य सञ्जातम् कलङ्कं परिमार्ष्टुमभ्यर्थये भवतः ।

भारतदेशे वैद्यसाहाय्यम्

आर्याः !

भारतेस्मिन् देशे त्रिंशत्कोटिसंख्याकाः जनाः समुल्लसन्ति । तेषामारोग्यपरिपालनाय व्यथितानां चिकित्सासौकर्याय प्रभुवरैरुपविहितम् वैद्यसाहाय्यकैमुद्दिश्य किंचिद्विमृश्यते ।

भारतेऽत्र प्रतिष्ठितानां सर्वासामपि वैद्यशालानां परिगणने द्विषष्ठ्युत्तरशतत्रयाधिक । चतुस्सहस्रसंख्या (४३६२) परिमिताः विराजन्ते । तासु सप्ततिसहस्राधिकलक्षषट्कसंख्या (३७००००) इन्पेशंट्संज्ञकाः आतुरा एकानषष्टिसहस्राधिनएकसप्ततिलक्षोत्तर कोटित्रय । (३६१५९०००) परिमिताः आउट्पेषन्ट् संज्ञकाश्चिकित्सासाहाय्यं प्राप्नुवंति । उपरि प्रदर्शित जनसंख्याभैषज्यशालासंख्याविमर्शने कृते पंचपंचाशत्सहस्रसंख्या (५५०००) परिमितानामेको वैद्यालयश्चिकित्साविधानेनोपकुरुते इति जानीमः उपरि निर्दिष्टानां वैद्यशालानां निर्वाहणार्थमुपकल्पितानां वैद्यानां संख्यानेन जनसंख्याविमर्शने कृते द्विचत्वारिंशत्सहस्रसंख्या (४२०००) परिमितानां जनानामेकः आंग्लवैद्यनिपुणः चिकित्सितं नियुक्त इति विद्मः ।

विद्यालयानां निर्वर्तनाय रोगिणामाहारादिसंपत्तये, कार्यनिर्वहणसंस्थायैच संभूय द्विसप्तत्यधिक, षट्शतोत्तरद्विसप्ततिसहस्राधिक चतुर्लक्षोत्तरकोटि (१४७२६७२) परिमितानि रूप्याणिव्ययार्थं निर्णीतानि । एतावत्परिमिते द्रव्ये पञ्चाशत्सहस्रोत्तराणि पञ्चलक्षाणि (५५००००) रूप्याणि राजवर्यैरुपलभ्यन्ते । अवशिष्टाः द्विसप्तत्यधिकषट्शतोत्तरद्विसप्ततिसहस्राधिक, पंचाशीतिलक्षसंमिताः (८५७२६७२) मुद्रिकाः 'लोकल्फण्डस्मुनिसिपल्' संघादुपनता भवन्ति । स च संघः जनैः कायक्लेशादिना संपादितं धनमेव केवलमनुतिष्ठति । उपरि सूचितनयेन भारतीयवैद्यसाहाय्यकरणे राजकीयापेक्षया अस्मदीयैर्वितीर्णमेव धनसाहाय्यमधिकमिति स्फुटमेवागच्छामः । उपरितन धनसंचय अदूरविंशतिलक्षपरिमितम् (१९९२१५०)

धनं औषधानां संघटनाय अष्टत्रिंशदुत्तराष्टशताधिकषट्सप्ततिसहस्राधिक त्रयोदशलक्षसंमिताः (१३७६९२८) मुद्रिकाः अतुराणामाहारादीनां निर्वर्तनाय व्ययं कुर्वन्तीति विज्ञायते।

अवशिष्टः चतुरशीत्यधिकाष्टशतोत्तर द्विसहस्राधिक सप्तलक्षोत्तर कोटिपरिमितः (१०७०२८८४) धनसंचयः तत्राधिकृतां वेतनायेतरसाधारणव्ययायुचोपयुज्यंते।

वेतनार्थमुपकल्पितमेतद्धनमाहारनिर्वर्तनाय औषधादि साधनाय च निर्णीतादपि धनाद् अतिशेत इति वक्तुमपि नोत्सहते मनो मे।

चिकित्सासाहाय्य निर्णीतधनसंख्यामादाय पर्यालोचिते एकस्मै व्यक्तिताय षट्कलाः (०-६०) उपयुज्यंत इति प्रतीयते।

एवमेवायुर्वेदचिकित्सालयपद्धत्यनुसारेण चिकित्सामाचरतां एकैकस्मै ताम्रशकलत्रय-मारभ्य (०-०-३) ताम्र शकलपंचकपरिमितं (०-०-५) पर्याप्तमिति, केषु चिचिकित्सालयेषु दशताम्रखण्डादा (०-०-१०) रभ्य पंचदश ताम्रशकल (०-१-३) परिमितं धनमपि अपेक्ष्यत इति अनुभववशान्मया परिज्ञातम्।

उपरिप्रदर्शितया विमर्शनसरण्या आंग्लायुर्वेदीयचिकित्साविधानयोः को वा सुलभतमः अल्पव्यये बहुफलप्रदश्च भवेदिति भवंत एव जानंतु।

राजकीयाः वात्सल्येनांग्लचिकित्साहाय्यमुपजनयन्तः भारतीयानामुपकुर्वंतीति सत्य-मेतत्। अथापि नैतत्सार्वजननीम्। अथ यदि कथंचिदुपलभ्येत अधिकव्ययेन साधनीयम्। व्ययमपि तृणाय मत्वांग्लचिकित्सार्थमेव यदि यतेमहि तच्च विधानं नास्माकं सात्म्यम्। न वा भारतीयानां शीतोष्ण परिस्थितेरनुगुणमिति विदितमेव सर्वैरस्माभिः।

वैद्यक शासनम्

मान्याः —

राजकीयवैद्यकशासनमिति नामोच्चारणमात्रेणैव धरातले सर्वेपि तच्चरितं जानंत्येव। शासनेनानेनार्षवैद्यानां देशीयवैद्यानां च संजाता दुःस्थितिः एतावतीते न हि वक्तुं पार्यते। अनेनैव मूलेन आंग्लवैद्यवराणां देशीयविद्वद्वैद्यानां च चिरात् प्रवृत्तः पारस्परिकः मित्रभावः सुतरामुन्मूलितः। समूलघातमायुर्वेदमुन्मूलयितुं प्रवृत्तमिदं शासनं दूरतोऽपसारणीयमिति, सत्यपि शासने देशीयवैद्यस्य वैद्यानां च यथा हानिर्नस्यात् तथा करणीयमिति च सविनयं बहुधा प्रार्थितोपि न ह्येतावदवधि राजकीयानां कृपारसतरंगिता दृष्टिरस्मासु प्रसरति।

सर्वजनादरणीयस्य देशीयायुर्वेदवैद्यस्य प्रोत्साहजननाय "हानरबुल् असदुल्लिखान्" वहद्दूर्महोदयेन कृतानि विमर्शनानि उपादाय प्रजाप्रियः "लार्ड हार्डिज" प्रभुवरः सर् पार्डीलूकीस् महाशयश्च साम्राज्यशासनसभायां केवल मृदुमधुरैर्वाक्यजातैरुपन्यस्य स्वाशयमुपपादितवंतौ।

एवमेव तत्रतत्र प्रांतिकशासनसभासु आनरेबुल्ल्मेंबर्समहाशयानां निवेदनान्यपि पर्यवस्यन्ति। श्री० श्री० श्री० जार्जी सार्वभौम मकुटाभिषेकमहोत्सवसमते लोकोपकृतये प्रवृत्तासु देशीयचिकित्सासु नैपुण्यमवाप्तवतान् आयुर्वेद, यवन, वैद्यवराणाम् शास्त्राणां च परिपोषणाय वैद्यरत्न, "शिफाउल्० मुल्क" इति विख्यातबिरुदद्वयं वितीर्य स्वास्थानवैद्यकसमाजपदे तेषां प्रवेशमसूसुचत्। अहो! एतदेव किलास्माकं अपूर्वविस्मयप्रातनोति चेतस्सु। यतः सार्वभौमनादतोऽयं देशीयवैद्यकपद्धतीनां निकरः भारतसाम्राज्याधिकृतैर्धीरतरं प्रत्याख्यातः एतदेव किलास्माकं मनसो वैलक्ष्यमुत्पादयति।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

यावत्ताकालेन आयुर्वेदवैद्यस्य यूनानीवैद्यस्य च प्रोत्साहमुत्पाद्य समुचितां प्रतिष्ठामुपकल्पयेयुः तावन्तं कालमस्माभिः तदुचितोद्योगकृत्यानि आचरणीयानि । विज्ञापनीयवानि तानि सार्वभौमसविधे, तदुचितोयं समय आसन्न इति संशोध्य प्रतिपाद्यते ।

एवमादीनि शासनानि पुराकालेपि सुप्रतिष्ठामुपलभ्य आचारानुप्रविष्टानि प्रावर्तिषतेति "राजानुज्ञातेन" 'अथापृच्छ्येश्वरम् वैद्यः" इत्येवमादिभिः सुश्रुतादिवाक्यैः विज्ञायत इति पूर्वमेवावादिषम् । एतेन लक्ष्ये लक्षणे च सुशिक्षितो वैद्यः राजानुमतः चिकित्सासु प्रवर्तेत तदनभिज्ञः यदि धनादिलोभेन चिकित्सितुमुद्यतो भवेत् स च राज्ञा शिक्षणीयं इति "वधम् चार्हति राजतः" इत्येवमादीनि वचनानि उद्घोषयेति ।

पुरा किल काले देशीयप्रभुवराः विद्याभिमानिनः तद्विद्यापरिपोषणाय अर्हेषु कृत्येषु बद्धादराः तेषामभिवृद्धये आवश्यकानि निबन्धनानि रचयंत आसन् । ते च वैद्यकशास्त्रं सदाचारानुगतं प्राणरक्षणदक्षमिति मन्वानाः तदनुयायिनां समुचितप्रवर्तनाय पृथगेव वैद्यकशासनान्यकल्पयन् ।

तादृशनिबन्धनमनुसृत्य लक्ष्यलक्षणविज्ञानवान् चिकित्सतपदवीमधिष्ठातुमर्हति न केवलमन्यतरज्ञानमात्रेण यस्तु केवले लक्ष्य लक्षणे वा कृतपरिश्रमः अधिगतकौशलो भवेत् एकपक्षवान् विहंग इव न हि क्रियाकरणसमर्थो भवेत् तेनोपयुज्यमानान्यमृतकल्पान्यपि औषधानि शस्त्राशनि क्रूराणि भूत्वा दुस्साध्यामापदमापादयंतीति चरकादिषु स्फुटमेव निरूपितम् ।

छेद्यादिकर्मसु अनभ्यस्तकर्मपथः स्नेहादिकृत्येषु अनधिगतकौसलश्च कुत्सितवैद्यः राज्ञा यद्युपेक्षितो भवेत् स चावश्यं जनानां प्राणहानिमपि कुर्यादिति सुश्रुतेन विजानीमहे । उक्तं हि तत्र—

"छेद्यादिष्वनभिज्ञो यः स्नेहादिषु च कर्मसु ।
स निहन्ति जनं लोभात् कुवैद्यो नृपदोषतः ॥" (इति सुश्रुत । सू० अ० ३)

एवं विधानर्थपरंपरा राज्ञामश्रद्धया उपेक्षया च लोके व्याप्नोति । तदर्थं विज्ञानवता राज्ञा अप्रमत्तेन भवितव्यमिति स्फुटंप्रतीमः तादृशसूक्ष्मपरिज्ञानमुपलब्धम् इदानींनैनः कथं शक्येत ? कालेस्मिन् क्रूराण्यपि राजकीयशासनानि कुत्सित वैद्याचरणनिवर्तनकृत्ये कुण्ठितशासनानि भवंतीत्येतत् विस्मयमातनोति ।

राजकीयाः देशीयवैद्यानां तद्विधानानां च प्रकृतवैद्यक शासनानुगतत्वम् उपकल्पयितुं नशक्येदिति । तदर्थं शासनान्तरमपि न हि निर्मातुं युज्यत इति, एते नवीनां कांचनपरिस्थितिमुपगंतुं नार्हन्तीतिच स्फुटमेव प्रवदन्ति, वैद्याचरणे प्रवृत्तानां यदि दोषाः कदाचिदुत्पद्येरन् तान् दूरीकृत्य समीकरणमेव राज्ञोचितकृत्यमिति नाज्ञासिषुरिति महदिदं विचारस्थानम् । इतः परं वापि सुश्रुतेन प्रतिपादितं 'नृपदोषतः" इति वाक्यमेकमपि मनसि निधाय देशीयवैद्यानां समुचितविधिमुपकल्प्य सुशिक्षितवैद्यवरैः लोकोपकृतये चिकित्सासाहाय्यं कारयितुं राजवरान् बहुधा प्रार्थयामहे ।

निगमनम्

एतावता उपन्यासेन आयुराम्नाये प्रशस्तिमुपगतान् मुख्यतमान् कांश्चन विषयानुपादाय सविमर्शमदर्शयम् । एतत्सजातीयाः विमर्शनार्हा विषयाः सन्ति सहस्रशोऽस्मिन् आयुर्निगमे । अद्वितीयमेधावद्भिः अप्रतिमप्रतिभासम्पन्नैः प्राचीनमुनिवर्यैः आचार्यैश्च विज्ञानगरिम्णा उप-

Indira Gandhi National Centre for the Arts

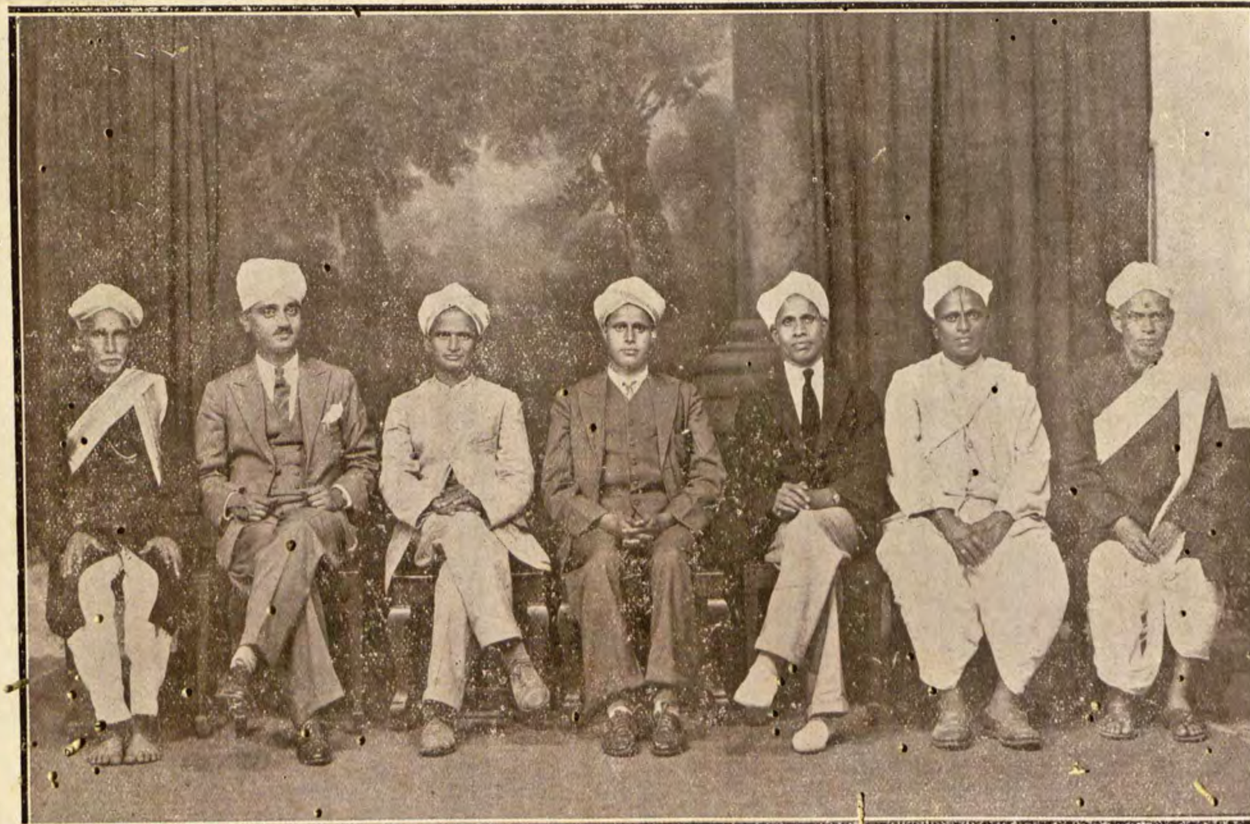

The staff of Proffessors and Physicians of the Government
Ayurvedic College & Hospital, Mysore. 1933.

Indira Gandhi National Centre for the Arts

लक्षिताः प्रकाशिताश्च विषयाः अपरिमेयाः आर्षसन्ततिसमुत्पन्नैरस्माभिः तेषां प्रकाशने प्रचारे अभिवृद्धौच बद्धपरिकरैः संजातकुतूहलैरवश्यं बलवद्यतितव्यम् । न केवलं तेषां मेधाविलसितं स्मारंस्मारं तत्प्रतिनिबद्धान् ग्रन्थान् दर्शं दर्शं तावतैव सन्तुष्टा वयं क्वापि कदापि कृतिनो भवेम । तन्निबंधेषु प्रदर्शितानि निदानचिकित्साद्रव्य 'औषधपरिकल्पनादिविधानान्यनतिक्रम्य उपदिश्य शिष्यगणेभ्यः प्रचारमुपगमयितव्यानीति पुनरपि बोध्यते । एवं सम्प्रदायमनुसृत्य सुशिक्षितानां विद्वद्वैद्यानां संख्या यदावृद्धिमधिगच्छति तदैव भारतधरातलवासिनां सर्वेषामपि जनानां समुचितचिकित्सया प्रतिविधातुं वयं पर्याप्ता भवेम । अधुनाकाले राजकीयपरिकल्पितं वैद्यसाहाय्यं जनसंख्यामपेक्ष्य नपर्याप्तमिति प्रतिभाति । कृते च परिगणने द्विचत्वारिंशत्सहस्त्र (४२०००) परिमितानां जनानां एकश्चिकित्सकस्साहाय्यं करोतीति, शते एकोनाः महाजनाः देशीयवैद्यकसाहाय्यमेवाश्रित्य प्राणरक्षां कुर्वन्तीतिच सर् पार्डील्कीस् प्रभुवरेण बहुधा प्रतिपादितम् ।

महामण्डली-प्रशंसा

निखिलेष्वस्मिन् भारतदेशे एषा महामण्डली वैद्यकविज्ञानं सर्वतः प्रसारयति अनति-चिरादेव कालात् । गतवत्सरद्वयादारम्य एषामहामण्डली भारतदेशे अष्टाङ्गविशिष्टायुर्वेदविद्यां सर्वथा अभिवर्धयितुं वैद्यकविद्यामहालयः एकः प्रतिष्ठापनीय इति अभ्यर्थ्यन्ते अस्मद्देशीयप्रभुवरः अयं च उद्यमः तूर्णमेव सफलो भवेदिति प्रार्थये भगवन्तं धनवन्तरिम् ।

मान्याः ! आर्यवैद्यसोदर्याः !

एतावताकालेन वयमिहैकदा सर्वे सम्भूय महता कौतुकेन तांस्तानायुर्वेदीयान् विषयान् विमृश्य आनन्दमेदुरमानसाः अभूम । एवमेव सर्वदा आवश्यकेषु कृत्येषु अयं प्राथमिक इति कृत्वा मनसि भगवता वितीर्णं प्रजानां जीवितसंरक्षणसमर्थं भगवन्तमिमयायुराम्नायं अधिकृत्य तदुचितक्रियासु सर्वदा बद्धपरिकरैरस्माभिः भवितव्यमिति पुनरपि बोध्यते ।

प्रकृते काले अचिन्तितसमापतितेन क्रूरेण महता संगरेण वैदेशिकान्यौषधानि नविद्यते लब्धुमवकाशोपि । अस्मदीयानां आर्यचिकित्सापद्धतीनां अभिवर्धनाय प्रचारणाय च समुचितः समयः सन्निहितः ब्रह्मविदुत्तमैः त्रिकालवेदिभिः आर्यैः ऋषिपुङ्गवैः लोकानुग्रहमभिकांक्षमाणैः उपकल्पितं त्रिसूत्रात्मकमायुर्वेदं लक्ष्यलक्षणसम्प्रदायैः शिष्यवरेभ्यः सम्यगुपदिश्य लोके अभिवर्धयितुं आर्षसन्तत्यां जनिमुपलब्धवतामस्माकं प्रधानकृत्यमिति पुनरपि प्रतिपाद्यते सोत्साहम् ।

"भिषजांसाधुवृत्तानां भद्रमागमशालिनाम् ।
अभ्यस्तकर्मणां भद्रं भद्रं भद्राभिलाषिणाम् ॥"

ओं सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै । तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ।

ओं शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

Indira Gandhi National Centre for the Arts

Presidential Address

Fourteenth Session

The All India Ayurvedic Conference
Colombo, Ceylon

April 25, 1924

Vaidyaratna

Kaviraj Jogindra Nath Sen M. A.,

Vidyabhushan

Calcutta.

अप्रत्यक्षफलाः प्रमाणत्रिकला वाग्विस्तरैराकुला
वेदाः प्राप्तपदा यदाप्तवचनप्रामाण्यसामान्यतः ।
यत्पक्षैकफलं त्रिसूत्रममलं स्वस्थातुराणां हितं
तं विद्यास्वखिलासु सत्तममहं वेदं भजाम्यायुषः ॥

DEAR FRIENDS,

It has been the invariable custom with the Presidents of this Conference to begin their addresses with thanksgiving. Believe me, gentlemen. when I say in all sincerity, that I do not merely follow the usual practice in offering you my warmest thanks for the great honour you have done me in inviting me to preside over your deliberations for the second time. Let me explain. The conference last met at Rajahmundry under the leadership of our esteemed friend Mr. Krishna Sastri Kavde. I can give no definite information about that session, as I was not fortunate enough to attend it: but no decision as to the next holding seems to have been arrived at there. The time gradually approached and letters passed between the General Secretary Ayurvedabhushana Pandit M. Duraiswami Aiyangar, A. K. A. C. and myself, about the holding of the present session. Though I had every desire to invite the Conference to our city, many untoward and unhappy incidents of a private character pevented me from so doing. I really cannot express how keenly I felt my inability to afford a room to our Conference even after an interval of nine years, when in 1915, I had the proud privilege of offering you all a most hearty welcome on behalf of the Calcutta Reception Committee. At this juncture, thanks to you, two

Indira Gandhi National Centre for the Arts

निखिल भारतीय आयुर्वेद महामण्डल विद्यापीठ
के मंत्री तथा कर्मचारी गण । सन् १९३६ ई०

Indira Gandhi National
Centre for the Arts

simultaneous invitations including this one from Colombo came to our intense relief. My part in the advancement of this Conference has no doubt been very humble, but I think I yield to none in my intense love and regard for it. I have therefore especially to thank you, the people of Ceylon, for the very timely and happy invitation which you so kindly sent to us.

Thus it appears that though I could not do my duty towards the Conference, the Conference has given me much more than I deserve by inviting me to be the President. I am perfectly aware of my unworthiness and inability to do full justice to the exalted position in which you have so kindly placed me, inspite of the presence of so many abler and more deserving Vaidyas of great repute. But I have not ventured to disobey your call. The regret which I very keenly felt for my inability to invite the Conference, has to a great extent been removed at the sight of the splendid reception which the Conference has met at your hands. I therefore reiterate my grateful thanks to you all.

Before I proceed with my address any more, I think we cannot do better than remember and revere the memory of those Physicians who have recently died. We have it from the authorities on Poetics that benediction, salutation or the introduction of the subject-matter should form the beginning of a treatise. आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम् they say. I think that the reverent remembrance of the memory of those mighty spirits will be the best introduction possible. This hero-worship will infuse energy into our hearts and remove obstacles from our path. I am confident that the spirits of those great Vaidyas, who laid down their lives in the cause of Ayurveda, are present here even now, to witness the continuance of the cherished desire of their lives ; and I am equally confident that they will not deny us at this moment their sincere blessings.

Gentlemen, with a heavy heart I remember now the illustrious Kaviraj Rajendranarayana Sen of Calcutta. Apart from his uncommon ability and deep erudition which are known to you all, he was one of our true friends. Bengal has lost in him one of her best Kavirajes and we one of our best well-wishers.

It is really unfortunate that we have to mourn the loss of another sincere friend of ours, Kaviraj Kunjalal Bhishagratna of the "Susruta Samhita" fame. You all know him as the author of that monumental work—the English translation of the Susruta Samhita, but I knew him as my affectionate brother. He was a disciple of my venerable father and his sweet character and loving disposition endeared him to us all.

Indira Gandhi National Centre for the Arts

Bengal has lost two famous Kavirajes again, in the deaths of Kaviraj Jogendranath Das of Jessore and Kaviraj Harinath Vidyaratna of Calcutta. They were both skilful physicians and able scholars, and the void created by their loss is not likely to be easily filled up.

Hyderabad has suffered an irreparable loss in the death of Hakim Hari Govindaji. He was one of the Provincial Secretaries of the Mahamandala and took great interest in the welfare of Ayurveda. His death is a loss not to Hyderabad alone. but to the Ayurvedic Community all over India.

May these mighty souls rest in peace in Heaven.

Gentlemen, I cannot help recollecting in this connexion that auspicious day when our Conference first met, under the parental care and guidance of the illustrious Pandit Sankara Sastri in 1908. They say that the third year of a child is a critical period and so it was in our case. The third session of the Conference could not be held owing to the sad death of its founder Pandit Sankara Sastri, and the session was postponed till the next year. Thenceforward the Conference has steadily and gradually been gaining in strength and prosperity, and I hope confidently that the critical period is past for good. Not to speak of Vaidyas, but the general public and medical men of other system too, have begun to take much interest in Ayurveda, and the day will surely come when we shall have the proud pleasure of seeing Ayurveda installed on the high throne it once occupied.

Orthodox Hindus as we are, gentlemen, it would be presumptuous on our part to trace the beginning and date of Ayurveda. Ayurveda is eternal and of no human origin. You all know that the Vedas manifested themselves from the breath of the great Purush,—"अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदः" इत्यादि ; "यस्य निःश्वसितं वेदाः" ; "न कश्चिद्वेदकर्त्तास्ति वेदस्मर्त्ता चतुर्म्मुखः" etc. Ayurveda which is an Upveda—a branch of the Veda, also has got the same characteristics. There are hymns in the Rigveda about the medical treatment of Vispala, Chyavana and others which strongly point to the Rigveda as one of the sources of Ayurveda. We have it from other sources too ; Maharshi Srikrishna Dvaipayana says, "ऋग्वेदस्य आयुर्व्वेद उपवेदः". Susruta says that Ayurveda is a branch of the Atharva Veda—says he, "इह खल्वायुर्व्वेदो नाम यदुपाङ्गमथर्ववेदस्य । अनुत्पाद्यैव प्रजाः श्लोकशतसहस्रमध्यायसहस्रञ्च कृतवान् स्वयम्भूः" । Charaka, Vridha Vagbhata and others too, assert the Vedic origin of the Ayurveda, and it is not for us to question the origin of the Veda. These are eternal truths unlimited by time and space ; only they manifested themselves at different times in different forms.

It would be quite legitimate and pertinent however to estimate the dates of Charaka, Susruta and other authorities on Ayurveda.

Indira Gandhi National Centre for the Arts

Nothing, I must confess at the very outset, is more difficult in India, than to fix the date and chronology of our ancient authors. Charaka was, according to some European scholars, the Court Pandit to the Scythian king Kanishka, who reigned in the first century A. D. In the Chinese translation of the Buddhistic Tripitaka, the name of Charak may appear as that of the Court Pandit to Kanishka, but there is no proof that he was the great Charaka, the author or redactor of the Samhita named after him.

No conclusion based merely upon similarity of names, but unwarranted by other evidences can be accepted. There are, on the other hand, strong reasons to believe that he flourished much earlier. In fact Charaka has been mentioned by Panini and has been commented upon by Patanjali, both of whom lived before the Christian era. Though no definite assertion can be hazarded, Charaka perhaps cannot be placed later than Panini, who again according to the conclusive evidence of Goldstuker, could not have flourished later than the sixth century B. C. The style and mode of expression in Charaka also bear unmistakable evidence as to its early age. It is known to you all, that Agnivesa was the real author of the Charaka Samhita, and Charaka himself acknowledged it at the end of every chapter by saying "अग्निवेशकृते तन्त्रे चरकप्रतिसंस्कृते" (in the Tantra of Agnivesa, redacted by Charaka). Charaka redacted the whole of the treatise of Agnivesa, excepting the last 44 chapters. This portion was redacted by Dridhabala—a native of Panchanadapura, a place which has not yet been satisfactorily indentified, some taking it to be the modern Benares, while others locating it somewhere in the Panjab and others again in Kashmir.

The original size and form of Agnivesa's can hardly be determined nor can we guess correctly how much and how far Charaka modified it, but there is hardly any doubt that the Samhita underwent considerable changes in his hands, for the redactor is said to write the treatise almost anew;

विस्तारयति लेशोक्तं संक्षिपत्यतिविस्तरम् ।
संस्कर्ता कुरुते तन्त्रं पुराणं च पुनर्नवम् ॥

Agnivesa had five other fellow students, each of whom wrote a treatise named after the author. Of these upto the recent past, only the Harita Samhita was available. But a perusal and comparison of it with the Charaka Samhita give rise to strong doubts whether it is really the work of the great Harita, the contemporary of Agnivesa. The general tone and treatment in the two Samhitas are so widely different, that they do not appear to have been written by the disciples of the same Guru. The Bhela Samhita, on the other hand, which was

Indira Gandhi National Centre for the Arts

discovered in an incomplete form in the Tanjore Palace Library and has recently been published by the Calcutta University, appears to be the genuine Şamhita. No research has as yet been made about these two works, but it is hoped that they will not long remain neglected. In a meeting at Calcutta, in January last, Dr. Benimadhab Barua, a well-known research scholar, tried to prove in the course of a lecture on Bhela, that he lived about the time of Buddha and Mahavira, but my remarks about the date of Charaka who flourished much later than Agnivesa, a contemporary of Bhela, apply here equally well. Much more research is required in these as yet unexplored fields which promise to be immensely profitable and interesting.

Next to Charaka, or for the matter of that, Agnivesa, stands pre-eminently the name of Susruta among medical authors of note. Susruta studied with Devodasa, who according to him, was the incarnation of Dhanvantari, the physician of the gods in Heaven. He was a son of Visvamitra, a contemporary of Rama. Susruta was the greatest surgeon of his day, just as Charaka was the greatest physician and it was at the time of Susruta that Surgery in India attained its zenith.

Apart from the divergence of opinion, about its date, scholars are not agreed even about the authorship of the Susruta. The author salutes at the begining, among others, Susruta; we find therein, "नमो ब्रह्मप्रजापत्यश्विबलभिद्धन्वन्तरिसुश्रुतप्रभृतिभ्यः; of course Susruta himself could not have said this. According to a line in the commentary of Dallanacharya, Nagarjuna redacted the treatise of Susruta; in that case, this line might well have been inserted by Nagarjuna or any other redactor; Dallana says in his comment upon that line, यत्र यत्र परोक्षे नियोगस्तत्र तत्रैव प्रतिसंस्कर्तृसूत्रं ज्ञातव्यमिति। प्रतिसंस्कर्तापीह नागार्जुन एव।" Among other authors of note, I might mention the three Vagbhatas, Madhavakara, Chakrapani, Sarngadhara and Bhava Misra. But most of them are of more or less recent date, and the discussion about them need not detain us long.

It might be said in connexion with the ascertainment of the dates of different authors that internal evidence especially based upon similarity of names would be a very misleading guide to rely upon. Moreover, it has been a custom in India, not only in medical Science, but in other branches of knowledge too, such as Nyaya etc. to represent a school by the name of its founder. Thus we often find treatises of different schools refuting one another's arguments. It is obviously impossible for the earlier author whoever he might have been, to refute in anticipation, the arguments to be advanced by any posterior adversary of his school. The only reasonable conclusion seems to be, that the treatise of each author was supplemented and modified as required by

the followers of his school, though the original name was none the less retained; thus the treatises grew and developed until at last the nature and date of the original were forgotten; the same might very well have been the case with the two Samhitas we have just now been considering—those of Charaka and Susruta. Of course, I am not a research-student, and I leave it to them to pronounce the decisive opinion.

About the introduction of Ayurveda into the world, we learn that the kind-hearted Svayambhu at first compiled it. Prajapati learnt it from him, and from Prajapati the Asvins, who in their turn taught it to Indra. In Charaka we find that as diseases appeared on the earth at the end of the Kritayuga, many great sages sent Bharadvaja to Indra to study Ayurveda. Bharadvaja studied it and imparted the knowledge to Punarvasu the son of Atri, and others. Punarvasu with great care taught the art of healing to Agnivesa, Bhela, Jatukarna, Harita, Parasara and Ksharapani. Each of them as we have already stated, wrote a treatise, and thus helped a great deal in spreading the knowledge of Ayurveda. According to Bhavaprakasa, however, Atreya himself went to Indra; we have it there,

आयुर्वेदं पठिष्यामि नैरुज्याय शरीरिणाम् ।
इति निश्चित्य गतवानात्रेयस्त्रिदशालयम् ॥

In Susruta, again, we see that from Indra, Dhanvantari received his training which he imparted to Aupadhenava, Susruta and others.

Before we proceed further, we might pause for a moment to consider the nature and scope of Ayurveda. Ayurveda deals with the four kinds of Ayus (life) and with the things that lengthen or shorten life. आयुर्वेदयतीति आयुर्वेदः । It has a twofold aim. viz. the preservation of health and the cure of diseases. Says Charaka, "प्रयोजनं चास्य स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य विकारप्रशमनं च ।" Susruta observes in the same connexion, "इह खल्वायुर्वेदप्रयोजनं व्याध्युपसृष्टानां व्याधिपरिमोक्षः स्वस्थस्य रक्षणं च ।" As to its authority we cannot do better than quote from the Nyaya Darsana, मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च तत्प्रामाण्यम्, आप्तप्रामाण्यात् (Just as Mantra and Ayurveda are authoritative on the ground of revelation, so are the Vedas.)

This Ayurveda has got eight branches, viz. Salya (Major Surgery and Midwifery), Salakya (Surgery of parts above the *jatru*), Kaya-chikitsa (inner treatment of the body), Bhutavidya (exorcism), Kaumarbhritya (treatment and nursing of children), Agadatantra (toxicology), Rasayana (the art of long life) and Vajikarana (aphrodisiacs).

I do not want to deal mith the nature of Ayurveda in detail, first because it is known to you all, and secondly because it would be too technical and uninteresting for the non-Medical gentlemen here.

Indira Gandhi National Centre for the Arts

There is one point however which I should not pass over, I mean the *Tri-dhatu* theory. Much has already been said to dispel the ludicrous and at times even dangerous misconceptions that up till now prevailed about the nature of the *dhatus*, and I shall therefore try to briefly give you an idea about them. One of chief causes of the misconception has been the unhappy and grossly incorrect renderings of the Ayurvedic terms, and another, the over-zealous attempts at some quarters, in season and out of season, to explain every theory and principle in Ayurveda in the light of the modern Western System, as if the Western Science was only a revised and corrected edition of Ayurveda, and the portion of Hindu Medicine that could not be identified with some corresponding section in the Westen System was fit only to be rejected,

According to Hindu Medical authors, the Purusha or Man consists of (1) the physical body, (2) the manas and (3) the atman. It is the physical body with the manas that comes under the jurisdiction of the Physician. There are three causes of diseases viz. असात्म्येन्द्रियार्थसंयोग or incompatible combination of senses with their objects, प्रज्ञापराध or faulty judgment and परिणाम or unhealthy and unnatural influence of climate etc. These three causes vitiate the Vata, Pitta, and Kapha in the human system and give rise to diseases. Vata, Pitta and Kapha are almost invariably, though erroneously, translated as wind, bile and phlegm : but what are they after all ? The renderings hardly express the true significance of these Ayurvedic terms. These three ars known as dhatus or supporters—from the roots 'dha' to support (धारणात् धातुः). When they are in equilibrium, they maintain the body properly; when the balance is disturbed, they are known as *Ghoshas* (morbid affections). and it is then that the man is indisposed. We have in Sarngadhara,

शरीरदूषणाद्दोषा धातवो देहधारणात् ।
वातपित्तकफा ज्ञेया मलिनीकरणान्मलाः ॥

Charaka observes about their equilibrium,

"सर्वशरीरचरास्तु खलु वातपित्तश्लेष्माणः सर्वस्मिन् शरीरे कुपिताकुपिताः शुभाशुभानि कुर्वन्ति । प्रकृतिभूताः शुभान्युपचयबलवर्णप्रसादादीनि । अशुभानि पुनर्विकृतिमापन्ना विकारसंज्ञकानि ॥"

As to their qualifications, Vagbhatta says.

तत्र रूक्षो लघुः शीतः खरः सूक्ष्मश्चलोऽनिलः ।
पित्तं सस्नेहं तीक्ष्णोष्णं लघु विस्रं सरं द्रवम् ।
स्निग्धः शीतो गुरुर्मन्दः श्लक्ष्णो मृत्स्नः स्थिरः कफः ॥

It is very difficult to explain clearly these qualifications in the language of the Western Science.

Indira Gandhi National Centre for the Arts

It is a general principle that things with similar qualities excite these doshas, while those of opposite nature subdue them ; says Vagbhata, वृद्धिः समानैः सर्व्वेषां विपरीतैर्विपर्य्ययः ।

Vata, the most important of the three, is the source of all inspiration, energy, voluntary movements and actions including speech, proper circulation of blood etc., and internal purification of the system. Pitta is the source of all internal heat including digestion, hunger, thirst, intelligence, memory etc ; while Kapha is responsible for the smoothness of the body, general strength, potency, forbearance etc. When in this triad Vata is predominent, emaciation, darkness of complexion desire for heat, tremor, flatulence, constipation, loss of strength, sleep and sense-activity, delirium, giddiness and exhaustion are the result. The symptoms of the predominance of Pitta are yellowness of stool, urine, eyes and skin, hunger, thirst, burning sensation and loss of sleep, while those due to the supremacy of Kapha are anorexia, excretion of mucus, want of energy, heaviness and pallor of the body, low temperature, feebleness of joints, heaviness in breathing, enough and excess of sleep.

It is evident from these, that the words Vata, Pitta and Kapha do not mean the ordinary wind, bile and phlegm, as was generally suppposed. If it is not possible to identify them from the European stand-point, that is because the Western scholars have never considered the human body from our point of view. According to Ayurveda, the aim of all medical treatment is the restoration or maintenance of the equilibrium of these three doshas or dhatus, for, says Charaka, "धातुसाम्यक्रिया प्रोक्ता तन्त्रस्यास्य प्रयोजनम् ।"

The wonderful achievements of Ayurveda in remote past is a historical fact which admits of no doubt. It is a matter of very great regret, that few Indian scholars have as yet explored these fields, so that we have always to took to others in order to know the nature and amount of our ancestral treasure. "The ancient system possessed an imposing treasure of empirical knowledge and technical achievement which cannot be ignored even in these days of rapid progress" (Calcutta University Commission Report, Vol. V). I hope to be excused in giving you a few more apt quotations on the subject. Referring to the anatomical knowledge of the Hindus. Dr. Hoernle observes, "Its extent and accuracy are surprising, when we allow for their early age, probably the sixth century B. C." The late Surgeon General Sir Pardey Lukis once observed in the course of one of his speeches, "There is no doubt whatever that their (i. e. of the people of India) ancestors knew, ages ago, many things which are now a-days being brought forward as new discoveries. For intance, it is recognised,

Indira Gandhi National Centre for the Arts

that in all cases of dropsy, the greatest benefit can be obtained by restricting your patients to an entirely salt-free dietary. There is nothing new in this. This was known thousands of years ago in the East, and any Hakim would have told you, long before Widal or Javal made their experiments, that salt is contra-indicated in all dropsical affections." About the past progress of Ayurveda, especially in the branch of Surgery, the following quotation from the Encyclopaedia Britannica will give you a good idea. "There are certainly some dexterous operations, described in Susruta, (such as Rhinoplastic) which were of native invention; the eleborate and lofty ethical code appears to be of pure Brahminical origin, and the very copious Materia Medica (which included arsenic, mercury, zinc and many other substances of permanent value) does not contain a single article of foreign sources. Susruta describes more than one hundred surgical instruments made of steel...There were fourteen varieties of bandage. The favourite form of splint was made of chips of bamboo. Fractures were diagnosed, among other signs by crepitus. Dislocations were elaborately classified, and the differential diagnosis given. Wounds were divided into incised, punctured, lacerated, contused etc. Cuts of the head and face were sewed. Skill in extracting foreign bodies was carried to a great height, the magnet being used for iron particles under certain specified circumstances. Leeches were more often resorted to than the lance; cupping was also in general use. Poulticing, fomenting and the like were done as at present. Abdominal dropsy and hydrocele were treated by tapping with trocar, and varities of hernia were understood, omental hernia being removed by operation on the scrotum. Besides the operations already mentioned, the abdomen was opened by a short incision below the umbilicus, slightly to the left of the middle line, for the purpose of removing intestinal concretions or other obstruction (laparotomy). There was a plastic operation for the restoration of the nose, the skin being taken from the cheek adjoining, and the vascularity kept up by a bridge of tissue. The Ophthalmic Surgery included extraction of cataract. Obstetric operations were various, including Cæsarian Section and crushing of the fœtus".

Before I pass on to another topic, I should like, very briefly, to refer to the indebtedness of other Medical Systems to Ayurveda. "They (i. e. the Hindus) were the first nation who employed minerals internally, and to them we owe the therapeutic use of mercury and arsenic in intermittents". (Elphinstone's History of India, quoted by Dr. G. N. Mukherjee). Thakore Saheb Gondal observes in his History of the Aryan Medical Science, "The great works of Charaka and Susruta

were translated into Arabic under the patronage of Kaliph Almamun, in the seventh century. These translations were in their turn, rendered into Latin. The Latin versions formed the basis of European Medicine, which remained indebted to the Eastern Science of Medicine down to the 17th century". We have already referred to the use of salt-free diet in the case of dropsy; the present Goat-treatment of the West in tubercular cases was long before known to our sages; says Charakadatta, "Goat's flesh, goat's milk and ghee with sugar, tending of goats and lying in their midst—these cure phthisis".

छागं मांसं पयश्छागं छागं सर्पिः सशर्करम् ।
छागोपसेवा शयनं छागमध्ये तु यक्ष्मनुत् ॥

Gentlemen, such instances might be multiplied any number of times but I hope it is not necessary. According to the Report of the Committee on the Indigenous Systems of Medicine, Madras, (1) from the stand point of science, the Indian Systems are strictly logical and scientific, and (2) from the stand point of art, they are not self-sufficient *at present*, especially in the Surgical line, though in the Medical line, they are, generally speaking, quite self-sufficient and economical." A list of some of the facts and figures, quoted in the Report, will illustrate the point. "A number of such (i. e. Ayurvedic, Siddha or Unani) systems exists even in our own Presidency town (Madras), and though greatly hampered for lack of State recognition and sufficient funds, they are nevertheless holding their own against the comparatively well financed dispensaries in the neighbourhood, maintained by the State or the Corporation, and are popular among all sections of our people, besides being decidedly cheap, as may be seen from the records of some such institutions." The number of patients, treated in the L. C. Naicker's Free Ayurvedic Dispensary in Madras, in the year 1921-22, viz. 122,238 included miner Surgical cases also. "We are obliged to handle these cases", the Secretary observes, "not because we have the necessary equipments and leisure to do so, but because of the importunity of the patients, who seem to believe that our ointments and applications cure them more speedly. With my experience in the line, I can confidently say, that if more facilities are made available, we will not be less successful in Surgical cases also." The total number of patients, as we have already said, in the year 1921-22, was 122,238 and the average cost, per head per day was only 8 pies. The Report of the Baulia Naidu Dispensary—"the most popular among the dispensaries in Madras City worked on the Western System, and situated in the same neighbourhood as the former"—shows, that the total number of its patients was only 37,626, and the

average cost, per head per day. was 3 annas i. e. six times the cost of the former.

Not less than 170,641 patients (including 5190 cases of poisoning), were treated during the year 1920-21, in the grant-in-aid Ayurvedic Institution of the State, while 115 in-patients and 29,151 out-patients were treated during the same period, at the State Ayurvedic Hospital and dispensary, Trivandrum. Among the in-patients, 82.4 p. c. were cured, 12.8 p. c. relieved, while death rate was so low as 0.9 p. c.; the death rates in the Government General Hospital and the Government Rayapuram Hospital, Madras, were 6.99 p. c. and 10·35 p. c. respectively. The average maintenance cost, per head, for the Ayurvedic Dispensary for the year was only 7 annas, while the corresponding figures for the two Government Hospitals were, approximately, Rs. 10/- and Rs. 4/- respectively. The best traditions of Ayurveda were, according to the Poona City Administration Report, 1918-19, amply vindicated during the terrible outbreak of Influenza in Poona in that year. It observes, "It will not be out of place here, to make a special mention of the temporary Ayurvedic hospitals, started and conducted with conspicuous success, during terrible Influenza epidemic of the year under report... . The opening of the Ayurvedic hospitals was a novel and unique step. Nowhere, in the whole of the Presidency, was such an experiment tried or even contemplated, at such times of grave crises; and the Poona Municipality were well-adviced, in coming forward to support the beneficial experiment, initiated by the Vaidya Mandal. As to the marvellous success of the Ayurvedic treatment, Dr. Paterson of the Mission Hospital. and Miss Heway, a nurse of the Willingdon War Hospital, have borne personal testimony. This fact goes a long way to prove, not only that the expenditure of the Municipality on its Ayurvedic dispensaries is necessary and justifiable, but that a permanent Ayurvedic hospital, supported by the Municipality, is a crying need."

In this connexion, we are reminded of the happy pronouncement of Sir Lawrence Jenkins, late Chief Justice of Calcutta High Court, on the occasion of the unveiling ceremony of my father's marble statue in the Beadon Squire, Calcutta. "In India", he said, "with all its hundreds of millions, if we exclude the few who have come under the spell of Western influence, it is to the Kaviraj and the Hakim, that the sick men turn in their sufferings and their ailments for their mental consolation; and it is in the method of their healing art, and in their words of hope, that the patient's confidence is placed." (Bengalee, June 30, 1912.)

Indira Gandhi National Centre for the Arts

Extract from the Report of the S. V. Dispensary, Tirupati, for the year 1921–22 shows. that the total number of patients was 16,076, and that the treatment proved quite successful in almost all cases. The average cost of medicines, for one patient, was about 11 pies. The total number of patients, treated in the Madras Ayurvedic College Dispensary, during the year 1918, was 51,930, as against 13,326, 14,155 and 29,482 respectively, for the years 1915, 1916 and 1917. The drugs and medicines prescribed were all indigenous and easily procurable, and the treatment worked out only at the rate of 6 pies per head.

The Report of S. M. Free Ayurvedic Dispensary, Choolai, Madras, from the 9th. July to the 31st. December 1922 shows that the daily average attendance was 57, and the average cost, per head per day, was only about 6 pies. Similar favourable reports are available from almost all the Ayurvedic Hospitals and Dispensaries, and I think, that even the most sceptic mind will not fail to be convinced of the claim of Ayurveda, on the grounds not only of efficiency, but of economy also, and will fully endorse the views of the Calcutta University Commission that "the entire System of Indigenous Medicine as practised in India, affords a fruitful source of study and investigation."

We have already mentioned, gentlemen, that the aim of Ayurveda is two-fold, viz. the treatment of disease and the preservation of health. Recent Cencus Reports reveal the terrible state of health of the Hindus at the present time. The late Sakharam Ganesh Deushkar was one of the first to draw public attention to the deplorable state of our health in Bengal. Later on, Col. U. N. Mukherjee in his "The Dying Race", and Kishorilal Sarkar in his "Dying Race—How dying ?" discussed the matter from different stand-points. Recently Dr. Kamakhy Charan Banerjea of Dacca has published a very useful and well-timed book in Bengali, named "*Hindu Dubila*" (The Dying Hindu). It contains many useful informations, and the general theme deserves our most serious attention.

In Bengal the number of Hindus in 1911 was 20,945,379, while in 1921, instead of increasing, it came down to 20,809,148 i. e. less by about 136,000. Side by side with them, Muhammadans have steadily been increasing in number, and now they represent more than one half of the entire population of Bengal. The cause of this gradual decay is to be partially found in the utter disregard, on the part of the Hindus, of the general rules of hygiene as laid down in Ayurveda. With the spread of Western civilisation including Western medical treatment, the death rate in India is going up by leaps and bounds, and unless preventive measures are adopted from now, we are bound to become an extinct race. Charaka, in the third chapter of the

Indira Gandhi National Centre for the Arts

Vimanasthama states, that four elements, when vitiated devastate the whole country. They are Air, Water, Soil and Time (तद्यथा वायुरुदकं देशः काल इति), and he points out प्रज्ञापराध or faulty judgment as the root of all evil. "तस्य मूलमधर्मः । तन्मूलञ्चासत् कर्म्म पूर्वकृतम् । तयोर्योनिः प्रज्ञापराध एव," says he, and goes on to observe, यदा वै देशनगरनिगमजनपदप्रधाना धर्ममुत्क्रम्य अधर्मेण प्रजां प्रवर्तयन्ति तदाश्रितोपाश्रिताः पौरजानपदा व्यवहारोपजीविनश्च तमधर्ममभिवर्धयन्ति ।......तथा शस्त्रप्रभवस्यापि जनपदोद्ध्वंसस्य अधर्म्म एव हेतुर्भवति । येऽतिप्रवृद्धलोभक्रोधमानास्ते दुर्बलानवमत्यात्मस्वजनपरोघाताय शस्त्रेण परस्परमभिक्रामन्ति, परान् वाभिक्रामन्ति, परैर्वाऽभिक्राम्यन्ते, रक्षोगणाभिर्विविधैर्भूतसङ्घैस्तमधर्ममन्यद्वाप्यपचारान्तरमुपलभ्याभिहन्यन्ते ।...That is to say, when the heads or ruler of a country, town or village abandon the path of rectitude their followers and the people in general also follow the same path of vice......Then again, vice is the cause of war also. The strong, infatuated with lust or anger, oppress the weak and attack one another; or they are destroyed by supernatural influences necessarily following their evil deeds. That the words of Charaka are but too true is quite evident from a comparison of the present economic state of the country with its reaction upon the mass. Moreover, the blind imitation of the Western method of living has done immense mischief. It is impossible to deal with the question fully within so narrow a compass, and therefore I shall mention several of the most important points only.

Together with the orthodox mode of living, we have now given up our ancient religion, custom, food, dress etc , for those of the West. Such rapid radical changes are sure to bring in their wake terrible results upon our health, and that is exactly the state of affairs that we see around us. We are buying with our lives the fashions of the Western System. We disregard the wholesome hygienic rules laid down in Ayurveda, because they are not in keeping with our modern ideas of civilisation which we are adopting at the cost of longevity. Illustrations taken at random will fully bear out my statement. We have substituted our cheap and easily available tooth-brush (दन्तकाष्ठ)—a twing of certain prescribed trees—for costly tooth-brushes made of animal's hair. Several cases of serious poisoning have resulted from the use of such brushes, and even apart from that, the repeated use of the same brush from day to day is highly reprehensible from the stand-point of hygiene.

We now use costly tooth-powder and tooth-paste, instead of powdering some such thing as nimba-leaf, haritaki etc. ; they contain among other things soap and alkali. But alkaline dentrifrice is highly injurious to the system. Research has shown that they depress the tooth-protecting agents in the mouth. The failure of all alkaline past

Indira Gandhi National Centre for the Arts

methods is now attributed largely to the use of soap and alkali. You all further know that teeth are very intimately connected with the visual organ. Thus, the decay in teeth causes impaired eye-sight, one of the most prevalent diseases of the day. In food, we are now accustomed to exactly the very articles that go against health. Not to speak of Eastern sages, even western scholars, like Dr. Parker, say, "Avoid stimulants, condiments, spiced food, pepper, mustard, fat, pickles, onions etc." (New Marriage Guide). Dr. Deo Lewis of America says, "Avoid spirits and malted liquors, tea, coffee. tobacco... Tea is a strong stimulant which acts directly upon the nervous system...It is a prolific cause of constipation." Fruits on the other hand, so favourite of our Rishis of old, are equally praised now by eminent Western Doctors. It is really horrible to think to what state the modern civilisation has led its votaries. Out of a hundred women in America, the "most civilised" country of the day, there may be found perhaps only one who has normal play of all the functions of her body ; the remaining ninety-nine are troubled with nearalgia, nervous disease or one or other of the many female complaints.

"Unfortunately this is an age of luxury," says Dr. Chavassi in his advice to a Wife, "Everything is artificial, and diseases and weakness and even barrenness follow as a matter of course." In another place he observes that "the system of the bringing up of the young ladies of the present day is rotten to the core."

The use of the modern tight dress including corset, jacket etc, is highly prejudicial to health, especially in the case of pregnant women. Need we wonder that with so artificial and perverse a mode of living, the infant mortality should be 226 per thousand before they are one year old in Bengal, while in Calcutta it is seven times as great as that in New Zealand ? It is a notorious fact that a radical change in the general mode of living and diet tells seriously upon a nation, especially upon the infants. Who knows but our young ones may be atoning with their lives for the sins of their parents.

In other important matters also, such as marriage, widow re-marriage and so on, modern Europe is now discovering with a shudder her terrible error of judgment, and is beginning to realise the value of the commands of our Rishis.

Gentlemen, I do not wish to prosecute the point any further, as I hope to have clearly explained the claim of Ayurveda to be not only our physician in case of disease, but also the best practical guide for the prevention of normal health.

But gentlemen, when all is said about the former development and glory of Ayurveda, we have still to face, explain and remedy the

Indira Gandhi National Centre for the Arts

fact that the present condition of our healing art is anything but satisfactory. Before a remedy can be found, we must trace the origin and development of the disease, and must ascertain how and why, inspite of all its splendid traditions, Ayurveda came to fall into disuse. Of the two branches of Ayurveda—Medicine and Surgery—the latter has suffered most, and we propose to deal with that branch first.

The religious tendency and susceptibility of the Hindus played a considerable part in the abandonment of the practice of dissection and operation on dead bodies. The fear of ceremonial uncleanliness hampered greatly the spread of anatomical knowledge, and thus struck at the very root of the practice of Surgery. "Even in the Manu Samhita" says Dr. Mukherjea in the Surgical Instruments of the Hindus. Vol. I, "we can trace the decline of Hindu Surgery, and his law forbidding anyone from eating food from the hands of a Doctor (Manu III, IV) evidently refers to a Surgeon." Susruta recommended the practice of Surgery on models, but his salutary advice is honoured more in breach than in observance. This, together with the comparative success of internal and external medicines, and the charm-cures and spells so prevalent in the Middle ages, contributed not a little to the decay of Surgery. The Surgeon's knife was sought to be replaced, and in many cases with considerable success, by caustics, leeches and the like. As to the cause of the decay of Ayurveda in general, including both Medicine and Surgery, it is much more complicated, and the economic and political conditions of our country have had a very large share in bringing about the result.

The Committee on the 'Indigenous Systems of Medicine' already reffered to, in tracing the cause of the downfall of the Indian Systems, observes, "We are also clear that the chief causes of the present decadent condition of the Indian Systems are mainly two:—(1) Lack of recognition and support by the State, and following the example of the State by other agencies (Princes, Zamindars, Local Bodies, Universities &c.) who were their natural patrons in the past, but have now ceased to be except in a few instances. (2) The establishment of the Western System as the *official* System, recognised and supported by the State, and enjoying the sole monopoly of State patronage... The study of Western Medicine gives a State-recognised status, and a good chance of entering into the service of the State, the Local Boards, the Railways and the like ;......on the other hand, the prospects of those who would take up the study of Indian Medicine are dreary and discouraging to a degree ;......in the eye of the State and the Law, they are more or less "Quacks"......Is it any wonder, that under such circumstances, the Indian Systems have progressively

Indira Gandhi National Centre for the Arts

suffered decay, and that sufficient number of the best brains of the nation are not attracted to it."

Of course there is no exception to be taken to these well-considered pronouncements, and the above two reasons have very largely been responsible for the downfall of Ayurveda ; but there have been other causes, and very potent ones too. The beginning of the decay should be sought for elsewhere also.

There is no gainsaying the unfortunate fact, that our Government has been sadly wanting in the performance of its duty towards our national healing art, replacing it altogether, without adequate reason and enquiry, by the more costly system of their own, which very often proves alien to the health and temperament of those for whom it is intended. But in our zeal for condemning others of negligence, we must not forget our own sins, both of omission and commission, which have contributed so largely in bringing about the sad predicament in which we now find ourselves. As I am not however competent to speak with authority on other Indian Systems such as Siddha and Unani, I shall confine myself to Ayurveda. I have already referred to the downfall of Ayurvedic Surgery. One of the causes of decay of Ayurveda as a whole, is the high regard which the Hindus have always cherished for the writings of their sages. As a result of this, the entire Medical Science has become stereotyped, all subsequent authors copying more or less correctly the few authorities including Charaka and Susruta. There was no printing system, and the entire Sastra was orally handed down from generation to generation, with the occasional help of written Mss. No one had the courage or opportunity to rectify any mistakes that might have crept into the text-books oral or written, the result being, that obscure or faulty portions were explained by more obscure and faulty commentaries. Later writers differed in many places among themselves, whenever they fell into any error. Thus the Medical Science had its final say once for all, and instead of being progressive, it became stereotyped. Far be it from me to question the authority and wisdom of our sages, but with the deepest respect for them, I must say, that no Medical Science can ever become complete and exhaustive, without the slightest need of modification or addition in any way even after ages. Charaka and Vagbhata say :—

विकारनामाकुशलो न जिह्रीयात् कदाचन ।
न हि सर्वविकाराणां नामतोऽस्ति ध्रुवा स्थितिः ॥
स एव कुपितो दोषः समुत्थानविशेषतः ।
स्थानान्तराणि च प्राप्य विकारान् कुरुते बहून् ॥

Indira Gandhi National Centre for the Arts

तस्माद् विकारप्रकृतीरधिष्ठानान्तराणि च ।
बुद्ध्वा हेतुविशेषांश्च शीघ्रं कुर्य्यादुपक्रमम् ॥

"Let not a Physician feel shame, if he cannot identify any particular disease of a patient with a name given in his book: for all possible diseases have not exhaustively been enumerated in Medical treatises. One and the same dosha (Vayu, Pitta or Kapha), owing to the difference of the existing cause and its seat, produces innumerable diseases of different types. The Physician therefore should make prompt arrangements for treatment, after carefully considering the nature of the disease, its seat and the producing causes". Unfortunately there has up to now only been a servile following of Ayurveda, instead of intelligent handling, and numerous inaccuracies and mistakes have in the meantime crept into the System. I had to experience the greatest difficulty in deciding the correct reading of the text when in writing my Sanskrit Commentary on Charaka. I collected fifteen old Mss. from different sources for collation. A blind respect for the rules of Panini arrested the growth and sounded the death-knell of Sanskrit as a spoken language, and the same has been the case with our science also.

The downfall of Hindus as a political nation has been another factor. In Asoka Inscriptions we find that hospitals were established by him in different parts of his Kingdom, not only for men but for brutes also. We learn further from the accounts of Hieunth Sang and Fa Hian that charitable medical institutions were quite common in ancient India. We have also evidence that our standard Medical works were translated into Arabic in about the 8th century.

But with the end of their political supremacy, the Hindus lost their fine traditions. The adopted fashions of the Court, Vaidyas were often replaced by Hakims just as Vernaculars were replaced by Persian and Urdu. Muhammedans did not take real interest in our science, for the conquerors had their own Hakims whom they patronised. Then the English came, and they in their turn supplanted the Hakims by their Doctors. We have become so enamoured of the Western civilisation, that we do not even care to know whether our science can afford us any relief, but we must consult foreign Doctors even on trivial occasions. Our children no more like our homely products, but are now accustomed to—nay, dependent upon malted milk, condensed milk, biscuit and similar artificial food. Even meat juice, in order to be palatable to us, must come tinned from Europe. Ordinary purgatives and digestives are no more prescribed by Charaka, but supplied by British firms. We prefer preserved fruits and

National Centre for the Arts

jellies of Europe to the fresher and cheaper ones of our own country. Could mental perversity and slavishness go further ? I do not like to exhaust the subject, for that would exhaust your patience too ; but, gentlemen, I cannot let the matter pass without considering the effect of some of the strong medicines and artificial food-stuffs of the West, especially on our infants. "The large amount of carbonate of soda that is used," says Dr. Fisher, M. D., "at the present day in one of the popular methods of feeding infants may be viewed in the light of stupefaction." Most of the patent foods and malted milks are highly injurious to children, for they contain very little fat and too much carbo-hydrates as revealed in their analysis. Even the rubber tubes in feeding-bottles have on very many occasions proved a fruitful source of disease in children. Mother's milk, supplemented by cow's milk is the best food for children, and this method of feeding them would greatly reduce the infant mortality.

Fortunately for India however, with the national awakening, there are unmistakeable signs of the revival of Ayurveda. We must not forget here to pay our deepest respects to the great Acharya Gangadhara of Berhampore, who was the pioneer of Ayurvedic renaissance, at least in Bengal. Indeed, such was the decadent condition of Ayurveda in Bengal before the time of Gangadhara, that a complete Ms. of the Charaka Samhita was a rare thing, and people did not even know the nature of the work. The Sabdakalpadruma—a Sanskrit Encyclopædia—which was published about one hundred years back, does not contain the name of Agnivesa at all, whereas under "Charaka" it says, मुनिविशेषे, तत्कृतग्रन्थे च i. e. "First, a sage of that name, and next, his treatise." The authors and editors had no information that Charaka was merely the redactor of the treatise of Agnivesa—a fact clearly stated at the end of every chapter of the Samhita. It was with the greatest difficulty that Gangadhara collected fragments of the Ms. from different sources, and then wrote and published his masterly commentary upon the work, and thus gave the first impetus to the study of Charaka after its dark age. His was a genius equally at home in all branches of Sanskrit learning, but his monumental work, the Jalpa Kalpataru is the landmark in the revival of Ayurvedic study. Certainly there were stray and feeble attempts, before Gangadhara, to keep up the tradition of Ayurveda, but these attempts coalesced into a complete whole under the able guidance of this intellectual giant who will for ever be remembered with the deepest veneration by all lovers of Ayurveda..

It might be mentioned also that Vridha Vagbhata's Ashtanga-sangraha too existed in name only. From Chakrapani who flourished

Indira Gandhi National Centre for the Arts

about one thousand years ago, down to Gangadhara who died in the eighties of the last century, no Medical author has quoted from him. Now however, his work has been published and is easily available.

Gangadhara left behind him a host of worthy disciples who continued and spread his work. Then with the change in the national outlook, Ayurveda is steadily gaining in popularity. Though much more remains to be done, we cannot but view with hope the interest in Ayurveda evinced not only by the general public but by the Government, and following in its wake, Local Boards, Corporations and similar institutions. Several District Boards in Bengal have opened Ayurvedic charitable despensaries. Recently I was requested by the Civil Surgeon of Maldah to spare some medicines for their charitable dispensary in order to start experiments on patients suffering from Malaria and Kala-azar. I most gladly accepted the proposal, and I am sure that the results will be quite satisfactory.

Here I must gratefully make a mention of the kind interest evinced by the Madras Government which appointed in 1921 a committee "to report on the question of the recognition and encouragement of the Indigenous System of Medicine in vogue in this Presidency." The object of the enquiry was "to afford the exponents of the Ayurvedic and Unani Systems opportunity to state their case fully in writing, and to justify State encouragement of these Systems." The Committee, presided over by Khan Bahadur Muhammad Usman Sahid Bahadur, B. A., M. L. C., made thorough enquiry into the matter, submitted a report full of interesting and important informations. I have already referred to the Report more than once. Our grateful thanks are due to the Madras Government and the Committee for their sympathetic attitude.

Towards the end of February last, I received a letter from my friend Pandit M. Duraiswami Aiyanger which ran as follows, 'It is proposed to form an association of practitioners of Indigenous Systems with a view to advise the Government on the question of the curriculla of Indian Medical Schools, and the standard to be attained by registered practitioners of Indigenous Systems." He further informed me that the Government had appointed an Advisory Board of which Dr. Duraiswami himself was a member, to determine as to how to start an Indigenous Medical College. It may be pointed here, that the All India Ayurveda Vidypitha is steadly progessing; and the Government will be well advised to recognise it while starting an Ayurvedic College. In fact, the Vidyapitha may be transformed into, if I may say so, a Medical University to which the Indigenous Institutions should be affiliated. It is strongly hoped that the example set by the Madras

National Centre for the Arts

Goverument will be followed by other Governments and States in India.

The Bengal Government also appointed a Committee of Indigenous Systems of Medicine. The result of the labours of this Committee, when published, promises to be instructive and interesting.

In the beginning of March last, it appeared in the Amrit Bazar Patrika, that at a recent Cnnference of Hakims and Kavirajes held at Patna under the presidency of my esteemed friend the Hon'ble Khan Bahadur Sir Muhammad Fakhruddin, Minister of Education, means were dicussed to improve the methods of teaching Ayurvedic and Tibbi Sciences. Both the Ministers, the Hon'ble Sir Muhammad Fakhruddin and the Hon'ble Mr. Ganes Dutt Singh said that the Government was ready to help the study of Ayurvedic and Tibbi methods of treatment. Our sincere thanks are due to the B. & O. Government and the two Ministers.

Throughout India, as you all know, Ayurvedic Institutions have been started where regular examinations are held. Vaidyas and Hakims are now holding meetings and conferences to devise means of improving their respective sciences, and we fervently hope, that the day is not far distant when we shall once more find the Indian Systems in their full glorv and splendour.

Gentlemen, before I pass on to the discussion of the ways and means for the revival of Ayurveda, I should like to refer to a very popular topic of the day—namely the combination of the Eastern and Western Systems. I must confess gentlemen, that I really do not understand the exact meaning and scope of this demand. First, is the combination desired for the betterment of the Western System or for that of ours ? If the former, it is at least on the present occasion, beyond my province, for I am not just now advocating the cause of the European System. If the latter, we have got to consider the problem thoroughly, for, I am afraid, the question is not quite so simple as it seems. There are many at least in Bengal, who would prefer an Ayurvedic student to start with an English degree such as L. M. S., M. B., or the like. Now gentlemen, as matter stands, no student who has not at least passed the Intermediate Examination is admitted into the Medical Colleges, though among the selected ones every year we find many B. Sc.'s and several M. Sc.'s also. Five or six years' very hard labour is the minimum work that is expected of him before he has any chance of obtaining the Medical degree. I hope you will not differ from me very much when I hold, that after undergoing the strenuous labour and meeting the exorbitant charges in a medical college for about six years, an average student who has already

Indira Gandhi National Centre for the Arts

graduated or at least passed the Intermediate Examination, finds neither the leisure, inclination, energy nor the money wherewith to start on a fresh medical carreer, namely the Ayurvedic, extending over several years more. For the study of Ayurveda is not a matter of joke. An M. B. may derive some benefit from his previous knowledge of Anatomy, Physiology &c., but he has got to read entirely anew the portions embracing Medicine, Therapeutics, Toxicology, Diagnosis, Midwifery, Treatment of women and children, Rasayana, Vajikarana, etc., even if we leave Surgery out of account, for the present. In these departments of Ayurvedic study, he will hardly derive any assistance from his previous Western degree, except what is of a more or less comparative value, and he will require several years to complete his study properly. I repeat gentlemen, that this is certainly too much to be expected of a student of the average merit and means.

One thing more, we generally find that our first impressions are very strong, and man by nature is conservative. Once a student has had a medical knowledge through the Western method, he will, later on, test the merit of Ayurveda according as it tallies with his science. The result will be, that not only will he be very likely to reject all portion in Ayurveda that will appear to him to be conflicting with his former ideas, but even where both equally apply, it is ten to one that he will avail himself of the Western System rather than Ayurveda. He will hunt up the European Pharmacopoea for medicine, rather than Indian, and want of strong faith in Ayurveda will entirely vitiate his medical practice. Of course there may and will be honourable exceptions, but they will, so to say, prove the rule. We do not want staunch Doctors with some superficial knowledge in Ayurveda for which he feels no very high regard. Rather we want staunch Ayurvedic Physicians who may have their stock of knowledge increased by the rational and supplementary study of other Systems of Medicine. We want other systems to supplement and not to supplant Ayurveda. It would therefore be more to our purpose to educate our students thoroughly in Ayurveda first, and then to allow them to make comparative studies of other systems. Of course even during their Ayurvedic study of Anatomy, Physiology, Surgery etc., they may derive help from the Western System, but they must remember that other systems are always to supplement their national science, and never to replace it. My remarks apply more forcibly in the branches of Diagnosis, Medicine etc., for, the method of diagnosis in Ayurveda is entirely different from that of the Europeans who have never heard of Vayu, Pitta and Kapha. We must first of all master these things thoroughly; then we may if we like, go through the same in other

Indira Gandhi National Centre for the Arts

systems also, but never before; and similar is the case with other branches too.

Before I conclude gentlemen, I beg to place before you some of my humble suggestions for the proper cultivation of Ayurvedic science. The first twe aims ought to be (1) to make the study and practice of Ayurveda popular and (2) to make Ayurveda self-sufficient and efficient. For the attainment of these, State aid and patronage by Zemindars, Local Bodies and Corporations are essential. Offer of stipends, guarantee of service and the establishment of proper schools with laboratories and hospitals will go a very great way to solve the problem. Of course the details have to be worked out according to the special circumstances of every case, and even modified in the light of practical experience. What I say now is only a very general outline to start with. To make the science and art of Ayurveda self-sufficient, thorough investigation is to be made into the forgotten portions, such as Major and Minor Surgery, Midwifery etc; and text-books have to be selected, compiled, and written in the light of the modern tendency, method of expression and mode of study. Work in this direction is a-foot in all provinces in India, and many schemes have been formulated. All of them require a considerable sum of money not only initial, but of a recurrent nature too. But that need not dishearten us. One may not see eye to eye with it in every detail, but the scheme drawn up by the Committee for the Indigenous System of Medicine, Madras, is one of the best that I have come across, and it requires an annual grant of about five lakhs of rupees. "We cannot imagine", the members observe in putting forward their suggestion, "that at a time when we are voting nearly 57 lakhs per year for the maintenance of the European System of Medicine, which reaches but a small 10 to 20 p. c. of our population and that too mostly those who reside at urban centres, it will be possible for anybody to grudge a comparatively small provision of barely five lakhs for the promotion of those Indian Systems which minister to nearly 80 to 90 p. c. of our total population, and which are practically the only solace of our sick and suffering brethern resident in the vast and far-flung rural tracts."

Our Universities also can well make provisions for the study of Indian Medicine. Examinations are now held almost all over India every year for conferring Ayurvedic degrees, and the Hindu University and several States have already taken up the teaching of Ayurveda in right earnest. Such encouragements have not yet been sufficient, nor even, in cases, satisfactory, but undoubtedly they are a move in the right direction, and they have got to be followed with patience and discretion.

Indira Gandhi National Centre for the Arts

Another point is the true identification of drugs and other ingredients of the Ayurvedic pharmacopoea, as also the proper preparation of Ayurvedic medicines in strict accordance, except where obvious advantages are to be gained otherwise, with the instructions and provisions in the Ayurveda. I say advisedly, 'in accordance with the provisions in Ayurveda,' for there now seems to be a general desire for preparing indigenous medicines according to the modern scientific methods of the West. But these variations in very many cases take away much from the quality of the preparations. Several instances are quite well-known to you all ; e. g. substitution of metal pots for earthen or stone ones in storing acids will cause reaction of the acid on the metal. In many instances, special fuel is recommended for the preparation of particular medicines. There the substitution of one kind of wood for another, or for the matter of that, of gas or electricity is very likely to interfere with the medical qualities of the preparations. It is a fact known to even the women of Bengal, that rice cooked on a slow fire of cow-dung cakes is much more easily digestible than that boiled on some other kind of fire. Sveda (fomentation), to take another example, is not a matter of mere application of heat, but the source of heat as also the article to be heated and applied are of very great importance. A kind of Makaradhvaja has recently been prepared in Germany, and it sells in Calcutta at a rupee per tola. It appears a little blackish in comparison with ours ; it may be quite faultless as regards the general appearance and certain chemical properties even, but I have very grave doubts about its medical effect. Several chemical and phermaceutical works now manufacture extracts from drugs and many Ayurvedic medicines. Far be it from me to minimise the services of such companies, but I must firmly advocate the closest possible observance of the orthodox procedure in such manufacture.

Then, the Exhibition held in connexion with the annual sitting of the Conference serves a great deal to awaken a general interest in our healing art. The value of such Exhibitions, wherein very rare medicines and drugs, as also Mss., books and articles of medical interest are shown in a systematic way, can hardly be over-estimated ; and our sincere thanks are due to you, the people of Ceylon, for opening such a splendid Exhibition. The holding of such Exhibitions will go a great way to popularise Ayurveda and help its revival.

Last, though most emphatically not the least, we have got to re-kindle our strong faith in the rich treasures and immense possibilities of Ayurveda. We must learn to recognise and to love Ayurveda as our own, and we must look to it and not to foreign systems

National Centre for the Arts

in our medical needs. Unwavering faith must precede all our attempts for its revival, paving our way and sustaining us in despair.

Gentlemen, I do not wish to detain you any more. There are here, as I find around me, many intellectual giants who are much more competent to speak authoritatively and in detail on the points that I have merely touched. I am as eager as you, if not more, to listen with interest and benefit to the speeches of these savants. Before however, I resume my seat I feel it my duty to thank you once more fot the honour you have done me in electing me for the second time your chairman, and secondly for the patient hearing which I have been fortunate enough in obtaining from you. Gentlemen, I know fully well, that I have not been able to discharge my duties as I would have, but I crave your indulgence and hope to be excused for my defects and short-comings. My intense love for Ayurveda and deep respect for your commands have been the chief factors that induced me to accept this heavy responsibility, and I hope that with your able guidance and hearty co-operation, our Conference will be crowned with success and glory.

Now ladies and gentlemen, let me conclude with the hope that,

स्निग्धैः स्निग्धैर्यदतिकरुणापुण्यपीयूषवर्षैः
कामं कामं सुचिरमभवत् तर्पितः सर्वलोकः ।
आयुर्वेदो ग्रहपरिगतः पार्वणः शर्वरीशः
सोऽयं भूयः प्रकटितरुचिर्जीवजीवातवेऽस्तु ॥ इति

॥ शम ॥

॥ श्रीः ॥

श्रीमान् पण्डित गोवर्धन शर्मा छांगाणी, भिषकेसरी का

जीवन-चरित ।

सम्माननीय पूज्यपाद श्रद्धेय गुरुवर्य गोवर्धनजी शर्मा छांगाणी "भिषक्केसरी" की जीवनी नितान्त उद्बोधक एवं आदर्श है। भारतीय-आयुर्वेद संसार में आपको न जाननेवाला कदाचित् कोई विरला ही होगा तथापि आपके विषय में कुछ लिख देना हम उचित समझते हैं।

आपका जन्म राजपूतानान्तर्गत मारवाड़ की राजधानी जोधपुर से ८० मील की दूरी पर बसे हुए पोकरण नगर में सम्वत् १९३३ आश्विन शुक्ला १० अर्थात् विजया दशमी गुरुवार की रात को पुष्कर्णा ब्राह्मण जाति के छांगाणी-कुल में हुआ था। आपके पूज्य पिताजी का नाम जीतमलजी था और माता का मूली बाई है। ज्येष्ठ कनिष्ठ मिलकर आप सात भाई-बहिन थे; किन्तु इस समय केवल तीन बंधु ही सपरिवार वर्तमान हैं। इन सब में आप ज्येष्ठ हैं। आपके छोटे भाई रामलालजी आर्वी (वर्धा) में और उनसे छोटे आपही से पढ़े हुए वैद्यभूषण पं० गौरीदत्तजी शर्मा छांगाणी अपने जन्मस्थान पोकरण में ही चिकित्साकार्य करते हुए, माताजी की सेवा में रहते हैं।

छांगाणीजी की योग्यता

गुरुवर्य छांगाणीजी का बाल्यकाल पोकरण (मारवाड़) में ही बीता। लाड़-प्यार के सबब ११ साल की अवस्था तक आपने शुद्ध अ, आ, इ, ई, या क, ख, ग, तक भी नहीं पढ़ा था। यह बात आपके ज्येष्ठ बंधुओं तथा विशेषतः ममेरे भाई स्वर्गीय हीरालालजी जोशी को बहुत खटकी। वे प्रायः बरार में ही रहते और मुनीमी का कार्य करते थे। प्रसंगवशात् सम्वत् १९४४ में वे अपने घर पोकरण आये हुए थे। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' इस उक्ति के अनुसार भाई हीरालालजी को बालक छांगाणीजी की बुद्धि बड़ी प्रखर प्रतीत होने पर भी दुःख हुआ कि खेल-कूद ही में सारी बात बिगड़ रही है। किसी तरह जोशी जी अपने फूफा-फूफी (छांगाणीजी के माता, पिता) को समझा बुझाकर, इन्हें जिला अमरावती (बरार) के क़सबा मंगरूल दस्तगीर में ले आए और आने के दस-पन्द्रह दिन बाद ही सरकारी मराठी पाठशाला (स्कूल) में भर्ती कर दिया। इस पाठशाला के प्रधानाध्यापक (हेड मास्टर) स्वर्गीय पं० हरिनारायणजी भिड़े संस्कृत एवं अंग्रेजी के अच्छे पण्डित थे। आपका पुत्र रामभाऊ छांगाणीजी का सहपाठी और मित्र था, अतः भिड़ेजी ने बालक छांगाणीजी को भी बड़े प्रेम पूर्वक पुत्र ही मान लिया था। वे प्राचीन हिन्दू संस्कृति के बड़े प्रेमी एवं संस्कृत साहित्य के आचार्य थे। पाठशाला के अतिरिक्त भी वे रामभाऊ और छांगाणीजी को खुला न छोड़कर अपने घर पर रात दस बजे तक पढ़ाते थे। इनकी इस महती कृपा का फल यह हुआ कि रामभाऊ और छांगाणी जी ने प्रति वर्ष उत्तीर्ण होते हुए सात ही साल में यहाँ की पाठशाला का अध्ययन

...onal Centre for the Arts

विद्यावाचस्पति श्रीमान् पण्डित गोवर्धनजी शर्म्मा छांगाणी,

भिषक्केसरी, वैद्यभूषण, प्राणाचार्य, नागपुर ।

अध्यक्ष { नि० भा० पंचविंशतितम वैद्यसम्मेलन, अहमदाबाद । राजपूताना प्रान्तीय तृतीय वैद्यसम्मेलन, बीकानेर । श्रीबरार-मध्यप्रान्तीय तृतीय वैद्यसम्मेलन, छिन्दवाड़ा ।

भू० पू० प्रधान सम्पादक—वैद्यसम्मेलन पत्रिका ।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

समाप्त कर दिया। सात कक्षा मराठी एवं तीन अंग्रेजी की पार कर गये। इतना ही नहीं, स्वर्गीय भिड़ेजी ने सात साल में शब्द रूपावलि, धातु रूपावलि, समास चक्र से आरम्भ कर संस्कृत व्याकरण, कोष, काव्यादि में इन्हें अच्छा पण्डित बना दिया। उक्त पाठशाला में सात कक्षाएँ ही थीं इसलिए ये दोनों मित्र अमरावती भेजे गये। हाई स्कूल एन्ट्रेंस में प्रविष्ट हुए किन्तु चार-छः मास के बाद ही दुःखेन छांगाणीजी को अपने मित्र रामभाऊ और स्कूल से अलग होना पड़ा। अपने ज्येष्ट बंधु प्रतापचंदजी के ग्रहणी रोग-ग्रस्त होने से उनके साथ इन्हें अपने देश पोकरण (मारवाड़) में जाना पड़ा। दो मास के अनन्तर ही ज्येष्ट बन्धु का देहान्त हो जाने पर संस्कृत विद्यानुरागी छांगाणी जी सम्वत् १९५२ के प्रारम्भ में पुनरपि अमरावती लौट आए। आते ही आपकी भेंट पं० काशीनाथ जी पंजाबी ज्योतिषशास्त्री से हुई। पण्डित जी के उपदेश एवं प्रोत्साहन देने पर ज्योतिषाध्ययन का संकल्प कर आप अमरावती से पंजाब की ओर अपने मित्र मोहन व्यास को साथ ले, वैशाख की कड़ी धूप में रवाना हुए। अजमेर, रेवाड़ी आदि होते हुए लाहोर पहुँचे। वहाँ व्यवस्था न बैठने से एकदम गूजरांवाला, वज़ीराबाद होते हुए जम्मू (काश्मीर) पहुँचे। वहाँ रघुनाथ पाठशाला के पं० श्री गंगाधर शास्त्री जी से लीलावती और बीजगणित पढ़े; परन्तु यहाँ की बर्फीली ठंड बरदाश्त न कर सके और पुनरपि अपने देश (मारवाड़) में चले आये। सम्वत् १९५३ के जेठ में विवाह हुआ और कार्तिक में पुनः अध्ययनार्थ अमृतसर जा पहुँचे। वहाँ लगातार चार वर्ष रहे। श्रीमान् पं० धारीलाल जी से ज्योतिष तथा हजारीराम जी सारस्वत से आयुर्वेद का अध्ययन किया। उनकी आज्ञानुसार सम्वत् १९५८ में देश पधारे और वहाँ से खामगांव (बरार) में आकर वैद्यक-व्यवसाय में प्रवृत्त हुए। इतना ही नहीं, सम्वत् १९५८ से आजतक गुरुवर्य छांगाणी जी ने राजपूताना, सिन्ध, पंजाब, संयुक्तप्रान्त, बंगाल, मद्रास, बंबई आदि प्रान्तों के कई नगरों की सैर भी की। नाना गुरुओं से नाना विद्याओं एवं हिन्दी, गुजराती, उर्दू, फारसी, बंगाली आदि कई भाषाओं में प्रावीण्य प्राप्त कर, समय-समय पर सम्वाद पत्रों में कविता और लेख भी लिखे। सुलेखक समझ कर ही आपको सम्वत् १९७२ में 'मारवाड़ी' साप्ताहिक हिन्दी पत्र एवं प्रेस के स्वत्वाधिकारियों ने खामगांव से अनुनय-विनय कर नागपुर बुला लिया। उनके अनुरोध से सम्पादक का स्थान ग्रहण कर आपने १० वर्ष तक 'मारवाड़ी' का भली भाँति संचालन किया। साथ ही वैद्यक व्यवसाय भी करते रहे। तब से आज तक आप नागपुर ही में स्थित हैं।

आयुर्वेद सेवा और संमान

निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद महामण्डल तथा आयुर्वेद विद्यापीठ से आपका सम्बन्ध सन् १९२९ में हुआ। प्रविष्ट होते ही आप महामण्डल के आश्रयदाता यावज्जीवन सभासद (Life Member) चुने गये। आपकी विद्वत्ता एवं कार्यकुशलता से मुग्ध होकर महामण्डल एवं विद्यापीठ प्रारम्भ से ही आपको मध्यप्रान्त की ओर से अपने कार्यकारी मण्डल के सदस्य चुनते आ रहे हैं। सन् १९३१ से आप महामण्डल एवं विद्यापीठ-संचालित वैद्य सम्मेलन पत्रिका के प्रधान सम्पादक नियुक्त किये गये। वृद्ध होते हुए भी बड़े उत्साह के साथ सन् १९३५ तक आपने पत्रिका का सम्पादन किया। आपके सम्पादन काल में पत्रिका का कोई भी अंक ऐसा न निकला जिसमें आपका मौलिक एवं मार्मिक सम्पादकीय अग्रलेख न हो। इतना

Indira Gandhi National Centre for the Arts

ही नहीं, महामण्डल एवं विद्यापीठ सन् १९३१ से आपको प्रतिवर्ष विशारद एवं आचार्य परीक्षा के परीक्षक भी नियुक्त करते आरहे हैं। इसके अतिरिक्त दयानन्द आयुर्वेदिक कॉलेज लाहोर, हिन्दी विश्वविद्यालय प्रयाग आदि के भी आप आयुर्वेद परीक्षक हैं। आपकी लगन एवं अदम्य उत्साह का ही फल है कि आज नागपुर में 'वैद्यक महाविद्यालय' 'श्री धन्वन्तरि आयुर्वेद महाविद्यालय', उसके द्वारा संचालित धर्मार्थ औषधालयादि संस्थाएँ आयुर्वेद पढ़ाने और विद्यार्थियों को निदान चिकित्सादि के प्रत्यक्ष ज्ञान-प्रदान का कार्य सुचारुरूपेण कर रही हैं। वैद्यक महाविद्यालय के आरम्भ से दो साल तक आचार्य पद को आप ही ने सुशोभित किया था; किन्तु विज्ञप्ति देकर भी कार्यकारिणी के नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ का अभ्यास-क्रम न रखने के कारण आप उससे अलग होगये और तुरन्त ही अपने मित्रों एवं विशेषतः सेठ बंसीधर जी रामनिवास गोयनका के साहाय्य को प्राप्त कर आयुर्वेद विद्यापीठ के पाठ्यक्रमानुसार शिक्षा देने वाले 'श्री धन्वन्तरि आयुर्वेद महाविद्यालय' की स्थापना कर उसे विद्यापीठ से संबद्ध भी कर दिया। इतना ही नहीं, साथ-ही-साथ विद्यार्थियों के प्रत्यक्ष ज्ञानार्थ विद्यालय के नियंत्रण में चलनेवाले धर्मार्थ औषधालय का भी उद्घाटन करा दिया। इसका सारा खर्च श्रीमान् सेठ रामनिवास जी गोयनका प्रति मास उदारता पूर्वक देते हैं। विद्यालय के आचार्य (प्रिंसिपल) गुरुवर छांगाणी जी प्रतिदिन नियमानुसार अपने तीन अन्य विद्वान् सहयोगियों सह बड़े प्रेम से विद्यार्थियों को पढ़ाते और नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ की परीक्षा दिलाते हैं। आपकी पढ़ाने की शैली अत्यन्त प्रभावशालिनी है। केवल भिषक् ही नहीं, आपके पढ़ाये कई विद्यार्थी विशारद एवं आचार्य तक की परीक्षाओं में उत्तीर्ण होकर आज महाराष्ट्र, राजपूताना, संयुक्तप्रान्त आदि में सफलतापूर्वक चिकित्सा कार्य कर रहे हैं। सिवनी के अष्टांग आयुर्वेद महाविद्यालय, नागपुर के पुराणिक आयुर्वेद विद्यालय एवं अन्य धर्मार्थ औषधालयों को भी आपका सहयोग प्राप्त है। अमरावती के "भारत आयुर्वेद महा विद्यालय" की संचालक समिति के आप सम्माननीय सदस्य हैं। वहाँ की आयुर्वेद पाठशाला का उद्घाटन भी आपही के कर कमलों द्वारा हुआ है। श्री बरार मध्यप्रान्तीय वैद्य सम्मेलन की स्थायि समिति, राजपूताना प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन एवं नागपुर वैद्य मण्डल के आप वर्तमान अध्यक्ष हैं।

कुछ वर्षों से आपका ध्यान दक्षिण भारत के सिद्ध साम्प्रदायिक आयुर्वेद साहित्य की ओर आकृष्ट हुआ है। सिद्ध-साम्प्रदायिक-ग्रंथमाला का सम्पादन भी आपने प्रारम्भ कर दिया है। आप अपने निज व्यय से इस माला के प्रथम पुष्प स्वरूप 'बसवराजीयम्' नामक लगभग एक सहस्र वर्ष के प्राचीन एवं बृहद् ग्रंथ का सुचारु रूपेण संपादन एवं प्रकाशन भी कर चुके हैं। इसी ग्रंथमाला का द्वितीय पुष्प 'वैद्यचिन्तामणि' जो कि उक्त ग्रंथ से भी प्राचीन है, सम्प्रति आप ही के द्वारा छप रहा है।

भारत की कई प्रसिद्ध संस्थाओं ने आपका सम्मान किया है। सम्वत् १९७४ में कलकत्ते के विश्वनाथ निकेतन (सम्प्रति विश्वनाथ आयुर्वेद महाविद्यालय) ने आपको 'वैद्यभूषण' एवं निखिल भारतीय वैद्य सम्मेलन मैसोर के अध्यक्ष महामहोपाध्याय कविराज श्रीगणनाथ सेन सरस्वतीजी ने सन् १९३१ में 'भिषगाचार्य' पद से अलंकृत किया है। निखिल भारतीय विद्वत्सम्मेलन के १६ वें अधिवेशन में श्रीमान् पंचाम्बुभूषण पं० बुलाकीरामजी शास्त्री विद्यासागर ने 'विद्यावाचस्पति' एवं श्री १०८ श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्यजी ने आपको नागपुर में भोंसला संस्कृत महाविद्यालय के आचार्य महामहोपाध्याय श्री केशवरावजी ताम्हन आदि सह नगरस्थ

Indira Gandhi National Centre for the Arts

स्वर्गीय भिषक्केसरी पं० रामकृष्ण सेवाराम दुबे, इन्दौरकर।

आपने ही नागपुर में पधार कर सन् १९१५ में नागपुर वैद्यमण्डल, धन्वन्तरि पाठशाला (संप्रति श्री धन्वन्तरि आयुर्वेद महाविद्यालय) और श्री धन्वन्तरि धर्मार्थ चिकित्सालय की स्थापना की। नागपुर में आयुर्वेद-प्रचार का बड़ा भारी श्रेय आपही की दिवंगत आत्मा को प्राप्त है।

Indira Gandhi National
Centre for the Arts

अनेक विद्वानों की सभा में बड़े सम्मान के साथ 'भिषक्केसरी' पद से विभूषित किया है।

सन् १९३२ में बीकानेर में होनेवाले राजपूताना प्रान्तीय वैद्यसम्मेलन एवं सन् १९३४ में छिंदवाड़े के श्री बरार मध्यप्रान्तीय तृतीय वैद्यसम्मेलन के सभापति आप ही निर्वाचित हुए थे। इतना ही नहीं, सन् १९३५ के दिसम्बर में रजतजयन्ती सह अहमदाबाद में होनेवाले निखिल भारतवर्षीय २५ वें वैद्यसम्मेलन के सभापति आप ही निर्वाचित किये गये थे। इसलिये भारतीय आयुर्वेद महामण्डल के सभापति (अध्यक्ष) आप ही हैं। आपके हिन्दी एवं संस्कृत भाषण आपकी विद्वतानुरूप बड़े ही प्रभावशाली हैं। आयुर्वेद संसार के महारथी श्रीमान् आयुर्वेदमार्तण्ड यादवजी त्रिकमजी आचार्य, श्रीमान् आयुर्वेदाचार्य स्वामी लक्ष्मीरामजी, महामहोपाध्याय कविराज गणनाथ सेन सरस्वती आदि आपको बड़ी श्रद्धा एवं सम्मान की दृष्टि से देखते हैं।

रहन सहन और स्वभाव

श्रद्धेय छांगाणीजी की रहन-सहन इतनी सादी है जिसे देखकर कोई भी नहीं समझ सकता कि इस शरीर में परम पिता परमात्मा ने गहन गवेषणा पूर्ण इतना शास्त्रीय ज्ञान कूट-कूटकर भरा है। स्वभाव भी आपका नितान्त ही सरल है। इस समय आपकी अवस्था ६० वर्ष की हो जाने पर भी आपकी स्मरण-शक्ति बड़े-बड़े मेधावी युवकों से भी बढ़कर है। आप पीयूष-पाणि चिकित्सक हैं। धनिकों एवं दीन दुखियों तक से आपका व्यवहार एक सा रहता है। उदार भी आप ऐसे हैं कि आपके पास आया हुआ कोई भी व्यक्ति विमुख नहीं लौटाया जाता। आपका गोवर्धन नाम भी सार्थक ही प्रतीत होता है क्योंकि आप पर गोवर्धन की धुन सदैव ही सवार रहा करती है। आप किसी समय जायँ, उन्हें आप गो-सेवा (वाणी एवं गौओं की) में ही तल्लीन पाएंगे क्योंकि नागपुर जैसे बड़े शहर में रहते हुए भी आपके यहाँ १५, २० गौओं की सेवा सदैव हुआ करती है और हुआ करती है गो = भगवती सरस्वती की आराधना भी कभी आप गौओं की सेवा करते मिलते हैं तो कभी शास्त्रावलोकन करते या लिखते। गौएं भी। आपकी बड़ी हृष्टपुष्ट एवं दर्शनीय रहती हैं। संभवतः इसी द्व्यर्थक गो-सेवा को ध्यान में रखकर ही निखिल भारतीय वैद्यसम्मेलनाध्यक्ष निर्वाचित होने पर नागपुर के समस्त वैद्य एवं विद्वन्मण्डल ने निम्न-लिखित पद्य को पढ़कर आपका अभिनन्दन किया था। यथा—

"आयुर्वेदविशारदः सहृदयः पीयूषपाणिर्बुधो,
गोसेवानिरतो वहत्यनुगुणां गोवर्धनाख्या कृती।
स्थाने वैद्यमहासभापतिपदे विद्वद्भिरारोपित-
छांगाणीत्युपनामको विजयते श्रीमान् भिषक्केसरी ॥"

आपके शिष्यद्वय

नागपुर,
ता० १।७।१९३६ ई०

श्री गुलराज शर्मा (आयुर्वेद-विशारद)
श्री केदारनाथ शर्मा (आयुर्वेद शास्त्री)

Indira Gandhi National Centre for the Arts

॥ श्रीः ॥

श्रीधन्वन्तरये नमः ।

निखिलभारतवर्षीयपञ्चविंशतितमवैद्यसम्मेलनस्य अहमदाबादनगरे
समवेतस्य सभापतीनां

छाङ्गाणीत्युपाख्यवैद्यश्रीगोवर्धनशर्मणां
अभिभाषणम् ।

ॐनमो ब्रह्मप्रजापत्यश्वीन्द्रधन्वन्तरिसुश्रुतादिभ्यः ।

योगं योगविदां विधूतविविधव्यासंगशुद्धाशय-
प्रादुर्भूतसुधारसप्रसृमरध्यानास्पदाध्यासिनाम् ।
आनन्दप्लवमानबोधमधुरामोदच्छटामेदुरं
तं भूमानमुपास्महे परिणतं दन्तावलास्यात्मना ॥१॥
त्रिभुवनजनरोगग्रामसंग्रामजेता-
मृतभृतधृतकुम्भोद्गूर्णहस्तायुधश्रीः ।
अमरमथितदुग्धाम्भोधिलब्धोदयोऽसौ
दलयतु दुरितौघानाद्यवैद्याधिपो वः ॥२॥

अयि परममाननीयाः स्वागतसमित्यध्यक्षाः, श्रीधन्वन्तरिकल्पवैद्यप्रवराः, समुपस्थित-सभ्यमहोदया आर्यललनाश्च,

श्रीजगदीशितारं वारंवारं प्रणम्य, स्मारंस्मारं च सर्वेषां श्रीमतां तत्रभवतां निर्व्याज-सौहार्दं, प्रयच्छाम्यनन्तान् धन्यवादान्, यत्सत्स्वप्यर्हत्तरेष्वपरेष्वायुर्वेदपारावारपारीणेष्वगद-ङ्कारप्रवरेषु सम्मेलनस्यास्य सभापतिपदेऽतीव निर्गुणमपि मां नियोज्यात्मसम्मातभाजनीकृतो-ऽहमिति । योग्यताभावेऽपि न जाने किमिव मनसि कृत्वास्मिन्महति पदे मन्नियुक्तिरेव कृता श्रीमद्भिरित्याश्चर्यमेव । प्रेम्णैव कृतमेतत्सर्वमपीति भाति । प्रेम्णैव मयाप्यविलङ्घनीयामाज्ञा-मिमां गुरूणां महतादरेण शिरसि कृत्वा स्वीकृतं पदमिदम् । किन्तु स्वयोग्यतायां संशयानो-ऽहमित्यभ्यर्थये सहयोगम् । यतः सर्वेषां सहयोगादेव भवति निरन्तरायकार्यसिद्धिरिति मे द्रढीयान्विश्वासः ।

प्रेष्ठाः, महामहोपाध्यायकविराजश्रीगणनाथसेनसरस्वतीमहोदयानां, धन्वन्तरिकल्पश्री-लक्ष्मीरामस्वामिनां, त्रिविक्रमतनूजश्रीयादवाचार्याणामायुर्वेदमार्तण्डानां, महर्षिकल्पश्रीमदनमो-हनमालवीयानां, राजर्षीणां श्रीरामवर्मणां, कैप्टनश्रीश्रीनिवासमूर्तीनामथ च राजवैद्यश्रीकृष्ण-

Indira Gandhi National Centre for the Arts

शास्त्रिदेवधरप्रभृतीनां गतचतुर्विंशतिवैद्यसम्मेलनाध्यक्षाणां प्रकाण्डपण्डितानामास्वादिते सति भाषणामृतेऽनाघ्रातशास्त्रगन्धस्य मेऽल्पज्ञस्य जल्पनं न तु भाषणं कथं नु भवेत्सन्तोषाय श्रीमतामिति शङ्केव, किन्तु बालादपि सुभाषितमिव रुचिकरमेव स्यादित्याशासे।

मान्याः, प्रातःस्मरणीयाः स्वर्गीयाः श्रीशङ्करदाजीशास्त्रीपदेमहाभागाः सर्वेषामप्यस्माकमनन्तधन्यवादार्हा भवन्तिस्म, यतो हि निखिलभारतीयायुर्वेदमहामण्डलमथ च वैद्यसम्मेलनमिदमप्येतैरेव महाशयैः संस्थापितमिति सुविदितमेव सर्वेषां तत्र भवताम्। तेषामेवानुकंपाफलमिदं यत्प्रत्यब्दं निखिलभारतीया भिषजः प्राप्नुवन्ति सुविचारविनिमयावसरमायुर्वेदस्य। तत्तत्प्रान्तीयास्ते महानुभावाश्चाप्यनन्तधन्यवादार्हा यैरदम्योत्साहैर्विगतानि चतुर्विंशतिवैद्यसम्मेलनानि स्वर्गीयपदेशास्त्रिमहाभागानामिच्छानुकूलान्येव साङ्गोपाङ्गतया संपादितानि। शुभेऽस्मिन् संवत्सरे गुर्जरराष्ट्रीयमहम्मदाबादपुटभेदनमपि धन्यातिधन्यमिति मन्ये, येन च प्रेम्णातिशयेन भवतः सर्वानप्यखिलभारतीयानगदङ्कारानामन्त्र्यायुर्वेदशास्त्रस्यायं सुविचारविनिमयावसरः प्रदत्तः। एवमेव तदनुकम्पया संमेलनेनानेन सहैवास्माभिरायुर्वेदमहामण्डलरजतजयन्त्युत्सवजन्यहर्षोऽप्यनुभूयते। वक्ष्यमाणेतिवृत्ताद् गुर्जरराष्ट्रस्य महती सेवेयं तदनुकूलैव।

गुर्जरराष्ट्रस्यायुर्वेदसेवा।

प्राचीनेतिवृत्तावलोकनाज्ज्ञायते यद् गुर्जरराष्ट्राभिजनैर्नागरौदीच्यपुष्कर्णाश्रीमालीगौडश्रीगौडसारस्वतमोढरायकवालगुर्जरभूनिर्जरैरेव न, किन्तु क्षत्रियवैश्यसाधुसन्यासिप्रभृतिभिः सर्वैरपि संस्कृतभाषासाहित्यस्यायुर्वेदस्य च महती सेवा विहिता। यद्यपि संस्कृतसाहित्याद्यनेकग्रन्थानां काव्यानां चोपमार्थगौरवपदलालित्यादिगुणमयानां रचयितारः, कलिकालसर्वज्ञाः श्रीहेमचन्द्राचार्याः, महाकविमाघप्रभृतयोऽप्यस्या एव विद्वद्रत्नगर्भागर्भजा आसन्। तथापि कविकुलमुकुटमणिभूतानामेतेषां विषये विषयान्तरवशाद्विस्तृतिभयाच्चानुल्लिख्यायुर्वेदसेवावलम्बिनामेव विषये यत्किञ्चिन्निवेद्यते।

नास्त्यत्र सन्देहलेशोऽपि यदायुर्वेदसेवायां गुर्जरराष्ट्रोऽयं न कदाप्यासीत्पश्चात्पदभागिति। बहवश्चरकसुश्रुतवाग्भटवाग्भटा राष्ट्रेऽस्मिन्नासन्, किन्तु रसशास्त्रज्ञेष्वपि गुर्जरराष्ट्र एवासीदग्रगण्य इति निश्चयेन शक्यते वक्तुम्। विषयेऽस्मिन्नधुना केषांचिद्विदुषां प्रमाणपुरःसरो दीयते परिचयः।

कविवरः श्रीशार्ङ्गधरः।

नायुर्वेदीयचरकाद्यार्षसंहितानामेव, किन्तु रसशास्त्रादीनामपि मर्मज्ञो, महावैयाकरणो, यतिपतिस्वामिवैकुन्ठाश्रमस्यान्तेवासी, नागरवंशोद्भवः, सुकविर्ज्योतिश्शास्त्रज्ञाग्रगण्यानेकगुणगणमण्डितराजमान्यपण्डितश्रीदेवराजसूनुः, राजवैद्यः श्रीशार्ङ्गधरोऽपि गुर्जरभूभव एवासीत्। येन च निखिलज्वरकुलकण्डनाय तन्निदानशमनोपायपरः संस्कृतपद्यशत्रयात्मकस्त्रिशतीनामको ग्रन्थो ग्रथित इति तेनैव त्रिशतीलिखितादात्मवृत्तान्तादवगम्यते। यथा हि—

अद्वैतोदधिगाहनादविरतं विध्वस्ततापत्रयः
स्वान्ताविष्कृतनित्यनिर्मलचिदानन्दप्रबोधोदयः।
वैकुण्ठाश्रमसंज्ञया यतिपतिर्न स्यान्नमस्यास्पदं
कस्यायं निगमान्तशास्त्रविलसत्कान्तारकण्ठीरवः ॥४॥

Indira Gandhi National Centre for the Arts

सुधीरभूत्संसदि भूपतीनां
संमानभाङ् नागरवंशजन्मा ।
दोषज्ञमान्यः सुकविः कलावान्
दयानिधानं भुवि देवराजः ॥१२८॥
तस्यात्मजः शार्ङ्गधरस्त्रिलोकी-
पतिं त्रिनेत्रं त्रिपुरां च शश्वत् ।
ध्यायन्निमां वैद्यमुदे त्रिदोष-
ज्वरच्छिदे च त्रिशतीं चकार ॥१२९॥ इति

अतीव मनोहरं नानापद्यात्मकं वैद्यककाव्यमिदं विरच्य तथ्यमिदं यच्छार्ङ्गधरेण कविनानेन ऋणीकृताः खलु निखिलभारतीयायुर्वेदविद इति । क्लिष्टतरं ग्रन्थमेनं चावलोक्य श्रीवल्लभाख्येन भट्टेन तट्टीकां विधायातीव सरलीकृतः । सत्यपि ज्वरविषयकेऽस्मिन् ग्रन्थे ज्ञातारो ह्येतस्यायुर्वेदीयान्यान्यज्ञातव्यविषयाणामपि सुबोद्धारो भवन्ति ।

वैद्यवरः श्रीसोढलः ।

एवमेव वत्सगोत्रोद्भवरायकवालजातीयो, नन्दनवैद्यस्यात्मजः, सतां संघदयालूनां शिष्यः, सद्भक्तश्च भगवतः श्रीसहस्रांशोः, सद्वैद्यसोढलोऽप्यस्या एव विद्वद्रत्नगर्भागुर्जरवसुन्धाराया रत्नभूत आसीत्, येन चाकलितं शल्यशालाक्यकायचिकित्साद्यष्टाङ्गायुर्वेदविज्ञापयितारं गदनिग्रहाख्यं बृहद् ग्रन्थरत्नम् । नावशेपि च तेन स्वग्रन्थेऽस्मिन्नार्षसंहितोक्तं, किमपि क्वाथचूर्णगुटिकावलेहासवारिष्टतैलघृतादिकम् । सोढलविरचितो गुणसंग्रहापरपर्यायः सोढलनिघण्टुरपि सद्ग्रन्थोऽस्तीति तल्लिखितादन्तिमांशात्प्रतीयते । यथा हि—

वत्सगोत्रान्वयस्तत्र वैद्यनन्दननन्दनः ।
शिष्यः संघदयालोश्च रायकवालवंशजः ॥
सोढलाख्यो भिषक् भानुपादपङ्कजषट्पदः ।
चकारेमं चिकित्साया समग्रं गुणसंग्रहम् ॥ इति ।

सिद्धनागार्जुनः ।

किं बहुना वर्तमानसंवत्सरादस्मादष्टादशशतवर्षेभ्योऽपि प्राग्भवः, प्रतिष्ठानपुराधीशशककृच्छालिवाहनसखा, नागराजात्मजो, बौद्धो, रससिद्धः, सुश्रुतसंहितायाः प्रतिसंस्कर्ता, कर्ता चानेकेषां रसशास्त्रादीनां, सिद्धनागार्जुनोऽपि गुर्जरदेशाधिपस्य पालीतानाख्यभूभर्तुरात्मजाया भोपलाख्यायाः स्वजन्मना कुक्षिमलञ्चकार । यो हि प्रकाश्य मन्त्रतन्त्रमयीं स्वां रसविद्यां तत्समयजानखिलान् भारतीयान् स्वगुरूंश्चापि पादलिप्ताचार्यान् चकितान्विधत्ते स्मेति प्रतीयते, स्वर्गीयवैद्यश्रीत्र्यम्बकगुरुनाथकालेकृतभारतीयरसायनशास्त्रसन्दर्भात् । सिद्धेनानेन रचिताः सन्त्याश्चर्ययोगरत्नमाला, रतिशास्त्रम्, नागार्जुनकक्षपुटीयम्, नागार्जुनसंहिता, नागार्जुनकल्पः, रसरत्नाकरः, लौहशास्त्रम्, धातुरत्नमाला, योगसारः, आरोग्यमञ्जरी चेति ग्रन्थाः । मुद्रिताश्चाप्येतेषु केचिदिति श्रूयते ।

Indira Gandhi National
Centre for the Arts

रसप्रकाशसुधाकरकर्ता श्रीयशोधरः ।

खिस्तीयत्रयोदशशताब्दिसंभूतेन, गुर्जरराष्ट्रस्यैव सौराष्ट्रप्रदेशान्तर्गतजूनागढाख्यनगरस्थेन, श्रीगौडवंशोद्भवविष्णुभक्तश्रीपद्मनाभपुत्रेण, रसशास्त्रज्ञेन सद्वैद्येन, कविवरश्रीयशोधरेण गन्धादीनां चाष्टादशसंस्कारसंस्कृतस्यामृतमयपारदस्य संयोगात्सद्यःफलप्रदरसशतकस्वर्णरजतनिर्माणाद्यनेकविद्याप्रकाशको रसप्रकाशसुधाकरभिधो ग्रन्थो रचित इति ग्रन्थान्ते तल्लिखिताश्रिस्नाङ्कितात्मवृत्तान्तात्प्रतीयते । यथा—

श्रीनारायणभक्तिसक्तमनसो विद्याविनोदाम्बुधेः
श्रीगौडान्वयपद्मनाभसुधियस्तस्यात्मजेनाप्ययम् ।
सद्वैद्येन यशोधरेण कविना विद्वज्जनानन्दकृद्
ग्रन्थोऽयं प्रथितः करोतु सततं सौख्यं सतां चेतसि ॥१४॥
देशानां सुरराष्ट्रमुत्तमतमं तत्रापि जीर्णाभिधः
प्राकारोऽस्ति स वेदशास्त्रनिरतैर्विप्रैश्च संशोभितः ।
तस्मिन्विष्णुपदारविन्दरतिकृच्छ्रीपद्मनाभः स्वयं
तत्पुत्रेण यशोधरेण कविना ग्रन्थः स्वयं निर्मितः ॥ १५ ॥ इति-

तथ्यमेवैतद्यचकोरकाणां सुधाकर इवायमपि रसप्रकाशसुधाकरश्चन्दयति चेतांसि वैद्यविदुषामिति ।

रससारकर्ता गोविन्दाचार्यः ।

खिस्तीयत्रयोदशशताब्दयामेवान्तर्वेदीयसारस्वताभयपालात्मजधीरदेवशिष्यो गुर्जरभूनिर्जरमोढजातीयाचार्यसहदेवपौत्रः पुत्रश्च सुरादित्यस्य, मन्त्रसिद्धो, रसधातुवादावगमप्रदरससाराभिधग्रन्थस्य च कर्ता श्रीगोविन्दाचार्योऽप्यस्यामेव गुर्जरवसुन्धरायां प्रासूत इत्यवगम्यते रससारसमाप्तौ तेनैव लिखतादात्मवृत्तान्तात् । यथा—

मोढज्ञातिसमुत्पन्न आचार्यः सहदेवकः ॥ ३० ॥
सर्वशास्त्रप्रवीणोऽसौ मन्त्रसिद्धो द्विजोत्तमः ।
तदुत्पन्नस्तु यः सूनुः सुरादित्यः कृती भुवि ॥ ३१ ॥
तत्सम्भवः सुतः ख्यातो गोविन्दः शिववन्दकः ।
शिष्यः श्रीधीरदेवस्य रसकर्मसु कोविदः ॥ ३२ ॥
अनुभूयेदमखिलं शास्त्रं तेन विनिर्मितम् ।
कृपया धातुवादीनां दीनत्वस्य विनाशनम् ॥ ३३ ॥
अन्तर्वेदसमुत्पन्नो ज्ञात्वा सारस्वतो द्विजः ।
अभयपालपुत्रोऽसौ धीरदेवो हि वादिराट् ॥ ३४ ॥
निर्मथ्य सर्वशास्त्राणि अनुभूय पुनः पुनः ।
बौद्धं मतं तथा ज्ञात्वा रससारः कृतो मया ॥ ३५ ॥

Indira Gandhi National Centre for the Arts

एकधा दशधा चैव शतधा तु सहस्रधा ।
मत्प्रणीतेषु योगेषु सिद्धिर्ज्ञेया विचक्षणैः ॥ ३६ ॥
मदुक्तं सर्वशास्त्रेषु तदिहास्त्यखिलं स्फुटम् ।
यदिहास्ति तदन्यत्र नैवास्ति रसकर्मणि ॥ ३८ ॥ इति

सारस्वतो माधवाचार्यः ।

आयुर्वेदप्रकाशस्य "सौराष्ट्रदेशोद्भवसारस्वतमाधवविरचितायुर्वेदप्रकाशे"—इति प्रत्यध्याय-समाप्तिवाक्यादुन्नीयते यदैशवीयषोडशशताब्दिसंभूतो रसमाधवापरपर्यायायुर्वेदप्रकाशादिप्रणेता माधवाचार्यसारस्वतोऽप्यस्यैव गुर्जरराष्ट्रस्य सौराष्ट्रभूमिज आसीदिति ।

कृते सत्यान्वेषणेऽस्यामेव गुर्जरोर्व्यां स्यादुपलब्धिरन्येषामपि बहूनामायुर्वेदग्रन्थानां यतश्चाणहिल्लपुरस्तम्भनवटोदरश्रीनगरस्तम्भपुरादिनगरेषु सन्ति बहूनि प्राचां हस्तलिखितपुस्तकभाण्डागाराणीति श्रूयते ।

अहम्मदाबादीयाः श्रीलक्ष्मीरामभट्टादयः ।

नासीदस्ति चाहम्मदाबादनगरमपि निधानं किञ्चिदेवायुर्वेदविदाम् । अस्मादेव नगरान्निर्गत्य प्राप्य च जयपुरं भट्टमेवाड़जातीय आयुर्वेदस्य प्रकाण्डपण्डितः श्रीलक्ष्मीरामस्तत्रत्यान् सद्यःफलप्रदचिकित्साचमत्कारैश्चमत्कृत्य समवाप्य च संमानं श्रीमन्महाराजाधिराजश्रीप्रतापसिंहदेववर्मणस्तत्रैव स्थितः सुखेनेति तद्वंशजदिवंगतभट्टगङ्गाधरलिखितसिद्धभेषजमणिमालाभूमिकातोऽवगम्यते । यथा—

तत्र श्रीमन्महाराजाधिराजश्रीप्रतापसिंहदेवराज्यसमयेऽधीतायुर्वेदो गुर्जरभूनिर्जरान्तर्गतभट्टमेवाड़जातीयः स्वयशःप्रख्यापनकृतमतिर्लक्ष्मीरामनामा सुमतिरहम्मदाबादनामकप्रसिद्धपुटभेदनादाजगाम । एत्य च रोगिनैरोग्यसंपादितप्रसिद्धिं भूमिपतेरपि संमानमवापेत्यादि ।"

महाभागोऽयं म्लानीभूतं मरुभूमिजमायुर्वेदभूरुहं स्वीयायुर्वेदसरस्वतीवारिधारासीकरैरभिषिच्य पुनरपि तं पुष्पफलवन्तं विधातुं चायतिष्ट । श्रीलल्लुरामनामाप्यस्यात्मजो नितरां गुणगणाश्रयो धन्वन्तरिकल्पो नानाविद्यावतां वैद्यविदुषां चाग्रणीरासीदिति प्रतीयते सिद्धभेषजमणिमालावतरणिकावलोकनात् । यथा—

आयुर्वेदवचःप्रपञ्चचतुरो विद्यावतामग्रणीः
संख्यातीतगुणाश्रयो गदहृतौ साक्षाद्धि धन्वन्तरिः ।
विश्वस्मिन्नुपकारबुद्धिरधिकं कल्पद्रुवत्प्रेष्टदः
श्रीमद्भट्टवरेन्द्रगुर्जरकुले श्रीलल्लुरामोऽभवत् ॥

अस्य चानेकेषां वैद्यविदुषां विचारविनिमयादेव श्रीमन्महाराजाधिराजश्रीप्रतापसिंहवर्मणा राजस्थानभाषायामायुर्वेदस्य सारभूतोऽतीव प्रामाणिकः प्रतापसागरापरपर्यायोऽमृतसागराख्यो ग्रन्थोऽग्रन्थि । अत्युपयुक्तत्वादेवास्य ग्रन्थस्य भाषान्तरेष्वपि भवति यत्र तत्र प्रकाशनम् ।

एतस्यैव लल्लुरामस्यात्मजो हि खल्वायुर्वेदयूनानीचिकित्साशास्त्रज्ञो लब्धराजवैद्यानेकपदवीकः कुन्दनरामनामाभिधः समभूत् । येन च यूनानीचिकित्साप्रणालिपुरःसरो हिक-

Indira Gandhi National Centre for the Arts

मन्मन्दारबन्धो ग्रन्थो ग्रथितः, कृता च यस्य महतादरेण राजकीयसंस्कृतमहाविद्यालयस्यायुर्वेदविभागे राज्ञा नियुक्तिः। महोदयस्यास्यैव कुन्दनरामस्यात्मजाः सर्वतन्त्रस्वतन्त्रा नैककाव्यकर्तारो भट्टश्रीकृष्णरामपादाः समभूवन्। ये च नानासिद्धौषधिमणीनाहृत्य काव्यरसमयीं शब्दार्थालङ्कारान्वितां सिद्धभेषजमणिमालां गुम्फितवन्त इत्यपि ज्ञायते पूर्वोक्तसिद्धभेषजमणिमालावतरणिकयैव। यथा—

तस्मादिन्दुरिवाम्बुधेः समभवद्वेदार्थपारङ्गमः।
प्रौढः कर्मसु सर्वविद्वदगदङ्काराग्रणीः कुन्दनः।
यो रामक्षितिपेन पाठनिलये सत्कृत्य संस्थापितः
सर्वेषां गदगञ्जनाय हिकमन्मन्दारबन्धं व्यधात् ॥४॥
श्रीकृष्णस्तनयस्ततः समजनि श्रीपाठशालासन—
स्थायी नैकविचित्रकाव्यरचनाप्राप्तप्रतिष्ठाभरः।
सोऽहं संप्रति सिद्धभेषजमणीनाहृत्य मालामिमां
गुम्फामि स्फुरदच्छगुच्छरुचिरां विद्वद्भिषक्प्रीतये ॥५॥

नास्त्यत्र सन्देहलेशोऽपि यदिमे श्रीकृष्णरामभट्टपादाः श्रीमन्माधवसिंहभूपसमितेः रत्नभूताः, साहित्याचार्या महाकवयो धन्वन्तरिकल्पवैद्याश्चासन्। भारतवर्षीयानेकेषु भागेष्वधुनापि सन्ति तेषां शिष्याः प्रशिष्याश्च। यथोक्तं तच्छिष्यतज्ज्ञैः—

श्रीमन्माधवसिंहभूपसमितौ लब्धप्रतिष्ठास्पदः
साहित्याम्बुधिकुम्भसंभवमुनिर्धन्वन्तरिर्वैद्यके।
कीर्तिर्यस्य दिगन्तगा च कवने यः कालिदासोपमः
सोऽयं राजभिषग्वरो विजयते श्रीकृष्णशर्मा गुरुः ॥
न सा दिङ् न स देशोऽपि न च तन्नगरं क्वचित्।
यत्र श्रीकृष्णवैद्यानां शिष्यै र्नैव विजृम्भ्यते ॥

श्रद्धेयाः श्रीलक्ष्मीरामस्वामिनः।

सन्ति चैतेषामेव भट्टमहोदयानां पट्टशिष्या जयपुरस्था राजवैद्यायुर्वेदमार्तण्डाद्यनेकपदविभूषिताः पीयूषहस्ताः श्रीलक्ष्मीरामस्वामिमहाभागाः। गुर्वाज्ञाधारकैरेभिस्तद्यशःप्रख्यापनकृते चोपकृते खल्वायुर्वेदविदां सिद्धभेषजमणिमालायाः टिप्पणिका रचिता। यथोक्तं स्वामिमहाभागैरेव टिप्पणिका—समाप्तौ दोहाच्छन्दसि—

"वैद्यानामुपकारिणी, गुरुनियोगनिघ्नेन।
टिप्पणिका रचिता मया, पूर्णा चाविघ्नेन ॥"

द्विवङ्गवानां भट्टचरणानामेभिर्वैद्यायुर्वेदप्रधानाध्यापकपदमलंकृतम्। अध्याप्य चानेकान् पटून् बहूनायुर्वेदाचार्यादिपदवीकान् कृतवन्तः। प्रत्यक्षज्ञानाय च तेषां दीनार्तिनाशनातुरालयेन सहैव जयपुरे श्रीधन्वन्तर्यौषधालय-दादूमहाविद्यालयायुर्वेदविश्वस्तनिध्यादिसंस्थाश्चापि संस्थापिताः। अव्याहतरूपेण भवतु सञ्चालनमासामिति मनसि कृत्वोत्सर्गीकृतं स्वो-

पार्जितं मुद्रालक्षतोऽप्यधिकं धनम्। दृष्टेऽस्मिन्नौदार्ये सर्वसम्पत्समेधमानैरन्यैरप्यायुर्वेदबृंहणाय करणीयं किमपीति प्रार्थये।

किं बहुना, दृश्यन्ते च यानि यान्यौषधालयादीनि संप्रति जयपुर–बीकानेर–रामगढ़-भिवानी–लवपुर–खुरजाप्रभृतिषु पुरेषु तानि सर्वाण्यपि प्रायशः श्रीलक्ष्मीरामस्वामिसरस्वती-सिञ्चितायुर्वेदमहीरुहफलान्येव। अलमेतावतैव स्वामिमहोदयानां विषये यदहम्मदाबादपुटभेदना-चलात् प्रवाहिता श्रीलक्ष्मीरामसरस्वती राजस्थानललामभूतं विद्वद्रत्नाकरं जयपुरं प्राप्याद्यापि श्रीलक्ष्मीराम एव संराजते। वार्धक्याच्चाश्रमधर्मवशात्संप्रत्युक्तस्वामिमहोदया आयुर्वेदप्रधाना-ध्यापकपदाद्गृहीतावकाशा हरिस्मरण एव सन्तिष्ठन्तेऽहर्निशम्। इदानीं समलंकरोति च तत्प्र-धानाध्यापकपदं तेषामेव पट्टशिष्यः श्रीनन्दकिशोरशर्मायुर्वेदाचार्यः।

श्रद्धेयाः श्रीयादवाचार्याः।

नाद्यापि प्राचामिव विक्रमस्यास्यां वर्तमानविंशतिशताब्द्यामपि गुर्जरवसुन्धरायामा-युर्वेदसेवकानां न्यूनत्वम्। तत्कृतिभरैस्त्वद्यापि गुर्जरधरामुखमुज्ज्वलमेव। वहति च सा तेषामजस्रमभिमानम्। पोरबन्दरापरपर्यायसुदामापुरीभवानां संप्रति मोहमयीस्थानां, पुष्क-र्णाब्राह्मणवंशावतंसानां, त्रिविक्रमतनूजानामनेकगुणमण्डितपण्डितप्रवराणामायुर्वेदमार्तण्डा-द्यनेकविरुदावलीभाजां श्रीयादवाचार्याणां कच्छसौराष्ट्रगुर्जरधरास्वेषु प्रथमतो नामग्रहणे न कापि विप्रतिपत्तिरिति मन्ये। गुर्जरवसुन्धरैव न, किन्त्वखिलभारतभूमिरप्येतेषां वहत्यभिमा-नम्। यतश्चैषामायुर्वेदसेवा नितरां संमाननीयैव इति कथने न काप्यतिशयोक्तिः। महाभागैरेतैः संशोधिताश्चरकसुश्रुतादयो हि बहवो ग्रन्थाः सर्वत्रैव महतादरेण पाठ्यन्ते विद्वद्भिः। स्वेनैव द्रव्यव्ययेनायुर्वेदीयग्रन्थमालया रसहृदयतंत्रम्, रससारः, रसप्रकाशसुधाकरः, आयुर्वेदप्रकाशः, गदनिग्रहः, रसकामधेनुः, रसपद्धतिः, लौहसर्वस्वं चेत्यादीनामथ च मत्कृतेतरहिंदीभाषणोक्तानां बहूनां दुष्प्राप्यग्रंथानामप्येत एव सन्ति समुद्धारकाः। प्रार्थयेऽहं परमात्मानं यदेते महान्तो दीर्घायुर्लभन्तामिति।

राजवैद्यश्रीहरिप्रपन्नादयः।

मोहमयीस्था राजवैद्याः पण्डितहरिप्रपन्नशर्माणोऽपि सुतरां धन्यवादार्हा एव। यैश्च स्वद्रव्यव्ययेन शतादप्यधिकाद्रसग्रन्थान्नानारसानाहृत्य स्वकृतसरलार्थभाषाटीकया मौलिकसं-स्कृतटिप्पणैश्च सह सागर इव रसानां रसयोगसागराख्यो ग्रन्थः संकलितः प्रकाशितश्च। महा-भागैरेभिर्यादवाचार्यैश्च मिलित्वायुर्वेदोद्धारकृते पञ्चपञ्चसहस्त्रमितं प्रदत्तं रूप्यकधनं, येनाव्याहत-रूपेण प्रचलति विंशतिवर्षेभ्यो मोहमयीस्थायुर्वेदपाठशाला।

अहम्मदाबादगुजरातायुर्वेदीयौषधिनिर्माणशालाया वैद्यकल्पतरोश्च मासिकपत्रस्य संस्था-पका गृहवैद्याद्यनेकग्रन्थकाराः, स्वर्गीयश्रीजटाशङ्करत्रिवेदिनो वर्तमानाश्च रविशङ्कराख्यास्तदनु-यायिनस्तत्पुत्राः। ऊँझायुर्वेदीयौषधिशालायाः संचालकाः पत्रस्य चायुर्वेददर्पणमासिकस्य संकलनकर्तारः, प्रकाशकाश्च भारतभैषज्यरत्नाकरबृहद्ग्रन्थस्य श्रीनगीनदासश्रेष्ठिनस्तत्सहयोगि-विप्ररत्नश्रीगोपीनाथगुप्ताश्चाप्यनन्तधन्यवादार्हाः।

मोहमयीस्थझण्डुफार्मस्यपरपर्यायायुर्वेदीयौषधिनिर्माणशालायास्तथैवायुर्वेदविज्ञानाख्यमा-सिकपत्रस्य सञ्चालकाः, प्रकाशकाश्च गुर्जरभाषानुवादस्य महामहोपाध्यायकविराजश्रीगणनाथसेन-

National Centre for the Arts

कृतप्रत्यक्षशारीरग्रन्थस्य, जामनगरस्थप्रातःस्मरणीयस्वर्गीयश्रीझण्डुभट्टवंशावतंसा श्रीजुगतराम-महानुभावांश्चाप्यमलयायुर्वेदसेवया नितरां प्रशंसनीया एव ।

भावनगरवटोदरनरेशाः, एवमेवांग्लभाषायामायुर्वेदख्यातिकरग्रन्थलेखका रसशालाश्रय-दातारो गोण्डलाधिपतिभगवत्सिंहवर्माणस्तदाश्रिता नैकग्रन्थप्रकाशकाः, संपादकाश्चायुर्वेदरहस्या-ङ्कस्य श्रीजीवरामशास्त्रिणो राजवैद्यास्तथैवाणहिल्लपुरपट्टनाभिजनास्तत्रत्यायुर्वेदमहाविद्यालयसंस्था-पकाः स्वर्गीयो जमशीपीताम्बर श्रेष्ठिवर्याः मोहमयीस्थश्रीप्रभुरामायुर्वेदमहाविद्यालयसंचालकाः श्रीपोपटप्रभुराममहाशया दक्षतराः, सिन्धुफार्मेस्यध्यक्षा वैद्यश्रीगोपालजीठक्कुराः; ऊंवेफार्मेस्य-ध्यक्षाः श्रीजेठालालमहाशयाः सम्मेलनस्यास्यस्वागतसमितेरध्यक्षाः श्रीनारायणशङ्करप्राणाचार्याः स्वागतगतोपाध्यक्षाः संमाननीयाः परमोदारचेतसो राजवैद्याः श्रीसूर्यमल्लशर्माणः, श्रीउमियाशङ्कर-मोतीरामा रसवैद्याः, श्रीकच्छकाठियावाड़गुजरातप्रान्तीयवैद्यसम्मेलनाध्यक्षास्तत्स्वागताध्यक्षाश्चा-मृतवादिनोऽमृतलालाख्या, प्रधानमन्त्रिवैद्यवराजाम्बाशङ्करत्रिवेदिनो, हस्तलिखितप्राचीनायुर्वेदशा-स्त्रसंरक्षकाः स्वर्गीयश्रीरणछोड़लालाङ्गजा वैद्यश्रीनन्दलालबोधाख्याश्चेत्यादि मे स्मरणपथमागताऽ नागताश्च ये, ते सर्वेऽपि गुर्जरभूललामभूता महानुभावा धन्यवादार्हा एव, यैः खल्वायुर्वेदीयौष-धालयातुरालयविद्यालयग्रन्थप्रकाशनादिभिः संपादितायुर्वेदसेवा ।

शोकप्रकाशनम् ।

विषयारम्भात्प्रागेव दुःखान्निस्सरतीयं मे भारती, यदिन्द्रप्रस्थस्थैः कविराजनिवारणचन्द्र-भट्टाचार्यैः, कलिकातास्थकविराजश्यामादासवाचस्पतिभिर्वाराणसेयहिन्दुविश्वविद्यालयान्तर्गतायु-र्वेदमहाविद्यालयप्रधानाध्यापकैराचार्यैः कविराजधर्मदासाभिधैः, सुश्रुतार्थसन्दीपनभाष्यकारैः कवि-राजहाराणचन्द्रचक्रवर्तिभिः, खुर्जाभिजनैर्नारायणदत्तशर्मायुर्वेदाचार्यैः मोहमयीस्थराजवैद्यत्र्यम्बक-लालमुनिभिर्दुर्लभरयामध्रुवमहोदयाद्यैश्च ध्रुवमिदं, यदस्मिन्नसारे संसारे खलु साहचर्यसुखेन वञ्चिता वयमिदमतीव दुःखास्पदम् । वैद्यकसमुद्धारव्रतव्रतानां दिवङ्गतानामेषामभावान्महतीव क्षतिर्जातायुर्वेदस्येति स्फुटमेव । एतत्क्षतिपूर्त्यै ददात्वसम्यं तादग्बलं शर्म च तदात्मभ्य इत्यभ्यर्थयेऽहं परमात्मानम् ।

विषयारम्भः ।

नाविदितमेतद्धि भवतां यदायुर्वेदस्य शल्य-शालाक्य-कायचिकित्सा-भूतविद्याकौमार-भृत्यागदतन्त्र-रसायन-वाजीकरणाख्येष्वष्टाङ्गेष्वेव विभाजितश्चिकित्साक्रमः । भगवता धन्व-न्तरिणा प्राधान्येनात्रोपदिष्टं प्रथमं शल्यांगं तु बौद्धसाम्राज्यकालादेव भारतेऽस्मिन् ह्रासमानं नष्टप्रायमिव भासते । भाति तथैवावशिष्टानामनामप्यङ्गानामवस्था, शोककर्शितैव । वहन्ति भारतीयभिषजः कायचिकित्सोपर्यवाशिष्टं स्वीयमभिमानम् । ऋषिमुनिदर्शितमार्गेण साङ्गोपाङ्गत-यायुर्वेदीय चिकित्साकर्त्तारः सन्ति केचिदेवापवादरूपाः प्राणाचार्याः, किन्तु बहुभिरस्माभिस्स्वन-ध्ययनादपूर्णज्ञानाच्च सा चिकित्सापि धरातलीव कृतेत्यपि सुविदितमेव सर्वेषाम् । भान्ति केचिद्वैद्यम्मन्यास्त्वायुर्वेदस्याभिनयमेव रचयितारः । भवति सर्वमपि कार्यजातं तेषामैलोपैथीं हाम्योपैथीं क्रोम्योपैथीं वा बायौकैमिकीमनुसृत्यैव । किन्त्वाश्चर्यमिदं यद्वदन्त्यायुर्वेदाभिमा-निनो वैद्या वयमिति । हन्त चेखिद्यते मे चेतो यदेतेषामेवाभिनयकराणामनुकम्पया संप्राप्तावसरा निन्दन्त्यनिंद्यमप्यायुर्वेदं निन्दकाः । प्रतिपादयन्त्यस्माकमेवार्यवंशजा "यदायुर्वेदस्य शास्त्रत्वं,

Indira Gandhi National Centre for the Arts

तल्लिखितान्यात्मनः सकाशादाकाशादिपञ्चभूतानि, तेभ्य एवोत्पत्तिर्जगतां वैशिष्ट्यं च सोमसूर्यानिलानामिव कफपित्तानिलानामपीत्यादि कथनं महर्षीणां कपोलकल्पनमेवेति ।" नास्त्यत्र किमप्याश्चर्यम् । प्रभावोऽयमनार्यैर्लिखितानां नव्यविज्ञानमेवाधिकृत्य ग्रन्थानां निरन्तराध्ययनस्य, अनध्यायस्य चाप्तोपदिष्टानाममरभारतीमयानामायुर्वेदतन्त्राणाम् । परमात्मानं प्रार्थयेऽहं यदेतेषां नव्यविज्ञानविमोहितानां भवत्वायुर्वेदपठनपाठनेऽपि निरन्तरा प्रवृत्तिरिति । अथातो नव्यानामेव तोषाय नव्यमेवाधिकृत्य किञ्चिन्निवेद्यते—

"चतुर्णां भिषगादीनां शस्तानां धातुवैकृते ।
प्रवृत्तिर्धातुसाम्यार्था चिकित्सेत्यभिधीयते ॥"
"याभिः क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातवः समाः ।
सा चिकित्सा विकाराणां कर्म तद्भिषजां स्मृतम् ॥"

सामान्येन चिकित्सासाफल्यसूचकं महर्षिपुनर्वसूक्तं पद्यद्वयमिदम् । विविधावस्थानादिषु समुत्पन्नानां विविधानां विकाराणामुपशमार्थं के के वा विशेषेणादरणीयाश्चिकित्साविशेषाः, को वा स्वीकरणीयश्चिकित्साक्रम इत्येवं निर्णयः स्याच्चिकित्सकानाम् । नवनवबुद्धिमतां मते तु ज्वरगुल्मातीसारादिसर्वेष्वपि विकाराणां तत्त्वतो द्विप्रकारकमेव भवितुमर्हति स्वरूपम् तत्तु दोषाणां वातादीनां, धातूनां रसरक्तादीनां मलानां च शकृदादीनां [क्षयाद् वृद्धितश्चेति । ततोऽपि—

"सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः ।"

इत्यादिना दोषाणां वृद्धिरेव विशेषेण भवति कारणं रोगाणामिति स्फुटीभवति । यदुक्तं "कोपाद्व्याधिसंभवः" इति, किन्तु कोपः संभवति दोषाणां वृद्धेरनन्तरमेव । इति सर्वेषामपि विकाराणां प्रकुपिता वातादयस्त्रयो दोषा एव कारणं, प्रधानतमं निदानं वेत्युपवर्णितमायुर्वेदे । कथमेते वातादयस्त्रय एव दोषा भवितुमर्हन्ति विविधावस्थानस्थानोपद्रवप्रकाराणां विकाराणामुत्पत्तिकारणमित्याशंक्यते कैश्चिदायुर्वेदतत्त्वानभिज्ञैरतो निवेद्यते किञ्चित् । सुविदितमेवास्त्यायुर्वेदविदां यदपरिसंख्येयानामातङ्कानां सामान्येन भवति शोथदाहशूलात्मकं त्रिविधमेव स्वरूपम् । सत्यपि स्थानावस्थानभेदे शूलदाहशोथैरित्येतेषामन्यतमेन वानुविद्धं भवति व्याधिस्वरूपम् । इति सर्वेषामपि रोगाणां शूलसंभवाः शूलात्मानो वा, दाहसंभवा दाहात्मानो वा, शोथसंभवाः शोथात्मानो वेत्येवं त्रिधैव भवति सुगमं संख्यानम् । शूलदाहशोथाश्चैते वातपित्तकफोद्भवा एवेत्युक्तमायुषो वेदे । यथा—

"शूलं नर्तेऽनिलाद्दाहः पित्ताच्छोफः कफोदयात् ।" इति

सर्वेष्वप्येतेषु शोथ एव प्रधानतमः । विकृतानां शारीराणामशारीराणां वा शरीरोपघातकराणां द्रव्याणामङ्गे प्रदिष्टे सति स्ववैगुण्याद्यत्र कुत्रापि संजायते सङ्गस्तत्रैव तदा विकारोत्पत्तिर्जायत इत्यायुर्वेदसिद्धान्तः सुप्रसिद्ध एव । यथाह भगवान् धन्वन्तरिः—

"कुपितानां हि दोषाणां शरीरे परिधावताम् ।
यत्र सङ्गः स्ववैगुण्याद्व्याधिस्तत्रोपजायते ॥"

इत्यनेन सङ्गादेव संभवो व्याधीनामिति प्रतिपादितम् । फलितार्थस्त्वस्य सङ्गादभिवहनाभावाद्वा धातूनां यत्र सञ्जायते सञ्चयो दोषाणां तत्रैव समुत्पद्यते शोथः । सङ्गस्यैवापरं नाम शोथ इति । प्रकारेणानेन सञ्चितस्य रोगोत्पत्तिकारणद्रव्यस्यैव दरीदृश्यते रोगविज्ञाने

Indira Gandhi National Centre for the Arts

"आमः"—इति नाम्नापि व्यवहारः। व्याधिविज्ञानोपवर्णितमिदमामाख्यं, दोषाख्यं, मलाख्यं वा द्रव्यमेवाहारोपयुक्तैर्द्रव्यान्तरैस्तद्गुणानुरोधेन शूलदाहशोथानामेतेषामन्यतमस्य वा भवत्युत्पादकम्। आख्यायते च शूलादिकारणानां वातादीनां प्रकोपणमिति। दुष्टा वातादयो दोषाः, इति व्यपदेशोऽपि शूलशोथादिकराणामेव द्रव्याणाम्। तत एव च प्रचलिता सञ्चयप्रकोपप्रसरस्थानसंश्रयव्यक्तिभेदानां सुश्रुतोक्ता विकाराणां परंपरा। सिद्धत्येवं शूलदाहशोथात्मकस्य त्रिविधस्य विकारनिकरस्य कर्तारो वातादयस्त्रयो दोषा एव।

अथ रोगाणां चिकित्सा।

वातादिदोषाणां प्राधान्यं मूलत्वं च रोगाणां कथनानन्तरमधुनातङ्कशमोपायविषये निवेद्यते। संप्रवृद्धानां प्रकुपितानां च दोषाणां परिहार एव प्राधान्येन चिकित्सोद्देशकः। चिकित्सा सामान्येन द्विधा, बृंहणाख्या कर्षणाख्या च। सन्तर्पणापतर्पणाख्या वा। सन्तर्पणं चापतर्पणम्, बृंहणं लङ्घनं चेति द्विविधव्याधिचिकित्सायामपतर्पणापरपर्यायं लंघनमेव विशेषेणाद्रियन्ते भिषजः। सन्तर्पणन्तु क्षीणानां रसरक्तादीनां बृंहणायेति न प्राधान्येन व्याधीनां प्रतीकारकारणमिति स्फुटमेव।

"बृंहयेद्व्याधिभैषज्यमद्यस्त्रीशोककर्शितान्।"

इत्यादिवचनैरायुर्वेदतन्त्रेषु वर्णितं सन्तर्पणापरपर्यायं बृंहणं, धातुवृद्धिकारणमपि नालं व्याधिप्रत्यूहव्यपोहाय। फलतो दरीदृश्यते लङ्घनापरपर्यायस्यापतर्पणस्यैव प्राधान्यम्। अपतर्पणचिकित्साप्रकारस्यास्य च प्रामुख्येन शोधनं शमनं चेति द्वौ भेदावुपवर्णितौ तयोश्चापि शोधनमेव विशेषेण श्रेष्ठमित्यायुर्वेदाभिमतं, यतो रोगोत्पत्तिकराणां प्रकुपितवातादिदोषाणां समूलोच्छेदनं यथा भवत्यनेन न तथा शमनेन। यथा हि—

दोषाः कदाचित्कुप्यन्ति जिता लंघनपाचनैः।
ये तु संशोधनैः शुद्धा न तेषां पुनरुद्भवः॥

शोधनं नाम प्रकुपितानामनिलादिवृद्धदोषाणां बहिरुत्सारणं शरीरात्। बहिरुत्सरणाद्विनाशाद्वा व्याधिकारणाकुपितदोषस्य तत्सम्भवव्याधेर्विनाशेन सहैव साकल्येन रोगसंभवस्यापि विनाश इति सुगमावबोधं सुधियाम्। अनेनैवाभिप्रायेणायुर्वेदतन्त्रेषूपवर्णितमस्ति शोधनचिकित्साविधानस्य प्राधान्यम्। सर्वेषामप्युपक्रमाणां श्रेष्ठतमं शोधनमिदं पञ्चविधम्। यथा—

यदीरयेद्बहिर्दोषान् पञ्चधा शोधनं च तत्।
निरूहो वमनं कायशिरोरेकोऽस्रविस्रुतिः॥

शरीराद्बहिर्मलोत्सरणसामान्यात्सर्वमप्येतद्वमनादिकं शोधनं विरेचननाम्नैवोपदिश्यते, स्थाप्यते चास्य सर्वोपक्रमेभ्यः श्रेष्ठत्वम्। यथाहि भगवानात्रेयः—

"दोषहरणमूर्ध्वभागं वमनसंज्ञकमधोभागं विरेचनसंज्ञकमुभयं वा शरीरमलविरेचनाद्विरेचनशब्दं लभते।"

"आस्थापनानुवासनं तु खलु सर्वथोपक्रमेभ्यो वाते प्रधानतमं मन्यन्ते भिषजः। तदादित एव पक्वाशयमनुप्रविश्य केवलं वैकारिकं वातमूलं छिनत्ति। तत्रावजिते वातेऽपि शरीरान्तर्गता वातविकाराः प्रशान्तिमापद्यन्ते यथा वनस्पतेर्मूले छिन्ने स्कन्धशाखावरोहकुसुमफलपलाशादीनां नियतो विनाशस्तद्वत्।"

Indira Gandhi National Centre for the Arts

"विरेचनन्तु सर्वोपक्रमेभ्यः पित्ते प्रधानतमं मन्यन्ते भिषजः। तद्धि आदित एवामाशयमनुप्रविश्य केवलं वैकारिकं पित्तमूलं चापकर्षति। तत्रावजिते पित्तेऽपि शरीरान्तर्गताः पित्तविकाराः प्रशान्तिमापद्यन्ते, यथाग्नौ व्यपोहे केवलमग्निगृहं च शीतीभवति तद्वत्।"

"वमनं तु सर्वोपक्रमेभ्यः श्लेष्मणि प्रधानतमं मन्यन्ते भिषजः। तद्धि आदित एवामाशयमनुप्रविश्य केवलं वैकारिकं श्लेष्ममूलमपकर्षति। तत्रावजिते श्लेष्मण्यपि शरीरान्तर्गताः श्लेष्मविकाराः प्रशान्तिमापद्यन्ते, यथा भिन्ने केदारसेतौ शालियवषष्टिकादीन्यभिष्यन्दमानान्यम्भसा प्रशोषमापद्यन्ते तद्वदिति।"

एवं प्राधान्येऽपि रोगनिर्मूलकराणां वमनविरेचनादिशोधनोपायानामधुना चिकित्सायां दृश्यते सर्वथा विरलप्रायो व्यवहारः। चिन्तनीयमेवैतच्चिकित्साचणानां भारतीयानाम्। विद्यन्ते रसरसायनादीनि चूर्णकाथासवारिष्टघृततैलावलेहादिस्वरूपाणि पीयूषकल्पानि भैषज्यानि। उपयुक्तानि च तानि सर्वत्र सुयशस्कराण्यपि भवन्तीत्यनुभूयते किन्तु चिकित्साप्रकारेषु मूर्धन्यत्वेनोपवर्णितानां शोधनानामुपयोगस्तु केवलं ग्रन्थान्तरेष्वेवान्तर्हितः संदृश्यते। कदाचिदुपयुज्यन्ते विरेचनार्थं रेचनान्यौषधानि परन्तु विरेचनविध्युक्तानां स्नेहनादीनामादावन्ते चरणीयानां कर्मणां व्यवहारः कदापि नाद्रियत इति दृक्प्रत्ययः। न च शास्त्रानुमोदितवमनविरेचनविधिरपि विधीयते। एवमेव बस्तिविषयेऽप्यनास्था वर्त्तते। कदाचिन्मलशोधनार्थं "एनिमा" इत्याधुनिकापरपर्यायस्य बस्तिप्रतिनिधिभूतस्योपयोगो विधीयते, सोऽप्यांग्लपद्धत्यैव न चास्मदायुर्वेदप्रतिपादितपद्धतेरनुरोधात्। सर्वेषामपि वातविकाराणामुपशमार्थं प्राशस्त्येनोपवर्णितकालबस्तियोगबस्तिमात्राबस्तिविध्युपयोगस्य तु नितान्ताभावोपलब्धिरेव। प्रयोगाभावादेवं विस्मृता एव सर्वथा शोधनोपायाश्चैते। अनेनैव हेतुना यत्र कुत्रापि भिषगादेशादांग्लैनिमाबस्तिप्रयोगं वीक्ष्याधुनिका भाषन्तो दृश्यन्ते यद्भिषग्भिरपि विधीयतेऽधुनांग्लचिकित्सानुकरणमिति।

"तस्माच्चिकित्सार्धमिति ब्रुवन्ति सर्वां चिकित्सामपि बस्तिमेकम्।"

आयुर्वेदोक्तमेतदभिस्मरतामायुर्वेदाभिमानिनां विपर्यासोऽयमस्मिन्विषये न विचारणीयः किम्? विषयेऽस्मिन् दत्तावधाना भवेयुर्भारतीयाः भिषजः, शोधनोपयोजनेनायुर्वेदीयचिकित्साविशेषस्यास्योद्धरणमुपबृंहणं च भारतीयारोग्यस्य कुर्युरिति बलवदाशास्यते।

शमनसंज्ञयाख्यातोऽपरश्चिकित्साविषयः "दीपनं पाचनं क्षुत्तृड्व्यायामातपमारुताः" इति सप्तधा विभक्तोऽयं चिकित्साप्रकारोऽपि व्याध्यवस्थाविभागानुसारेणैवोपयोजनीयः। "तत्राल्पे लंघनं पथ्यं मध्ये लंघनपाचनम्" इत्यादिना चिकित्साप्रकाराणां व्यवस्थापि विस्तरेणोदाहृता। विजानन्त्येव व्याधिचिकित्साविचक्षणा व्याध्युत्पादकदोषदुष्ट्यनुरोधाल्लंघनदीपनपाचनादीनां समुचितत्वम्। ततश्चास्य विस्तरं विहाय चिकित्साधनानां भैषज्यद्रव्याणां सिद्धौषधीनां चैव विषये किञ्चिद्विचार्यते।

संप्रत्यायुर्वेदीयचिकित्सायां रसरसायनभस्मचूर्णासवारिष्टघृततैलावलेहगुटिकादयः कल्पाश्चानेकविधाः प्रयुज्यन्ते। तत्रापि रसरसायनभस्मनामेव प्रयोगाः प्राचुर्येणोररीकृता भान्ति। कषायकल्पानामुपयोगस्तु विरलप्रायः व्याधीनामवस्थास्थानविशेषानुसारेण प्रयुक्तानि भैषज्यकल्पान्तराण्येव द्रागेव रोगघ्नानि भवन्तीति दृक्प्रत्ययः। अयमेवास्ति भैषज्यकल्पानां हेतुः। यस्मिन् कस्मिन् व्याधिविशेषे यस्यां कस्यामप्यवस्थायां यस्य कस्यापि भेषजकल्पस्य प्रयोगकरणं न कदापि समीचीनं, न च वा विविधौषधिकल्पानां मुख्यहेतुरप्यनेन साध्यते।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

सर्वाण्यौषधानि समानयैव कल्पनया कल्पनीयानीति केषांचिदस्ति सुधारणावादिनामभिप्रायः। कल्पनेयं सुष्टुतरेव भाति, किन्तु विचार्यते चेद्विविधानां विकाराणां स्थानान्तरजंन्यत्वं वैविध्यं च व्याध्यवस्थानां तदा बहुकल्पान्येवौषधीनि विविधव्याध्यवस्थान्तरेपूपयुक्तानि गुणप्रदानि भवन्तीति जानन्त्येव व्याधिविज्ञानविदः। यथा—कोष्ठान्तर्गतेषु विकारेषु प्रायशश्चूर्णकाथादीनामेवोपयोगः प्रशस्यते। यतो मुहूर्तादधिकसमपर्यन्तमवस्थितान्योषधीनि चूर्णकाथादीनि पक्वामाशयादिषु सहवासादेव स्निग्धरूक्षादिगुणान्तरोत्पादने भवन्ति समर्थानि न तथा सत्वमात्रयोपयुक्तानि रसायनानि। रसरक्तादिधातुगतज्वरादिविकारेषु सत्वमात्रया प्रयुक्तानि व्यवायिविकासिगुणसंपन्नानि भेषजानि द्रुतगतित्वाद्यथा भवन्ति प्रशस्तगुणकराणि न तथा कषायचूर्णादिकल्पान्तराणि। कषायचूर्णादिकल्पनाकल्पितानि भेषजानि कोष्ठाग्निना विपक्कान्येव स्वकर्मसाधनसमर्थानि भवन्ति। कोष्ठाग्नेर्मन्दत्वे सति भेषजद्रव्याणामप्यपचनसंभवः स्यात्। अपाचितानि पुनरौषधानि रोगोत्पादकस्यामद्रव्यस्यैवोत्पादकानि वृद्धिकराणि च भवन्ति न तु रोगाणां शमनानि। अयमेव भेषजनिषेधहेतुरामज्वरावस्थायाम्। यथा—

अपच्यमानं भैषज्यं भूयो ज्वलयति ज्वरम्।
आमसन्नोऽनलो नालं पक्तुं दोषौषधाशनम्॥
निहन्यादपि चैतेषां विभ्रमः सहसातुरम्।

इत्यादिवचनैर्मन्देऽग्नौ सामविकारेषु मन्दतां याते रसाभिसरणे स्वल्पतरप्रमाणानि शरीरस्य सूक्ष्मातिसूक्ष्मेष्वप्यवयवेषु प्रवेशक्षमाणि तीक्ष्णोष्णव्यवायिविकासिगुणयुक्तानि भैषज्यान्येवातुरहितसाधनसमर्थानि भवन्ति न तथेतराणि क्षोदकषायादीनि। एवमेव कोष्ठगतिविकारेषु नातिमन्देऽग्नौ प्रयुज्यमानानि काथचूर्णाद्यौषधानि पक्वामाशयगतस्निग्धरूक्षादिगुणोत्पादनेन तद्गतविकारोपशमकराणि भवन्ति न तथेतराणि स्वल्पतरमात्रयोपयोज्यानि रसभस्मादीनि। त्वग्गतशोथपिडिकादिविकारेषु मूलक्षीरादिप्रलेपनस्य सिद्धानां च घृततैलादीनां भवति साक्षादुपयोगस्तथैव तत्तत्स्थानेषु रोगाणां तत्तदौषधिकल्पानाम्। अनेनैवाभिप्रायेणायुर्वेदे रोग्यारोग्यसंपादनायानेकेषां स्वरसफाण्टचूर्णकषायादिकल्पानामस्ति वर्णनम्। प्रमाणमत्र चिकित्सातत्वज्ञा एव।

अपरश्चास्मिन् भैषज्यकल्पान्तरविधाने हेतुः—विविधेषु भेषजद्रव्येषु वर्तमानाश्चानेके गुणास्तेषामवयवान्तरेषु वर्तन्ते। भवन्ति कानिचिद् द्रव्याणि सर्वावयवशः समानगुणानि। रास्नापुनर्नवादीनां गुणाः सर्वावयवगता न तथा गुडूचीशतपुष्पाजमोदादीनाम्। गुडूच्यां ज्वरनाशकत्वं बृंहणत्वञ्चेति प्रधानं गुणद्वयं किन्तु नैतत्तत्सर्वाङ्गगतम्। तिक्तत्वादनुमीयते यज्ज्वरनाशकत्वं बाह्यत्वगन्तर्भागावस्थितहरितवर्णस्य घनरसस्य गुणो गुडूच्या इति। सत्वं तु बृंहणमिति प्रसिद्धमेव। ततो ज्वरनाशनार्थमुपयोगे विधीयमाने हिमकल्प एव प्रयोजनीयो गुडूच्याः, बृंहणार्थं च सत्वमित्युपपद्यते। नैवंविधश्चोपलभ्यते विशेषो हिमफाण्टकाथसत्वरूपेणान्येन येन केनाप्युपकल्पेन। यानि सन्त्यजमोदाशतपुष्पादीनि तैलप्रधानानि भेषजानि तानि चूर्णरूपाण्येव भवन्ति गुणकराणि न तथा काथादिरूपान्तराणि। क्वथनाद्बाष्पयोगेन बहिर्गततैलानि कषायरूपाणीमानि वातानुलोमनादिकार्यकराणि न भवन्ति वातानुलोमनत्वाच्चैतस्येति स्फुटमेव। अनेनैवाभिप्रायेण फाण्टकल्पो विहितः शठीशुण्ठ्यादीनां पिष्टविशिष्टानां, कषायश्च रास्नादीनां कठिनस्वरूपाणाम्। सिद्धान्त्येवमासैर्व्याध्यवस्थाविशेषानुरोधात्कल्पिता एव भेषज-

Indira Gandhi National Centre for the Arts

कल्पा विशेषतः श्रेयस्करा इति । व्यवहारसौकर्यार्थं सर्वाण्यप्यौषधिद्रव्याणि भेषजानि वा प्रयोज्यान्यासवारिष्टकल्पनयार्ककल्पनया वेति प्रतिपाद्यते कैश्चित् । सुविधेयत्वमिदमवश्यं विचारणीयं किन्तु विचारेऽस्मिन् गुणहानिर्न भवेदेवमपि यतनीयमावश्यकमेव । तुलसीस्वरसस्थाने तदासवकल्पप्रयोगात्सुगन्धाभावे हृदयोत्तेजनादीनां सुगन्धसम्भवानां गुणानामुपलब्धिर्न स्यादिति सत्यम् । एवमेव विज्ञेयं विज्ञैः सुगन्धसम्पन्नानां बिल्वादिभेषजद्रव्याणां विषयेऽपि । फलतः स्वरसफाण्टहिमचूर्णक्वाथगुटीघृततैलासवारिष्टादयः कल्पा आर्षमुनिभिरुपदिष्टा एव कल्पनीयाः । एवं कृत एव सार्थकं भवेन्मुनीनां कथनमिदम् । यदुक्तम्—

"बहुकल्पं बहुगुणं सम्पन्नं योग्यमौषधम् ।" इति

दिव्यौषधीनां प्रभावविषये, हेतुव्याधिप्रत्यनीकचिकित्सामधिकृत्य निदानपरिवर्जनादिविषये चापि वक्तुं शक्यते, किन्तु विजानन्त्येवैतत्सर्वमपि भवन्तः श्रीमन्तोऽतः प्राणिजोद्भिजखनिजद्रव्यादिविषय एव विनिवेद्य किञ्चिद्विरामः ।

आयुर्वेदीयचिकित्सायामस्ति प्राणिजोद्भिजखनिजाख्यानामेव द्रव्याणां व्यवहारः । प्राणिजौषधानां सामान्यं तु सहजानुमेयम् । वनस्पत्यादीनामुद्भिजानां विविधव्याधिविनाशकाः प्रभावाख्या गुणाश्चापि प्रदृश्यादेवानुमेया भवन्ति । अग्रयसंग्रहोक्तानामौषधीनां व्याधिविनाशकत्वं, साधर्म्यसम्भवमित्यपि जानन्त्येव सूक्ष्मधियः । केश्यत्वं नारिकेलफलस्य, मुस्तापर्पटयोर्ज्वरनाशकत्वं, शृङ्गाटकस्य मूत्रग्रन्थिनिवारकत्वं, श्लेष्महरत्वं कुमारीरसस्य, गुग्गुलोश्च मांसमेदोविकारनाशकत्वमित्यादीन्युदाहरणान्येव दिग्दर्शनपर्याप्तानि विषयेऽस्मिन् ।

व्याधिविपरीतोपक्रमे व्याधिप्रतीकारकराः प्रभावाश्चैते विशेषेण निवसन्ति वनस्पत्यादिषु न तथा खनिजेषु । द्रव्यसामान्यत्वेऽपि खनिजेषु जीवनस्य विशिष्टस्य च सेन्द्रियत्वस्याभावाज्जीवनकर्मविशेषसम्पन्नानां शारीरावयवानामिन्द्रियाधिष्ठानानामपि सेन्द्रियत्वसाधार्म्यस्याभाव एव । अनेनैव हेतुना खनिजान्यौषधानि वनस्पत्यादिवन्न धातुवृद्धिकराणि भवन्ति न च विविधव्याधिहराण्यपि । तथापि दृश्यतेऽधुनायुर्वेदीयचिकित्सायामभ्रलौहार्कपारद गन्धवङ्गादीनां खनिजानामेवादरेण प्राचुर्येण च व्यवहारः । स तु स्वल्पातिस्वल्पमात्रयोपयोगेऽपि तेषां सद्यःफलप्रदत्वात्सर्वदा सर्वत्र सुलभतया समुपलब्धत्वाच्च । अत्राशंक्यते कैश्चित् । समुद्भवन्ति प्रश्नाश्चेमे—"ननु विशिष्टसेन्द्रियत्वाभावात्प्रभावहीनानां कथं पुनरेतेषां खनिजानामेवादरेण प्राचुर्येण च दृश्यते चिकित्सायां व्यवहारः ? कथं पुनरिमान्येवाल्पतरमात्रयोपयुक्तानि भवन्ति सद्यःफलप्रदानि ? 'रसायनं हि तत्प्रोक्तं यज्जराव्याधिनाशनम्" इति सिद्धोक्त्या कथं पुनरनुपयुक्तान्यपि खनिजानि पारदाभ्रलौहादीनि रसरसायनानि भवन्ति जराव्याधिहराणि ?" कथ्यते—

"लाभोपायो हि शस्तानां रसादीनां रसायनम् ।"

कथनमिदं सत्यम् तथैव विशिष्टसेन्द्रियत्वाभावात्पारदादीनामप्रभावत्वमपि रसायनं नाम शरीरस्थानां रसरक्तादिधातूनामुपबृंहणम् । विदितमेव सर्वेषां यत्पारदादीनां खनिजौषधानां कल्पा रसायनपर्याया विविधवनस्पतिसहायादेव प्रकल्प्यन्त इति । विविधानां दिव्यवनस्पतीनां स्वरसपुटसहस्रैरेवैतेषु खनिजेषु स्थिरीक्रियते गुणाधानम् । विविधवनस्पत्यनुपानेन चैवोपयुज्यन्ते । विशिष्टसेन्द्रियत्वसिद्धवनस्पतिसङ्गादेव प्रस्फुरति प्रभावोऽयं पारदाभ्रलौहादिखनिजेषु । यथा जम्ब्वद्रावसिद्धं लौहं भवति मूत्रविकारशमनं तदेव पुनर्नवासिद्धं शोथदिदमनम् ।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

श्रीमान् सेठ रामनिवास जी गोयनका

मालिक फर्म—श्रीमान् वंशीधर जी रामनिवास, नागपुर

आप आयुर्वेद के अनन्य भक्त हैं और श्रीमान् विद्यावाचस्पति, पण्डित गोवर्धनजी शर्म्मा छांगाणी, भिषक्केसरी की प्रधानाध्यापकता में संचालित श्रीधन्वन्तरि आयुर्वेदमहाविद्यालय एवं तदन्तर्गत धर्मार्थ औषधालय के आप उदारचेता संरक्षक हैं।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

वासास्वरससिद्धमभ्रं भवति रक्तपित्तादिहरं तदेवार्कदुग्धसिद्धं श्वासकासादिहृत्य रोग्यारोग्यकरम्। प्रमाणैरेभिः खनिजानां रसरक्तादिधातुवृद्धिकरत्वं हरत्वं च विविधव्याधीनां वनस्पतिसहायनिमित्तमेव सुगमानुमेयं सुधियाम्।

"दूष्यं देशं बलं कालमनलं प्रकृतिं वयः।
सत्वं सात्म्यं तथाहारमवस्थाश्च पृथग्विधाः॥
सूक्ष्मसूक्ष्माः समीक्ष्यैषां दोषौषधनिरूपणे।
यो वर्तते चिकित्सायां न स स्खलति जातुचित्॥"

इत्यादि विविधव्याधीनां निमित्तावस्थावस्थानं, प्राधान्यमप्राधान्यमनुबन्ध्यानुबन्धत्वं, विशिष्टस्थानाश्रयदूष्याश्रयत्वमथ च विकारादिकारणभूतानामनिलादिदोषाणामाधिक्यमल्पत्वं सम्यगवलोक्यालोच्य च हेतुविपरीतान् व्याधिविपरीतान् हेतुव्याधिविपरीतांश्चावश्यं चिकित्साप्रकारान् स्थानावस्थादिविशेषानुसारमेवोपयोजनीयाश्चिकित्साविशेषाः। एवमायुर्वेदप्रतिपादिता रोगावस्थादिविभागाननुसृत्योपक्रमप्रकारा भेषजकल्पाश्च व्याधिव्यूहप्रत्यूहव्यपोहपूर्वमारोग्यकरा भवन्तीत्यवगम्यते।

उपसंहारः।

अथ तानेव विषयानधिकृत्य संक्षेपतो निवेद्यते येषामस्त्यायुर्वेदोद्धरणार्थं नितान्तमेवावश्यकता। सन्ति भारतेऽस्मिन्नायुर्वेदाध्यापनशीला बहवो विद्यालया महाविद्यालयाश्च। किन्तु तेषु प्रायशो वर्तमानसमयापेक्षितायुर्वेदशिक्षणदानेऽसमर्था एव। निखिलभारतायुर्वेदविद्यापीठतः प्रत्यब्दं समुत्तीर्णाश्चापि शतशो विद्यार्थिनः प्राचामेकामपूर्णां पूर्णां वा कायचिकित्सां विहाय शल्यशालाक्यादिशेषेष्वङ्गेष्वनुत्तीर्णा इवैव प्रतिभान्ति। अपूर्णशिक्षाया एवोदाहरणस्वरूपो "विषवेगान्मदमूर्च्छाविषादहृदयद्रवाः प्रवर्तन्ते" इत्यादि—पद्यपरकः प्रचण्डो वितण्डावादो दृष्ट एव सर्वैरपि। शल्याद्यङ्गावगमपारङ्गततरं नितरामावश्यकं विद्यार्थिनाम्। भाव्यमेतदायुर्वेदभक्तैः प्राच्यप्रतीच्योभयवैद्यविद्याप्रवीणैरेवाध्यापकैरमरभारतीमध्यमादिपरीक्षोत्तीर्णैश्छात्रैश्च। स्पष्टमेवेति यदेतादृशा गुरवः शिष्याश्च सम्प्रत्यसुलभा एव। विद्यालयसञ्चालकैरुभयायुर्वेदविदामुपलब्धये विधेयः प्रबलः प्रयत्नः। न भवेदुभयवैद्यविदां लाभस्तावद्योग्यादिशल्यशालाक्याध्ययने निश्शङ्कतया ग्राह्यमस्मद्दक्षतरबन्धूनां साहाय्यम्। विद्यालयेषु चैतेषु प्रत्यक्षज्ञानार्थं शवच्छेदनशालावन्यखनिजौषधिभाण्डारान्वेषणविभागायुर्वेदपुस्तकागारोपवैद्यप्रसूतिकर्मशिक्षणादिव्यवस्थयाप्यवश्यमेव भाव्यम्।

पाठ्यपुस्तकानि।

अष्टाङ्गायुर्वेदावगमार्थं प्रथममेवापेक्ष्यन्ते सरलानि सुलभानि सुरभारतीलिखितानि च पाठ्यपुस्तकानि। महामहोपाध्यायकविराजश्रीगणनाथसेनमहोदया नितरां धन्यवादार्हाः। महाभागैरेतैः प्रत्यक्षदेहतत्त्वावगमप्रदं सचित्रं प्रत्यक्षशारीराभिधं महानिबन्धं सुललितसुरभारत्यां विरच्य प्रकाश्य च ऋणीकृता निखिलभारतीयायुर्वेदविदः। शिरोभागहीनं शरीरमिवापूर्णमेवासीत्प्रत्यक्षशारीरमिदं तदपि सञ्जातं वत्सरेऽस्मिन् सम्पूर्णमित्यतीवानन्दावसरः। आयुर्वेदमहामण्डलरजतजयन्त्युत्सवस्य परममङ्गलावसर एव स्वनिर्मितस्यास्य प्रत्यक्षशारीरमहानिबन्धस्यान्तिमो भागस्तृतीयोऽपि श्रीकविराजमहाशयैर्द्वादशवार्षिकेण महता परिश्रमेण प्रकाशितः। सम-

Indira Gandhi National Centre for the Arts

वाप्य दीर्घमायुष्यं महात्मानश्चेमे कुर्वन्तु सिद्धान्तनिदानादीनामपि निबन्धानां पूर्तिमित्यभ्यर्थये श्रीभगवन्तं भक्तवत्सलम्। स्वस्थवृत्तसमुच्चयसङ्कलनेन काशीस्थाः श्रीराजेश्वरमिश्र शास्त्रिणोऽपि धन्याः, किन्तु पाठ्यपुस्तकानां रचनाविषये नैतावतैवालमिति मन्ये। प्रसूतितन्त्रकौमारभृत्या-गदतन्त्रव्यवहारायुर्वेदादिविशेषाङ्गानामपि रचनं नितान्तमावश्यकम्। प्रचलति येन केनापि प्रकारेण कार्यं विद्यार्थिनां व्यवहारायुर्वेदादिहिन्दीपुस्तकेभ्यस्तथापि संस्कृतभाषापाटवोपलब्धये सर्वेषां चायुर्वेदाङ्गानामवबोधाय देववाणीविरचितानामेवपाठ्यपुस्तकानां वर्तते परमावश्यकता। देववाणीलिखितान्येव पुस्तकानि समानतयोपयुक्तानि भवितुमर्हन्ति सर्वेष्वप्यङ्गवङ्गकलिङ्गोत्कल-मद्रादिभारतीयेषु भूभागेषु। विषयेऽस्मिन् यथास्त्युत्तरदायित्वं निखिलभारतायुर्वेदमहामण्डलस्य न तथा यस्य कस्यापि। शीघ्रातिशीघ्रं प्रयतनीयं तेनैव स्वहस्तयित्वा कार्यमिदम्। स्वतन्त्रमहा-विद्यालयस्य तस्य न भवेद्यावत्स्थापना तावत्तत्सञ्चालितायुर्वेदविद्यापीठपरीक्षाप्रभावोऽप्यल्पी-यानेव। हन्त, महामण्डलशैथिल्यात्तदारब्धानि सर्वमान्ययोगसंग्रहनिघण्टुसमितिशारीरसंज्ञानि-र्णयसमितिवैद्यसंघायुर्वेदमहामण्डलसंमतवैद्यसूचीप्रभृतीन्यनेकानि कार्याणि तद्गर्भस्थान्येवाद्यापि वर्तन्ते। वस्तुतस्त्वायुर्वेदमहामण्डलमिदमभिन्नमेवाखिलभारतीयायुर्वेदविद्भ्यः। वयमेव एवं घट-कास्तस्य! सर्वैरप्यस्मत्सिरतो यतनीयं तदारब्धायुर्वेदोद्धारकार्यार्थमिति दिक्।

आयुर्वेदोपबृंहणम्।

आयुर्वेदोपबृंहणार्थं चरकसुश्रुताद्यार्षसंहितानां प्रकाशनं समूलं सटीकं नवीनान्वेषणकृ-ट्टीकाटिप्पणैश्च संवलितं नितान्तमावश्यकम्। न केवलं कथनादेव महामहोपाध्यायश्रीगणनाथ-सेनसरस्वत्यादीनां किन्तु वेदोपनिषदाद्यायुर्वेदतन्त्राणां तुलनात्मकादध्ययनादपि निश्चीयते यत्प्रति-संस्कर्तृणां लेखकानां वा प्रमादादार्षसंहितास्वप्यस्माकं सन्ति कानिचिदुद्वेगकराणिस्खलनानीति। हृदयोदाहरणमेवैकमत्र पर्याप्तं भवेदिति मन्ये। हृदयवर्णनकराणि वचनानि यथा—

"हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।" इति यजुर्वेदः
"ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।" इति श्रीमद्भगवद्गीता
"षडङ्गमङ्गविज्ञानमिन्द्रियाण्यर्थपञ्चकम्।
आत्मा च सगुणश्चेतश्चिन्त्यं च हृदि संस्थितम्॥" इति चरकः
"शिरोभिर्हृदयं वेत्ति तस्मात्तत्प्रभवाः शिराः।"
"शिरस्ताल्वन्तरगतं सर्वेन्द्रियपरं मनः।" इति भेलः
"हृदयं चेतनास्थानमुक्तं सुश्रुतदेहिनाम्।" इति सुश्रुतः।
"सर्वेन्द्रियाणि येनास्मिन् प्राणा येन च संश्रिताः।
तेन तस्योत्तमाङ्गस्य रक्षायामादृतो भवेत्॥" इति वाग्भटः

प्रमाणैरेभिः स्फुटीभवति यद्वेदोपनिषदायुर्वेदार्षतन्त्रैरात्मनो मनसो बुद्धेश्च निवासरू-पेणैवोपवर्णितं हृदयमिति। "शिरस्ताल्वन्तरगतं सर्वेन्द्रियपरं मनः" इति भेलोक्त्या चरका-दिकथनैश्च मनोबुद्धीन्द्रियाणां निवासो हृदि सिद्धयति, तथैव हृदयस्थितिरपि शिरस्येवेति स्पष्टी-भवति। चेतनास्थानं हृदयमेतद्भगवतात्रेयेण चरकीयसूत्रस्थानस्यार्थेदशमहामूलीयेऽन्तिमेऽध्याये पृथगेव पठितं, तथैव स्वतन्त्रे महर्षिभेलेनाप्यूर्ध्वदशमूलीये। पुण्डरीकेण सदृशमित्यादिवर्णन-मप्यस्यैवेति भेलसंहितातोऽवम्यते। यथा हि—

Indira Gandhi National Centre for the Arts

अर्थ इत्याह हृदयं तस्मिन् धमनयो दश ।
ऊर्ध्वं चतस्रो द्वे तिर्यक् चतस्रश्चाप्यधः क्रमात् ॥

... ...

तस्मात्तदर्थं विज्ञानं स्मृतियोगं च मानसम् ॥

... ...

शिरोभिर्हृदयं वेत्ति तस्मात्तत्प्रभवाः शिरा ॥
हृदि प्राणश्च चक्रस्थः विमाने कर्णिका यथा ।
मर्माभिघातं तेनात्र सहते हृदयेन तु ॥
पुण्डरीकस्य संस्थानं कुम्भिकायाः फलस्य च ।
एतयोरेव वर्णं च बिभर्ति हृदयं नृणाम् ॥
यथा हि संवृतं पद्मं रात्रौ चाहनि पुष्यति ।
हृत्तदा संवृतं स्वप्ने विवृतं जाग्रतः स्मृतम् ॥ भेल अ० २०

हृदयमेकं चेतनायतनम्, इत्यस्यैकं पदं द्वितीयमप्यपेक्षते हृद्वयम् । तत्तु पञ्चदशकोष्ठगणितं रक्तस्थानमेवेति सुगमावगमं सुधियाम् । तत्सुते रक्तसंवहनाभावात्परंधामप्राप्तिरप्यवश्यं भाविनी नृणाम् । एवं सत्यपि सुश्रुते वाग्भटे च रक्तस्थानस्यास्य हृदयस्य वर्णनाधोभागे कथं केन वा कृतो विन्यासः पुण्डरीकेण सदृशमित्यादि वाक्यानामिति चिन्त्य एव । एवमेवान्यान्यपि स्खलनान्यूह्यानि विद्वद्भिरिति प्रार्थये ।

आयुर्वेदोद्बृंहणाय च पुनः सचित्रनिघण्टूनां प्रकाशनं, तेषु नवीनप्राप्तभेषजानामपि संनिवेशः, संदिग्धौषधिनिर्णयः, रसभस्मनां परीक्षणमाधुनिकविज्ञानरीत्या, विशुद्धभेषजलाभायौषधिभाण्डाराणां स्थापनप्रभृतीनि कार्याण्यप्यावश्यकानि । आयुर्वेदस्य निखिलभारतेऽध्ययनपरीक्षापदवीभेषजनिर्माणादिकं समानपद्धत्या एव भवेदेवं प्रयतनीयम् । निखिलभारतीयानामथ च प्रान्तीयवैद्यसम्मेलनानां कार्यक्रमप्रस्तावादीनां प्रकाशनं, भारतीयम्युनिसिपल्टीलोकलबोर्डडिस्ट्रिक्टबोर्डाधिकारिभिः स्नेहं संपाद्यायुर्वेदीयौषधालयातुरालयविद्यालयादिधार्मिकसंस्थासंस्थापनं निखिलभारतीयतत्तत्प्रान्तीयधारासभाध्यक्षैः सदस्यैश्च सह विधाय विचारविनिमयं वैद्यवृन्दाधिकारवृद्ध्ये संयुक्तप्रान्तीयइन्डियनमेडिसिनबोर्डवद्बोर्डानां राजकीयानां प्रान्ते प्रान्ते नियुक्तिर्यत्र तत्रायुर्वेदप्रचारार्थं व्याख्यानानां च प्रबन्धप्रभृतीनि बहूनि सन्ति नितान्तमावश्यकानि कार्याणि । वर्षेऽस्मिन् मध्यप्रान्तधारासभया इण्डियनमेडिसिनबोर्डप्रस्तावः स्वीकृतः, किन्तु राजकीयानां साहाय्याच्छीघ्रमेव भवेद्बोर्डस्थापनमिति तु वैद्यानां संघशक्त्यधीनमेव । विहाय पारस्परिकं मतभेदादिकं सर्वेऽप्यायुर्वेदोद्धरणे बद्धपरिकरा भवेयुरित्याशासे ।

मान्याः; बालादपि सुभाषितमिव प्रेम्णाकर्णितं मद्भाषणमतो वितीर्य धन्यवादान् वितरामि ।

सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत् ॥

॥ इति शिवम् ॥

Indira Gandhi National Centre for the Arts

निखिल भारतीय वैद्यसम्मेलन के द्वादशाधिवेशन के सभापति

कविराज श्री० हाराणचन्द्र चक्रवर्ती महोदय का

जीवन चरित।

(प्रोफेसर सत्येन्द्रनाथ सेन विद्यावागीश के लेख का हिन्दी अनुवाद)

कविराज हाराणचन्द्र चक्रवर्ती पवना जिला में बकलिया 'ग्राम' के रहने वाले कविराज आनन्दचन्द्र चक्रवर्ती के पुत्र थे। ये दोनों पिता-पुत्र मुर्शिदाबाद के रहने वाले कविराज गंगाधरजी के शिष्य थे। यह कविराज गंगाधरजी के अन्तिम शिष्यों में एक थे तथा अपने समय के सबसे बड़े महामहोपाध्याय कविराज द्वारकानाथ सेन के जूनियर सहपाठी थे। कविराज गंगाधरजी के प्रसिद्धि का यह एक विचित्र चित्र है कि उनके शिष्यों में से कोई भी अपने जीवन में असफल नहीं हुआ। कविराज आनन्दचन्द्रजी भी एक सफल कविराज हो गये हैं और बहुत-सा द्रव्योपार्जन किया किन्तु अपने अमित व्ययता के कारण अपने पुत्र के लिये ऋण के अतिरिक्त और कुछ नहीं छोड़ सके। इस ऋण को लिये हुए कविराज हाराणचन्द्र ने अपना व्यवसायिक जीवन प्रारम्भ किया। इनका जन्म एक पुरोहित ब्राह्मण वंश में हुआ था। अपने प्रारम्भिक जीवन में यह पुरोहित और कविराज दोनों थे। यह अपने आपको दोनों व्यवसायों से बढ़ाते रहे। यह व्रत-कथा कहने के लिये एक आने की तुच्छ दक्षिणा (फीस) भी छोड़ने में असमर्थ थे (नहीं छोड़ते थे)। अपनी मृत्यु के समय तक यह निर्धन ब्राह्मण अपनी पूर्ण योग्यता की सहायता से बिना किसी प्रकार के विज्ञापन के ही सबसे बड़े कविराज हो गया तथा इसने २० बीस लक्ष रुपया उपार्जन किया। यह लगातार ७० वर्ष तक कविराजी करते रहे।

वर्तमान समय में पाश्चात्य औषधि प्रणाली का प्रचार है अतएव प्रायः कविराज लोगों को उन्हीं रोगियों पर सन्तुष्ट होकर बैठा रहना पड़ता है जिनको पाश्चात्य शिक्षित डाक्टर अपने हाथ में लेने से इन्कार कर देते हैं किन्तु हाराणचन्द्र के पास प्रारम्भिक रोगियों का एक बड़ा समूह भी आता रहता था। वह कौन-सी विशेषता थी जिसने उनको इस महान पद पर पहुँचाया ? वह केवल पाश्चात्य डाक्टर तथा भारतीय सच्चे कविराज के गुणों का संयोग था। वह एक पाश्चात्य डाक्टर की भाँति आवश्यक तथा खतरनाक (Hopeless) रोगों में तात्कालिक तथा प्रथम सहायता देने के उपायों में विज्ञ और शारीरिक विज्ञान तथा चीड़-फाड़ के कामों में अपनी ही बीती के प्रणाली के अनुसार निपुण थे तथा एक सच्चे कविराज की भाँति हमारे पूर्व ऋषियों से निर्धारित किये हुए पथ्य तथा उपचार करने के सिद्धान्तों का दक्षता से अनुसरण करते थे। राजशाही में कविराजी करते समय वहाँ के तत्कालीन सिविलसर्जन महाशय प्रेन्टुलर के साथ इनकी घनिष्ठता हो गई थी। वहाँ उन्होंने शव-परीक्षा-गृह में मृतकों की शारीरिक परीक्षा करते हुए सुश्रुत के बतलाये गये आयुर्वेदिक शारीरिक ज्ञान की वृद्धि कर लिया। इस प्रकार शारीरिक रोगों में न तो वह अन्य कविराजों की भाँति असहाय थे

National Centre for the Arts

स्वर्गीय कविराज हाराणचन्द्र चक्रवर्ती, राजशाही (बंगाल)

जन्म २८—१—१८४९ मृत्यु २९—५—१९३५ ।

सभापति—नि० भा० द्वादश वैद्यसम्मेलन, बम्बई ।

सभापति—बंगालप्रान्तीय वैद्यसम्मेलन ।

Indira Gandhi National
Centre for the Arts

न पाश्चात्य डाक्टरों का अन्धों की भाँति अनुसरण करने वाले थे बल्कि उनको इस विषय का अपना प्राप्त किया हुआ ज्ञान था। नेत्र, कलेजा, इत्यादि से सम्बन्धरखने वाले भिन्न प्रकार के चीर-फाड़ का काम करते हुए उन्होंने अपने इस ज्ञान का व्यवहार किया, शरीर से रुधिर निकलना जो सुश्रुत से बहुत से रोगों में समर्थ नहीं किया गया है उनके लिये एक साधारण काम था। इस प्रकार वे दोनों प्रकार के ज्ञान से युक्त एक पूर्ण वैद्य हो गये थे। वे शोचनीय वैद्यों के विषय में सुश्रुत में कही गई निम्नांकित पंक्तियाँ प्रायः पढ़ा करते थे।

उभ वेतौ अनिपुनौ असमर्थौ स्व कर्मीणः।
अर्ध वेद धरा वेतौ एक पक्षा विवा द्विजौः॥

अर्थात् वैद्य दो प्रकार के होते हैं—प्रथम वे जो पुस्तकों का ज्ञान रखते हैं किन्तु व्यवहारिक अनुभव उनको नहीं होता दूसरे वे जिनको व्यवहारिक अनुभव होता है किन्तु सिद्धान्तों का ज्ञान नहीं होता। ये दोनों प्रकार के वैद्य अपूर्ण तथा रोगों का उपचार करने में असफल हैं। वे विज्ञान का आधा ज्ञान रखते हैं तथा एक पक्ष वाली पक्षी की भाँति अपूर्ण हैं अन्य वैद्यों के विरुद्ध उनको अधिक सफलता होने के कारण ये थे।

१—विद्वता

अपने विषय के पूर्ण पंडित थे उन्होंने इन विषयों की कविराज गंगाधर से पूर्ण योग्यता प्राप्त की थी जो संस्कृत विद्या की सभी शाखाओं के पूर्ण तथा धुरन्धर विद्वान थे।

२—प्रस्तुत ज्ञान

उनकी स्मरण शक्ति इतनी अच्छी थी कि आयुर्वेद के प्रसिद्ध आदि पुस्तकों के सब श्लोक उन्हें कंठ थे। इस कारण वह अपने समय के अन्य कविराजों की अपेक्षा अधिक योग्य थे। क्योंकि अन्य कविराज उचित समय पर पाश्चात्य डाक्टरों की भाँति बिना पुस्तक देखे आवश्यक आयुर्वेद के श्लोकों को कंठ नहीं कर सकते थे।

३—अनुभव

वे बहुत बड़े अभ्यस्त तथा अनुभवी थे। उनके सम्मुख कभी भी कोई ऐसा रोग चाहे कितना ही विचित्र क्यों न हों, नहीं उपस्थित किया जा सका जिसका वे प्रामाणिक वर्णन न कर सके हों तथा उसी प्रकार के रोगों का अपना अनुभव में स्पष्ट वर्णन तथा रोग उनसे सम्बन्ध रखने वाले रोगियों के नाम सहित न कह सके हों। प्रथम बार उनके कहानियों के कुछ लक्ष्य सुनकर मुझे कुछ शंका होती थी कि वे उनके कल्पित किये हुये होंगे, किन्तु ऐसे मौकों का बार-बार आप जब उन कहानियों को विचित्र सत्यता में वर्णन करते थे तब तमाम संशय दूर हो जाता था।

४—आयुर्वेद की कीर्त्ति

वे सदा आयुर्वेद की कीर्त्ति बढ़ाने के लिये उत्सुक रहते थे। जहां कहीं दूसरे वैद्य तथा डाक्टरों से छोड़ी हुई विचित्र बीमारियों को पाते प्रायः उस रोगी को दवा निःशुल्क करते थे तथा आवश्यकता पड़ने पर उसकी आर्थिक सहायता भी करते थे। उन्होंने अपने दिमाग की दशा का महान सैनिक भीष्म की तुलना करते हुये इस प्रकार वर्णन किया है।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

अतीव समरं दृष्ट्वा हर्षो यस्योप जायते

अर्थात् जो भीषण संग्राम को देखकर हर्षोन्मत्त हो जाय।

५—दुष्कर कार्य तथा अटूट चेष्टा

उनके चीड़फाड़ के कामों की तत्परता ने उन्हें उनके कुछ प्रति-द्वन्दी प्रायः डाक्टरों के आँखो की किरकिरी बना दिया था। एक बार थोड़े से नेत्र के रोगियोंने जो राजशाही के गवर्नमेन्ट अस्पताल में भरती हुये थे कविराज हाराणचन्द्र की डाक्टरी दवा से लाभ उठाने के लिये अस्पताल की दवा करना छोड़ दी। इससे वहाँ का नया सिविलसर्जन उनके ऊपर इतना अप्रसन्न होगया कि उनको एक दोषी की भाँति रोक दिया। किन्तु मजिष्ट्रेट के द्वारा जो उनके गुणों से स्वयं विज्ञ था वे बचा लिये गये। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि आँख के रोगों में उनकी सफलता सिविलसर्जनों से कहीं अधिक थी। सत्य ही नेत्र रोग की दवा करने में वे इतने दक्ष थे कि वह प्रायः यह कह कर आश्चर्य प्रकट करते थे कि कैसे डाक्टर लोग अपने थोड़े ज्ञान के बल पर ऐसे रोगों को अपने हाथ में लेने की हिम्मत करते हैं।

६—उनका परिश्रम

अकर्मण्यता एक ऐसी वस्तु उनके लिये थी जिससे वे बिल्कुल अपरिचित थे शारीरिक तथा मानसिक कष्ट का उन्हें बिल्कुल ध्यान ही न था। राजशाही में जब वे अभ्यास कर रहे थे एक बार अपनी गाड़ी के साथ खाई में गिर जाने के कारण उनके दोनों पैरों में चोट आ गई पर इतने पर भी बिना फीस के रोगियों की दवा करने के लिये चार-पाँच तल्ले पर चढ़ने तथा कभी-कभी बरसात के दिनों में सकरी गलियों में पानी में होकर जाने से तनिक न हिचकते थे।

वह अपनी दुःखी तथा रोगी पत्नी के साथ बनारस (काशी) गये। वहाँ पर स्त्री का स्वर्गवास होगया। आप वहाँ से लौट कलकत्ता आये, एक दिन दोपहर के बाद घर पहुँचे पर बिना किसी सम्बन्धियों से मिले ही तथा बिना आह भरे अपने रोगियों के लिये जो बैठक में मौजूद थे दवा का पुरजा लिखने लगे। दुःख तथा कष्ट के विषय में वे बिल्कुल बेपरवाह थे। यह बेपरवाही उनके रोगियों के औषध प्रयोग पर भी प्रभाव डालती थी किन्तु लाखों दरिद्र दुखों के प्रति उनके हृदय में दया भी थी। उन्होंने एक भी भिक्षुक को दरवाज़े से निराश नहीं लौटाया। सर्वदा उनकी आवश्यकतानुसार पैसे तथा अन्न से सन्तुष्ट करते रहे। उनकी फीस तथा दवाओं का दाम भी बहुत ऊँचा होता था। किन्तु ऐसा वह आयुर्वेद की मर्यादा की अन्य औषधि विधियों, विशेषतः डाक्टरी के मुक़ाबिले में रक्षा के लिये करते रहे।

७—उनका व्यवहार

उनसे मिलने के १२ बारह वर्ष पहले उनके क्रोधी स्वभाव के बारे में मैं सुना करता था। किन्तु एक या दो छोटे बल्कि असह्य अवसरों पर छोड़ कर उन्हें कभी भी यथोचित अवसरों पर क्रोध करते हमने नहीं देखा था। हम लोगों से वे कहा करते थे कि वह अपने जवानी में क्रोधी स्वभाव के थे। अब यह उनकी व्यर्थ की बदनामी ही है। वह सदा अपने रोगियों तथा उसी प्रकार जो वहाँ वर्तमान रहते थे उन्हीं की सेवा में लगे रहते थे। उनका

National Centre for the Arts

यह सिद्धान्त नहीं था कि रोगियों को अपने बैटक खाने में इकट्टा होने पर नीचे उतरते। जितना शीघ्र हो सकता था रोगियों को दवा देकर छुट्टी कर देते थे। उनका अभ्यास था। रोगी आते-जाते रहते थे। एक कार्यशील मनुष्य होने के कारण उन्हें दूसरों की निन्दा करने का समय न था। किन्तु कोई रोग डाक्टरों द्वारा बिगड़ जाता तो वह उनको श्राप देते थे। फैशनेबुल डाक्टर तथा अर्धशिक्षित कविराजों का समान ही दोष देते थे किन्तु ईर्षा के कारण नहीं बल्कि करुणा तथा अपनी इस विषय में उन लोगों से अधिक योग्यता के कारण वे ऐसा करते थे।

८—कार्य-क्रम

वह सूर्योदय के एक घंटे पहले बिस्तर से उठ जाते थे। नित्य-क्रिया के पश्चात् वह पूजा-घरमें जाते थे। वहाँ दस बजे तक रहते तथा बीच-बीच में यदि आवश्यक रोगी कोई हो तो उसको देखते थे। जीवन के अन्तिम दिन तक पूजा की तैयारी वह अपने हाथ से ही करते रहे। वह दस बजे नीचे उतरते तथा बारह बजे दिन तक रोगियों की देख-भाल करते थे पश्चात् भोजन करके बाहर जाते थे फिर तीन, चार बजे तक लौट आते थे। चार बजे शाम से दस बजे रात तक बैठक में रहते थे। वह अपने रोगियों से सत्य कहने में घबड़ाते नहीं थे। यदि सायंकाल में आधे घंटे का भी समय पाते तो उस समय ईश्वर की प्रार्थना करते। दस बजे रात को अपना हिसाब जाँचते थे पश्चात् भोजन खोई, दूध, मुनका करने के पश्चात् सोने चले जाते। सोते समय भी उनके रोगियों से उन्हें बाधा पहुँचती थी। रोगियों के आदमी उनकी (कविराजजी) आज्ञानुसार उनसे राय लेने के लिये जगा देते थे तथा कभी-कभी असमय में भी उन्हें बाहर ले जाते थे। चाहे सोते समय जो कुछ बाधा हो किन्तु यह निश्चित था कि यह सूर्योदय के पहले ही पूजा पर बैठ जाते थे।

९—स्वावलम्बन

वह सदा अपने नौकरों तथा सम्बन्धियों की सहायता से स्वतंत्र रहे। एक समय जब उनका नौकर नहीं था अपनी धोती भी अपने हाथ से ही धो लिये। वह न तो धूम्रपान करते थे न तो सूँघनी ही सूँघते थे।

बहुत दिनों के जान-पहिचान के मध्य में मैंने कभी भी उनको मालिश कराते तथा साबुनादिक का प्रयोग करते नहीं देखा था। वह कभी भी आह भरते नहीं देखे गये जैसे वृद्ध तथा धनी लोगों की आदतें होती हैं। ईश्वर ने उनकी स्वावलम्बन की रक्षा अन्तिम जीवन तक किया। उनके इस आत्म-निर्भरता के व्यवहार ने साधारण जनता पर भी प्रभाव डाल दिया। उनको अपने विश्वास का साहस था जिसको वह बड़े-से-बड़े लोगों के सम्मुख भी प्रगट करने में नहीं सकुचते थे।

१०—स्वास्थ्य

वे उपवास के पक्षपाती थे जो स्वयं बहुत अधिक स्वास्थ्य की रक्षा करती है। वे स्वयं अपने तई इसका प्रयोग करते थे जिससे बिना भोजन किये, वह भोजन करने की अपेक्षा अधिक स्वस्थ्य रहते थे।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

तीन अवसरों—दुर्गा पूजा, जगद्धात्री, तथा वासन्ती पूजा—पर वह अपने घर (राजशाही) जाया करते थे। हर अवसर पर वह स्वयं पूजा करते थे। वह कई दिनों तक लगातार उपवास किया करते थे। तथा कठिन काम आसानी से करते थे जिसे देखकर नौजवान लोग चकित रह जाते थे। वह मित भोजन करते थे किन्तु थोड़े से पशु बलि को वे इस कारण से नहीं रोकते थे कि उनके तथा दूसरे लोगों के दोषों को जो ज्ञात या अज्ञात में होते हैं, और अधिक न बढ़ा दें। यह पूछे जाने पर कि उनके अन्तिम समय में उनका उपचार करने के लिये कौन विश्वसनीय होगा। वह हम लोगों को सदा यही निश्चय दिलाते थे कि वह कभी भी रोग-ग्रसित नहीं होंगे बल्कि सूचना देते हुये सहसा इस संसार को छोड़ देंगे। उनकी यह भविष्य वाणी सर्वथा सत्य हुई। यद्यपि उसका अन्तिम भाग नहीं सत्य हुआ। वह छियासी वर्ष तक पूर्ण स्वस्थ दशा में जीवित रहे। दूसरे वृद्ध लोगों की भाँति कफ, खाँसी आदि रोगों से कभी भी पीड़ित नहीं हुये। वह स्वास्थ्य तथा कर्त्तव्य की मूर्त्ति थे। नौ वर्ष की अवस्था में एक बार उनपर ज्वर का आक्रमण हुआ था तब से उनके जीवन के अन्तिम घड़ी तक कभी भी ज्वर नहीं आया। नवयुवकों के रोगों का उन्हें अपना अनुभव न था बल्कि इसके लिये वह पुस्तक के ज्ञान पर निर्भर थे।

११—उनके गुण

वह अपने गुरु की विद्या, दैवी शक्ति तथा अनुभव का बहुत आदर करते थे। हम लोगों ने उनके गुरु के व्यवसायिक जीवन—जिसका वह सदा अनुसरण करने का प्रयत्न करते थे—सम्बन्ध रखनेवाली कहानियों को उनके मुख से सैकड़ों बार सुना। उन कहानियों में से कुछ भिन्न २ मौकों पर नये आगन्तुकों के कारण दुहराई जाती थीं किन्तु जिस सत्यता से वे कही जाती थीं वह आश्चर्यजनक थी।

१२—चरित्र

वह सच्चे ब्राह्मण की भाँति रहते थे, तथा भोग-विलास से बिल्कुल अपरिचित थे। आयुर्वेद तथा अन्य ब्राह्मण शास्त्र में उनका अटल विश्वास था। उनके चेहरे पर एक चिरस्थायी प्रकाश था। शास्त्रीय संस्कृत भाषा का उनका प्रस्तुत ज्ञान, स्मरण-शक्ति, अटूट चेष्टा तथा सबसे अधिक अपने पूर्वजों के शास्त्रों में दृढ़ विश्वास आदि ऐसे गुण थे जिनके कारण कविराज हाराणचन्द्रजी ने जीवन-क्षेत्र में अद्वितीय प्रतिभा प्राप्त की। अन्तिम ११ वर्ष तक लगातार उनसे जान-पहिचान होने के फलस्वरूप उनके विषय में मेरे यही विचार हैं जो मैंने निश्चय किया है। मैं यह अवश्य स्वीकार करता हूँ कि उनमें कम से कम यह दुर्बलता अवश्य थी और जिसका सम्बन्ध मुझसे ही था। मैं जूनियर तथा हर विषय में बहुत कुछ था लेकिन तिस पर भी वह सदा मुझे अपना आन्तरिक मित्र समझते थे और मेरी योग्यता की सदा प्रशंसा करते थे। उनकी मृत्यु से मेरी तथा रोगी जनता की अपदी विशेष तथा न पूरी होने वाली क्षति हुई है। अवश्य ही उनके योग्य ही उनका स्मारक बनाने का प्रबन्ध किया जायगा किन्तु सुश्रुत संहिता पर उनकी बहुमूल्य टिप्पणियाँ जो आयुर्वेद को प्रोत्साहित करने के लिये एक वरदान स्वरूप हैं, उनके स्मरण के लिये प्रत्येक आयुर्वेद प्रेमी के हृदय में चिरस्थायी स्मारक हैं। वे अपने घर (राजशाही में) सर्वदा के लिये ५० आदमी के लिए भोजन का प्रबन्ध कर गये हैं

Indira Gandhi National ... the Arts

जो कि आज भी सुचारु रूप से चालू है और उसी जगह लाखों रुपये की सम्पत्ति खर्च कर आयुर्वेद विद्यालय खोल गये हैं जो अभी भी मौजूद है। आप निखिलभारतवर्षीय आयुर्वेद सम्मेलन के प्रेसीडेन्ट थे। आप बम्बई, मद्रास, जयपुर इत्यादि के आयुर्वेद के परीक्षक थे। आप अपने कुटुम्ब-परिवार से भी सम्पन्न थे। आपको ६ पुत्र हैं तथा पौत्र-प्रपौत्रादि भी वर्तमान हैं जो कि उनके कार्यों को सुचारु रूप से चला रहे हैं। उनके स्थान पर उनके पौत्र उपेन्द्र-चन्द्र चक्रवर्ती उन्हीं की तरह साहस, दया तथा शीलता से रोगीजनों का सेवा-कार्य कर रहे हैं। परमेश्वर दिनोंदिन इनको उत्साहित करते रहें। कविराजजी (हाराणचन्द्रजी) अन्तिम घड़ी तक भी स्वस्थता पूर्वक शाके १३४२, १५ ज्येष्ठ ता: २९ मई सन् १९३५ को स्वर्ग सिधारे। ईश्वर उनकी आत्मा को शांति दे।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

स्वागताध्यक्षों के विषय में

[नि० भा० आयुर्वेद महामंडल के वार्षिक अधिवेशनों पर विशिष्ट विद्वानों ने भी समय-समय पर स्वागत-कारिणी की अध्यक्षता स्वीकार कर जो उद्गार प्रकट किये हैं उनके कुछ उदाहरण नीचे प्रकाशित किये जाते हैं—एवं ऐसे अवसरों पर राजा महाराजाओं के जो भाषण हुए हैं उनमें से महाराजा सर भैरो सिंह जी बहादुर और लेफ्टिनेण्ट जेनरल हिज हाइनेस महाराजा सर गंगा सिंह साहिब जी० सी० एस० आई० जी० सी० आई० ई०, जी० सी० वी० ओ०, जी० बी० ई० के० सी० बी०, ए० डी० सी० एल० एल० डी० बीकानेर नरेश के भाषण दिये जाते हैं।]

Indira Gandhi National Centre for the Arts

॥ श्रीः ॥

अखिल-भारतवर्षीय षोडश-वैद्यसम्मेलन, जयपुर की स्वागतकारिणी समिति के सभापति

रायबहादुर पुरोहित गोपीनाथ जी विद्यारत्न,

साहित्यभूषण एम० ए०, एम ० आर० ए० एस०, सी० आई० ई०
मेम्बर कौंसिल अफ् स्टेट, जयपुर का

भाषण

महानुभावो तथा महिलाओं !

आज का दिवस धन्य है जिसमें भारत का वैद्य समुदाय अन्यान्य सज्जनों सहित यहाँ एकत्रित हुआ है। हम जयपुरीय धन्य हैं जिनको आप महानुभावों का स्वागत करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। सम्मेलन के इस अधिवेशन का स्थान सुनिश्चित होने से जयपुरवासियों के अन्तःकरण में इस समारोह का साक्षात्कार करने की जो लालसा लगी हुई है आज वह भगवान् की कृपा से पूर्ण हुई। भारतवर्ष के दूर दूर के प्रदेशों से पधार कर आप महानुभावों ने हम लोगों को वास्तव में बहुत कृतार्थ किया है। अतिथि-सत्कार भारतीय गृहस्थ का सुनिश्चित धर्म है, उस धर्म का पालन जयपुर का गृहस्थ वर्ग कहाँ तक कर सका है अथवा कर सकेगा, इसका अनुमान करने की चर्चा से हमारे हृदयों में बहुत हल-चल है। हृदयस्थ भाव की प्रगाढ़ता से हम विह्वल हैं, इसलिये हम आशा करते हैं कि यदि हम चारु रूप से भाव प्रकाशन न कर सकें तो उसका अर्थ यह न होना चाहिये कि भाव का अभाव है। जयपुरीय जनता अथवा स्वागत-समिति के आनन्द तथा उत्साह को यदि मैं यथावत् न कह सकूँ तो आप यह मेरा ही दोष समझिये।

जयपुर में वैद्य-सम्मेलन के प्रतिनिधियों का हम हृदय से स्वागत करते हैं। जिस प्रकार और विद्य-कला के कवि यहाँ के राजा और प्रजा ने प्रमुखता दिखाई है उसी प्रकार चिकित्सा शास्त्र के प्रति भी दिखाई है। आधुनिक डॉक्टरी चिकित्सा प्रणाली के सम्बन्ध में राज्य से जो महान् व्यय किया जा रहा है उसके अतिरिक्त कितने ही वैद्य और हकीम भी राज्य के आश्रित हैं जिनमें बहुतों के तो बड़ी २ "जीविका" हैं, इनके नामोल्लेख और इनके आश्चर्यजनक चिकित्सा-कार्यों के विवरण से आपके अमूल्य समय को व्यतीत करने की आवश्यकता नहीं पाई जाती। ये लोग अपने विद्याभ्यास और कौशल से अपना और राज्य का सुयश सर्वत्र विस्तृत कर रहे हैं। इनमें से कितनों ही के नाम और कार्य से आप भी, आशा की जाती है, अपरिचित नहीं हैं। जयपुर राज्य की कई तहसीलों के बजट में 'वैद्यों' की 'आसामी' बराबर चली आ रही है, जिससे यह निश्चित रूप से सिद्ध होती है कि इस राज्य का प्रजा की चिकित्सा के सम्बन्ध में सदैव से असाधारण ध्यान रहा है। जिस प्रकार यहाँ

Indira Gandhi National Centre for the Arts

पर जगत्प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् राजा हुए हैं, वैसे ही अत्यन्त प्रसिद्ध, चिकित्सा-शास्त्र में प्रवीण राजा भी हो गये हैं। महाराजा प्रतापसिंह जी के 'अमृतसागर' से कौन अपरिचित है? यहाँ पर अमृतसागर के अतिरिक्त और भी कई वैद्यक ग्रन्थों की रचना हुई है जिनमें वैद्यविनोद, प्रतापकल्पद्रुम, रामविनोद, सिद्धभैषज्यमणिमाला आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। जिस जयपुर में चिकित्सा शास्त्र को पूर्व समय में इतना सम्मान मिला है, वही जयपुर आज विनय भाव से आप सज्जनों का स्वागत करता है। हम जानते हैं कि आप जैसे महानुभाव अतिथियों के लिये किसी विशेष प्रकार की सुविधा करने में समर्थ नहीं हुए हैं, तथापि हम को दृढ़ आशा है कि हमारी श्रद्धा व भक्तिभाव की ओर दृष्टि रखते हुए हमारे प्राघूर्णिक महोदय हमारी सभी त्रुटियों को कृपा करके क्षमा करेंगे। आप लोगों की उदारता के भरोसे पर ही हम ने यह साहस कर लिया है और हम को निश्चय है कि हम जो कुछ भी कर सके हैं उसी को आप बहुत मानेंगे।

महानुभावों! शास्त्रीय विचार अथवा और कोई अनूठी बात आपके समक्ष उपस्थित करने का मेरा सामर्थ्य नहीं है। आयुर्वेद शास्त्र के सम्बन्ध में यदि कुछ कहने का उद्योग किया जाय तो वह अनधिकार चेष्टा मात्र है। यह विशेषज्ञों के करने का काम है और वे ही कर भी सकते हैं। मैं तो यहाँ पर केवल एक दो ऐसी साधारण बातें आपकी सेवा में निवेदन करना चाहता हूँ जिन पर मेरा कभी कभी विचार होता रहा है। उनमें कुछ भी सार यदि आप लोगों को प्रतीत होगा तो मैं अपने आप को कृत-कृत्य मानूँगा।

इसमें कोई सन्देह प्रतीत नहीं होता कि हमारे दुर्भाग्य से ही चिकित्सा शास्त्र की आवश्यकता आज दिन हमको कुछ अधिकाधिक होने लगी है। कुछ तो सामान्य परिस्थिति ही ऐसी है और कुछ वायुमण्डल भी ऐसा ही है जिसमें हम प्रायः सबही असहाय हैं। सामाजिक कुरीतियाँ कुछ ऐसी प्रचलित हो गई हैं, जिनसे जनता का स्वास्थ्य अच्छा रह ही नहीं सकता। सर्व-साधारण को आज-कल जीविकोपार्जन के लिये भी अभूतपूर्व मानसिक व्यथा सहनी पड़ती है। ग्राम-संस्था भी विचलित होती जा रही हैं और स्वतन्त्र व्यवसायों के स्थान में दुर्बोध जनता को सामान्य कोटि की सेवा तथा बड़े नगरों की स्वभाव-विरुद्ध श्रम-जीविका भी अधिक सुहाने लग गई है। अनेक रोगों के आक्रमण के कारणों को दूर करना एक महान् कार्य है। जो स्वास्थ्य सम्बन्धी शास्त्र-संमत नियम हैं उनके पालन करने की शक्ति हमारे समाज में यदि फिर से आजाय तो चिकित्सा-शास्त्र का दूसरा उद्देश्य जो रोग-निवारण का है वह स्वतः ही सुकर हो सकता है। समष्टि रूप से भारतवर्ष के समाज का शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। इसीलिये बारंबार अधिक अस्पताल खोले जाने के आग्रह की ध्वनि सुनने में आती है। अस्वास्थ्य होने पर उसे मिटाने का उपाय करना उचित है। परन्तु अस्वास्थ्य के मूलकारण को नष्ट करने का उद्योग करने की विशेष आवश्यकता है। ऐसी परिस्थिति उत्पन्न की जानी चाहिए जिससे समाज इतना रोगग्रस्त हो सके ही नहीं। जिन कारणों से अस्वास्थ्य होता है उनके मौजूद रहते हुये क्या औषधि करे और क्या ऑपरेशन करे?

बन्धुओं! वर्तमान युग में युक्तियों और प्रमाणों से हमारी प्राचीन विद्याओं की विशेषता सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। दूसरे देशों के विद्वान् स्वयं उद्योग करते जा रहे हैं और मानते जा रहे हैं कि इस प्राचीन सभ्यता की भूमि में सभी विद्याएँ अत्यन्त उन्नत दशा में पहुँच चुकी थीं। परन्तु हम को यह स्पष्टतया जान लेना चाहिये कि विद्या में किसी भी

National Centre for the Arts

देश का या जाति का ठेका नहीं है। जिस देश या जिस जाति के मनुष्य उद्योग करें वे ही विद्या प्राप्त कर सकते हैं। इसमें सन्देह नहीं है कि भारतवर्ष में किसी समय चिकित्सा शास्त्र ने बड़ी उन्नति कर ली थी और ऐसे-ऐसे सिद्धान्त स्थिर हो गये थे जो दूसरे देशों में अब स्थिर हो रहे हैं और बड़े 'आविष्कार' माने जाते हैं। आयुर्वेद की भारतवर्ष में प्राचीन समय में परिपूर्ण उन्नति होने का अन्यान्य प्रमाणों के अतिरिक्त एक यह भी बड़ा प्रमाण है कि यह नैसर्गिक नियम है कि प्रथम किसी भी विद्या-कला की समष्टिरूप से जब पराकाष्ठा की उन्नति हो चुकती है तब ही उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गों की विशेषोन्नति का विचार उत्पन्न होता है और भारतीय चिकित्सा शास्त्र में भी इसी नियम का परिपालन हुआ है। समष्टि रूप से पूर्णोन्नति होने के अनन्तर आयुर्वेद के विशेषाङ्गों की उन्नति भी इस चरम सीमा तक पहुँची है कि साधारण वैद्यों के अतिरिक्त विशेष वैद्यों की शाखा प्रशाखा भी इतनी और यहाँ तक फैली है कि युगान्तरों के अनन्तर भी यह विशेष वैद्य इतनी बहुतायत से प्रायः समस्त देश में ही पाये जाते हैं कि उनकी पृथक्-पृथक् जातियाँ तक बन गई हैं। यथा जर्राह, बाबर, सींगीवाले, फ़सद खोलने वाले, दाई आदि आदि। चिकित्सा-शास्त्र का वास्तविक उद्देश्य एक है, चाहे वह "आयुर्वेद" हो, चाहे "हिकमत" हो, चाहे "एलोपेथी" हो अथवा और कोई 'पेथी" हो। सभी में शरीर की बनावट का ज्ञान आवश्यक है। कौन से अवयव का किस अवयव से और किस तत्व से क्या सम्बन्ध है और शरीर की मशीनरी किस प्रकार चलती है, यह जाने बिना चिकित्सा करने की चर्चा तक भी नहीं की जा सकती। दूसरी बात है औषधियों के प्रभाव को पहिचानना तथा उनके संमिश्रण से जो औषध तय्यार की जायँ उनके फल का जानना। यह भी सभी प्रकार की चिकित्सा-प्रणाली में होना आवश्यक है। यों तो प्रक्रिया का भेद होता ही है। सम्भव है एक-आध मौलिक सिद्धान्त के विषय में भी मतभेद हो। परन्तु ऐसे मतभेद से एकोद्देशता में कोई अन्तर नहीं पड़ सकता। इसलिये एक प्रणाली से दूसरी को विशिष्ट सिद्ध करने के उद्देश्य से जो विवाद उपस्थित किया जाय उससे कोई लाभ दृष्टि में नहीं आता।

केवल एक बात ध्यान देने योग्य है प्रत्येक देश के जल-वायु में कुछ न कुछ विशेषता है विभिन्न जल-वायु के प्रभाव से मनुष्यों के स्वभाव भी विभिन्न होते हैं। सब देशों में एकसी जड़ी बूटियाँ वा औषधियाँ उत्पन्न नहीं होतीं। प्रकृति का यह साधारण नियम है कि जो मनुष्य जिस भूमि में उत्पन्न हुआ है और जिस जल-वायु में परिवर्द्धित हुआ है उसी भूमि तथा जल-वायु की औषधि स्वभावतः उसके लिये अधिक अनुकूल होती है। इसी नियम के अनुसार हमारे लिये हमारे देश की चिकित्सा-प्रणाली अधिक लाभदायक होनी चाहिये। एवं च उस प्रणाली की उन्नति होने में हमारा लाभ भी विशेष ही है, इसमें कोई संशय नहीं हो सकता।

भारतवर्ष सदा से सस्ती और सादगी का देश है। आडम्बर इस देश के स्वभाव के विरुद्ध है। भारतीय घर में, स्वास्थ्य में गड़बड़ होने पर पहिले तो प्रायः घरही में और घरही के बड़े-बूढ़े कौड़ियों की औषध से ही काम चला लेते हैं, दैवात् यदि वैद्य की शरण भी लेनी पड़ी तो भी पैसों में ही वहाँ से निवृत्ति हो जाती है। यह आयुर्वेदिक चिकित्सा-प्रणाली का एक बहुत बड़ा लाभ है। वैदेशिक पद्धति के अनुकरण के जो चिह्न यत्र-तत्र देख पड़ने लगे हैं वे इस प्रणाली के महत्व को हरने वाले और इसकी विशिष्टता को खोने वाले हैं। चिकित्सक संसार का एक परोपकारी जीव है, उसके मन में सामान्य कोटि के और और उद्देश प्रबल हो जायँ तो भारतीय चिकित्सा-कार्य भी व्यापार का अङ्ग हो जाय, सो कदापि उचित नहीं कहा जा सकता।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

आज कल 'सर्जरी' की बड़ी महिमा है, हमारे यहाँ भी 'शस्त्रप्रयोग' की कला बड़ी उन्नत दशा में थी। यह सुश्रुत संहिता से पूर्णतया स्पष्ट है, इस देश के अनेक ग्रन्थरत्न लुप्त हो गये, यह किसी से अविदित नहीं है। अनुमान है कि हमारे आयुर्वेद-शास्त्र के भी कई ग्रन्थ नष्ट हो गये हैं। तथापि प्रमाण के लिए सुश्रुत संहिता ही पर्याप्त है। यह जान पड़ता है कि कारणवश चीर फाड़ के काम की अवहेलना हो गई। यहाँ तक कि जब तन्त्र ग्रन्थों का प्रचार हुआ तो 'शस्त्र-प्रयोग' को 'आसुरी चिकित्सा' कहा जाने लगा। संभव है औषधियों की चिकित्सा की पूर्णता के कारण शस्त्र-चिकित्सा का स्थान इतना नीचा हुआ हो। अहिंसा के सिद्धान्त का प्रचार तथा दुरुपयोग भी इसमें कारण हो सकता है, शस्त्र-प्रयोग के विरुद्ध कुछ भी कहे बिना यह तो मानना चाहिये कि जब चीर-फाड़ के बिना चिकित्सा हो सके तो चीर-फाड़ इष्ट नहीं हो सकती। यह आश्चर्य की बात है कि आज-कल भी जब सर्जरी के आचार्य यह कह चुकते हैं कि अमुक रोग का इलाज बिना ऑपरेशन नहीं हो सकता है तब हमारे साधारण 'जर्राह' 'कागली' लगा कर ही रोग का अन्त कर देते हैं। यह भी हमारे यहाँ की प्रणाली का गुण है, परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि ऑपरेशन हेय है।

इस प्रकार की सादी किन्तु पक्की चिकित्सा-प्रणाणी की पूर्णरूप से रक्षा होना अत्यावश्यक है। प्राचीन गौरव के अभिमान में चूर रहना हानिकारक है। प्राचीन गौरव में हमारा कोई भाग नहीं है। कोट्यधीश पिता का उत्तराधिकारी होने से ही पुत्र की योग्यता सिद्ध नहीं हो सकती है। द्रव्य की रक्षा कर सकने में भी कुछ महत्व नहीं। किन्तु पिता के उपार्जित धन में वृद्धि कर सके तब ही पुत्र की कुछ विशेषता स्वीकृत हो सकती है। जो महान् कार्य सुश्रुत, चरक, वाग्भट्ट इत्यादि ने कर लिया, उससे हम वास्तव में योग्य नहीं कहे जा सकते, प्रत्युत यदि उनके छोड़े हुए कोष की रक्षा भी नहीं कर सकें तो अयोग्य सिद्ध होंगे। बस यही एक महती समस्या है जो आप महानुभाव इस सम्मेलन में हल करेंगे। और यदि इस बड़े प्रश्न को हल करने का कुछ भी उद्योग नहीं हुआ तो यही कहना पड़ेगा कि यह सब कुछ व्यर्थ प्रयास है। अन्य देशों के विद्वान् आज कल निरन्तर उद्योग कर रहे हैं और एक-से-एक बढ़कर चमत्कार दिखा रहे हैं। एक दिन समाचार-पत्र में पढ़ते हैं कि अमुक स्थान में एक बालक का, जो सर्वथा अन्धा था, ऐसा उपचार किया गया जिससे उसको स्पष्ट देख पड़ने लगा। दूसरे दिन पढ़ते हैं कि अमुक स्थान में ऑपरेशन की ऐसी प्रक्रिया हुई कि जिसमें हृदय को अपने स्थान से बाहर निकाल लिया गया और फिर ज्यों-का-त्यों रख दिया गया। कहीं किसी का दूषित गुर्दा निकाल कर दूसरा गुर्दा लगा दिये जाने की बात सुनी जाती है। इन चमत्कारों के उत्तर में यह कह देना पर्याप्त नहीं है कि हमारे यहाँ इससे बढ़ कर चमत्कार होते थे, कटे हुए शिर को जोड़ देते थे, वृद्ध को युवा कर देते थे इत्यादि। आवश्यकता इस बात की है कि हमारी जो कुछ भी विशेषता वास्तव में थी वह आज-कल भी खोज कर निकाली जाय और उसका क्रियात्मक-प्रदर्शन किया जाय जिससे संसार विस्मित होकर देखता ही रह जाय।

मैंने ऊपर कहा है कि विद्या में किसी का ठेका नहीं। तथा यह भी निर्विवाद है कि ज्ञानार्जन की सीमा नहीं। ज्ञान का अटूट भंडार भरा हुआ है, उसमें जो जितना परिश्रम करता है उसको उतना अवश्य मिलता है। यह हम जानते हैं कि शास्त्र; विद्या कला की उन्नति विशेष परिस्थिति में हुआ करती है। विद्योपार्जन और खोज के लिये ऐसे धीर पुरुष

National Centre for the Arts

चाहिये जिनके निश्चित लक्ष्य के अतिरिक्त और कोई उद्देश्य न हो और साथ ही में जीविकोपार्जन की तनिक भी चिन्ता न हो। ऐसे तत्त्वान्वेषी महात्माओं का समाज पर विशेष ऋण है और उनके लिये सब प्रकार की सुविधा करने का उत्तरदायित्व समाज का मुख्य धर्म है। क्योंकि वे जो कुछ भी चमत्कारिक आविष्कार कर सकेंगे उससे समाज को ही लाभ और समाज का ही सुयश है। विलक्षण पुरुषों को राज्य से जीविका दिये जाने का भी वास्तव में यही तात्पर्य्य है कि जब वे विज्ञान-समुद्र में डुबकियाँ लगाते हों तब शाक अथवा लवण का प्रश्न उनको न सतावे। जिस मनुष्य को पद-पद पर अपने और अपने परिवार के भरण-पोषण की चिन्ता रहे वह सामान्यतया शास्त्रीय खोज करने में सफल नहीं हो सकता।

सभी विद्याओं के विषय में और इस लिये रोग-परीक्षा व चिकित्सा के विषय में भी भारतवर्ष को खुली तबियत रखना चाहिये। हम सारे संसार के विद्यागुरु हैं यह सोच लेने से अथवा कह देने से हमारा काम नहीं चल सकता। इसी नशे की धुन में तो हमारा विद्यागुरु का आसन यदि अब तक किसी प्रकार रहा भी है तो अब छिन जाने योग्य होगा। जिस आत्माभिमान के कारण से व्यक्ति तथा जाति भी जीवित रहती है उतना सा आत्माभिमान तो अवश्य होना चाहिये। परन्तु जिस वर्ग से सर्वनाश होना सम्भव है वह सर्वथा परित्याज्य है। हमारा परम कर्तव्य है कि हम अपने घर का लेखा करें। हमारे जो विद्याकोष उपस्थित हैं उनकी संभाल करें और अपना "बैलेन्स शीट" संसार को अन्य जातियों के समक्ष रक्खें। तब दूसरों को यह पता चलेगा और विश्वास होगा कि हमारे पास अब भी ऐसे पदार्थ हैं जो दूसरों के पास नहीं हैं और उनको दिये जा सकते हैं। और हम को भी यह मालूम हो जायगा कि हमारे पास क्या नहीं है जो दूसरों से लिया जा सकता है अथवा जो हम अब पैदा कर सकते हैं। भारतवर्ष के प्रतिनिधि स्वरूप कितने ही दिग्गज पण्डितों ने विज्ञान के क्षेत्र में अद्वितीय आविष्कार करके हमारा शिर आजकल भी समुन्नत किया है। क्या कठिन है इसी प्रकार से आयुर्वेद शास्त्र में अखण्ड उद्योग हो तो भारतवर्ष कमाल करके दिखा दे। इसके लिये यह जानना भी आवश्यक है कि अन्य देशों में क्या और कैसे हो रहा है। दूसरों के संसर्ग की भी आवश्यकता है, विच्छेद की नहीं, क्योंकि शास्त्रोन्नति का उद्देश्य सर्वत्र और सबका समान ही है।

आजकल आयुर्वेद शास्त्र की दशा कुछ अच्छी नहीं है, शास्त्र के परिशीलन की ही अच्छी व्यवस्था नहीं है। इस क्रिया-प्रधान शास्त्र में परीक्षण की भी अत्यन्त आवश्यकता है, इसके लिये आयुर्वेद के विद्यार्थियों के लिये सब प्रकार की सुविधा नहीं है, आयुर्वेद के कम पण्डितों का अंग्रेज़ी भाषा पर अधिकार है, जिससे वे औरों के अनुभव से यथोचित लाभ नहीं उठा सकते हैं। आयुर्वेद की सर्वजन प्रियता भी सन्दिग्ध है, यह प्रायः हमारी सामान्य परिस्थिति का दोष है। यथा नवीन युग में नवीन का ही विशेष समादर होता है।

परन्तु हमारे सौभाग्य की बात है कि अब शनैः २ परिवर्तन हो रहा है, गवर्नमेन्ट तथा देशी राजाओं का ध्यान आयुर्वेद की ओर आकर्षित होने लगा है, प्रजा ने भी विशेष उत्साह दिखाना प्रारंभ कर दिया है। यत्र-तत्र आयुर्वेद के कॉलेज खुलने लगे हैं, कतिपय यूनिवर्सिटियों में भी आयुर्वेद को स्थान मिला है। इससे आशा है कि अब यह शास्त्र आजकल की अवनत दशा में अधिक दिन नहीं रहेगा।

बन्धुओं! भारतवर्ष में जहाँ-तहाँ आवश्यकता है। आयुर्वेद शास्त्र की पाठशालाएँ होनी

Indira Gandhi National Centre for the Arts

चाहिये। उन पाठशालाओं से सम्बन्ध रखनेवाले अस्पताल भी अवश्य होने चाहियें। क्योंकि आयुर्वेद पुस्तक-प्रधान शास्त्र नहीं है किन्तु क्रिया-प्रधान है। इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि पुस्तक का ज्ञान सर्वथा व्यर्थ है, तात्पर्य केवल इतना ही है कि पुस्तकों में दूसरों के अनुभव लिखे हुये हैं, उन अनुभवों का साक्षात्कार किये जाने की आवश्यकता के विषय में जितना कहा जाय थोड़ा है। औषधालय में सब प्रकार के बीमारों को देखने का अवसर विद्यार्थिओं को मिल जाता है जिससे उनका क्रियात्मक अनुभव बढ़ता है। औषधालयों में परीक्षणालय होने चाहियें जिनमें औषध बनाने की प्रक्रिया का प्रत्यक्ष अनुभव हो सके। क्योंकि चतुर से चतुर मनुष्य भी प्रयोगों में केवल कल्पना से सिद्धहस्त नहीं हो सकता।

हमारे वैद्यक ग्रन्थों का अध्ययन विशेष प्रयत्न के साथ होना चाहिए। ग्रन्थों में बहुत सी ऐसी औषधियों का वर्णन है जिनका परिचय सम्भवतः आजकल वैद्यों को न हो। उन अपरिचित औषधियों को पहिचानना और उनके गुणों को जानना बड़ा कार्य है। बहुत से प्रयोग भी ऐसे अवश्य होंगे जिनको आजकल के समय में किया जाना बन्द हो गया है। उन प्रयोगों का पुनरुद्धार होना चाहिये। इस कार्य में प्रदर्शिनी से बड़ी सहायता मिलती है यह निर्विवाद है। इस सिद्धान्त के अनुसार यहाँ पर भी प्रदर्शिनी का प्रबन्ध किया है। स्थान-स्थान से जड़ी बूटियाँ और औषधियाँ एकत्रित करके प्रदर्शिनी को यथाशक्ति सर्वाङ्ग पूर्ण करने का प्रयत्न किया गया है। प्रदर्शिनी के उद्देश्य का विस्तार होने की अत्यन्त आवश्यकता है। क्योंकि पदार्थों के वास्तविक प्रत्यक्ष ज्ञान और उनके संमिश्रणादि प्रयोगों का आनुभाविक ज्ञान आयुर्वेदीय चिकित्सा-शास्त्र की सफलता का एक प्रधान अङ्ग है।

नई जड़ी बूटियों की खोज भी आयुर्वेद की वृद्धि के लिये की जानी चाहिये। यह कठिन कार्य है। इसके लिये विद्यार्थियों और आचार्यों के सङ्ग जङ्गल और पहाड़ों में भ्रमण करे। ग्रामवासियों के पास जो अलिखित ज्ञान है वह प्राप्त किया जा सकता है। जहाँ पर वैद्यों की पहुँच नहीं है, अथवा जिस स्थान के मनुष्य वैद्यों के पास नहीं पहुँच सकते, वहाँ पर मनुष्यों के स्वास्थ्य की रक्षा कैसे होती है, वे क्या उपाय करते हैं, कैसी औषधियों का प्रयोग करते हैं, उनका कब-कब क्या-क्या फल होता रहा है, यह सब कुछ मेरी सम्मति में संग्रह करने योग्य है। बहुत संभव है कई नवीन बातों का पता चले, जो पुस्तकों में नहीं है।

आयुर्वेद सर्वसाधारण के लिये पहिले से ही सुलभ है, परन्तु वास्तव में पूर्ण लोकोपकारक करने के लिये इसको और भी सुलभ बनाना चाहिये। हमारे देश में जनता की आर्थिक स्थिति, सब जानते और मानते हैं कि, संतोषजनक नहीं है उनके लिये यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि अधिक व्यय का पदार्थ बहुत दुर्लभ होगा। जहाँ पर मुफ्त में अथवा सस्ती औषध मिल सके ऐसे स्थान बहु होने चाहियें। इसके लिये धनिकों की विशेष सहायता की आवश्यकता है। सन्तोष का स्थान है कि हमारे कई धनकुबेरों ने अपने निज के व्यय से ऐसे औषधालय खोल रखे हैं। आशा है इस दिशा में और भी उद्योग होगा। एतद्देशीय चिकित्साप्रणाली का सर्वसाधारण में प्रचार होने से बड़ा लाभ होगा।

भद्रानुभावों! आजकल विज्ञान का युग है और विज्ञान स्थिर नहीं है, इसकी वृद्धि उत्तरोत्तर सर्वत्र हो रही है। इसलिये आयुर्वेद के आचार्यों को चाहिये कि वे चिकित्सा-संसार के साथ पूर्ण संसर्ग रक्खें। कहाँ क्या-क्या विलक्षण आविष्कार हो रहे हैं, इससे परिचय प्राप्त करें। अंग्रेजी भाषा द्वारा डाक्टरी विद्या के ग्रन्थों का परिशीलन करें। "सर्जरी" के ग्रन्थों से

Indira Gandhi National Centre for the Arts

देखकर अपने यहाँ की शस्त्र-क्रिया को आवश्यकतानुसार संशोधित और परिवर्धित करें। मेरे विचार से पार्थक्यदोष शास्त्रोन्नति के मार्ग में बड़ा बाधक होता है। अपने पास अच्छा हो तो दूसरों को देना चाहिये, दूसरों के पास अच्छा हो तो लेना चाहिये, जैसे मैंने कहा यह सोचना कि हमारी विद्या उत्कृष्ट है, दूसरों की नहीं, सर्वथा वृथा और अनिष्टकारक है। विद्या सब एक है और परस्पर के हार्दिक संयोग से उसकी सर्वाङ्ग वृद्धि होनी चाहिये।

उदारचरित सज्जनों! मुझको और कुछ विशेष अब नहीं कहना है। विद्योन्नति के लिये निःस्वार्थ भाव और त्याग की आवश्यकता है। केवल धन के लोभ से विद्योपार्जन के लिये जो उद्योग होगा वह पूर्णतया सफल नहीं हो सकता। धनोपार्जन भी आनुषङ्गिक फल हो सकता है। परंतु विद्या तो विद्या के लिये ही होनी चाहिये, इस भाव को अङ्गीकार करनेवाले विद्यार्थी होंगे तब आयुर्वेद की उन्नति में कोई सन्देह नहीं रह जायगा। ऐसी परिस्थिति बनाई जानी चाहिये जिसमें विद्यार्थियों में विद्यालाभ का नशा पैदा हो जाय। दूसरे देशों में भी यही होता है, समाज ऐसे निःस्वार्थ महात्माओं की सहायता करता है। भारतवासियों का तो यह सहज गुण है, उनको यह भाव दूसरों से सीखने की अपेक्षा नहीं है।

इस सम्मेलन से विचारशील जनता को बड़ी आशायें हैं। उन आशाओं की पूर्ति होनी चाहिए। बड़े परिश्रम से और व्यय से ऐसे अवसर सुलभ होते हैं। इनमें सदा कुछ न कुछ मार्के की बात होती रहनी चाहिए। पारस्परिक समागम और वार्तालाप से जीवनसञ्चार अवश्य होता है और कुछ न कुछ लाभ तो होता ही है परन्तु हमारे लिये ये आनुषाङ्गक लाभ ही पर्याप्त नहीं होना चाहिये। शास्त्रोन्नति के लिये यह सम्मेलन होता है, यह कैसे सफल हो इसका उपाय सोचना आप जैसे प्रकाण्ड पण्डितों का कार्य है। हम साधारण जन भी आप महानुभावों की सेवा के लिये तत्पर हैं। कोई ऐसा मार्ग निकाला जाय जिससे हमारे इस प्राचीन शास्त्र की चिरस्थायिनी सेवा हो, इस शास्त्र का विशेष प्रचार हो और उसकी वृद्धि हो। जिन विद्वानों ने शास्त्र का मथन किया है और जिनका अनुभव है उनके लिये ऐसे उपाय सोच निकालना कोई कठिन कार्य नहीं है।

अब, अन्त में, मैं आप लोगों को स्वागतसमिति की ओर से तथा अपनी ओर से अनेक हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। हमसे आप महानुभावों की कुछ सेवा-सुश्रूषा का प्रबन्ध नहीं बना, इसके लिये आप हमको क्षमा कीजियेगा। भगवान् आपका उद्योग सफल करे, और इसी प्रकार प्रति वर्ष सम्मेलन होकर जनता को परामर्श करने का सुअवसर मिलता रहे, यही हमारी आन्तरिक प्रार्थना है।

॥ शुभम् ॥

Indira Gandhi National Centre for the Arts

॥ श्री धन्वन्तरिर्विजयते ॥

निखिल भारतीय २२ वें आयुर्वेदिक सम्मेलन ग्वालियर, स्वागत-समिति के अध्यक्ष

डॉक्टर यशवंत गोविन्द आपटे,

बी० ए०, एल० एम० एस० का

भाषण

आयुर्वेद प्रेमी उपस्थित सज्जनवृन्द—

(१) ग्वालियर राज्य के होम मेंबर, श्रीमंत खासे साहब पवार ने अपने प्रस्ताविक भाषा में आपका हार्दिक स्वागत करके इस २२ वें निखिल भारतीय आयुर्वेदिक सम्मेलन के कार्य का प्रारंभ किया है। इस हार्दिक स्वागत से आपको अवश्य संतोष हुआ होगा। स्वागत समिति को होममेंबर साहेब की आज्ञा थी कि संमेलन का निमंत्रण स्वीकार कर आप दूर-दूर से यहाँ पधारे हैं इसलिये आपका ग्वालियर का अल्प निवास सुखकारी होवे ऐसा प्रबंध किया जावे। इस आज्ञानुसार स्वागत समिती ने जो-जो प्रयत्न करने का था वह किया है। तथापि बहुत संभव है कि कई त्रुटियाँ रही होंगी, और आपको कष्ट हुआ होगा। स्वागत-समिती की ओर से मैं आपको इतना ही विज्ञप्ति करता हूँ कि 'क्षम्यताम्'।

अब आप जिस कार्य के लिये उपस्थित हुवे हैं उसको प्रारंभ करेंगे, ऐसे समय उक्त कार्य संबंधी कुछ अल्प मति के विचार आपके सम्मुख रखने की धृष्टता करता हूँ।

(२) आयुर्वेद का प्राचीन इतिहास आपको ज्ञात है। वह समय था कि आयुर्वेद की अष्टांग-चिकित्सा इतर देशों के तुलना में बहुत आगे बढ़ी हुई थी। शवच्छेदन से शरीर-ज्ञान भली भाँति हो जाता था। इस कारण शस्त्र-क्रिया उत्तम प्रकार हो सकती थी। आयुर्वेद का पहिला ही विभाग शल्य-तंत्र है। इस देश में सर्व प्रकार की वनस्पतियाँ उत्पन्न होती हैं। अनुभव से काय-चिकित्सा में विविध रोगों पर उनका प्रयोग किया जाता था, और ऐसे अनुभव पर विद्वान् लोगों के परिषदों में चर्चा होकर सर्व मान्य अनुभव विविध ग्रंथों में एकत्रित किये जाते थे। यह ग्रंथ भाषांतर होकर पश्चिम के देशों में—अरबस्थान में व ग्रीस में—गये। वहाँ उनके अंग-प्रत्यंगों का देश-काल-स्थित्यनुसार परिवर्तन हुआ। कई विभागों का विशेष रूप से विकास हुआ। यह सब आयुर्वेद का ही विस्तार समझना चाहिये। आयुर्वेद के ही तत्वों का व शिक्षा का वह परिणत स्वरूप है। इस कारण जब आप आयुर्वेद के पुनरुन्नति का प्रयत्न करते हैं, तब ऐसे परदेशस्थ आयुर्वेद के उन्नत स्वरूप के ज्ञान से आपको वंचित नहीं रहना चाहिये। 'बालादपि सुभाषितं ग्राह्यम्'—'गुणिषु न च लिंगं नच वयः', इत्यादि वाक्यों से ज्ञान ग्रहण करने के लिये कोई भी देश, काल, जाति वर्ज्य नहीं है। विशेषतः जब पाश्चात्य वैद्यक भारतीय आयुर्वेद से वृद्धिंगत हुवा है, तब यहाँ के देश-काल

Indira Gandhi National Centre for the Arts

स्थित्यनुसार उसका जो भाग ग्रहणीय हो उसका प्रतिग्रह करने में कुछ भी संदेह होने की आवश्यकता नहीं है।

(३) कालांतर में आयुर्वेद का शस्त्रक्रिया का भाग आर्यावर्त में ही लुप्त हुआ। शस्त्र क्रिया में होने वाला रक्तमांसादि का अनिवार्य स्पर्श अहिंसा मत-वालों को असह्य हुवा। शरीर के विज्ञान के लिये शवच्छेदन आवश्यक था उससे लोगों का चित्त हटा। इस प्रकार शारीर-विज्ञान व शस्त्रक्रिया दोनों से परावृत्ति हुई। औषधि का उपयोग व चिकित्सा की इतर क्रिया इन पर ही शास्त्रज्ञों का विशेष विश्वास होने लगा। शरीर के जिस विकृत क्रिया से रोग की उत्पत्ति हुई हो उसी विकृत क्रिया को पलट कर एक एक अंश उलट कराने से रोग स्थिति हटनी चाहिये यह तत्वतः भी सत्य है।

(४) शस्त्रक्रिया सचमुच रोग की चिकित्सा ही नहीं है। रोग के परिणाम उससे हट सकते हैं, रोग के कारण नहीं हटाये जाते। मूत्राशय में मूत्राश्मरी होने से जो पीडा होती है वह अश्मरी को निकालने से दूर होती है, परंतु शरीर के जिस विकृति से अश्मरी उत्पन्न हुई हो वह विकृति अश्मरी को शस्त्रक्रिया से निकाल देने से जाती नहीं है।

रोग का परिणाम भी न हटाते हुवे रोगी का व्यंग, शस्त्रक्रिया से अंश में दूर हो सकता है, जैसा कि Corneal opacity में Iridectomy करने से; या कठिन स्थिति से छुटकारा हो सकता है जैसा कि Pelvic deformity में Coeserian Section से गर्भविमोचन। इस प्रकार जहाँ चिकित्सा कुंठित होती है वहाँ शस्त्रक्रिया की सहायता बहुमूल्य होती है। 'Surgery comes in when Medicine despairs.' चिकित्सा में जब ऐसी स्थिति प्राप्त होती है कि शास्त्रक्रिया से ही रोगी के प्राण अथवा अतीव कष्ट बच सकते हैं, तब शस्त्रक्रिया आवश्यक होती है। परंतु यह सब मान लेने पर भी शस्त्रक्रिया का क्षेत्र मर्यादित है। पाश्चात्य देशों में अवश्य से अधिक शस्त्रक्रिया का उपयोग होता है ऐसा उधर के ही पंडितों का अभिप्राय हो रहा है।

यह स्थिति इस देश में नहीं होगी, क्योंकि शस्त्रक्रिया के बहुत से कार्य शस्त्र बिना इतर क्रिया से हो सकते हैं ऐसा आयुर्वेद का अनुभव है।

(५) जिस प्रकार एक व्यक्ति की रोगचिकित्सा में निःशस्त्र उपायों का अवलंब ही आयुर्वेद को विशेष संमत है, ठीक उसी प्रकार प्राचीन आयुर्वेद प्रवीण ऋषि तुल्य महात्मा की शिक्षानुसार देश के विराट पुरुष के राजकीय रोग-चिकित्सा में भी निःशस्त्रता का ही अवलंबन करने के बावत आर्यावर्त का दृढ निश्चय हुआ है यह आप आजकल देख रहे हैं, इस नवीन चिकित्सा-पद्धति को यश प्राप्त होने पर सर्व संसार के राजकीय आंदोलन में परिवर्तन होगा! इस कारण सर्व जगत का ध्यान इस देश की ओर आकर्षित हुआ है।

(६) शस्त्रक्रिया के अलावा कई उत्तम गुणकारी औषधियों का संग्रह पाश्चात्य वैद्यक में है। आर्यावर्त संपूर्ण जगत का एक छोटा सा नमूना है, संपूर्ण जगत के औषधि के प्रतिनिधि प्रायः यहाँ मिलते हैं। परंतु पाश्चात्यों ने खनिज पदार्थ, वनस्पति, व प्राणी मात्र एवम् संपूर्ण सृष्ट पदार्थों से अपनी रसायन विद्या के ज्ञान द्वारा जो नये नये पदार्थ निर्माण किये हैं उनका भी परिचय आयुर्वेद को कर लेना चाहिये। यह प्रथा पहले से ही चली आ रही है। देश के बाहर के पदार्थों का गुण-वर्णन आयुर्वेद में मिलता है। आजकल की परिस्थिति में पाश्चात्य वैद्यक जिन नये नये पदार्थों का उपयोग करता है, उसके गुणागुण एवम् किन रोगी अवस्था

Indira Gandhi National Centre for the Arts

में उनका विशेष प्रभाव ज्ञात हो सकता है, यह जान कर उनको अपने निघंटु में समाविष्ट करके उनसे लाभ उठाना चाहिये।

'तदेव युक्तं भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते' यह आयुर्वेद का महामंत्र है। ब्रिटिश फार्माकोपिया ने—Indian Addendum—हिंदुस्थानी औषधि का परिशिष्ट जोड़ने में लज्जा नहीं मानी। उसी के अनुसार अपने बृहन्निघंटु को पाश्चात्य औषधि का परिशिष्ट जोड़ने में हमको कोई संदेह नहीं होना चाहिये। पाश्चात्यों की बहुमूल्य औषधि अपने देश में बनाकर उनका उपयोग किया जाय तो उससे एक से अधिक लाभ होंगे। हिंदुस्थान के कई कारखानदारों ने ऐसी औषधि बनाने कार्य का प्रारंभ किया है। इस कारण वह अपने देश की ही औषधि समझनी चाहिये।

(७) रासायन रीत्या नव निर्मित शुद्ध औषधि का उपयोग करने में यह अवश्य ध्यान में रखना चाहिये कि यह औषधि प्रायः तीव्र गुणों की होती हैं, विष समान है। उनके उपयोग में विशेष सावधानी रखनी चाहिये। बालक के हाथ में शस्त्र, एवम् ऐसी औषधि अपूर्णविद्य चिकित्सक के हाथ में होगी। ऐसे ही सुरक्षिता के विचार से आयुर्वेदीय चिकित्सा में प्रायः सौम्य काष्टौषधि का ही विशेष प्रमाण में उपयोग होता है। पाश्चात्य वैद्यक में थोड़ा ही समय हुआ है कि निरिंद्रिय पदार्थों की अपेक्षा सेंद्रिय पदार्थों के रसायन मिश्रण से ही औषधि का उपयोग विशेष हितकर समझा जाने लगा है, जैसा आयुर्वेद में पहिले ही से प्रचार में है। परंतु तीव्र रोगों में तीव्र गुणों के औषधि की भी आवश्यकता होती है। आयुर्वेद निघंटु की यह न्यूनता इन नई औषधियों से पूरी हो जावेगी।

(८) परदेशी औषधियों को अपने निघंटु में समाविष्ट करने के पूर्व अपने निघंटु का संशोधन कर लेना भी आवश्यक है। वह इस कारण कि जो औषधि विशेष गुणकारी हों उन्हीं का उपयोग होता रहे। मध्यम वा कनिष्ट गुणों की औषधि कम की जावे। वैसे तो 'नास्ति मूलं अनौषधम्'—हर वस्तु का औषधि में उपयोग हो सकता है। परंतु मानव-बुद्धि मर्यादित होने से सर्व औषधि का विशेष अभ्यास व उनका यथोचित उपयोग हो नहीं सकता। इस कारण जो विशेष गुणकारी हों उन्हीं को चुन चुन के थोड़ी परंतु अत्यंत व निश्चित प्रभावशाली औषधि उपयोग में रहना अधिकांश में सुभीते का होगा।

वैद्यक ग्रंथों में बहुत बड़ी संख्या में औषधि का वर्णन है। उसकी आवश्यकता इस कारण थी कि विशेष प्रभावशाली औषधि सर्व स्थान पर प्राप्त होना असंभव था, उनके अप्राप्त स्थिति में उनके प्रतिनिधि ज्ञात होना आवश्यक था। अब वह कठिनता नहीं है। व्यवहार के मार्ग सुकर हो गये हैं, उत्तर देश का औषधि द्रव्य दक्षिण देश में सुलभता से मिल सकता है। इस कारण ऐसे हीनबल प्रतिनिधि औषधि का वर्ग निखिल भारतीय निघंटु में रखने की आवश्यकता नहीं। आवश्यक हो तो प्रांतीय निघंटु में वह रहे। 'यस्य देशस्य यजंतु तज्जं तस्यौषधं हितम्' यह सत्य है परंतु व्यवहार के लिये अपने देश की मर्यादा अब 'गोदायाः दक्षिणे तीरे' अथवा 'नर्मदायाः उत्तरे तीरे' ऐसी न रहकर आसेतुहिमाचल हो गई है, जैसे कि इस समेलन से ही निदर्शित होता है। इतना ही नहीं, परंतु नवखंड पृथ्वी की वैद्यक शास्त्रदृष्टया एक देश ही समझने का प्रसंग आ रहा है।

(९) जैसा निघंटु का, वैसा ही इतर ग्रंथों का भी संशोधन आवश्यक है। कई ग्रंथ कालवशात् लुप्त हो गये हैं, अथवा उनके अंश ऐसे विकृत रूप में उपस्थित हैं कि वे आज

Indira Gandhi National Centre for the Arts

दुर्बोध से हैं। 'शरीरे सुश्रुतो श्रेष्ठः' इस उक्ति की जिस ग्रंथ की श्रेष्ठता, उसी को 'शारीरे सुश्रुतो नष्टः' यह लांछन लगने का प्रसंग प्राप्त हुआ है। यदि चेत् पूर्ण ग्रंथ अप्राप्य हो गया हो तो वह पाश्चात्य वैद्यक की सहायता से पुनः नवरूप में लिखना ही योग्य होगा। ऐसा एक अपूर्व-प्रयत्न अपने मान्यवर डॉ० गणनाथ सरस्वती महोदय ने किया है, जिसकी प्रशंसा समस्त जगत् में हुई है। उनके अन्य दूसरे ग्रंथ इसी प्रकार मुद्रित हो रहे हैं। ऐसे ग्रंथ के पारिभाषिक शब्दों के सम्बन्ध में कुछ अंश में मतभेद होना संभव है। परंतु सरल बुद्धि के शंका-प्रत्युत्तर रीति से समीकरण हो सकता है।

(१०) बहुंश लुप्त ग्रन्थों की पुनर्रचना आवश्यक है। उसी प्रकार, परन्तु भिन्न कारण से संपूर्ण प्राप्य ग्रन्थों का भी विस्तरण आवश्यक है। पुराने ग्रन्थ हस्त लिखित होने से कंठगत करने के लिए सूत्ररूप में रचित हैं, इस कारण कई स्थानों में वह दुर्बोध हैं, ऐसे स्थानों के अर्थ के संबध में चर्चा होकर जो भाव सर्वमान्य हो उसको सूत्र के विस्तरण रूप में लिखना आवश्यक है। ऐसे दुर्बोध स्थानों के कारण पुराने ग्रंथ के कई तत्व चिंत्य समझे जाते हैं।

(११) संस्कृत भाषा में ऐसी नई ग्रन्थ-रचना करने के लिये विशेष भाषा-प्रभुत्व आवश्यक है। परंतु आयुर्वेदिक ग्रन्थों की विषयवार पुनर्रचना करने में कठिनाई नहीं है। आयुर्वेद विद्यालयों के अध्यापकों को अपने विद्यार्थी को एक ग्रन्थ समझाने में दूसरे ग्रन्थों से अवतरण लेकर टिप्पणियाँ करनी हीं पड़ती होंगी। उनकी सहायता से विविध ग्रन्थों में बिखरे हुवे विचार विषयवार एकत्रित करने से विषयवार नये ग्रन्थ करना सुलभ होगा। ऐसे ग्रन्थों से पूर्वकालीन ग्रन्थकारों के मतांतर भी ठीक प्रकार दृश्य होंगे और उनके साथ पाश्चात्य ग्रन्थों के विचार की तुलना हो सकेगी।

(१२) ऐसा तुलनात्मक विचार करने के लिये वैद्यों को अंग्रेजी भाषा ज्ञान होने की आवश्यकता है। पाश्चात्य ग्रन्थों के अवलोकन के लिये जैसी आवश्यकता है वैसी ही आजकल वैद्यक के राजकीय स्वरूप में जो आंदोलन हो रहा है उससे, आयुर्वेद की प्रगति को सहायता न होती हो तो कम से कम विरोध तो न हो, इस कारण उक्त आंदोलन का स्वरूप ठीक प्रकार समझने के लिये वैद्यों को अंग्रेजी भाषा से परिचित रहना चाहिये। हिंदुस्थान में वैद्यों के मेडिकल सर्टिफिकेट को राजमान्यता नहीं है। ऑल इन्डिया जेनरल कौंसिल स्थापित होने की चर्चा हो रही है उसमें वैद्यों को कोई भी स्थान मिलने का संभव नहीं है। Drugs Enquiry Committee की रिपोर्ट अभी हाल में प्रकाशित हुई है। उसके कार्य से आयुर्वेदीय वैद्यक का घनिष्ट संबंध आ सकता है। Indian Pharmacopœa बनाने की सूचना हुई है उसमें वैद्यों की उत्तम प्रकार सहायता हो सकती है। वैद्यों के आसव व अरिष्ट बनाने में Excise Act के विरुद्ध क्रिया होती है या नहीं यह प्रश्न उपस्थित किया गया है। ऐसे समय प्रचलित राजनीति से भी वैद्यों को परिचय होने की आवश्यकता है। स्वायत्तता पूर्ण स्वराज्य होने पर भी उसकी आवश्यकता रहेगी। आगामी काल के स्वराज्य में आयुर्वेद की उन्नति की तयारी का प्रारंभ आज करने का समय प्राप्त हो गया है।

(१३) इस सभा में बहुतांश में वैद्यों की उपस्थिति होने से उनको वैद्यक के अतिरिक्त किन दूसरी बातों से परिचित होना चाहिये इसका मैंने उल्लेख किया है। पाश्चात्य डॉक्टरों का सम्मेलन होता तो उसमें उनको संस्कृत भाषा का विशेष ज्ञान संपादन करने की तथा ग्रन्थों का भावार्थ ठीक प्रकार समझने के लिये अन्य शास्त्रों से परिचित होने की आव-

Indira Gandhi National Centre for the Arts

श्यकता का मैं प्रतिपादन करता । कारण इसके अभाव से आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थों का भावार्थ ठीक प्रकार ज्ञात न होकर उपहास बुद्धि से उसके तत्वों की आलोचना होती है । वैद्यों का उपहास डाक्टर करेंगे तो डॉक्टरों का उपहास वैद्यों को करने को भी बहुत कुछ जगह है। पाश्चात्य वैद्यक में भी बहुत सा अनर्थ-पांडित्य है। परन्तु ऐसी उपहासवृत्ति शास्त्रज्ञों को उचित नहीं है । अस्तु ।

(१४) शरीर के स्वस्थ-स्थिति में जिह्वालौल्य के कारण अनेक रसों के पदार्थ एकत्रित करके अभिनव पकान्न मनुष्य तयार करता है । परंतु शरीर के रोगी स्थिति के सुधार के लिये औषधि-द्रव्य जितने थोड़े और निश्चित प्रभावी होंगे उतना चिकित्सा-प्रयोग अधिक यशस्वी होगा । शरीर के जीवन-क्रिया का ज्ञान अपूर्ण है। उस पर औषधि के परिमाण किस प्रकार होते हैं इसका ज्ञान और भी अपूर्ण है । इस स्थिति में दस बीस पदार्थ, एकत्रित करके उनका प्रयोग रोगी के शरीर पर करने से किस द्रव्य का क्या परिणाम हुवा यह ज्ञात होना असंभव है ।

इस विचार से पाश्चात्य वैद्यक में एक मत ऐसा प्रस्तुत हुआ है कि रोगी के उपचार में एक समय एक ही औषधि का प्रयोग किया जावे । उसी के साथ औषधि के परिणाम मात्रा-भेद से विविध होते हैं, यह जानकर सूक्ष्म मात्रा का ही एक उपयोग किया जाता है मात्रा भेद का परिणाम विभिन्न होता है यह रोज का अनुभव है । मृदु स्पर्श से जो संवेदना होती है वह कठोर आघात से बहुत ही विभिन्न होती है । परन्तु आश्चर्य यह है कि ऐसे कठोर आघात के दुष्परिणाम को मृदु मर्दन उत्तम रीति से दूर भी कर सकता है । ऐसे अनुभव पर होमिओपॅथी का मत प्रस्थापित है। आयुर्वेद के तत्वों में सर्व प्रकार के चिकित्सा पद्धति का निदर्शन है । होमिओपॅथी का भी मूल उसमें है ।

(१५) होमिओपॅथी एक मूल तत्व पर कटिबद्ध है । इससे उसके चिकित्सा में विशेष परिवर्तन नहीं होता है परन्तु ॲलोपॅथी में एक साल का आविष्कार दूसरे साल पीछे पड़ जाता है । Venesection, Blistering, Injections Hypodermic, intramuscular, intravenous, intraspinal, Alkaloidal medication, Colloidals Opsonin, Antitoxins, Autovaccines, Organ-therapy, Hormones therapy, Vitamins इत्यादि प्रकार प्रचलित हो कर पीछे पड़े हैं और कल कौन सा नवमत प्रस्थापित होगा इसकी अपेक्षा की जाती है । इसका कारण यह है कि ॲलोपॅथिक औषधि तयार करने में बहुतांश में व्यापारी-पद्धति का अवलंबन होता है। रोज नये वस्तु का डंका बजाकर लोगों का ध्यान आकर्षित किया जाता है ।

डॉक्टरों के धंधे पर भी ट्रेड यूनियन के स्वरूप की अनुचित छाया पड़ रही है । वैद्यों को चाहिये कि इस उदाहरण का परिणाम अपनी वैद्यक्रिया पर न होने दें ।

वास्तव में सर्व मतमतांतरों में कुछ सत्य है । विशेष आश्चर्य है कि इसमें से बहुत से मतों को आयुर्वेद शिक्षा में पुष्टि मिलती है । इस कारण इन नवमतों का परिचय कर लेना आयुर्वेद उपासक को कठिन न होकर उपयोगी होगा । उससे आयुर्वेद के तत्वों पर विश्वास अधिक दृढमूल होगा ।

(१६) सर्व चिकित्सा का उद्देश्य रोग-निवारण है । और इसी कारण 'स एव भिषजां श्रेष्ठो रोगेभ्यो यः प्रमोचयेत्' यह वचन है ।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

आयुर्वेद की यह घोषणा ऐसी है कि जो आपको हर एक चिकित्सा-पद्धति का परिचय करने को निमंत्रण करती है, और इनके अनुभव को अपनाये जाकर रोग-निवारण में उनका यथोचित उपयोग करने को अधिकार प्रदान करती है। रोग-निवारण के विचार आप पर भाव-लुप्त होकर सर्व-सृष्टि के विविध पदार्थों का व उपायों का अवलंबन करना अपना श्रेष्ठ कर्तव्य हो जाता है।

(१७) ग्वालियर में सरकारी ॲलोपॅथिक अस्पताल व डिस्पेन्सरीज होते हुये, यहाँ के म्युनिसिपालिटी ने नगरवासियों के रोगचिकित्सा के लिये आयुर्वैदिक डिस्पेन्सरी आज कई वर्षों से खोली है। आरम्भ में उसका कार्य कै. रामकृष्ण वेणीमाधवाचार्य ने उत्तम रीति से यशस्वी कर बताया और उनके पश्चात उनके सुपुत्र पंडित रामेश्वर शास्त्री जी चला रहे हैं। कै. श्रीमंत माधवराव महाराज ने सरकारी मेडिकल विभाग से उसको आर्थिक सहायता दी। उसका उपयोग देखकर ऐसे आयुर्वैदिक छोटे-मोटे दवाखाने इस राज्य में और २५ जगह खोले गये हैं और सरकारी दवाखानों में भी देशी औषधियों का उपयोग होता है। कच्ची औषधियाँ और सिद्ध औषधियाँ लोगों को बिना कष्ट और विश्वस्त रूप में मिलने के लिये यहाँ एक बड़ा औषधि-संग्रह आयुर्वैदिक ॲंड यूनानी फार्मेसी में रखा है। इस फार्मेसी को आरंभ से पंडित गणेशदत्त शास्त्रीजी, व्याख्यान वाचस्पति, ने नितान्त परिश्रम से उन्नत अवस्था को लाये। शास्त्रीजी शुद्ध वैद्य न होते हुवे भी आयुर्वेद औषधि-क्रिया का विशेष अभ्यास किया, जंगलों में घूमकर आयुर्वेद-वर्णित सच्ची बनस्पति एकत्रित की और विश्वसनीय रीति से सर्वमान्य पाठानुसार सिद्ध औषधि तयार कर रखी। शास्त्री जी अब इस कार्य से निवृत्त हुये हैं और फार्मेसी की व्यवस्था पंडित रामेश्वर शास्त्री देखते हैं।

पंडित रामेश्वर शास्त्री जी के अधिपतित्व में यहाँ आयुर्वेद विद्यालय भी है, जहाँ से कई विद्यार्थी विशारद परीक्षा में और एक आचार्य की परीक्षा में उत्तीर्ण हुये हैं।

मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप समयानुसार इन स्थानिक आयुर्वेद संस्थाओं का निरीक्षण करके उनके सुधार के बाबत अपनी अनुभविक सूचना का लाभ दें।

आपका अधिक समय न ले कर आपको सूचित करता हूँ कि आप अपना नियोजित कार्य का आरंभ करें।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

निखिल भारतवर्षीय २३ वें वैद्यसम्मेलन बीकानेर के प्रदर्शनोद्घाटन के अवसर पर

महाराजा सर भैरूँसिंहजी बहादुर का

भाषण

ठीक समयपर महाराज सर भेरूँसिंहजी की सवारी भी पधार गई थी। आपका सबने उठकर सम्मान किया। पुष्पहारादिसंमान के अनन्तर महाराज ने अपना भाषण पढ़ा जिसका सरांश यह था कि—

"आप दूर-दूर से हमारी इस बीकानेर राजधानी में आयुर्वेदोद्धारार्थ पधारे हैं। इसकी मुझे बड़ी भारी प्रसन्नता है। मैं आपका हृदय से स्वागत करता हूँ। सज्जनों, एक हमारी प्राचीन आयुर्वेदिक पद्धति ही है जो आजके वैज्ञानिक युग की चकाचौंध में टिक रही है। यही आयुर्वेद की परम वैज्ञानिकता या सत्यता का सबूत है। इतना ही नहीं, आयुर्वेदपद्धति ही एक ऐसी है जो गरीबों से लेकर अमीरों तक समान उपकार करती है और सब पद्धतियों से बहुत सस्ती है। जहाँ का जन्मा हुआ प्राणी होता है वहाँ की उत्पन्न औषधि उसके लिए हितकारी है। इस प्रकार विचार करके ही हमारी बीकानेर गवर्नमेन्ट ने सन् १९२८ ई० में एक कमेटी कायम की। उसकी सिफारिशों के अनुसार राज्य के कई ग्रामों में "आयुर्वेद औषधालय" खोले गये। बीकानेर गवर्नमेण्ट सुभीते के अनुसार फिर इस विषयपर विचार करेगी।"

सम्मेलनोद्घाटन के समय

लेफ्टिनेण्ट-जेनरल हिज हाइनेस महाराजा साहिब बीकानेर, जी० सी० एस० आई०, जी० सी० आई० ई०, जी० सी० वी० ओ०, जी० बी० ई०, के० सी० बी०, ए०-डी०-सी०, एल-एल० डी०, की ओर से बीकानेर में दिसम्बर, सन् १९३२, में होनेवाले अखिल भारतवर्षीय २३ वें वैद्यसम्मेलन के प्रति —

बीकानेर-नरेश का सन्देश

१. मुझे खेद है कि, अस्वस्थता के कारण, मैं अखिल भारतवर्षीय वैद्यसम्मेलन के इस २३ वें अधिवेशन को खोलने से वंचित रहा। किन्तु अपनी राजधानी में आप लोगों के स्वागत का यह सन्देश अपने भाई महाराज श्री भैरूँसिंहजी बहादुर के द्वारा भेजने में मुझे वास्तविक आनन्द होता है।

२. यद्यपि पश्चात्य चिकित्सा-शास्त्र में, विशेषतः सरजरी (शल्य-क्रिया) पैथोलॉजी और केमिस्ट्री (रसायन-शास्त्र) में आश्चर्यजनक उन्नति और सफलता हो चुकी है फिर भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि कई बड़ी अड़चनें के होते हुए भी अपनी प्राचीन संस्कृति के और रोगों से पीड़ित जनता के सौभाग्य से अब भी कई चमत्कारिक गुण दिखलाने वाली जड़ी बूटियाँ, औषधियाँ और बहुमूल्य आयुर्वेदिक नुस्खे विद्यमान हैं जिनको मैं अपने निज के अनुभव से कृतज्ञतापूर्वक प्रमाणित कर सकता हूँ, और यह ज्ञान की पुरातन ज्योति अब तक जगमगाती रही है जिसका श्रेय प्रधानतः आप जैसे महाशयों को ही है।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

३. आप भारत के भिन्न-भिन्न भागों से दूर-दूर से आये हैं, यही इस बात का प्रमाण है कि आप आयुर्वेद की प्राचीन विद्या के पुनरुद्धार और उन्नति में कितने दत्तचित्त एवं तत्पर है और आप लोगों ने आयुर्वेद की और विशेषतः उसके निराले गुणों को देश के संपूर्ण भागों में प्रकट करने की आवश्यकता का अनुभव किया है। और इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये स्थान-स्थान पर सम्मेलन और सभाएँ करने की प्रथा को अंगीकार किया है। यह प्रथा भी हमारी प्राचीन संस्कृति के लिये नई नहीं है।

४ प्राचीन सिद्धान्तों को सिद्ध करने के लिये आपका नवीन पद्धतियों को अपनाना पूर्णतया उपयुक्त है। हमारी समस्त प्राचीन विद्याओं में यह एक महान् गुण है कि वे सनातन हैं और सर्वत्र एवं सर्वदा उपयुक्त हैं। इतनी बात अवश्य है कि देश और काल के अनुसार उनका उपयोग भिन्न-भिन्न रीति से होता है, और इसी में भावी सन्तति की चतुराई है। इसी में प्राचीन औषधि-विज्ञान के सम्बन्ध में आपकी जानकारी और उसमें आपके गति के लिये काफी गुंजायश है। यदि मैं कुछ कहने का साहस करूँ तो आपसे अनुरोध करूंगा कि प्राचीन तथा नवीन, प्राच्य एवं पाश्चात्य, विज्ञान की समस्त अच्छी-अच्छी बातों को लेकर उनको एकत्र करने के लिये आवश्यकता है कि आप अपने साधारण वैद्य समाज के हृदय पर पाश्चात्य विज्ञान की लेबोरेटरी मेथड अर्थात् प्रयोग शैली पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता को अंकित कर दें और इस बात पर अधिक जोर दें कि वे लोग मानवशरीर-विज्ञान (anatomy) और निदान के नवीन साधनों का अधिक गहरा और विस्तृत ज्ञान प्राप्त करें। और यह भी आवश्यकता प्रतीत होती है कि पुस्तकीय ज्ञान-प्रयोगों को कठिन कसौटी पर कसा जाय।

५. मुझे विश्वास है कि आप इस बात से सहमत होंगे कि यदि इस प्रयोग में खाद के रूप में कुछ थोड़ा-सा हिस्सा जलने भी दिया जाय तो कोई चिन्ता नहीं; क्योंकि उसके बाद जो कुछ बच रहेगा वह खालिस सोना होगा जो अग्नि में तप कर और भी अधिक उज्ज्वल होगा।

६. मैं आशा करता हूँ कि मुझे स्वास्थ्य लाभ होने पर आपके सम्मेलन के समाप्त होने के पूर्व आप लोगों से महल में मिल कर प्रसन्नता होगी, और मुझे विश्वास है कि आप यहाँ आराम से और आनन्द पूर्वक रहेंगे, तथा आप मेरी रियासत में आने और बीकानेर में कार्य करने की आनन्दमय स्मृति अपने साथ ले जायँगे।

अन्त में, महाशयों, मेरी अभिलाषा है कि आपका परिश्रम सब भाँति सफल हो, और मैं यह हार्दिक आशा प्रकट करता हूँ कि आपका यहाँ एकत्र होना आयुर्वेद की उन्नति में आपको एकदम और आगे बढ़ायेगा।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

निखिलभारतीय चतुर्विंशतितम वैद्यसम्मेलन के स्वागताध्यक्ष

सेठ तेजभान दयाराम आहुजा, बैंकर, मर्चेंट और लैंड लार्ड का

स्वागत-भाषण

श्री मान्यवर प्रोफेसर प्रतापसिंह जी रसायनाचार्य, दूर देश से आये हुए आयुर्वेदीय वैद्यों, सिंध तथा हिंद की देवियो तथा भद्र पुरुषों! ईश्वर की अपार कृपा है कि शिकारपुर नगर में आज यह उत्तम यज्ञ आरम्भ होता है। शिकारपुर में वैद्यों की संख्या न्यून है, तथा वैदिक चिकित्सा का प्रचार नाम मात्र ही है, इस अवस्था में यहाँ आयुर्वेदिक सम्मेलन का होना असम्भव प्रतीत होता था। परन्तु यहाँ तथा सक्खर के वैद्य भाइयों के साहस, शिकारपुर के चुने हुए सार्वजनिक कार्य्य-कर्ताओं के उत्साह, सक्खर और शिकारपुर के दानवीरों की उदारता तथा हमारे धार्मिक नेताओं के आशीर्वाद द्वारा हमें इस उत्सव तथा समारोह के देखने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ है। पूज्य स्वामी हरिनामदास जी श्री साधुबेला सक्खर तथा पूज्य स्वामी रामदास जी महन्त खटवाली दरबार उत्तरीय सिंध के ज्योतिस्तम्भ हैं। उन्होंने हमें इस सम्मेलन के रचने में बड़ी सहायता दी है। यद्यपि सक्खर शिकारपुर के वैद्य भाइयों, महन्तों, सार्वजनिक सेवकों ने इस सम्मेलन के लिये अत्यंत उत्साह दिखलाया है तथापि यह कहने में अत्युक्ति न होगी कि सम्मेलन के प्राण महाराज सुखरामदास टी. ओझा कराची निवासी हैं। ये वैद्यों में वैद्य, सार्वजनिक सेवकों में सार्वजनिक सेवक, धर्म-गुरुओं में धर्म-गुरू हैं इसलिये उनका प्रभाव सारे सिंध पर है और उन्होंने कष्ट सह कर हमें सहायता की है।

मैं इन भद्र पुरुषों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ इन समस्त वास्तविक कार्य-कर्ताओं तथा सम्मेलन के संचालकों ने जो मेरे ऊपर सम्मेलन का बोझ रखा है वह उन्हीं की उदारता तथा महानता का सूचक है। स्वागत-समिति के समूह में मुझसे कई सज्जन अधिक योग्य विद्यमान हैं। कई मुझसे यश तथा कीर्ति में, कई धन और सेवा में, मुझसे अधिक हैं, आयु में भी मुझसे बड़े हैं। मैं आशा करता हूँ कि जो कार्य उन्होंने मेरे ऊपर रखा है उसके पूर्ण करने के लिये वे मेरे सहायक बनेंगे।

हे भारत के रत्नो, वैद्यशास्त्र के निपुण विद्वानों! प्राचीन सभ्यता के प्रचारको! मैं स्वागत-समिति, शिकारपुर तथा सक्खर की ओर से आपका भली प्रकार स्वागत करता हूँ आपके पधारने से हमारे नगर की शोभा हुई है, हमारे प्रांत का मान हुआ है दूर-दूर की यात्रा का कष्ट सहकर इस शीत ऋतु में हमारे नगर में आये हैं। इसलिये मैं आपका जितना कृतज्ञ बनूँ वह थोड़ा है। आपकी सेवा के लिये जितना प्रबन्ध करें वह पूर्ण न होगा। आप बड़े नगरों के निवासी हैं आपको प्राचीन तथा अर्वाचीन सब तरह की सुविधायें उपस्थित हैं। इस छोटे

Indira Gandhi National Centre for the Arts

नगर में ये सब सुविधायें उपस्थित करना हमारे लिये कठिन है इसलिये मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि कृपया हमारी त्रुटियों की ओर ध्यान न देकर आयुर्वेद के प्रचार के उत्साह में तथा मनुष्यों के कल्याण की धुन में हमारी कमियों तथा निर्बलताओं को भूल जावें।

हमारे प्रतिष्ठित अतिथियो, हमारे पथ-प्रदर्शकों! आपका इन टूटे-फूटे शब्दों में स्वागत करते हुए मैं प्रचलित पद्धत्यानुसार शिकारपुर नगर का परिचय देना चाहता हूँ!

शिकारपुर नगर सिंध के मुख्य नगरों में से एक है। यह नगर हैदराबाद, सेवन, रोहड़ी की तरह पुराना नहीं है परन्तु इसको बने हुए लगभग ३०० वर्ष हुए हैं। शिकारपुर बनने की श्रुति इस प्रकार है।

शिकारपुर का नगर बहादुर खाँ दाऊदपोते ने बनवाया था, यह दाऊद की आठवीं पीढ़ी में से था। दाऊद २०० वर्ष का हो कर मृत्यु को प्राप्त हुआ और ऐसा कहा जाता है कि वह अबासी खलाफों की पीढ़ी में से था। उनका एक "अमीर अहमद" नामक ठट्टे नामक गाँव में आया, उनकी पीढ़ी में एक "कलहोड़ा" नामक उत्पन्न हुआ, उनकी और दूसरों की आपस में लड़ाई हुई, इसलिये दाऊद उत्तरीय सिंध में चला आया। बहादुर खाँ जिसका उपर्युक्त वर्णन किया गया है उस पर बक्खर के अमीर ने सन्तुष्ट होकर लखी और खानपुर के मध्य का बेला भेट कर दिया, उसी स्थान पर शिकारपुर का नगर बना हुआ है।

जंगल में शिकार बहुत होता था और बहादुर खाँ मृगया का अत्यन्त शौकीन था, परन्तु उबावड़े और लखी का नवाब शेर खाँ मुहार बहादुर खाँ का विरोध करता था इसलिये उनकी लड़ाई हुई, लड़ाई में मुहारों का पराजय और दाऊदों की विजय हुई। दाऊदों के गुरु ने पृथ्वी पर चाकू फेंका और चाकू सीधा खड़ा हो गया इससे दाऊदों ने अनुमान किया कि हमारे गुरु हमें नगर बाँधने के लिये आज्ञा देते हैं। इसलिये जंगल को काट-साफ कर उस स्थान को १०२६ हिजरी अर्थात् १६१७ में शिकारपुर बनाया गया। यह बात हाजी फत्तहल्लाह की स्मृतिपट पर जो (गोक) शब्द लिखा हुआ है उसके अबजद के गणित से प्रसिद्ध होता है।

जिस स्थान पर नगर बना हुआ है उस स्थान की विशेष महत्ता है। शिकारपुर के उत्तर में बिलोचिस्तान और अफगानिस्तान है, इसलिये शिकारपुर को पूर्व समय में राजनैतिक महत्व था। करनल टाड ने अपने ग्रन्थ "राजस्थान" में इस बात को स्वीकार किया है। इसलिये अंग्रेज लोग जब सिंध में आये तो मनहोड़े के पश्चात् शिकारपुर की ओर आँखें फेरीं। अंग्रेजों के पूर्व मीरों को भी शिकारपुर बहुत प्रिय था और उसको हाथ में लाने के लिये उन्होंने बहुत यत्न किया था। शिकारपुर उनकी विजय का अन्तिम नगर था। क्योंकि अफ़ग़ानों ने शिकारपुर को छोड़ना पसन्द नहीं किया। अहमदशाह अबदाली से लेकर अफ़ग़ानों का शिकारपुर से बहुत संबन्ध था और उस शासक के दिनों में ही शिकारपुरियों ने कंधार इत्यादि में अपना व्यवसाय आरंभ कर दिया था।

सीमा नगर होने के कारण शिकारपुर का व्यापारिक और आर्थिक सम्बन्ध दूर-दूर था। शिकारपुर के शराफ (महाजन) बैंकर्ज़ और व्यापारी मध्य एशिया, बुखारा, पश्चिम चीन, ईरान और अफ़ग़ानिस्तान में फैले हुए थे और उनके व्यवहार और व्यापार की सचाई इतनी ऊँची थी कि उनकी हुंडिया भारत के प्रत्येक स्थान और मध्य एशिया, पश्चिम एशिया आदि में—कलकत्ता से एस्त्राखाँ तक—अपनी राशि अनुसार चलती थीं। किसी समय शिकारपुर में

Indira Gandhi National Centre for the Arts

"कला-कौशल" भी अच्छे होते थे। रेशमी तन्तु-सञ्चय तथा रंगने का काम बहुत सुन्दर होता था। और जब नया युग आरम्भ हुआ तब शिकारपुर के शराफ़ों ने बम्बई, बैंगलोर, मद्रास कोलम्बो, कलकत्ता और रंगून तक अपने धंधे को फैलाया और शिकारपुर के व्यापारियों तथा साहसी लोगों ने कराची और बम्बई की मण्डियों के ऊपर अधिकार किया और ईरान के कितने ही नगरों में, मिश्र, ईस्ट-अफ्रिका और बर्मा इत्यादि में अच्छा धंधा आरम्भ किया। इस समय शिकारपुर का व्यापार घटा हुआ है परन्तु अब भी शिकारपुर का शराफ़ी धंधा अच्छी उन्नति पर है। शिकारपुर के शराफ़ों को देशी विदेशी बैंकें तथा अन्य व्यापारीगण प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखते हैं।

मैं समझता हूँ कि शिकारपुर के राजनैतिक और व्यापारिक वर्णन के पश्चात् शिकारपुर के धार्मिक साहित्य और विद्या सम्बन्धी वृत्तान्त आपको अधिक प्रिय लगेंगे। साधारण जन शिकारपुर को धार्मिक-नगरी के नाम से पुकारते हैं। परन्तु इस बात में तत्व भी है। शिकारपुर में पुराने समय के अच्छे धर्म-स्थान हैं जिनमें शंकरभारती का मन्दिर और पूज्य खटवाले महाराज का धर्मशाला प्रसिद्ध है। शिकारपुर के मसंदों की धर्मशाला में सिख-गुरु गोविन्दसिंह जी के हस्तलिखित पत्र उपस्थित हैं। पुरातन धर्म-स्थानों के अतिरिक्त अर्वाचीन समय के प्रवाहों का प्रभाव भी मन्दिर के ऊपर उपस्थित है। नगर में आते ही तत खालसों का अनाथालय देखने में आता है। थोड़ा आगे महर्षि दयानन्द सरस्वती महाराज द्वारा स्थापित आर्यसमाज के मन्दिर का दर्शन होता है। कुछ आगे प्रियतम धर्म-सभा का मन्दिर उपस्थित है और नगर के पश्चिम में प्राचीन सत्संग के लिये "सनातन धर्म सभा" और 'प्यारी संगत' विद्यमान हैं। शिकारपुर के धार्मिक स्थानों का वर्णन करते हुए मैं यह नहीं भूल सकता कि शिकारपुर में १०० वर्ष पहले दो महंत हो चुके हैं। जिनमें एक था वेदांत शास्त्र का वेत्ता, ब्रह्मश्रोत्री, ब्रह्मनेष्ठी स्वामी मेघराज जी और दूसरे थे यवन-साधु "रोहल"। रोहल स्वयं वेदांती तथा वैष्णव धर्म का पुजारी था। उनकी कविता में वेदांत, योग और भक्ति-मार्ग भरा हुआ था। उपर्युक्त दोनों पुरुष केवल धार्मिक नेता ही न थे, किंतु सिंधी साहित्य में भी उनका ऊँचा स्थान है। आपके साहित्य का प्रभाव सारे सिंध पर है और शिकारपुर की भाषा पर उनका पूरा प्रभाव है। इसलिये कृष्ण गोडबोले शास्त्री जी ने कहा है कि शिकारपुर की भाषा में सुन्दर सिंधी विद्यमान है। हर्ष की बात है कि यह सिंधी साहित्य का कार्य आज भी शिकारपुर में हो रहा है। मु० बूलचंद्र जी राजपाल का "सिंधु पत्र" और प्रोफेसर ताराचंद्र जी गाजरा एम० ए० का "हरि सुन्दर साहित्य मन्दिर" बहुत अच्छा कार्य्य कर रहे हैं।

शिकारपुर की भाषा का संस्कृत से घनिष्ठ सम्बन्ध है, ऐसी सम्मति कृष्ण गोडबोले शास्त्रीजी ने दी है। इसीलिये यहाँ संस्कृत का पुराने समय में अच्छा प्रचार था और ग्रन्थ भी बहुत से उपस्थित थे। कुछ समय हुआ कि बाहर के विद्वान आकर ग्रन्थ मूल्य से ले गये। संस्कृत साहित्य में "स्वामी चिद्घनानन्द" का गीता-भाष्य एक उत्तम पुस्तक है वह एक हमारे शिकारपुर के महात्मा का बनाया हुआ है। आज भी हिन्दी संस्कृत का प्रचार अच्छा ही है। शिकारपुर में हिन्दी शिक्षा के बहुत सारे स्थान हैं और शिकारपुर के पढ़े-लिखे लोगों में ६० प्रतिशत हिन्दी जानते हैं।

शिकारपुर निवासियों ने हिन्दी प्रेम का कल एक प्रमाण दिया। हिन्दी सम्मेलन के बैठक में कितना उत्साह और कितना प्रेम का प्रकाश था। जिस कार्य में श्री स्वामी

Indira Gandhi National Centre for the Arts

हरिनामदास जी और स्वामी रामदासजी धर्म-गुरु प्रेरणा करें, उस कार्य की उन्नति क्यों न हो?

संस्कृत-विद्या के प्रचारार्थ यहाँ बहुत सारी पाठशालायें हैं, और यहाँ के बहुत सारे विद्यार्थी पञ्जाब विश्वविद्यालय की प्राज्ञ विशारद और शास्त्री परीक्षायें देकर आये हैं। इसी कार्य में ब्रह्मचर्य्याश्रम अच्छा कार्य्य कर रहा है। आश्रम में गीता, रामायण, मैट्रिक और अन्य परीक्षायें भी होती हैं।

साधारण अर्वाचीन शिक्षा के प्रचारार्थ यहाँ ३ हाईस्कूल, एक आदर्श मिडिलस्कूल कितनी प्रारम्भिक पाठशालायें, १० कन्या पाठशालायें तथा २ नारी शालायें उपस्थित हैं। विद्या के प्रचारार्थ जो नई संस्था जारी हुई है वह है "चेलासिंह सीतलदास कालेज।" इसी कालेज के लिए सेठ सीतलदास तीर्थदास और सेठ चेलासिंह संतरामसिंह जी ने बड़ी धनराशियाँ दी हैं और सेठ चेलासिंह के भाई सेठ लुणींदासिंहजी और सेठ नारायणसिंहजी ने व्यावहारिक और कला सम्बन्धी विद्या के प्रचार-निमित्त एक बड़ी राशि निकाल रखी है। वहाँ एक बड़ा विद्यालय स्थापित किया जायगा जिसमें आयुर्वेद के प्रचारार्थ साधन रक्खे जायेंगे। और आयुर्वेदिक पाठशाला, रसायनशाला और चिकित्सालय स्थापित किये जायेंगे। सम्मेलन समाप्त होने से पूर्व इनका मुहूर्त होगा।

एक दूसरी विद्या की ओर ध्यान आकर्षित कराना आवश्यक है। प्राचीन चार उपवेदों में एक का नाम गांधर्व वेद है। गांधर्व वेद की अनेक विद्याओं में "संगीत विद्या" भारत में उन्नति के शिखर पर पहुँची हुई है। एक अंग्रेजी लेखक का कहना है कि भारत में गायन विद्या सब विद्याओं के ऊपर राज्य करती है। संगीत विद्या का शिकारपुर में अच्छा ही प्रचार है, यहाँ ४४ वर्षों से 'होली" के पर्व पर श्री दाऊजी का हांडा योग्य पं० रांवलदास और संगीत-गायन मण्डली के सहारे पर होता है। यह एक प्रभावशाली संगीत सम्मेलन है, जो भारत के अन्य स्थानों के सम्मेलनों से किसी भी अवस्था में कम नहीं है।

शिकारपुर क्योंकि एक नया नगर है, इसलिये यहां पर पुराने आयुर्वेद की युवा अवस्था के दिनों के प्रभाव की खोज करना व्यर्थ है। जिस प्रान्त में शिकारपुर है, उसी सिंध प्रांत के भीतर आयुर्वेद की ध्वजा किसी समय आकाश पर थी। सिंध के इतिहास का अब तक पूरा पता नहीं मिलता। सिंध के "मोहन का दरा" दिखलाता है कि सहस्र वर्ष पहिले यहां के लोग उन्नत और सभ्य थे। "सैंधव ऋषि" का नाम सिंध की प्राचीन सभ्यता की ओर इशारा करता है। देवल स्मृति के निर्माता महर्षि "देवल" भी इसी प्रांत में उत्पन्न हुए थे। जयद्रथ का वर्णन स्वयं सिन्ध का सम्बन्ध भारत के अन्य प्रान्तों में दिखलाता है।

सिन्ध प्रांत में आयुर्वेद के आचार्य वाग्भट उत्पन्न हुए। सिन्ध प्रान्त के वैद्य और अन्य विद्वान ख़लीफे मन्सूर के दिनों में बग़दाद को गये थे। जहाँ जाकर अरबों को भारत की विद्या सिखलाई और संस्कृत के वैदिक ग्रन्थों का अर्बी भाषा में अनुवाद किया था। किसी समय आयुर्वैदिक चिकित्सा उन्नत थी और साधारणतया प्रचलित थी, परंतु अब घट गयी है, क्योंकि यवनों के राज्य की शक्ति और ब्रिटिश सरकार के प्रभाव आयुर्वेद के प्रचार के विपरीत हैं। यथा राजा तथा प्रजा की उक्ति के अनुसार साधारण लोगों का प्रवाह भी इसी ओर चल रहा है। ऐसी विपरीत अवस्थाओं के होते हुए भी आयुर्वेद के टिमटिमाते दीपक को हमारे प्रान्त-निवासियों तथा शिकारपुरी भाइयों ने बुझ जाने से रोक रक्खा है। यहाँ पर कितने साधु-सन्यासी तथा ब्राह्मण इत्यादि, लोक-सेवा तथा व्यवसाय के विचार से आयुर्वेद द्वारा जनता की चिकित्सा

National Centre for the Arts

क्रिया करते थे और कई अच्छे गृहों की स्त्रियाँ आयुर्वेद के किसी न किसी अंग में प्रवीण होती थीं। गत सौ वर्षों के अन्दर जिन्होंने आयुर्वेद द्वारा शिकारपुर में चिकित्सा की उनका बहुत सारा पता लग सकता है। समाधे का मठाधीश सौ वर्ष से पहले आयुर्वेद की चिकित्सा का प्रयोग करता था। इस समय का बैरागी महन्त श्री गोकुलदासजी आयुर्वेद का अच्छा जानकार है। श्री स्वामी हरिनामदास जी एक अच्छे वैद्य थे। वे जब शिकारपुर में आये उसको ६० वर्ष हुए। इस समय मेरे पिता जी के नाम पर एक धर्मार्थ आयुर्वेदिक औषधालय जारी है। मेरी प्रबल इच्छा है कि शीघ्र यह औषधालय बढ़े और बड़े विस्तार पर पहुँचे। एक रसायन शाला बने और औषधालय में रोगियों के ठहरने का प्रबन्ध हो, और शिकारपुर का आयुर्वेदिक औषधालय सरकारी औषधालयों के समान बने। मैं आशा करता हूँ कि आप भाइयों की शुभ इच्छाओं द्वारा मेरा संकल्प दृढ़ हो और यह उत्तम कार्य्य सिद्ध हो।

अब पुनः अनुकूल समय आया है, जब लोगों में जागृति उत्पन्न हुई है, जब महर्षि दयानन्द सरस्वती के प्रचार, स्वामी विवेकानंद के उच्च विचारों और महात्मा गांधी के आदर्श जीवन ने प्राचीन सभ्यता के पुनरोद्धार के लिये प्रेम उत्पन्न किया है, जब हमारे आयुर्वेद के प्रमुख विद्वानों के कष्टों और पुरुषार्थ द्वारा आयुर्वेद के लिये लोगों में श्रद्धा उत्पन्न हुई है, तब मुझे आशा है कि यह प्राचीन टिमटिमाते दीपक अब नये रूप में ज्योतिस्तम्भ बनकर देश को प्रकाशमान करेंगे और चारो ओर चमत्कार दिखला कर लोगों को कल्याण का मार्ग बतायेंगे!

प्रश्न यह है कि इस शुभ अवसर का लाभ कैसे प्राप्त हो, कैसी नीति और रीति से कार्य-क्रम बनाया जाय कि जिससे आयुर्वेद-चिकित्सा का प्रचार और उन्नति हो! यह काम आप विद्वानों तथा नेताओं का है। मैं वैद्य नहीं हूँ, न मैं चिकित्सा-शास्त्र का वेत्ता हूँ, मैं साधारण मनुष्य की दृष्टि से सम्पूर्ण बात को देखता हूँ और अपने विचार के अनुसार आपकी सेवा में इस कार्य के ३ भाग उपस्थित करता हूँ। पहिला भाग है प्रचार। आज के युग में किसी भी कार्य को सिद्ध करने के लिये बड़े से बड़ा साधन प्रचार है। प्रचार के द्वारा राज्यों के अंदर परिवर्तन आ गया है। प्रचार के द्वारा कितने विजेताओं की विजय भी पराजय हो गई है और हारे हुए दल सफलता को प्राप्त हुये हैं। प्रचार के कारण झूठे सिद्धांत भी संसार में फैलाये गये हैं। यदि हमारी सच्ची विद्या लोगों तक नहीं पहुँचती तो इसका कारण यही है कि जिस विधि के अनुसार हमें प्रचार करना चाहिये उस विधि के अनुसार हम कार्य नहीं करते। आयुर्वेद ऐसी वस्तु है जिसके गुणानुवाद देशी तथा विदेशी विद्वान् गाते हैं। देखिये तो क्या-क्या कहते हैं।

१—सर विलियम् हण्टर कहता है कि प्राचीन भारतीय वैद्यों की शल्य-विद्या साहस तथा कला-कौशल से भरी हुई थी।

२—एलफिंस्टन कहता है कि भारतीयों की शल्य-विद्या और औषधि विद्या दोनों एक दूसरे के बराबर और उन्नत थी।

३—मि० वेबर लिखता है कि शल्य-विद्या में भारत-वासियों ने विशेष उन्नति की थी और आज के यूरोपियन इस विषय में उनसे बहुत कुछ सीख सकते हैं।

४—डाक्टर ए. एफ. आर. हार्न लिखता है कि भारत के प्राचीन औषधि शास्त्र के लेखों में जो शरीर की बनावट का ज्ञान भरा हुआ है उसने मुझे आश्चर्य में डाल दिया है। औरों को भी अवश्य आश्चर्य में डालेगा।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

५—फिलेडल्फिया का डाक्टर क्लार्क कहता है कि यदि आज के डाक्टर नई दवाइयाँ छोड़ अपने रोगियों को चरक की विधि से औषधियाँ दें तो कफन बेचने वालों का काम घट जाय और संसार में जीर्ण रोगों की संख्या कम हो जाय।

६—डाक्टर पाल वार्थालाम्यु कहता है कि चरक के कितने स्थानों पर गूढ़ अर्थ को देख कर मैं विस्मय में पड़ गया हूँ। सत्य तो यह है कि मैंने जितनी पहिले औषधियों की पुस्तकें पढ़ी हैं उनसे यह स्थान बहुत दूर जाते हैं।

७—डाक्टर सुमन्त महता लिखता है कि चरक और सुश्रुत जो आयुर्वेद के १६४ पुस्तकों में केवल दो हैं यह बात बतलाते हैं, कि उनके लेख की प्रणाली सम्पूर्ण नियमबद्ध और वैज्ञानिक है और उनमें सुंदर रीति से विचार की हुई कल्पनायें और वाद उपस्थित हैं। और उनमें भिन्न-भिन्न वस्तुओं के नाम सूक्ष्म रूप से दिखलाये गये हैं और शल्य-विद्या तथा स्वास्थ्य-विद्या इत्यादि प्रत्येक बात का विस्तार पूर्वक वर्णन है।

भारत के प्राचीन ब्राह्मणों ने न केवल आयुर्वेद शास्त्र की उन्नति की बल्कि उन्होंने इसे विदेशों में भी फैलाया। खलीफे मन्सूर का मैंने दूसरे स्थान पर इशारा किया है, हारून रशीद जो खलीफ़े मन्सूर से पीछे हुआ उसके विद्यालय में माणक और सालेह भारत के वैद्य उपस्थित थे, जिन्होंने चरक और सुश्रुत का अर्बी में अनुवाद किया।

८—मि० हरविलास शारदा लिखते हैं कि अबुसीना अबुराज़ी और अबुसराबी प्रत्येक ने चरक के प्रमाण दिये हैं।

९—मिसेज़ मैनिंग और प्रो० मैग्डोनेल ने इस बात की पुष्टि की है कि अरबों ने भारत से औषधि-विद्या सीखी। ईरानियों ने अरबों के राज्य बनने से पहले स्वयं भारत की विद्या सीखने का यत्न किया था। बादशाह नौशेरवाँ का मंत्री खलीफे हारूनरशीद से २०० वर्ष पहिले भारत में आया था। खलीफों के राज्य और उससे पीछे भी भारत की विद्या का प्रचार होता रहा।

१०—स्याम देश के जबराईल बैक्शटना ने संस्कृत के चिकित्सा के ग्रन्थ अरबी में अनुवाद किये।

१७ शताब्दी तक युरोप में चरक का नाम बड़ी प्रतिष्ठा और मान से लिया जाता था। लार्ड एम्टिहिल ने कहा है कि आयुर्वेद भारत से पहिले अरब में गया, वहाँ से योरोप में। १७ शताब्दी के अन्त तक योरोपी डाक्टर अरबी वैद्यों के शिष्य थे, और अरबी हकीमों ने भारत के प्राचीन ऋषि धन्वन्तरि, चरक और सुश्रुत से विद्या प्राप्त की थी।

ऐसा भी देखने में आता है कि चीन के ऊपर भारत की चिकित्सा का प्रभाव पड़ा है। बोध-प्रचारक औषधियों से परिचित थे, स्वाभाविक रूप से वे जहाँ-जहाँ प्रचार करते गये हैं वहाँ भारत की अन्य विद्याओं के साथ आयुर्वेद का भी प्रचार किया है।

११—मैक्सन्यू बर्गर लिखता है कि साहित्य में यह बात प्रसिद्ध है कि यूनान के वैद्यों ने भारत की औषधियाँ और विधियाँ हस्तगत कीं। यूनान, रोम और इस्तम्बोल के लेखकों ने भारत के वैद्यों, भारत के रोगियों को छुड़ाने के साधनों और विधियों का बहुत बार वर्णन किया है। अबासी खलीफों के राज्य में भारत के वैद्य ईरान में आगे से अधिक प्रसिद्ध हुए और भारत की औषधियाँ यूनानी औषधियों से सम्मिलित हो गईं। पुनः दूसरी बार युरोप पर अर्बी पोशाक के भीतर भारत के औषधियों का प्रभाव देखने में आया। यह जो सिस्ली में

Indira Gandhi National Centre for the Arts

अचानक ही अचानक १५-शताब्दी में बनावटी नाक बनाने की विद्या देखने में आई, उससे यह अनुमान निकाला गया कि बहुत समय पूर्व भारतवर्ष और अबैस्तान का प्रभाव वहाँ उपस्थित था। १६वीं शताब्दी में इस क्रिया को भारत के उदाहरण से उत्तेजना मिली। पहिले भारतवर्ष से सूचना मिली कि एक कुम्भार ने किसी भारतवासी के पेशानी से त्वचा का टुकड़ा काटकर नाक बना दिया।

१२—कलकत्ता विश्वविद्यालय में पढ़ाते हुए सर हैवलाक चार्ल्स कहता था कि मैं वही वही बात दुहरा रहा हूँ जो आज से २ सहस्त्र वर्ष पूर्व आयुर्वेद में वर्णित की गई थी। जो कुछ चरक ने सिखाया था उसका थोड़ा सा भाग मैं आपको सिखा रहा हूँ।

आवश्यकता है कि इन स्वदेशी तथा विदेशी विद्वानों की सम्मतियाँ भारत के बच्चे-बच्चे तक पहुँचाई जावें।

एलोपैथिक चिकित्सा के प्रचार के लिये जो साधन प्रयोग में लिये जाते हैं वे बड़े प्रबल हैं। उनके मुकाबले में यदि हम लाखों पत्रिकायें छपवाकर वितीर्ण करें तो भी थोड़ा है।

प्रचार के लिये न केवल ये सम्मतियाँ जनता तक पहुँचानी चाहिये; परन्तु इस युग में वैद्यराजों ने जो सफलता पूर्वक चिकित्सा के कार्य्य किये हैं उनका भी प्रकाशन आवश्यक है। ऐसा करने से जहाँ आयुर्वेद का यश और कीर्ति बढ़ेगी वहाँ दुःखित जनता को सुख के साधन प्राप्ति करने में सुभीता होगा।

प्रचार के लिये साधारण समाचार पत्र, आयुर्वेदिक पत्रिकायें, घोषणा-पत्र तथा सम्मेलनों का प्रयोग किया जा सकता है परंतु सबसे प्रबल प्रचार का साधन वैद्य स्वयं है। ऐसा वायु-मंडल उत्पन्न करना चाहिये कि जिससे छोटे से छोटा वैद्य भी अपने को आयुर्वेद का प्रचारक और जनता का कल्याण करनेवाला सेवक समझे। हमारे शास्त्रों की पद्धति अत्यन्त उत्तम थी।

नात्मार्थं नापि कामार्थमथ भूतदया प्रति।
वर्तते यश्चिकित्सायां स सर्वं मति वर्तते॥
कर्वते ये तु वृत्यर्थं चिकित्सापण्यविक्रयं।
ते हित्वा काञ्चनं राशिं पांशुराशि मुपासते॥

चरक ऋषि उपदेश करते हैं कि वैद्य को न अपने स्वार्थ के लिये, न इहलौकिक कामनाओं को पूरा करने के लिये परन्तु मनुष्य की कल्याण-कामना के लिये चिकित्सा का प्रयोग करना चाहिये। जो लोग औषधि को बेचते हैं वे स्वर्ण को छोड़कर मिट्टी को इकट्ठा करते हैं। ईश्वर करे इस पद्धति का प्रचार हर एक के जीवन में हो।

जब प्रचार पूर्ण रीति से हो जावेगा तो निर्माण के कार्य्य में बड़ी सुगमता होगी और स्वयं ही इस ओर आकर्षित होंगे पर हमें इस स्वाभाविक परिणाम की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये। हमें अभी ही निर्माण कार्य के लिये यत्न करना चाहिये। दानी लोगों को प्रेरणा करनी चाहिये कि वे एलोपैथिक हस्पतालों के बदले आयुर्वेदिक हस्पताल खोलें। म्यूनिसिपलिटि, सरकार व लोकल बोर्डों के ऊपर दबाव डालना चाहिए कि वे जिस प्रकार ऐलोपैथिक हस्पताल खोलते हैं और उन्हें सहायता देते हैं वैसे ही सहायता और ध्यान आयुर्वेदिक हस्पतालों को भी दें। आन्दोलन करना चाहिये कि हर एक विश्वविद्यालय में आयुर्वेद की शिक्षा का प्रबन्ध हो।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

व्यापारिक दृष्टि से अधिक रसायनशालाओं और औषधि-भंडारों का निर्माण होना चाहिये। हमारी महासभा की शाखायें प्रतिग्राम में होनी चाहियें और उनका संगठन ऐसा उत्तम हो कि कोई भी पुरुष महासभा के प्रमाणपत्र बिना और किसी परीक्षा के उत्तीर्ण हुए बिना चिकित्सा न कर सके।

प्रचार और निर्माण का कार्य्य इस प्रकार का है कि जिसमें आयुर्वेद के विद्वान, अन्य विद्या के जानकार, और धनी-मानी जनता सब सहयोग दे सकते हैं।

कार्य्य-क्रम का तीसरा अंग अन्वेषण का है और यह कार्य केवल विद्वान वैद्यों से ही सिद्ध हो सकता है। वैद्यराजों को इसके लिये विशेष यत्न करना चाहिये। हमें स्मरण रखना चाहिये कि यह जगत गतिमान है, संसार में कर्मशीलों का ही स्थान है। हमें उन्नति के पथ पर आगे बढ़ते ही रहना चाहिये और हमेशा आयुर्वेद की सर्वांगीन उन्नति के लिये नये-नये विचारों और युक्तियों का आविष्कार करते रहना चाहिये। संभव है कि यह बात कइयों को अच्छी न लगे। वे कहेंगे कि ऋषि पूर्ण थे और उनमें कोई कमी न थी जिनको आज के नये आविष्कारों से पूरा किया जा सके। निस्सन्देह ऋषि पूर्ण थे और उनकी विद्या-प्रणाली आजकल की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक थी। आजकल के वैज्ञानिक वृत्त की परिधि पर ही चक्कर लगाते हैं किन्तु केन्द्र पर बहुत कम पहुँचते हैं। परन्तु ऋषि लोग केन्द्र को हस्तगत कर आवश्यकतानुसार वृत्त का निर्माण कर लिया करते थे और हर एक विषय के अन्तर्गत आत्मा को जानकर आवश्यकता और अवस्था के अनुसार उसको भिन्न-भिन्न रूपों में निर्मित करते थे। ऋषियों की आयुर्वेद विद्या वात, पित्त, कफ़ रूपी आधार पर आश्रित है यही इसकी आत्मा है और यही सूत्र रूप आत्मा भिन्न-भिन्न असंख्य जीवों में अपने भिन्न-भिन्न रूपों को लेकर प्रकट करती है। यथा—"एकं सद्विप्राः बहुदाः वदन्ति"। एक प्रकृति ही अनेक रूपों को धारण करती है और एक बीज ही अनन्त फलों के निमित्त का कारण होता है। आयुर्वेद के इस प्राण-भूत आत्मा का ऋषियों ने अद्भुत विकास किया था और उनके अनुयायी आचार्यों ने इसका भिन्न-भिन्न रूपों में विस्तार किया था। हम लोगों का और विशेष कर वैद्यों का यह कर्तव्य है कि ऋषियों के विचित्र सिद्धान्तों को आधुनिक विज्ञान के सामने विस्तृत रूप से खोलकर रखें। मध्य-कालीन आचार्य्यों के अद्भुत, देह-सिद्धि आदि आविष्कारों, अनुष्ठानों को सूक्ष्मता पूर्वक मनन कर उसको लोक-कल्याण के लिये विस्तृत रूप से लोगों के सामने रखें। हमें प्राचीन आचार्यों के भिन्न-भिन्न विचारों को मिलाकर उसके आधुनिक कालानुकूल नये-नये रूप भी बनाने चाहिये।

एक साधारण मनुष्य की हैसियत से मैं कुछ विचार आपके सामने रखता हूँ। उन पर विचार करना आपके आधीन है। शास्त्र में बताया गया है कि आत्मा से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी और पृथ्वी से वनस्पति की उत्पत्ति होती है। इस क्रम से यह अनुमान निकलता है कि स्वास्थ्य-रक्षा और रोग-निवृत्ति के लिये सर्वोत्तम साधन आत्मा का सहारा ही है। इसी को यूरोपियन विज्ञान में क्रिश्चियन हिलीङ्ग या न्यू थॉट पावर कहते हैं। वेदों में भी आत्मिक शक्ति को चिकित्सा का मुख्य साधन जताया है। यथा

अयंमे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः।
अयंमेविश्वभेषजोऽयंशिवाभिमर्शनः ॥

आकाश तत्व द्वारा रोग कैसे निवृत्त हो सकता है यह दूसरा विचार है। मेरी समझ

Indira Gandhi National Centre for the Arts

से-विद्युत आकाश का प्रतिनिधि है, विद्युत द्वारा रोग-चिकित्सा का वर्णन वेदों में भी आया है, यथा :—

प्राहिजर्ग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्रमुमुक्तमेनम् । अ. १।१।१।१

इससे इन्द्र शब्द विद्युत-चिकित्सा के लिये आया है। विद्युत-चिकित्सा से रोग को दूर करने का उपदेश है।

वायु अथवा प्राण शक्ति की रोग निवारक शक्ति तो स्वयं सिद्ध ही है। प्राचीन कालीन प्राणायाम विद्या का अन्वेषण इसमें बड़ा सहायक होगा। प्राणायाम द्वारा चिकित्सा करने के केन्द्र आज भी हिन्दुस्थान तथा संसार के भिन्न-भिन्न भागों में है। और हज़ारों कठिन से कठिन रोगों की भी सफल चिकित्सा प्राण-शक्ति द्वारा होने के प्रमाण मौजूद हैं। वेदों में भी प्राण-शक्ति का वर्णन है :—

इहैवस्तंप्राणापानौमापगातमितोयुवं ।
शरीरमस्यांगानि जरसे वहतं पुनः ॥

अग्नि तत्व दो प्रकार से चिकित्सा में प्रयोग किया जा सकता है एक तो सूर्य्य के तेज और ~~एकाग्रता से इन~~ लाभ उठा सकते हैं, वेद इसके विषय में जगह जगह संकेत करता है।

"सूर्य्यः कृणोतुभेषजं"

द्वितीय रूप से हम प्राचीन ऋषियों के हवन क्रिया को ले सकते हैं। भिन्न-भिन्न बनस्पतियों की अग्नि के संयोग से सूक्ष्म रूप होकर वायु-मण्डल तथा शरीर के भीतर घुसे हुए रोग के जीवाणुओं और मलभूत द्रव्यों के निर्वाण करने की शक्ति तो प्रसिद्ध ही है। हवन के विषय में पीलीभीत के डा० कुंदनलाल जी ने और गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी, हरिद्वार की रसायनशाला ने परीक्षण करके यह सिद्ध किया है कि भिन्न-भिन्न द्रव्यों में अग्नि के संयोग से सूक्ष्मता उत्पन्न होकर रोग-निवारण-शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। वेदों में भी हवन से बीमारी को दूर करने तथा स्वास्थ्य लाभ करने का उपदेश है यथाः—

"मुंचामित्वाहविषाजीवनायकमज्ञातयक्ष्मादुतराजयक्ष्मात्"

लुई कून्हे आदि पाश्चात्य चिकित्सकों द्वारा किये गये आविष्कारों एवं प्रयोगों द्वारा जल की रोग-निवारण-शक्ति आज जगत में प्रसिद्ध हो गई है। वेदों में भी जल-चिकित्सा का वर्णन आता है यथाः—

आपः सर्वस्यनेजजीस्तास्तेकृण्वन्तु भेषजम्"

पृथ्वी तत्व का चिकित्सा से सम्बन्ध तो बिल्कुल स्पष्ट ही है। आज-कल के पाश्चात्य अनुसन्धानों से अच्छी तरह सिद्ध हो गया है कि भिन्न-भिन्न प्रकार की मट्टियों में भिन्न-भिन्न रोगों के नाश करने की शक्ति है। महात्मा गाँधी आदि का तो यह दावा है कि भिन्न-भिन्न बुद्धिमत्तापूर्ण रोगानुकूल प्रयोगों से मट्टी द्वारा सब रोगों का इलाज कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त पारद तथा स्वर्ण आदि खनिज और भिन्न-भिन्न रत्नों का तो आयुर्वेदिक चिकित्सा में मुख्य रूप में उपयोग है ही। पाश्चात्य चिकित्सक भी पारद तथा अन्य धातुओं की रोग-निवारण-शक्ति को मानने और प्रयोग करने लगे हैं परन्तु उनको अब तक रत्नों की रोग-निवारण-शक्ति का ज्ञान नहीं हैं। आप उपस्थित विद्वान आयुर्वेदज्ञों का कर्तव्य है कि आप उनके सामने रत्नों की रोग-निवारण की अद्भुत शक्ति को स्पष्ट कर दिखावें।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

अन्त में बनस्पतियों के विषय में तो मैं अधिक कहना नहीं चाहता हूँ। बनस्पतियों के सूक्ष्म गुणों, प्रभावों तथा शक्ति (वीर्य) के वर्णन विषयक तथा उनके भिन्न-भिन्न असंख्य रोगों के निवारण प्रयोगों के विषय में हमारे प्राचीन संस्कृत वैद्यक ग्रन्थ हज़ारों इस समय भी उपलब्ध हैं। यह आप उपस्थित विद्वानों का कर्तव्य है कि संस्कृत वैद्यक ग्रन्थों में सूत्ररूप से वर्णित बनस्पतियों के भिन्न-भिन्न गुण, वीर्य्य-विपाक आदि का सर्व सुबोध विस्तार कर लोक-कल्याण के लिये प्रकाशित करें।

यह मैंने अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार चिकित्सा के भिन्न-भिन्न अंगों एवं विधानों पर अपने विचार आपके सामने उपस्थित किये हैं। यह आप उपस्थित विद्वानों का कर्तव्य है कि प्राचीन ऋषियों के सूत्रभूत मौलिक सिद्धान्तों की सुविस्तृत सुलभ आधुनिक कालानुकूल व्याख्या कर लोक-कल्याण के लिये प्रकाशित करें।

अन्त में मैंने आपका जो इतना अमूल्य समय लिया है उसके लिये क्षमा चाहता हूँ और आशा करता हूँ कि हमारे स्वागत-विषयक प्रबन्ध में जो कमियाँ रह गई हैं उसके लिये आप उदार महानुभाव मुझको क्षमा करेंगे और अपने अमूल्य शिक्षाप्रद विचारों से नगर निवासियों को अनुगृहीत करेंगे।

॥ इति ॐ शम् ॥

Indira Gandhi National Centre for the Arts

॥ श्री धन्वन्तरिर्विजयते ॥

श्री निखिलभारतवर्षीयपञ्चविंशतितम् आयुर्वेद महासम्मेलन के स्वागताध्यक्ष प्राणाचार्य

वैद्यशास्त्री नारायणशङ्कर देवशङ्करजी का

भाषण

यो विश्वंविदधाति पाति सततं संहारयत्यञ्जसा
सृष्ट्वा दिव्यमहौषधीश्च विविधान् दूरी करोत्यामयान् ।
बिभ्राणोऽञ्जलिना चकास्ति भुवने पीयूषपूर्णं घटं
तं धन्वन्तरिरुपमिशममलं वंदामहे श्रेयसे ॥ १ ॥

श्री धन्वन्तरितुल्य वैद्य महोदय व श्रीनगर (अहमदाबाद) नागरिक सभ्यगण !

श्री गुर्जर देश में पुण्य पवित्र साभ्रमती गंगातीर्थ क्षेत्र के तट पर प्रकृति सौंदर्य और बादशाही राजधानी का प्रधानभूत और विविध वाणिज्य व्यापृत से परिपूरित और सुशोभित वणिग्जन और नगर के चतुष्पथों से सुंदर आद्यऋषिगण तथा महात्माओं के निवासस्थान के लिये विश्वविख्यात और कलाकौशल से भारतदेश में अग्रण्य पुराना अहमदाबाद नगर का विजय हो ।

सज्जनों ! इस नगर में आप लोगों के शुभागमन से आज हम लोग पावन हुये हैं । आपका किस प्रकार से सुस्वागत करना चाहिये यह बात मेरी समझ में नहीं आती । सुस्वागत, इतना ही कहने से बैठ रहना यह परिपूर्ण नहीं है । परन्तु श्री अहमदाबाद वैद्य सभा की तरफ से आप लोग इस नगर में निमंत्रित किये गये हैं । सभा का सविस्तार वर्णन स्वागताध्यक्ष रूप से कहना यह मैं अपना धर्म समझता हूँ क्योंकि सभा की ओर से नियत किया है । इसलिये आयुर्वेद के उत्कर्ष के लिये सभा की ओर से इतने काल पर्यंत जितने-जितने कार्य करने में आये हैं उनका संक्षेप में दिग्दर्शन कराता हूँ ।

अहमदाबाद में वैद्यसभा की प्रथम स्थापना ।

जिस समय बम्बई गवर्नमेन्ट से सन् १९१० में वैद्यकीय निबंध (रजिस्ट्रेशन) का प्रारम्भ किया गया उस समय वैद्यसभा की अहमदाबाद में प्रथम स्थापना हुई । तदनन्तर वैद्यसभा की और नागरिकगणों की सभा में वैद्यकीय निबंध के विषय में प्रतिबंधक आवेदन-पत्र (अरजी) प्रस्ताव रूप में करके गवर्नमेन्ट में पेश किये गये ।

(२) अहमदाबाद नगर में सन् १९२५ साल में वैद्यसभा की ओर से श्रीगुर्जर प्रान्तीय वैद्य-सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन हुआ था जिसका छठवाँ अधिवेशन भी आप सज्जनों की कृपा से यहाँ इस समय रक्खा गया है ।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

(३) कर्नल हुट्टन महाशय की ओर से आयुर्वेदशास्त्र अवैज्ञानिक ठहराया गया, जिस समय इस तरह का आक्षेप आयुर्वेदशास्त्र पर किया गया था उस वक्त भी समस्त वैद्यों की और नागरिकों की सभा बुलाकर विरोध रूप से प्रस्ताव पेश किया गया था।

(४) आप लोगों को विदित होगा कि पन्द्रह वर्ष पहले देशीय वैद्यक को उत्तेजन देने के लिये मद्रास गवर्नमेन्ट की ओर से देशीय "वैद्यक विमर्शक समिति" मद्रास गवर्नमेन्ट के कायदानुसार सन् १९२१ में स्थापित की गई थी। समिति की ओर से प्रत्येक भाषा में साक्ष्य प्रश्न प्रसिद्ध हुये थे। तदनुसार साक्ष्य प्रश्नों के उत्तर संस्कृत भाषा में लिखकर वैद्यसभा के सभ्यों की तरफ से भेजे थे। यह बात मद्रास समिति के पुस्तक के द्वितीय विभाग में प्रकाशित है। इस पर दृष्टि करने से आपको अवश्य ख्याल आ जायगा।

(५) जोइंट सिलेक्ट समिति के पुस्तक में "कर्नल बॉयर्ड व कर्नल ब्रूम" महाशयों की तरफ से आयुर्वेदशास्त्र पर निम्नलिखित शब्दों में गम्भीर आक्षेप हुये हैं; आक्षेप यह हैः—

"आर्य वैदिक के लिये व युनानी वैदिक के लिये धन-व्यय करना व्यर्थ है क्योंकि जैसे मशीनगनों की आवश्यकता होने पर धनुष, बाण व खड्ग का उपयोग व्यर्थ है इसी तरह से एलोपॅथी के सामने आयुर्वेदिक व युनानी पद्धतियाँ बिलकुल व्यर्थ व निःसहाय हैं।" उन महाशयों से ऐसे निष्ठुर और अज्ञानपूर्ण वचन सुनकर किसके मन में खेद न होगा?

इस विषय में भी सभा सभ्यों की ओर से विरोध-प्रदर्शित प्रस्ताव करके यहाँ के सुप्रसिद्ध बैरिस्टर जीवनलाल व्रजराय जी देसाई महाशय की तरफ से गवर्नमेन्ट कानूनानुसार आवेदन पत्र (मेमोरियम) तयार करके सेक्रेटरी ऑफ स्टेट के समक्ष भेजा गया है।

(६) बम्बई धारा-सभा में आयुर्वेद के उत्कर्ष के लिये श्री सैयद मुनावर की ओर से आयुर्वेद महाविद्यालय की स्थापना का व विद्वद्वैद्यों के वैद्यकीय निबंध (रजिस्ट्रेशन) का यों दो प्रस्ताव पेश किये हैं। उनके समर्थन में सभा ने सभ्यों की ओर से प्रस्ताव रूप से प्रार्थनापत्र धारा-सभा में पेश किया है।

(७) अहमदाबाद म्युनिसिपालिटी की ओर से एक आयुर्वेदीय औषधालय तथा डी० जी० लोकलबॉर्ड की तरफ से आयुर्वेदीय दश औषधालय स्थापित हुये हैं। एवं अनेक प्रकार के कार्य आयुर्वेद के उत्कर्ष के लिये सभा ने किये हैं। अब विस्तार भय से इतना ही सूचित कर आगे चलता हूँ।

श्री गुर्जरप्रांतीय सद्वैद्यों का वैद्यक साहित्य।

अन्य प्रांतीय सद्वैद्यों की भाँति गुर्जरप्रांत के वैद्यों ने भी आयुर्वेद की सेवा उत्तम प्रकार से की है। उन्होंने आयुर्वेद के उत्कर्ष के लिये अच्छे-अच्छे ग्रन्थ बना कर अत्यंत लोकोपकार किया है। इन ग्रंथों ने रोगों की शांति के लिये अनेक चमत्कारिक प्रयोग बतलाये हैं। यथा सुप्रसिद्ध स्व० प्रातःस्मर्णीय राजवैद्य श्री कृष्णराम कुन्दनजी जो कि जयपुर महाराजा के राजवैद्य थे वही मेरे पूज्य गुरु थे; वह गुर्जरदेशीय थे। यह बात जयपुर-विलास- काव्य की व सिद्धभेषजमणिमाला की भूमिकाओं में मुद्रित है।

"तत्रासीद्भट्ट मेवाड़ो गुर्जरो भूमि निर्जरः ॥ तथा च ॥ तत्र श्रीमन्महाराजाधिराज श्रीप्रतापसिंहः देवराज्य समयेऽधीतायुर्वेदो गुर्जरभूनिर्जरांतर्गत भट्ट मेवाड़

Indira Gandhi National Centre for the Arts

जातीयः स्वयशः प्रख्यापने कृतमतिर्लक्ष्मीराम नामासुमतिरहमदाबाद नामक प्रसिद्ध पुट भेदनादाजगाम ।"

राजवैद्य के वंशजों से अहमदाबाद पवित्र हुआ है। राजवैद्य का स्थान इस नगर में रायपुर चकले में वाघेश्वर की गली में है। उनके कितने ही वंशज यहाँ रहते हैं व कितने ही जयपुर में। राजवैद्य के पौत्र राजवैद्य नरहरी गंगाधरजी अब भी जयपुर की संस्कृत पाठशाला में अध्यापक हैं। मुझे बड़े खेद से कहना पड़ता है कि राजवैद्य गंगाधर का असमय स्वर्गवास हुआ। राजवैद्य के शुभ हस्तों से पनवेल नगर में निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेदीय महासम्मेलन की प्रथम स्थापना हुई। महासम्मेलन के प्रथम अध्यक्ष राजवैद्य ही थे। यह सब वृत्तांत प्रसिद्ध है। यह कहने की ज़रूरत न होगी कि ये वैद्यक-शास्त्र व साहित्य-शास्त्र में निपुण थे। स्व० प्रातःस्मर्णीय श्री कृष्णरामजी महाशय की अधो निर्दिष्ट पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। वे यह हैं—

(१) श्री जयपुर-विलास काव्य	(सं० १९४४ वि० सन् १८८७ ई०)
(२) मुक्तक मुक्तावली-सार शतक	(,, ,,)
(३) पलाण्डु राज शतक	(,, ,,)
(४) आर्यालंकार शतक	
(५) सिद्धिभेषजमणिमाला (वैद्यक ग्रंथ)	(सं० १९५६ वि० शाके १८२१)

एवं साहित्य विषयों में व वैद्यक विषयों में बहुत प्रसिद्ध हुये हैं। यथा ताद्रजद्ध नारायण चरणानाम् ॥

साहित्यामृतसागर प्रमथने निर्व्याजमन्थाचलः
स्फारस्फूर्जित गद्य पद्य कविता कांतार कण्ठीरवः ॥
रोग्याऽरोग्य विधि प्रबुद्धधिषणो लक्ष्मीविलासास्पदम्
श्रीमत्कुंदन नंदनो विजयते श्रीकृष्णरामः कविः ॥ १ ॥

एवं अयोध्यक गोलवादि द्विवेद कवि दुर्गाप्रसाद महाशय ने भी ऐसा प्रशस्ति पत्र प्रसिद्ध किया है। यथा—

उद्यज्ञावण्यलक्ष्मीर्वलयति वपुषां स्वर्गवाराङ्गना—
माश्लेषेयः प्रमोदः स्फुरति च गरिमा योऽमृते माधुरीणाम् ।
सौरभ्यं कुंकुमेयत्पयसि विमलतायाप्यहोतत्समस्तम्
मि[illegible]कत्रेच्छितुं चेदभिलषसि तदा पश्य कृष्णस्य काव्यम् ॥ १ ॥

ऐसा सिद्धभेजमणिमाला नामक वैद्यक ग्रंथ अत्यंत सुंदर व रसिक संस्कृत पद्यों में बना कर जगत्प्रसिद्ध किया है।

इसमें आपने समस्त रोगों की चिकित्सा के अच्छे-अच्छे अनुभूत प्रयोग प्रदर्शित किये हैं। इस समय पर्यंत ऐसी सुंदर पुस्तक कभी मेरे देखने में नहीं आयी। इस पुस्तक की टीका विश्वविद्ति पंडित प्रवर आयुर्वेदाचार्य श्री लक्ष्मीरामजी स्वामी ने की है। यह पूज्य गुरु महाराज के पट्ट शिष्य हैं, अतः इन्होंने लिखा है कि —

Indira Gandhi National Centre for the Arts

"न सादिङ् न सदेशोऽपि न च तन्नगरं क्वचित्।
यत्र श्रीकृष्ण वैद्यानां शिष्यैर्नैव विजृम्भ्यते ॥ १ ॥"

उस समय मैंने भी स्व० प्रा० स्मर्णीय श्रीकृष्णराम गुरुजी के पास रह कर आयुर्वेद शास्त्र का पठन किया था। श्री गुरुचरणों की कृपा से आज सत्तर वर्ष हुए तथापि मैं चिकित्सा अभी तक करता हूँ। इसी तरह उनकी कृपा से भारतीय वैद्यों का सुस्वागत करने का भी मुझको सुअवसर प्राप्त हुआ है। प्रत्येक प्रांत की भाँति इस गुर्जर प्रांत से भी कितने ही आयुर्वेदीय साहित्य समर्पण हुये। साहित्य बहुत नहीं है फिर भी वह रसिक जरूर है। कवि लोलिम्बराज आदि कविराजों के लिखे हुए वैद्य-जीवन, वैद्यामृत, वैद्य-वल्लभ इत्यादि पुस्तकें अपनी रसिकता से जनसमाज में अत्यंत आदरणीय हो चुकी हैं। ऐसी ही आनंदपूर्ण वैद्यक-विषय की श्रेष्ठ पुस्तक सिद्धभेषजमणिमाला बीस वर्ष पहले की बनी हुई है। इसमें कितने ही स्थानों पर पाठकों को विस्मित कर देने वाले श्लोक भी पाये जाते हैं।

"पित्ततापितशरीरवल्लरी सा सखोबदहकीमदवाई।
औषधं शृणुमृगाक्षिमनोज्ञं जा गुलाबगुलकन्दखवादे॥ १ ॥"
"ज्वरार्दितायाकटुकान्कषायान्नचेत्पिबेत्किंवद वैद्यदेयम्।
निबोधहंसोमधुरप्रचारे वहां वनप्सा-शरबत पिलावे॥ २ ॥

(२) विक्रम संवत् की बारहवीं सदी में वैद्यरत्न सोडलजी ने गदनिग्रह ग्रंथ का प्रथम व द्वितीय भाग लिखकर जन-सामज पर बहुत उपकार किया है। यह भी गुर्जर देश-निवासी व वत्स गोत्रीय रैक ब्राह्मण थे। सोढलकृत गुणसंग्रह नामक निघंटु ग्रंथ अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ, अतएव किसी विद्वान् वैद्य के पास हस्तलिखित पुस्तक हो तो उसका संशोधन करके प्रकाशित करने की आवश्यकता है। उसके प्रकाशित होने से निघंटु ग्रंथ में बतायी हुई नवीन व अर्वाचीन वनस्पतियों की वृद्धि हो जायगी।

(३) आयुर्वेदीय ग्रन्थमाला के स्थापक आयुर्वेद-मार्तण्ड यादवजी वैद्यराज से विद्वानगण भलीभाँति परिचित हैं। आयुर्वेदीय ग्रंथमाला द्वारा संशोधन कार्य करके इन्होंने एक भारी कार्य किया है। आयुर्वेदाकाश में यह मार्तण्ड नाम से ही प्रख्यात हैं।

(४) रसवैद्य महाशय जीवराम कालीदास जी ने रसशास्त्र की अनेक पुस्तकों का संशोधन कर प्रकाशित कराये हैं।

(५) इसी भाँति वैद्यराज पं० हरिप्रपन्न जी ने भी रसादि योगों का संग्रह कर रसयोग सागर नामक अद्वितीय ग्रन्थ जनता के समक्ष रक्खा है। इस ग्रंथ का उपोद्घात भी विद्वत्ता से परिपूर्ण है।

(६) वनस्पतिशास्त्र में निपुण गुर्जर देश-निवासी पूज्य सुप्रसिद्ध स्व. वैद्यराज श्री जयकृष्ण जी ने भी वनस्पति-शास्त्र नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध कर हम पर बड़ा उपकार किया है। यह ग्रन्थ अपने विषय में भारत के साहित्य में अतुल्य है।

(७) स्व. प्रातःस्मर्णीय श्री महाशंकर झंडू भट्टजी राजवैद्य गुर्जर देश में अब भी प्रसिद्ध हैं। बम्बई में उनके सुपुत्र जुगतराम जी ने औषध-निर्माणशाला (झंडू फार्मसी) स्थापन की। इसीसे आज सारे भारत देश में देशीय औषधियों की बड़ी प्रसिद्धि हो रही है।

(८) स्व प्रा. रसवैद्य श्री अचलजी महाशय भी गुर्जर देश में व राजपुताने में प्रख्यात

Indira Gandhi National Centre for the Arts

थे। रसशास्त्र में बहुत ही निपुण थे। बम्बई में उनके सुपुत्रों ने भले प्रकार आयुर्वेद का कार्य किया है। उनके ही कुल में वैद्यराज शिवजी महाशय भी स्वयं अंधे हैं फिर भी अपने ज्ञान-चक्षुओं द्वारा वैद्यकीय कार्य निपुणता से करते हैं। उपर्युक्त दोनों वैद्य गुर्जर देशांतरगत काठियावाड़ प्रदेश की सब राजधानियों में प्रसिद्ध थे व हैं।

(९) स्व. प्रा. वैद्यराज प्रभुराम महराज ने भी बम्बई में कितने ही वर्ष रह कर सनातन वेद धर्मसभा व श्री आयुर्वेद पाठशाला स्थापन की। वेदधर्म-सभा की तरफ से सुश्रुत-ग्रन्थ का गुर्जर भाषा में अनुवाद हुआ है। उनके सुपुत्र प्राणाचार्य पोपटरामजी पाश्चात्य वैद्यक में निपुण हैं तो भी पूज्य पिताजी के आयुर्वेदीय सिद्धांतों के अनुसार चलते हैं। इन्होंने भी आयुर्वेद पाठशाला का प्रकारांतर करके महाविद्यालय की स्थापना की है। इस तरह बम्बई में जिस समय पर रजिस्ट्रेशन ऐक्ट के समय पर तीन घण्टे तक साक्षी देकर आयुर्वेद वैज्ञानिक है ऐसा प्रतिपादन किया था।

(१०) स्व. वैद्यराज जटाशंकर लीलाधर जी ने भी पाश्चात्य पद्धति और आयुर्वेदिक पद्धति एवं दोनों प्रकार से मिला कर अनेक पुस्तकें वैद्य-कल्पतरु मासिक की भेट रूप से लिखी हैं। उनके सुपुत्र वैद्यराज रविशंकर जटाशंकर जी भी अपने पिता का ही अनुसरण करके मासिक की भेट रूप पुस्तकें प्रकाशित कर रहे हैं। एवं औषध-निर्माणशाला (गुजरात आयुर्वेदिक फार्मसी) भी भली भाँति चला रहे हैं। इस नगर के महासम्मेलन का स्वागत करता हुआ मैं स्व. जटाशंकर जी के मित्र-ऋण से मुक्त होता हूँ।

(११) गुजरात में खेड़ा ज़िलेके आनन्द तालुकांतर्गत, नापाड़ व जोल ग्राम निवासी स्व. प्रा. स्मर्णीय वैद्यराज राजाराम शास्त्री थे। इस जगह भी इनके पास अनेक विद्यार्थियों ने लघुत्रयी व काव्य पुराण का पठन किया है। उनके अनुभव-सिद्ध प्रयोगों का उल्लेख सिद्ध भेषजमणिमाला में पूज्य गुरुजी ने किया है।

(१२) आयुर्वेद-विज्ञान मासिक के सम्पादक वैद्यराज दुर्गाशंकर केवलराम शास्त्री जी ने भी आयुर्वेद के इतिहास का सार-रूप ग्रन्थ प्रकाशित किया है व उन्होंने सद्व्रत इत्यादि अनेक ग्रन्थ लिख अनन्य सेवा की है।

(१३) आरोग्यसिंधु के सम्पादक रा. गोपाल जी कुंवर जी ने भी विविध वैद्यकीय पुस्तकें लिख कर प्रसिद्ध की हैं। कराची नगर में औषध-निर्माणशाला (सिंधु आयुर्वेदिक फार्मसी) कितने ही वर्षों से स्थापित है। बम्बई व अहमदाबाद में भी उसकी शाखायें हैं। फार्मसी का काम भी अच्छे पाये पर चल रहा है।

(१४) आरोग्योदय के सम्पादक वैद्यराज जेठालाल देवशंकर जी ने भी वैद्यकीय पुस्तकें लिख कर प्रकाशित की हैं। औषधशाला का कार्य भी अहमदाबाद व बम्बई में अच्छा चल रहा है।

(१५) इस स्थान पर मुझको यह कहना उचित प्रतीत होता है कि वैद्यराज बापालाल जी संदिग्ध औषधियों के विषय में निर्णय करने का कठिन कार्य कर रहे हैं। इतना ही नहा किन्तु उन्होंने निघंटु आदर्श नामक लगभग ८६० पृष्ठ का ग्रन्थ जिसमें कि लगभग ७०० वनस्पतियों का संग्रह मौजूद है, बड़ा आदरणीय और वैद्य-समाज के लिये बड़ा उपयोगी ग्रन्थ बनाया है। उन वैद्य महाशय ने वृद्धत्रयी की वनस्पतियों का बड़ा भारी खर्च कर प्रकाशित किया है। अभिनव कामशास्त्र, न्याय वैद्यक, दिनचर्या, घरगत्थू वैद्यक इत्यादि अनेक पुस्तकें लिखकर गुर्जर देश को ऋणी किया है।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

(१६) रसवैद्य नगीनदास छगनलाल की तरफ से रसादि प्रयोगों का "भारतभैषज्य रत्नाकर" नामक ग्रन्थ के पाँच विभाग प्रकाशित हुए हैं। यह विद्वानों में बड़ा आदरणीय है। इस नगर में ऊंझा आयुर्वेदिक फार्मेसी की स्थापना बहुत वर्षों से की है। कारोबार अच्छा चलता है।

(१७) "आरोग्य दर्पण" के सम्पादक महाशय ने जो कि वैद्यराज श्री गोपीनाथ जी गुप्त हैं इस नगर में रह कर वैद्यकीय अनेक पुस्तकें लिख कर वैद्यसमाज की अच्छी सेवा की है।

(१८) श्री बालकृष्ण जी पाठक ने भी संस्कृत प्रत्यक्ष-शारीर के दोनों विभागों का गुर्जर भाषा में अनुवाद कर महान् उपकार किया है। यह भी श्री पाटन आयुर्वेदिक कॉलेज के सभ्य और मंत्री है।

(१९) श्री शिवशंकर शुक्ल ने माधव-निदान का अनुवाद व प्रतिसंस्कार अच्छी तरह से किया है और आर्य-दृष्टि के साथ-साथ पाश्चात्य-दृष्टि का सम्यक् सम्मेलन किया है।

(२०) मैंने भी पाश्चात्य व पौर्वात्य निम्नलिखित वैद्यकीय पुस्तकें गुर्जर भाषा में लिखकर यथाशक्ति सेवा करने का प्रयत्न किया है।

(१) ज्वर-चिकित्सा-पद्धति।
(२) अनुभूत-चिकित्सा-पद्धति (द्वितीय आवृति)
(३) क्षयरोग-चिकित्सा-पद्धति इत्यादि।

ऐसे आयुर्वेद के उत्कर्ष के लिये बहुत परिश्रम करने वाले स्वर्गस्थ सद्वैद्य गुर्जर देश में बहुत हो गये हैं। उनकी नामावली नीचे देता हूँ—

(१) बड़ोदा राज्य के स्व० राजवैद्य घनश्यामजी महाशय।

(२) सूरत के स्व० वैद्यराज तिलकचंद महाशय ने भी वैद्यक विषय में निबंध ग्रंथमाला प्रकट कर उपकार किया है। जिसमें अनुभव-सिद्ध प्रयोगों का प्रकाशन है।

(३) अहमदाबाद के स्व० वैद्यराज हरीशंकर भाई व स्व० वैद्यराज गोकुल भाई यह दोनों प्रसिद्ध वैद्यराज थे। इनके सुपुत्र वैद्यराज स्व० बापालालजी भी आयुर्वेद शास्त्र में निपुण थे। उनके सुपुत्र वैद्यराज रणछोड़लाल जी महाशय ने भी जयपुर में श्री० गुरुजी के पास रह कर आयुर्वेद का पठन किया था। खेद होता है कि यह भी स्वर्गस्थ हुए। इस कुल में अब वैद्यराज बाबूलालजी शर्मा आयुर्वेद शास्त्रानुसार चिकित्सा कर रहे हैं।

(४) अहमदाबाद के स्व० वैद्यराज रणछोड़लालजी मोतीलालजी पुराने वैद्य थे। इन्होंने वैद्यक शास्त्र में बहुत कुशलता प्राप्त की थी। इनके घर में हस्तलिखित चरक सुश्रुतादि प्राचीन ग्रंथ मौजूद हैं। जिस समय चरक सुश्रुतादि ग्रन्थ का प्रति संस्कार हुआ तब वैद्यराज यादवजी महाशय ने भी उनका बड़ा उपयोग किया था। उनके पुत्र वैद्यराज नंदलालजी भी पिता के अनुसार कार्य करते हैं। एवं प्राचीन स्व० वैद्यराजों ने आयुर्वेद की बहुत सेवा की है। उनकी नामावली यह है—

(५) राजवैद्य हेमुभाई
(६) वैद्यराज रवचंद छगनलालजी शाह
(७) ,, बापूराम कृष्णारामजी (धर्मीवाले बालवैद्य)
(८) ,, बालगोविंद (बालवैद्य)
(९) ,, सुरचंदभाई (बहरा वैद्य)

Indira Gandhi National Centre for the Arts

(१०) ,, डुंगरसी भाई
(११) ,, मथुरादासजी
(१२) ,, भजगोविंदजी और वैद्य कृष्णाराम त्रिवेदी शाहपुर वाले
(१३) ,, अमृतलाल कुँवरजी पड़िआर
(१४) ,, जयशङ्कर श्रीनाथजी वाले
(१५) ,, प्राणाचार्य त्र्यंबक त्रिभूवन मुनि इत्यादि।

एवं स्व० अन्य वैद्यराजों ने भी आयुर्वेद के उत्कर्ष के लिये लोगों की सेवा की है अतएव उन्हीं का उपकार मानता हूँ।

आयुर्वेद की उन्नति के उपाय और वैद्यों का कर्तव्य।

ऊपर की सब बातें कहने के पश्चात अब हमारा क्या कर्तव्य है इसका दिग्दर्शन कराना चाहता हूँ। आपने अनुभव से देखा है कि हमारा औषधि-भंडार विशाल है। इसकी उन्नति के लिये हम लोगों को कटिबद्ध होना चाहिये। इस आयुर्वेद शास्त्र के पठन-पाठन का प्रचार करने के लिये सुशिक्षित और अनुभवी वैद्य तैयार होने से गुजरात प्रान्त के बड़े-बड़े शहरों में आयुर्वेद-विद्यालय और महाविद्यालय की स्थापना हो सकेगी। आयुर्वेद महाविद्यालय का प्रस्ताव संपूर्ण रीति से गत सम्मेलन में किया गया था। उसके अनुसार महाविद्यालय की स्थापना करने की आवश्यकता है। अभी गुजरात प्रान्त में निम्नदर्शित महाविद्यालय और पाठशालायें चलती हैं।

(१) बड़ोदे में श्रीमंत सरकार महाराजाधिराज गायकवाड़ की ओर से आयुर्वेद पाठशाला और श्रावण मास में दक्षिणा परीक्षा, आयुर्वेद शास्त्र की मध्यमा और उत्तमा परीक्षा प्रचलित है। उत्तमा परीक्षा की प्रथम कक्षा में उत्तीर्ण होने वाले विद्यार्थियों को सौ रुपये के साथ वैद्य-रत्न की पदवी दी जाती है।

(२) बड़ोदा राज्य के अन्तर्गत पाटण नगर में श्रीमान् सेठश्री उजमसी पित्ताम्बर की ओर से श्रीपाटण आयुर्वेद महाविद्यालय नाम की संस्था स्थापित हुई है। इस संस्था में श्रीमंत सरकार महाराजाधिराज गायकवाड़ ने एक लक्ष रुपये का दान दिया है। संस्था में आयुर्वेदिक और एलोपॅथिक का अभ्यास चलता है।

(३) बम्बई में श्री प्रभुराम आयुर्वेदिक कॉलेज नाम की संस्था चलती है। संस्था के व्यवस्थापक प्राणाचार्य पोपटराम प्रभुराम महाशय हैं।

(४) बम्बई में मारवाड़ी आयुर्वेद पाठशाला।

(५) भावनगर में आयुर्वेद पाठशाला।

(६) अहमदाबाद में श्रीनगर संस्कृत पाठशाला में आयुर्वेद विभाग।

(७) श्री आयुर्वेद पाठशाला, गवर्नमेन्ट पत्र द्वारा ता० ३-२-३५ के रोज से रजिष्ट्री कराकर स्थापित की गई है। पाठशाला का अभ्यास-क्रम निखिल भारतायुर्वेद-विद्यापीठ की नियमावली के अनुसार चलता है। इसके प्रधान व्यवस्थापक का काम करने के लिए मुझे ही नियत किया गया है।

(८) श्री अनंत पाठशाला, सांडीशेरी इत्यादि।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

श्री गुर्जर देश में निम्नदर्शित स्थलों में वैद्यसभाओं की स्थापना हुई है।

(१) बम्बई, (२) सूरत, (३) भड़ौंच, (४) बड़ौदा, (५) भावनगर, (६) राजकोट, (७) अहमदाबाद, (८) नड़िआद इत्यादि।

आरोग्याश्रम की आवश्यकता।

गुजरात में दिन-प्रतिदिन प्राण-घातक क्षयरोग बढ़ता जाता है। इस विषय में जब मैं गम्भीर विचार करता हूँ तब मुझको आरोग्याश्रम की आवश्यकता मालूम पड़ती है। जहाँ-जहाँ पर ऐसे रोगियों के लिए जल-वायु अनुकूल पड़ता हो, वहाँ-वहाँ स्थान निश्चित करके क्षय के रोगियों को आराम मिले, ऐसे स्थानों में आरोग्याश्रम बनाने की खास जरूरत है। वैद्यक-विद्या के लिये भी मशहूर पच्छे गाम में ऐसा एक छोटासा आरोग्याश्रम है। किन्तु पर्याप्त संख्या में आरोग्याश्रम बनाने के लिये प्रान्त के राजा महाराजा और धनिकों को आरोग्याश्रम की उपयोगिता समझा कर जिस प्रकार भी हो सके उस प्रकार से उत्तम प्रमाण में आरोग्याश्रम बनवायें। ऐसा प्रयत्न सम्मेलन की ओर से हो, यह मैं चाहता हूँ। क्योंकि क्षय जैसे प्राण-घातक रोग से भारत दुर्दशा को पहुँच रहा है।

आयुर्वेदीय औषधालय।

(१) अहमदाबाद म्युनिसीपैलिटी की ओर से आयुर्वेदीय औषधालय स्थापित हुआ है। वहाँ का कार्य अच्छी तरह से चलता है।

(२) डी० जी० लोकलबोर्ड की ओर से दश आयुर्वेदीय औषधालय बहुत वर्षों से हैं। वहाँ का कार्य भी अच्छी तरह से चलता है। दोनों संस्थाओं के कार्यकर्ताओं का मैं अहसान मानता हूँ। इसके साथ प्रार्थना करता हूँ कि बहुत प्रमाण में आयुर्वेदीय औषधालयों की स्थापना करें।

(३) श्रीमान् सेठ अम्बालाल महाशय की ओर से धर्मार्थ आयुर्वेदीय औषधालय रीची रोड के रास्ते पर दश वर्षों से स्थापित है। इस औषधालय में मुफ़ दवाइयाँ दी जाती हैं।

(४) श्रीमती रूपाबाई तथा चंपाबाई की ओर से भी धर्मार्थ आयुर्वेदीय औषधालय बहुत वर्षों से चलता है।

(५) स्व० सेठ जेठाभाई अमृतलाल महाशय की तरफ से धर्मार्थ आयुर्वेदीय औषधालय चलता है।

(६) माधवपुरा महाजन की ओर से भी धर्मार्थ आयुर्वेदीय औषधालय चलता है।

मैं आज आपके सामने जो कुछ कहना चाहता हूँ वह कुछ नया नहीं है। क्योंकि संसार में जो कुछ बोला जाता है व लिखा जाता है या खोजा जाता है वह सबका सब चर्वित-चर्वण पिष्ट-पेषण ही है। फिर भी एक ही बात को बार-बार कहने से उत्तम परिणाम निकलता है। ऐसी मेरी कुछ धारणा है। चरक-सुश्रुत-वाग्भट्ट जैसे आयुर्वेद शास्त्र के धुरन्धर ग्रन्थकारों ने जो सिद्धान्त पद्धति बताई है इसके ऊपर यह आक्षेप किया जाता है कि आयुर्वेद अवैज्ञानिक और अशास्त्रीय है और वैद्य ऊँट-वैद्य हैं, इन आक्षेपों का उत्तर जहाँ तक मुझ से बन सकेगा वहाँ तक दोनों प्रथाओं की तुलना करके देने का प्रयत्न करूँगा। साथ ही यह भी बताने का प्रयत्न करूँगा कि आयुर्वेद अन्य सब पद्धतियों की अपेक्षा वैज्ञानिक और शास्त्रीय है।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

आयुर्वेद का इतिहास।

आयुर्वेद के अति प्राचीन ग्रन्थों में से ब्रह्मसंहिता, दक्षसंहिता आदि ग्रन्थ आजकल उपलब्ध नहीं होते। परन्तु ये ग्रन्थ प्राचीनकाल में विद्यमान थे। यह बात चरक-सुश्रुतादि आयुर्वेद के ग्रन्थों से सिद्ध होती है। चरक-सुश्रुत और वाग्भट ये तीनों ग्रन्थ आयुर्वेद के मूलभूत हैं। इन तीनों ग्रन्थों को बृहत्त्रयी कहते हैं। इन तीनों में चरकसुश्रुत ये दोनों ग्रन्थ वाग्भट की अपेक्षा प्राचीन और स्वतंत्र हैं। वाग्भट में इन दोनों पुस्तकों का आधार लिया है। और यह सुश्रुत-चरक की अपेक्षा अधिक सुव्यवस्थित लगता है। इन ग्रन्थकारों का कालनिर्णय ठीक प्रकार से नहीं हो सकता तथापि चरक औषध-संग्रह के लिये सुविख्यात है और सुश्रुत शस्त्र-विद्या के लिये प्रसिद्ध है। इस देश का आयुर्वेद-ज्ञान अरब और यूनान के लोगों द्वारा यूरोप में फैला है और अर्वाचीन वैद्यक-शास्त्र के उद्भव में यही प्राचीन ज्ञान उपयोगी हुआ।

चरक और सुश्रुत में लिखे हुये औषधियों के वर्णन और रोगों की चिकित्सा से प्रत्यक्ष निरीक्षण करने की प्रथा के लिये हमको आश्चर्य और अभिमान उत्पन्न होता ही है।

ऋग्वेद से लेकर सिकन्दर के समय तक संपूर्ण पृथ्वी में "आयुर्वेद" ही वैद्यकशास्त्र का प्रमाणभूत शास्त्र था। इसमें दो मत हो ही नहीं सकते। एक दूसरे देश के लोगों द्वारा आयुर्वेद का प्रचार संसार में हुआ। और उन्होंने अपनी-अपनी भाषायें बनाये। वास्तव में यूनानी और एलोपॅथी ये दोनों चिकित्सायें इसी आयुर्वेद की पुत्रियाँ हैं।

मित्रों! आयुर्वेद का इतिहास और आयुर्वेद की भूतकाल की अवस्था ये बातें आयुर्वेद के बने हुये ग्रन्थों पर से जानी जा सकती है। आयुर्वेद यह संपूर्ण कला-कौशल से पूर्ण बना हुआ एक महल था। उसको काल के क्रूर आक्रमणों ने तोड़कर छिन्नभिन्न बना दिया है और आगे चोरी से इसके कितने ग्रन्थ नष्ट हो गये हैं। और जिस काल बल से एवं कारणों से भारतवर्ष की अधोगति तथा दुर्दशा हुई है। उन्हीं कारणों से भूतपूर्व प्रकाशित आयुर्वेद की भी अवनति हुई है।

अपना आयुर्वेद यह केवल दवाइयों का शास्त्र नहीं था, यह केवल रोगों का शास्त्र न था। यह केवल स्थूल-शरीर या स्थूल पदार्थों से खेलने की पदार्थ विद्या नहीं थी; परन्तु यह धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष एवं इहलोक तथा परलोक का तत्त्वज्ञान सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप में करनेवाला था और अब भी है। आयुर्वेद की दिवाल केवल पदार्थ विद्या की नींव के ऊपर नहीं रची गई थी बल्कि शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति का लक्ष्य यह शास्त्र बनाया गया था।

क्या वर्तमान चिकित्साशास्त्र की बातें आयुर्वेद में नहीं थीं? मैं मानता हूँ कि सूत्र-रूप में अथवा दूसरे रूप से यह सब बातें आयुर्वेद में हैं। आयुर्वेद का शारीरिक शास्त्र और शस्त्रोपचार-विद्या (Anatomy & Surgery) इन्द्रिय-विज्ञान (Physiology) आरोग्य-शास्त्र (Hygiene) वनस्पति-शास्त्र (Botany) और औषध-गुण-परिचय (Materia Medica) आदि प्रत्येक विषय के ग्रंथ कालयोग से नष्ट हो गये होंगे तो भी वर्तमान समय में मिलनेवाले ग्रंथों से तथा इनमें वर्णित रोग-निदान और उपचार आदि सबों से कहा जा सकता है कि ऊपर लिखे ये सब अंग परिपूर्ण दशा में रहे होंगे। किसी कवि ने ठीक कहा है कि—

"अन्यानि शास्त्राणि विनोदमात्रं न तेषु किञ्चिद्भुवि दृष्टमस्ति।
चिकित्सित ज्योतिषमंत्रवादा पदे पदे प्रत्ययमावहन्ति॥"

Indira Gandhi National Centre for the Arts

काव्य के मधुर रस से प्यास बुझती नहीं। व्याकरण की धातु-शुद्धि से शरीर की धातु-शुद्धि नहीं होती। एवं दुःखी मनुष्य का दुःख ब्रह्मज्ञान की शुष्क बातों से दूर नहीं होता? इसलिये आधिव्याधि को दूर करने के लिये यदि कोई शास्त्र समर्थ है तो वह केवल आयुर्वेद का चिकित्सा-शास्त्र ही है।

आयुर्वेद यह वेद ही है।

ऋग् यजुः साम और अथर्व ये चार वेद हैं और आयुर्वेद, धनुर्वेद गन्धर्ववेद और अर्थवेद ये चार इनके उपवेद हैं। चरक और सुश्रुतादि ग्रंथों से स्पष्ट है कि जिस प्रकार वेदों को ब्रह्मा ने बनाया है उसी प्रकार उपवेदों को भी ब्रह्मा ने बनाया है। वेद में आयुर्वेद सम्बन्धी बहुत सी आश्चर्यजनक बातें मिलती हैं। महर्षि गौतम ने आयुर्वेद सम्बन्धी मंत्रों के आधार से सब वेदों की सत्यता अनुमान द्वारा सिद्ध करने की युक्ति बताई है।

आयुर्वेद के आठ अंग

शल्य, शालाक्य, कायचिकित्सा, भूतविद्या, अगद-तंत्र, रसायन-तंत्र, और वाजीकरण तंत्र ये आठ अंग हैं। इसलिये इसको अष्टाङ्ग कहते हैं।

आयुर्वेद की परम्परा

सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मा ने वेदों के साथ में इस अष्टाङ्ग आयुर्वेद को लगभग हजार अध्यायों की संहिता के रूप में बनाया था। आरम्भ में ब्रह्मा ने प्रजापति को आयुर्वेद के आठों अङ्ग सिखाये थे। प्रजापति के पास से अश्विनीकुमारों ने सीखा। इन्होंने इन्द्र को सिखाया और इन्द्र के पास से ऋषियों ने ज्ञान प्राप्त किया जिन्होंने आयुर्वेद का पृथ्वी-पर-प्रचार किया।

आयुर्वेद अपौरुषेय है।

ऊपरि लिखित बात के अनुसार आयुर्वेद को अपौरुषेय और ईश्वर प्रणीत मानते हैं। माता, पिता, गुरु, ऋषि आदि से लेकर ईश्वर के वाक्यों में शब्द-प्रमाण कहते हैं। इस शब्द-प्रमाण को लेकर आयुर्वेद के ऊपर यह आक्षेप किया जाता है कि आयुर्वेद में "बाबा-वाक्यंप्रमाणम्" वाली कहावत बहुत है। हमारे स्वतंत्र विचार से काम करने की अपेक्षा अन्धश्रद्धा से वर्तने की प्रथा अधिक प्रचलित है। आर्यों के धर्म-भाव को समझनेवाला व्यक्ति ऐसा आक्षेप कर ही नहीं सकता। आर्यों की मान्यता के अनुसार वेद नित्य एवं सत्य वस्तु है। सत्य का आश्रय लेने पर मनुष्य की स्वतंत्रता में किसी भी प्रकार की बाधा नहीं पड़ती। इससे वेद के बताये हुये मार्ग के अनुसार करने में मनुष्य की बुद्धि का स्वातंत्र्य या विचार-स्वातंत्र्य नष्ट नहीं हो जाता। अपने शास्त्रों के भिन्न-भिन्न भाष्यों से यह देखा जा सकता है कि जब कभी किसी विचारक को यह अनुभव हुआ कि अमुक टीका या अर्थ अयुक्त है; तभी उसने बिना किसी संकोच के अपना सच्चा अभिप्राय प्रकट करने में किसी भी प्रकार का संकोच नहीं किया। इस प्रकार के खण्डन-मण्डन में एक ही उदाहरण श्री शंकराचार्य और श्री रामानुजाचार्य का लेकर देख सकते हैं कि हमारे यहाँ बुद्धि और विचारों का कितना अधिक स्वातंत्र्य है।

और भी, शब्द-प्रमाण में प्रमाण शब्द का अर्थ अंग्रेज़ी में अथॉरिटी किया जाता है। वह अनुवाद अशुद्ध है। पाश्चात्य लोक इस शब्द को सत्तावाचक समझते हैं, और

Indira Gandhi National Centre for the Arts

जहाँ सत्ता होती है वहाँ पर स्वातंत्र्य नहीं होता, ऐसी उनकी मान्यता है। हमारा प्रमाणशब्द सत्तावाचक नहीं। हमारे शास्त्रकार सत्ताके बलपर किसी को मनवाते नहीं। परन्तु वे द्रष्टा होते थे, वैज्ञानिक रीति से विषयों को जानते थे। इसी कारण उनके वचनों के प्रति आदर भावना रखकर हम शब्दप्रमाण मानते हैं। वेद की टीकाओं की भांति आयुर्वेद में कितने विषयों की वृद्धि और स्वतंत्रतापूर्वक चर्चा की गई है। चरक और सुश्रुत ये आयुर्वेद के प्रमाण-भूत ग्रंथ माने जाते हैं। ये दोनों ग्रंथकार कई बातों में एक दूसरे से पृथक् पृथक् जाते हैं। तथापि इनके पृथक् पृथक् जाने की दक्षता और वैज्ञानिक दृष्टि स्पष्ट प्रतीत होती है।

आयुर्वेद का धर्मके साथ सम्बन्ध

आयुर्वेद के विरुद्ध एक यह आक्षेप किया जाता है कि आयुर्वेद के तत्त्व, न्याय सांख्य-दर्शन एवं वेद पुराण इतिहास आदि से उठाये गये हैं। इस प्रकार से इस वैद्यविद्या को तत्त्वज्ञान और धर्म के साथ मिलाकर विज्ञान रहित बना दिया है। यह आक्षेप भी निराधार है। आर्यों के मतानुसार मनुष्य का ऊंचे से ऊंचा पुरुषार्थ और अन्तिम ध्येय पूर्णता प्राप्त करना है अर्थात् परब्रह्म का सुक्षात्कार करके मुक्ति प्राप्त करना है। इसके लिये तन और मन की उत्तम ~~से उत्तम~~ आरोग्यता होनी चाहिये। मनुष्य-जन्म को सार्थ करने के लिये शारीरिक आरोग्यता की खास जरूरत है। इसीलिये कहा भी है "शरीरमाद्यंखलुधर्मसाधनम्" संक्षेप में कहें तो उभयों का प्रत्येक विचार, तत्त्व, ज्ञान, विज्ञान, और धर्म से भरा हुआ है इतना ही नहीं परन्तु इन तीनों में एक दूसरे का समावेश हुआ है और यही सच्ची वैज्ञानिक पद्धति है।

आयुर्वेद वैज्ञानिक है

पाश्चात्य लोगों की यह धारणा है कि आयुर्वेद शास्त्रीय एवं वैज्ञानिक नहीं है। यह सबसे बड़ा आक्षेप है। आयुर्वेद जैसा वैज्ञानिकशास्त्र और विज्ञान की दृष्टि से जिस प्रकार आयुर्वेद विषयों की चर्चा करता है इस प्रकार का विज्ञान तो पाश्चात्य वैद्यक शास्त्र में ढुंढने से भी नहीं मिलता। आयुर्वेद विज्ञान एवं कला इन दोनों दृष्टियों से देखता है। वैज्ञानिक दृष्टिसे इसके विभाग नीचे लिखे अनुसार करता हूँ। प्रत्येक को निरीक्षण करने से आपको विश्वास हो जायगा कि सच्चे विज्ञान के सिवाय इसमें एक भी खोटी बात नहीं रक्खी गई है।

(१) तीन प्रकार के प्रमाण, प्रत्यक्ष, अनुमान, और शब्द
(२) पञ्चभूत का सिद्धान्त
(३) त्रिधातु सिद्धान्त
(४) त्रिदोष सिद्धान्त
(५) निदान और चिकित्सा
(६) रस, गुण, वीर्य, विपाक, और प्रभाव गुणवाली औषधियाँ

हमारा यह वैज्ञानिक दृष्टि से किया हुआ वर्गीकरण इतना अधिक सफल हुआ है कि इसके लिये "फिलाडल्फिया (अमेरिका) के सुप्रसिद्ध डॉक्टर ज्योर्ज क्लार्क एम० ए० एम० डी० ने कहा है कि चरक के प्रत्येक अध्याय को पढ़ते हुए मैं इस सिद्धान्त पर पहुँचता हूँ कि यदि वर्तमान समय के डॉक्टर फार्मोकोपिया की वर्तमान कालीन नवीन औषधियों को छोड़कर चरक में बताई हुई प्रणाली के आधार से रोगों का निदान और चिकित्सा करें तो अकाल मृत्यु

की संख्या बहुत घट जाय और अनेक प्रकार के रोगों से पीड़ित जीर्ण रोग बहुत कम देखने में आयें।

त्रिधातुः

वात, पित्त और कफ ये तीन धातु हैं। शरीर का छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा अवयव इनसे बना है। इसलिये इनको धातु कहते हैं। धातु शरीर का आधाररूप होता है। इन तीनों के अभाव होने का अर्थ यह है कि शरीर का अभाव; जब ये सम-विषम रूप में होते हैं तब दोष का रूप लेते हैं और रोग उत्पन्न होता है। कई विद्वान् धातु को दोषरूप से और दोष को धातु रूप से कहते हैं। इसलिये ये पर्य्याय वाचक है इस प्रकार कहने का कारण आयुर्वेद का एक स्वयं सिद्ध प्रमाण है—अर्थात् आरोग्यता और अनारोग्यता के आधार धातु के बलाबल के ऊपर टिका हुआ है। जिस समय धातु नियमित स्थिति में होता है उस समय इसे प्रसाद स्थिति में कहते हैं और जब अनियमित स्थिति में होता है, तब इसको मलस्थिति में कहते हैं। इस प्रकार से हम धातु को इसके कार्यकारण सम्बन्ध से भिन्न स्वरूप में जान सकते हैं। धातु अथवा दोष-प्रसाद-भूत धातु के अर्थ में एवं कीट-भूत मलके अर्थ में व्यवहार होते हैं।

विज्ञान की दृष्टि से शारीरिक क्रिया वात, पित्त और कफ, इस त्रिधातु के ऊपर आधार रखती है, और मानसिक क्रिया सत्व, रज और तम इस त्रिगुण के ऊपर आधार रखती है। सम्पूर्ण संसार की उत्पत्ति इन तीनों गुणों से होती है। ये तीनों प्रकृति के गुण हैं। वेद में समस्त संसार को उत्पन्न करने वाली तीन गुणों से युक्त इस प्रकृति का उल्लेख आता है।

इसीलिये प्रत्येक वस्तु त्रिगुणात्मक कही जाती है। सत्व, रज और तम ये तीनों गुण जीवित पुरुष में क्रम से वात, पित्त और कफ के रूप में दिखाई देते हैं। जीवित मनुष्य का शरीर वात, पित्त और कफ से भरा हुआ कहा जाता है। मुर्दे मनुष्य का शव पंचभूतों की खोल है। मनुष्य की खोल में जब तक जीव है तब तक वह जीवित है। जीते हुये मनुष्य के शरीर में जीवन का अस्तित्व है और मुर्दे में जीवन का अस्तित्व नहीं होता। इन दोनों को पंचभूतात्मक वात, पित्त और कफ वाला कहते हैं अर्थात् यह पंचभूतात्मक तथा त्रिधातु वाला कहा जाता है। सब में त्रिधातु नहीं हो सकता। इस प्रकार से शरीर का पृथकरण दो प्रकार का है। पंचभौतिक और त्रिधातु इन दोनों का संयोग नीचे लिखे अनुसार है।

आकाश और वायु-वात जो राजसिक है—के रचना-कार्य में प्रविष्ट होते हैं। तेज-पित्त (जो सात्विक है) के रचना कार्य में प्रविष्ट करता है। और पृथ्वी तथा अप कफ (जो तामसिक) है, में प्रवेश करते हैं। इस प्रकार से पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाश इससे पंचमहाभौतिक खोल में जीवन का प्रवेश होता है। तब जीव का यह शरीर वात, पित्त और कफ से बना हुआ है ऐसा कहा जाता है। यह वात, पित्त और कफ से बना जीव धारण करनेवाला शरीर सत्व, रज और तमगुणवाला त्रिगुणात्मक बना। इसलिये मनुष्य की प्रकृति के अनुसार वातल, पित्तल, और श्लेष्मल ये तीनों भाग किये गये हैं।

वायु विशेष हो तो इस प्रकार की प्रकृतिवाले मनुष्य को वातल, पित्त अधिक हो तो इस प्रकार की प्रकृतिवाले मनुष्य को पित्तल, और कफ अधिक हो तो इस प्रकार की प्रकृति वाले मनुष्य को श्लेष्मल कहते हैं। प्रत्येक मनुष्य की इनमें से कौन सी प्रकृति है यह जानने की खास जरूरत है। क्योंकि इनके उपर से ही मनुष्य की आरोग्यता या अनारोग्यता जाँच

Indira Gandhi National Centre for the Arts

करने की आयुर्वेद में आज्ञा है। शरीर के अन्दर की क्रियायें वात, पित्त और कफ से नियमित होती हैं। हम जो खुराक खाते हैं उससे धातु बनता है। रस, रक्त आदि को भी धातु रूप में गिना जीता है परन्तु इनको दुष्य शब्द से पहिचाना जाता है। क्योंकि ये वात, पित्त और कफ से दूषित होते हैं। भोजन खाने के पीछे उसका रस बनता है। यह क्रिया आमाशय ग्रहणी और पक्वाशय में होती है। रस बनाने वाले भी वात, पित्त और कफ हैं। प्राणवायु के रूप में वात भोजन को आमाशय में भेजती है, यहाँ पर कुछ रूपान्तर होने के पीछे इसको ग्रहणी में पहुँचाती है। यहाँ पित्त (पाचक पित्त) से कफ को द्रव रूप करके इसमें भोजन पचाने की क्रिया होती है। इस प्रकार से इसका रस बनता है। इसके पीछे वात, पित्त और कफ की वारम्वार क्रिया होने से रक्त बनता है, पीछे रक्त से मांस, मांस से मेद, मेद से अस्थि (हड्डियाँ)। अस्थि से मज्जा, और मज्जा से शुक्र बनता है। इस प्रकार से सप्तधातु बनती हैं और भी इनमें से एक धातु बनता है जिसको कि ओज कहते हैं। यह ओजस् सातों धातुओं का सत्व अर्थ साररूप कहा जाता है। ऊपर के अनुसार यदि शुक्र धातु तक की क्रियायें ठीक प्रकार से न हों तो ओजस् धातु को बहुत नुकसान पहुँचता हैं और कई बार रस ओजस् धातु की कमी के कारण जीवन की क्रिया एक दम बन्द हो जाती है। शरीर की इन सातों धातुओं की क्रिया आयुष्य को भी स्थिर करती है। इसलिये इस शास्त्र का नाम आयुर्वेद है। आयुर्वेद शास्त्र में दिनचर्या, रात्रिचर्या और ऋतुचर्या आदि का प्राधान्य है। चर्यादि का पालन आवश्यक है। अतएव महर्षि चरकाचार्य जी का कथन का स्मरण करना उचित है। "कोऽरुक् कोऽरुक क्षुत्कालेहित मितभूक्क्रुत्चङ्क्रमणः क्रमेणवामशयः। अविधृतमूत्र परीषखिपुजितात्मा पतङ्गसोऽरुक् स्यात्।" एवं पथ्याऽपथ्य पालन करना भी आवश्यक है इस विषय में शास्त्रकार कहते हैं कि "पथ्येसतिगद्वार्तस्यकिमौषध निषेवणैः। पथ्येऽसतिगदार्तस्यकिंमौषधनिषेवणैः।" श्रीमद्भगवद्गीता में कथन किया है कि "शास्त्रों की आज्ञाओं का पालन करना उचित है।" "ये शास्त्रविधि मुत्सृज्यवर्तते काम कारतः न स सिद्धि-मवाप्नोति न सुखं न परांगतिम्। तस्माच्छास्त्र प्रमाणन्ते कार्याऽकार्य व्यवस्थितौ।" आयुर्वेद शास्त्र में भी कहा है कि "आयुर्वेदो पदेशेषु विधेयः परमादरः।"

आयुर्वेद शास्त्र में दोषानुसारिणी चिकित्सा है। अतएव शास्त्र का कथन है कि "नास्तिरोगी विना दोषैर्यस्मात्तस्माद्विचक्षणः। अनुक्तमपि दोषाणां लिङ्गैर्व्याधिमुपा चरेत्।" श्री काशीक्षेत्र में पञ्चभूत और त्रिदोष सिद्धान्त के विषय में नवेम्बर की ता० २ से ता० ८ तक विद्वान् वैद्यों की परिषद् हो गई। निवेदकों की ओर से प्रश्न पत्र निकला था। आयुर्वेद शास्त्र में पञ्चभूत और त्रिदोष सिद्धान्त का अन्योन्याश्रयत्व है। इस विषय में पञ्चभूत त्रिदोष सिद्धान्त समालोचना नाम की पुस्तक प्रसिद्ध हुई है। यह पुस्तक अवलोकन करने की विज्ञप्ति है। काशी की परिषद् में यह पुस्तक भेजी थी। सम्मेलन में भी विद्वानों ने समर्पण किया है।

सज्जनों! आज हम अपने को अतीव भाग्यशाली समझते हैं जो आप सबने इस शीत काल में गृह का सुख छोड़कर यात्रादि कष्टों को सहते हुये, नियत समय में अखिल भारत वर्षीय २५ वाँ अधिवेशन में अपने शुभागमन से जो कुछ शोभा बढ़ाई है उसकी हम आप लोगों से गुर्जर प्रान्त अहमदाबाद वैद्यसभा और स्वागतकारिणी-समिति की ओर से क्षमा-प्रार्थना करते हुए आप सब लोगों का स्वागत करते हैं। हम लोगों के पास इस समय आप लोगों की स्वागत-सेवा-निमित्त कोई सर्वोत्कृष्ट सामग्री नहीं है जिससे हम आप लोगों को अच्छी तरह

National Centre for the Arts

संतोष कर कृतार्थ बनते। परन्तु आयुर्वेद के पुनरुद्धारार्थ कटिबद्ध होकर, मद्रास, बंगाल, यू० पी०, बम्बई आदि प्रसिद्ध शहरों से कष्ट उठाकर आकर आपने इस नगर को पवित्र किया है। इसलिये आपका अहसान मानता हूँ। स्वागत करने में प्रमाद होना संभव है इसलिये "प्रमादो मानुषो भावः" इति न्याये आप सज्जनों से क्षमा चाहता हूँ। अंत में श्री धन्वन्तरि भगवान की प्रार्थना करने के साथ अपना वक्तव्य समाप्त करता हूँ।

सुधाकुम्भं हस्ते दधदमरतार्थं सुमनसां।
रहस्यं जिह्वाग्रे गदहरमथर्वोपनिषदां॥
मणिं श्रीवत्साङ्कं हृदि जलनिधेर्योऽजनि पुरा।
विनिघ्नन् विघ्नं वः सुखयतु स धन्वन्तरि विभुः॥१॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

॥ संपूर्णम् ॥

Indira Gandhi National Centre for the Arts

आयुर्वेद के नवयुग-प्रवर्त्तक चरकसंहिता की जल्पकल्पतरुटीका के प्रणेता

धंन्वन्तरिकल्प कविराज गंगाधर की

संक्षिप्त जीवनी

कविराज गंगाधर को केवल वैद्यरूप से परिचय देना ठीक नहीं, क्योंकि उनके सदृश इन एक दो शताब्दियों में सर्वशास्त्रज्ञ विविध विषयक ग्रंथों के प्रणेता किसी विद्वान् ने जन्म-ग्रहण किया है, इसमें सन्देह है। अब तक संस्कृत भाषा में विरचित विविध विषयों के उनके ७६ ग्रन्थ मिले हैं। जिनका नामोल्लेख अन्त में किया जायगा।

आपका जन्मस्थान बंग-देशान्तर्गत यशोहर (Jessore) जिला के मागुरा ग्राम में एक सुप्रसिद्ध वैद्यवंश में हुआ था आपके पिता का नाम भवानीप्रसाद राय और माता का नाम अभया देवी था। तथा जन्मकाल बंगला सन् १२०५–२४ आषाढ़ कृष्ण नवमी शुक्रवार था। आप संस्कृत से नाना शास्त्र का अध्ययन कर १८ वर्ष की अवस्था में राजशाही जिले के वैद्य बेलघरिया नामक स्थान के विख्यात कविराज रामकान्त सेन जी के पास आयुर्वेद अध्ययन करने आये।

यहाँ आकर स्वयं आयुर्वेद का अध्ययन करते हुए अन्य छात्रों को संस्कृत व्याकरण-साहित्यादि की अध्यापना भी किया करते थे। उसी छात्रावस्था में अपने छात्रों के सुभीता के लिये मुग्धबोध व्याकरण की "महावृत्ति" नामक एक नूतन टीका की रचना की। कविराज गंगाधर के पिता ने इस टीका की परीक्षा के लिये उस समय के एक प्रख्यात वैय्याकरण विद्वान् के पास ले गये थे, और उनसे आपने अपने पुत्र का नाम नहीं कहा था। उन्होंने टीका को ध्यानपूर्वक पढ़कर कहा—इस टीका को तो मैंने पहले कभी भी नहीं देखा था; परन्तु मालूम होता है कि यह अति प्राचीन एक उत्कृष्ट टीका है। इससे मालूम होता है कि छात्रावस्था में ही उनकी रचना-शक्ति कैसी तीव्र थी।

कविराज गङ्गाधर ने आयुर्वेद का अध्ययन समाप्त कर २१ वर्ष की अवस्था में ही कलकत्ता में प्रथम चिकित्सा-कार्य प्रारम्भ किया। किन्तु स्वास्थ्य खराब हो जाने के कारण अपने पिता के आदेशानुसार मुर्शीदाबाद में जाकर चिकित्सा-कार्य में प्रवृत्त हुए। मुर्शीदाबाद मुसल्मानी राज्य में 'बंगाल, विहार और उड़ीसा' की राजधानी थी। उस समय भी वहाँ बहुत धनाढ्य जमीन्दार और व्यवसायी थे। यहाँ आने के थोड़े ही दिनों बाद इनकी यश-ध्वजा चारो ओर फहराने लगी। उस समय कासिमबाजार की विख्यात् महारानी श्रीमती स्वर्णमयी कठिन रोग से आक्रान्त हुई थीं। कविराज गंगाधर उस समय नवयुवक थे। परन्तु यशस्वी होने के कारण अन्यान्य वैद्यों के रहते हुए भी महारानी जी की चिकित्सा का भार आप ही को सौंपा गया। इनकी चिकित्सा के नैपुण्य से महारानी ने सम्पूर्ण आरोग्य लाभ किया। तब गंगाधर उस राज-दरबार के पारिवारिक चिकित्सक हुए, और इन्हें मासिक वृत्ति मिलने लगी।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

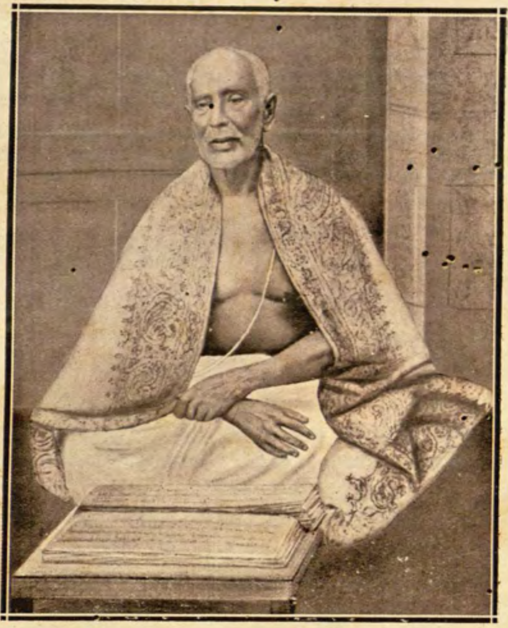

श्रीमान् स्वर्गीय कविराज श्रीगंगाधरराय कविरत्न **मुर्शिदाबाद** ।
चरककी जल्पकल्पतरु व्याख्या आदिके लेखक ।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

उनका शास्त्रज्ञान और उपस्थित बुद्धि इतनी प्रबल थी कि उससे पाश्चात्य चिकित्सकों को भी अत्यन्त विस्मित होना पड़ता था। उस समय मुर्शीदाबाद के नवाब बहादुर एक बार रोगग्रस्त हुए, उनकी चिकित्सा के लिये डा० कोटा प्रभृति प्रसिद्ध डाक्टरगण बुलाये गये। किन्तु उन लोगों ने रोग असाध्य समझ कर चिकित्सा छोड़ दी। परन्तु गंगाधर जी की चिकित्सा से नवाब बहादुर ने आरोग्य लाभ किया। तब से उनकी ख्याति समग्र देश में और भी जोर से फैल गयी और नाना दिग् से चिकित्सार्थ रोगी और अध्ययनार्थ छात्रगण आने लगे।

गंगाधर जी के प्रथम यौवनकाल में ही उनकी स्त्री एक मात्र पुत्र धरणीधर को छोड़कर स्वर्ग सिधार गयीं। फिर उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया और एक वृद्धा परिचारिका पर अपने पुत्र का पालन-पोषण का भार अर्पण कर स्वयं चिकित्सा और अध्यापन कार्य में निमग्न हो गये और विद्यार्थियों के साथ रहने लगे। आपके अन्यतम शिष्य महामहोपाध्याय कविराज द्वारकानाथ सेन जी कहा करते थे कि हम लोगों को अध्ययनकाल में रात्रि-भोजन के पश्चात् बहुत बार ऐसा अवसर आया था कि गुरु जी के पास अध्ययन करते ही रात्रि बीत जाती थी। गुरु जी रात्रि में बहुत कम निद्रा में समय व्यतीत करते थे। अवशिष्ट समय अध्यापन और ग्रन्थ-रचना में व्यतीत होता था। शयन-स्थान पर लेखन की सारी सामग्री रक्खी रहती थी। क्योंकि कभी-कभी उठ-उठकर भी आप कुछ-न-कुछ लिख जाते थे। शयनावस्था में भी आप शास्त्र विषय की ही चिन्ता करते थे तथा कोई नवीन तत्त्व मालूम होने पर अथवा संदिग्ध विषयों का संदेह दूर हो जाने से तत्काल उठकर निद्रित विद्यार्थियों को उठाकर उन लोगों को समझाने लग जाते थे। शास्त्रीय विषय की चिन्ता और उसके प्रतिपालन के लिये उनके निकट समय-असमय का विचार कुछ भी नहीं था।

कविराज गंगाधर कितने प्रकाण्ड 'विद्वान्, सुचिकित्सक' और निपुण अध्यापक थे, उसका लिखना व कहना असम्भव है। यह उनके रचित ग्रन्थसमूह और सुयोग्य शिष्यों को देख कर ही पता चल सकता है। वर्तमान आयुर्वेद के युग को यदि गंगाधर-युग कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी; क्योंकि अभी तक भी आयुर्वेदीय चिकित्सक-मण्डली में गंगाधर के शिष्य-परम्परा ही अधिक व्याप्त है। उनके शिष्यों में महामहोपाध्याय कविराज द्वारकानाथ सेन, सुश्रुत के भाष्यकार प्राणाचार्य हाराणचन्द्र चक्रवर्ती, कविराज परेशनाथ सेन, कविराज ईश्वरचन्द्र सेन, कविराज गोविन्दचन्द्र सेन, कविराज श्रीचरण सेन और प्रशिष्य में लक्ष्मीराम स्वामी, वैद्यरत्न योगेन्द्रनाथ, कविराज उमाचरण प्रभृति विख्यात हैं। कविराज गङ्गाधर के शिष्यों में कोई भी अपने जीवन में असफल नहीं हुए—यह एक विचित्र लीला है।

नाना शास्त्रों में बहुसंख्यक उपादेय ग्रन्थ लिखने पर भी चरक की जल्पकल्पतरु टीका ही ने उन्हें अमर कर दिया है। आयुर्वेद शास्त्र में उनका पाण्डित्य कैसा असाधारण था यह केवल जल्पकल्पतरु टीका देखने से ही ज्ञात हो सकता है। दर्शन, उपनिषद्, धर्मशास्त्र प्रभृति में भी उनका अगाध पाण्डित्य था। यह उनकी मनुस्मृति-टीका के एकही श्लोक के पढ़ने से मालूम होता है।

"असद् व्याख्यार्णवे घोरे मग्नां मानव-संहिताम्।
वेदान्तवत्समुद्धर्तुं तत्वतोऽयं ममोद्यमः॥"

(गंगाधरकृत मनुसंहिता की टीका)

Indira Gandhi National Centre for the Arts

कविराज गंगाधर ने अपनी मनुस्मृति-टीका में कुल्लूक भट्ट प्रभृति प्राचीन टीकाकारों के मतों का विशेष पाण्डित्यपूर्ण विचार से खण्डन किया है।

कविराज गंगाधर ने केवल ग्रन्थों की रचना कर ही अपना कार्य समाप्त नहीं किया, बल्कि उन ग्रन्थों को मुद्रणार्थ अपने गृह में एक विशाल-प्रेस की स्थापना की और प्रथम अमूल्य ग्रन्थ जल्पकल्पतरु टीका का मुद्रण किया। दुःख है कि आप अपने जीवन काल में स्वरचित ग्रन्थों का सम्पूर्ण मुद्रण नहीं कर सके।

उनके रचित ग्रन्थों में शेष ग्रन्थ "आग्नेय अलंकार" की काव्यप्रभा वृत्ति है। इस ग्रन्थ की रचना के थोड़े दिनों बाद ही आपका परलोक गमन हुआ था। आपका स्वर्गवास ८६ वर्ष की अवस्था में बंगला सन् १२९२-१९ ज्येष्ठ में हुआ।

उनकी मृत्यु के बाद उनके रचित कई एक उत्कृष्ट ग्रन्थों का मुद्रण हुआ; किन्तु उनके पुत्र और पौत्र की असामयिक मृत्यु के कारण गंगाधर का समग्र ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हो सका है।

निखिल भारतीय वैद्य मण्डली को उचित है कि वर्तमान युग के आयुर्वेद-प्रवर्तक कविराज गंगाधर की अप्रकाशित पुस्तकों को प्रकाशित करने का भरपूर प्रयत्न करे।

कविराज गंगाधरजी द्वारा रचित पुस्तकों की सूची—

आयुर्वेद में ग्रन्थों की संख्या ११

यथा—(१) चरक संहिता की जल्पकल्पतरु टीका, (२) परिभाषा, (३) भैषज्यरामायणम्, (४) आग्नेयायुर्वेद व्याख्या, (५) नाड़ी-परीक्षा, (६) राजवल्लभीय द्रव्यगुण विवृति, (७) भास्करोदयः, (८) मृत्युञ्जय संहिता, (९) आरोग्य स्तोत्रम्, (१०) प्रयोगचन्द्रोदयः, (११) आयुर्वेद-संग्रहः।

तन्त्र में ग्रन्थों की संख्या—२

यथा—(१) निर्वाणसारः, (२) महानिर्वाणतन्त्रम्।

व्याकरण में ग्रन्थों की संख्या—८

यथा—(१) कौमार व्याकरणम्, (२) त्रिपाठ व्याकरणम्, (३) मुग्धबोध महावृत्तिः, (४) पाणिनीय वार्त्तिकम्, (५) दोषसन्दर्शनी, (६) शब्दशक्तिप्रभा, (७) धातुपाठः, (८) वादार्थः।

साहित्य में ग्रन्थों की संख्या—१२

यथा—(१) लोकालोक पुरुषीय महाकाव्यम्, (२) शिखण्डि प्रादुर्भावः, (आख्यायिका)-(३) तारावती स्वयम्वर महनाटकम्, (४) शौरीश्वर चरित महाकाव्यम्, (५) दुर्गाभ्र महाकाव्यम्, (६) सप्तकाव्यम्, (७) सत्योपाख्यानम्, (८) छन्दोमारवृत्तिः, (९) काव्यलक्षणवृत्तिः, (१०) छन्दोऽनुशासनम्, (११) पिङ्गलटीका, (१२) अग्नेयालङ्कारस्य काव्य-प्रभावृत्तिः।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

धर्मशास्त्र में ग्रन्थों की संख्या—७

यथा—(१) मनुसंहिता की प्रमोदभञ्जनी टीका, (२) पराशरसंहिता टीका, (३) स्मृतिसेतुः, (४) दायभागः, (५) वैधहिंसादि निर्णयः, (६) धर्म्मानुशासनम्, (७) विष्णुपुराण टीका।

उपनिषद् में ग्रन्थों की संख्या—८

यथा—(१) मिश्रीपनिषद् व्याख्या, (२) तैत्तिरीयोपनिषद् व्याख्या, (३) छान्दोग्योपनिषद् व्याख्या, (४) माण्डुक्योपनिषद् व्याख्या, (५) प्रश्नोपनिषद् व्याख्या, (६) केनोपनिषद् व्याख्या, (७) वाजसेनेयोपनिषद् व्याख्या, (८) कैवल्योपनिषद् व्याख्या।

दर्शन में ग्रन्थों की संख्या—१४

यथा—(१) षट्सिद्धान्तः, (२) वेदान्तसर्वस्वम्, (३) ब्रह्मविद्यामृतम्, (४) शारीरक सूत्रवार्त्तिकम्, (५) वस्तुनिर्णयः, (६) पञ्चपुष्पाञ्जलिः, (७) तत्त्वप्रद्याकरः, (८) संस्कारवादः, (९) सांख्यभाष्यम्, (१०) पातञ्जलभाष्यम्, (११) गौतमीय वात्स्यायन वृत्तिः, (१२) कुसुमाञ्जलि टीका, (१३) वेदान्तभाष्यम्, (१४) वैशेषिकभाष्यम्।

ज्योतिष में ग्रन्थ की संख्या—१

यथा—(१) काल-विज्ञानम्।

विविध विषयों में ग्रन्थों की संख्या—१३

यथा—(१) त्रिकाण्ड शब्दशासनम्, (२) जगन्नाथ स्तवः, (३) संसार संवरणम्, (४) कात्यायन वार्त्तिकम्, (५) गायत्री व्याख्या, (६) सिद्धान्त शतकस्तवराजः, (७) रामगीता व्याख्या, (८) आनन्द तरङ्गिणीस्तवः, (९) नवग्रह स्तोत्रम्, (१०) लिपि वर्ण विज्ञानीयम्, (११) शान्ति कान्तिक व्याक्यबोधः, (१२) भागवत विचारः, (१३) महिम्नःस्तव व्याख्या।

सब मिलाकर ग्रन्थों की संख्या ७६

Indira Gandhi National Centre for the Arts

कविराज शिरोमणि स्वर्गीय

श्यामादास-वाचस्पतिजी की

संक्षिप्त जीवनी

बङ्गदेश के प्रसिद्ध विद्या-केन्द्र नवद्वीप के संनिकट गंगा-तट पर चूपी नामक ग्राम में सन् १८७६ (बंगला) २१ फाल्गुन को शुभ जन्म कविराज श्यामादास जी का हुआ था।

अष्टादश शताब्दि के शेषांक में पण्डित-प्रवर रघुनाथ शिरोमणिजी के समय से नव्य न्याय शास्त्र के पठन हेतु भारतवर्ष के प्रायः सभी विद्यार्थी नवद्वीप में जाते थे।

इस नवद्वीप के सन्निकट चूपी तथा पूर्वस्थली नाम के दो सम्मिलित ग्राम प्रसिद्ध हैं। इसमें प्रसिद्ध साहित्यिक अक्षयकुमार दत्त तथा भाव-संगीत रचयिता देवान रघुनाथ आदि मनुष्य-रत्न उत्पन्न हुये थे।

इस ग्राम की और विशेषता यह थी कि यहाँ के वैद्य नाड़ी-ज्ञान के विशेषज्ञ होते थे।

जिस वंश में पं० श्यामादास जी उत्पन्न हुए थे, उस वंश को चूपी के जमींदार ने अनेक धन-सम्पत्ति देकर वसाया था। पं० श्यामादास जी के पितामह पद्मलोचनदास बड़े प्रसिद्ध विद्वान् एवं चिकित्सक थे। उनके ज्येष्ठ पुत्र वाचस्पति जी के पिता कविराज अन्नदा प्रसाददास दो सहोदर भ्राता थे। अन्नदा प्रसादजी अपने कनिष्ठ (भ्राता) राधिकाप्रसादजी के ऊपर निज ग्राम के चिकित्सा का भार सौंपकर स्वयं रंगपुर "धरणी वाड़ी" के जमीन्दार जी के अनुरोध से उस स्थान के चिकित्सक हुए। मलेरिया के प्रारम्भ काल में डाक्टरों से प्रतियोगिता कर यश-संचय किया था। आप केवल चिकित्सक ही न थे वल्कि इनकी लगन आत्मोन्नति पूजा-पाठ की ओर भी अधिक आकर्षित थी।

पं० श्यामादासजी की प्रतिभा बाल्यकाल से ही चमकती थी—उसी उम्र में उन्होंने "कविता-कदम्ब" तथा यौवनावस्था में संस्कृत की "बाल-चापल्य" नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया था। १५ वर्ष की अवस्था में पूर्वस्थली निवासी पं० यदुनाथ विद्यारत्न के पास संस्कृत साहित्य एवं व्याकरण पढ़ने के निमित्त गये थे वहीं उन्होंने संस्कृत भाषा में कथोपकथन तथा व्याख्यान देने का अभ्यास किया था।

१२९० में पं० भूवन विद्यारत्नजी से भी शिक्षा प्राप्त की थी।

१२९४ में काशी के प्रसिद्ध कविराज परेशनाथ जी के पास आयुर्वेद शास्त्र का अध्ययन किया था। सांख्य-वेदान्त, पूर्व मीमांसादि ग्रन्थ के भी अध्ययन के साथ ही साथ श्यामाचरण लाहिड़ी के संनिकट योगाभ्यास का भी अभ्यास किया था।

१३०२ में काशी से वापस अपने ग्राम चले गये थे।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

श्रीमान् स्वर्गीय कविराज श्रीश्यामादासजी वाचस्पति कलकत्ता।
संस्थापक-श्रीवैद्यशास्त्रपीठ कलकत्ता।

Indira Gandhi National
Centre for the Arts

उनके सहपाठियों में पं० प्रमथनाथ स्मृति-तीर्थ, प्रतापचन्द्र काव्यतीर्थ आदि के नाम विशेष स्मरण करने योग्य हैं।

कुछ दिन ग्राम में रहने के बाद अपने पिता के साथ रंगपुर में चिकित्सा-ज्ञान प्राप्त किया था।

अपना व्यवसाय करने के लिये कलकत्ते गये और वहाँ के प्रसिद्ध चिकित्सक द्वारिकानाथ सेन जी के पास व्यवसाय-प्रणाली तथा शास्त्रोपदेश ग्रहण कर स्वतंत्र रूप से अपना कार्य्यारम्भ किया। थोड़े ही दिनों में उनका यश कलकत्ते में फैल गया।

उनकी सुप्रेरणा से अनेक छात्र कलकत्ते की सांख्य, वेदान्त-न्याय प्रभृत शास्त्र की परीक्षायें पास कर, नैपाल, काश्मीर, जयपुर, संयुक्त-प्रदेश आदि स्थानों पर विराजमान हैं।

नाना प्रदेशों से अनेक आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त करने के लिये छात्र स्वर्गीय पं० श्यामादासजी के चरण कमलों में आकर अपना जन्म सफल बना गये। महामहोपाध्याय पं० गंगाधर कविराज के लगभग ही इनके छात्रों की भी संख्या थी। अनेक असहाय-गरीब छात्र उनकी सहायता से एम० ए०; बी० ए० पास कर अब तक जीविकार्जन कर रहे हैं। भारतीय आयुर्वेदिक संस्थाओं के परिचालक मण्डलियों में आपका मुख्य स्थान था।

काशी हिन्दूविश्वविद्यालय तथा सारस्वत समाज के परीक्षक थे तथा उस कार्य के लिये जितना धन मिलता था वह इन्हीं संस्थाओं की उन्नति के लिये दान कर देते थे, उन्हें अनेक संस्थाओं ने अपनी तरफ से उपाधि प्रदान कर गौरवान्वित किया था।

नवद्वीप—विबुधजननी सभा से "शिरोमणि" पण्डित समाज से "वाचस्पति" आदि अनेक स्थानों से अनेक 'उपाधियाँ' दी गई थीं।

आपने निखिल-भारत-आयुर्वेदीय महासम्मेलन के सभापति का आसन सन् १३४० (बङ्गाब्द) में ग्रहण किया था तथा बङ्ग-साहित्य परिषद् के सहकारी सभापति थे।

आप इतने परिश्रमी थे कि केवल रात-दिन में ३—४ घन्टे ही शयन करते तथा अन्य सब समय शास्त्रावलोकन तथा परोपकार (रोगी-निरीक्षण) में बिताते थे।

आपका दान—दरिद्रों का भरण-पोषण-विद्यादान, समाज सेवादि में—अजातशत्रु के सदृश था। आप अनेक अवसर पर गुप्त दान किया करते थे, आप वैद्य-समाज में एक आदर्श थे तथा अति सुवक्ता एवं स्वदेश-प्रेमी थे। स्वयं खद्दर पहिनते तथा दूसरों को पहिनने के लिये कहते, सबको स्वावलम्बी और स्वाधीन वृत्ति से धनोपार्जन करने का उपदेश देते थे। जिन कर्मीने देश के लिये आत्मनियोग किया है उन सबकी देख-रेख एवं चिकित्सा वग़ैरह किसी प्रकार का द्रव्य लिये ही किया करते थे, आवश्यकता पड़ने पर उन्हें धन भी दिया करते थे।

देशबन्धुदास, देशप्रिय यतीन्द्रमोहन तथा पं० मोतीलाल नेहरू आदि उनपर विशेष दृष्टि रखते थे।

देश-कर्मियों अर्थात् (कांग्रेस) की सहायतादि करने के कारण ही उन्हें महामहोपाध्याय की उपाधि गवर्नमेंट ने नहीं दी।

कविराज-शिरोमणिजी की स्थायी प्रतिष्ठित कीर्ति कलकत्ते की "वैद्यशास्त्र पीठ" अब भी वर्तमान है।

भारतीय आयुर्वेदीय संस्थाओं में डाक्टरी शिक्षा मिली हुई है किन्तु "वैद्यशास्त्र पीठ" प्राचीन ऋषियों की वैशिष्ट रक्षा करती चली आ रही है।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

कविराज श्यामादास जी की अतुल महिमा लिखना अपार है।

कविराज शिरोमणि श्यामादास जी वङ्गदेश को अन्धेरे में छोड़कर १८ आषाढ़ १३४१ (बङ्गला) मङ्गलवार १०—५ समय (रात्रि) भारतवासियों को अश्रु-जल में निमग्न कर यह संसार छोड़कर वैकुण्ठधाम को सिधारे।

आप सुदीर्घ ७० वर्ष की आयु प्राप्त कर परोपकार करते-करते महाकाल के एक काल में कवलित हुए।

आप अंत समय अपने एकलौते पुत्र सुप्रसिद्ध कविराज विमलानन्द तर्क-तीर्थ को चार कन्यायें एवं पौत्र-पौत्री सहित छोड़ गये हैं।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

श्रीमान् कविराज विमलानंदजी तर्कतीर्थ।
संचालक-श्री वैद्यशास्त्रपीठ. कलकत्ता।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

स्वर्गीय श्रीमान् कविराज धर्मदासजी, काशी।
प्रिंसिपल—आयुर्वेदिक कालेज, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस।

Indira Gandhi National
Centre for the Arts

विद्वत्प्रवराः स्वर्गीय-कविराज-

धर्मदास-महोदयाः

१८६२ ईशवीये तथा १९१८ वैक्रमे संवत्सरे माघशुक्ल भीष्माष्टम्यां बर्द्धवानमण्डले नवद्वीपान्तर्गतपूर्वस्थलीसमीपवर्तिनि चूपीग्रामे कविराजश्रीकाशीप्रसन्नमहोदयानां गृहे कविराज धर्मदासमहोदयानां जनिरभूत् । तस्मिन्नेव ग्रामे व्याकरणसाहित्यदर्शनादिषु प्रौढिमुपपाद्य १५ तमे वर्षे वाराणस्यामायुर्वेदाध्ययनाय स्वमातुलविद्वद्वरेण्यश्रीपरेशनाथकविराजमहोदयानां सविधे समागताः । ये हि कविराजश्रीपरेशनाथमहोदयाः सुगृहीतनामधेयानामायुर्वेदगगनतिमिरभास्कराणामपूर्वप्रतिभावतां तत्रभवतां श्रीमतां कविराजश्रीगङ्गाधररायकविरत्नमहोदयानां प्रमुखशिष्या आसन्, ये चाधुनापि वङ्गदेशे बालगङ्गाधरेत्याख्यया सादरं स्मर्यन्ते । एतेषां चरणेष्वेवास्मत्कविराजमहोदयाः सुबहुक्लेशं समस्तमायुर्वेदवाङ्मयं चिकित्साक्रमञ्चाभ्यस्य स्वप्रतिभाबलेन परं पाटवमध्यगमन् । एते महानुभावाश्चरके कृतश्रमा अपि पुनश्चरकान्तर्गूढतत्त्वानुसंधाने दत्तचित्ताश्चरकसंहितायामेव विशेषेण श्रममकार्षुः । फलस्वरूपेण च चरकावतारा इव भारते चरकविषये प्रामाणिकपुरुषरूपेणावस्थिताः ।

अध्ययनानन्तरमेवैभिर्महाभागैर्निरलसतया स्वगृहेऽध्यापनमारब्धम् । पुनश्च काशीहिन्दूविश्वविद्यालये भारतपूज्यैः श्रीमदनमोहनमालवीयमहोदयैरायुर्वेदविद्यालयेऽध्यक्षपदमलङ्कर्तुं प्रार्थिताः, आयुर्वेदप्रचारदृष्ट्या लोकोपकारभावनया च तदध्यक्षपदमशोभयन्त । ततः प्रभृति तत्रैवायुर्वेदनिगूढतत्त्वानि शिष्येभ्यो वितरन्त आजीवनं विराजमाना आसन् । एतेषां सहस्रतोऽप्यधिकाः शिष्या भारते वर्षे प्रायः सर्वेष्वेव प्रान्तेषु लब्धकीर्तयश्चिकित्साकर्म कुर्वन्ति । तेषु प्रधानतमाश्च कविराजश्रीसत्यनारायणशास्त्रिमहोदयाः, कविराजचक्रवर्तिश्रीताराचरणसर्वदर्शनतीर्थमहोदयाः, काशीस्थमारवाड़ी चिकित्सालयस्य प्रधानचिकित्सका आयुर्वेदशास्त्राचार्यश्रीदुर्गादत्तशास्त्रिणः, स्वस्थवृत्तसमुच्चयलेखकाः श्रीराजेश्वरदत्तमिश्रायुर्वेदाचार्याः ।

एते हि परमधार्मिकाः स्वदेशवस्तुव्यवहारपराः परमसौम्याश्छात्रवत्सलाश्चासन्, स्वप्रतिभाबलेन रोगाणां परिज्ञाने चिकित्सिते च प्रथितमहिमानो लब्धसिद्धयः "ननु लक्ष्मीः फलमानुषङ्गिकम्" इति सूक्त्यनुसारं विपुलं द्रव्यं चोपार्ज्य भिषङ्मूर्धन्यत्वेनावस्थिताः ।

कविराजमहानुभावा एकं पुत्ररत्नं पुत्रीं चैकामसंख्यांश्च शिष्यान् विहाय १९९२ वैक्रमे वत्सरे काश्यां कैवल्यमधिगताः ।

श्रीजगदीश्वरस्यानुकम्पया महाभागानां तेषां पुत्रः श्रीभूपेन्द्रनाथकविराजगणपतिमहोदय आयुर्वेदशास्त्रे लब्धप्रावीण्यो वाराणस्यामेव छात्रानध्यापयन्नातुरानुपक्रमते—

कविराज महानुभावानां जीवनकाले केन चिद्विदुषा लिखितं पद्यमिदम्—

आयुर्वेदसुरापगां शिरसि यः सन्धार्य गङ्गाधरो
जातस्तस्य परम्पराप्रकरणे शिष्यः परेशस्य यः ।
साक्षाद्यश्चरकश्चिकित्सितविधावध्यापने कर्मणि
ख्यातो भारतभूतले विजयते श्रीधर्मदासः सुधीः ॥

Indira Gandhi National Centre for the Arts

प्रान्तीय वैद्य सम्मेलनों के सभापतियों

के

जीवन-चरित एवं भाषण

Indira Gandhi National
Centre for the Arts

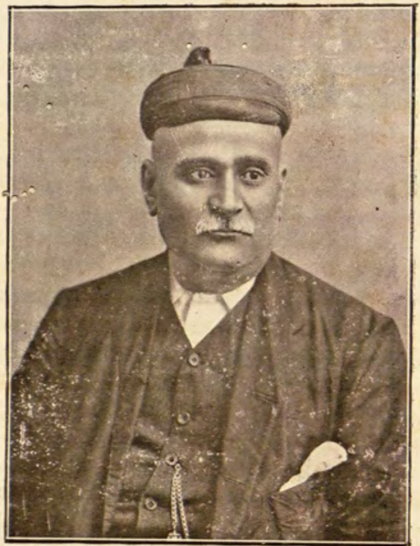

श्रीमान् प्राणाचार्य डॉ. पोपट प्रभुराम,
एल्. एम्. एन्ड एस्; जे. पी. बम्बई ।
सभापति, कच्छ, काठीयावाड, गुजरातप्रान्तीय वैद्यसंमेलन प्रथम अधिवेशन ।
अमदावाद (सन् १९२५) ।

Indira Gandhi National
Centre for the Arts

गुजरात प्रांत

प्राणाचार्य

डॉक्टर पोपट प्रभुराम

एल० एम० एण्ड एस०, जे० पी० का

संक्षिप्त जीवन-वृत्तांत

डॉक्टर पोपट प्रभुराम, प्रभुराम आयुर्वेदिक कॉलेज के प्रिन्सिपल और इसी कॉलेज में "निदान चिकित्सा" तथा "औषधिगुणदोष" के अध्यापक हैं। इस कॉलेज के अंगभूत स्थापन की हुई "उच्च वर्ण की हिन्दू हास्पिटल" के वे मुख्य चिकित्सक हैं। वे स्वर्गवासी वैद्यराज प्रभुराम जीवनराम के पुत्र हैं। इनका जन्म पोरबंदर में सं० १९२२ अधिक ज्येष्ठ बदी ३ के दिन हुआ था। इनका पहला विवाह बंबई में उस वक्त वैद्यकीय उपचार करने वाले स्व० सुप्रसिद्ध वैद्यराज जटाशंकर विट्ठलजी की पुत्री के साथ हुआ था, उन्होंने मुंबई यूनिवर्सिटी की एल० एम० एण्ड एस० की उपाधि १८९३ में प्राप्त की थी, और वैद्यक अभ्यास के लिये बंबई के ग्रॉंट मेडिकल कॉलेज में जिस वक्त प्रवेश किया उसी वक्त साथ ही में उन्होंने आयुर्वेद का अभ्यास अपने पिता के पास शुरू किया, कारण उसी समय में उन्हें शार्ङ्गधर, चरक, सुश्रुत और वाग्भट का ज्ञान प्राप्त करना था। आर्य और इंग्लिश दोनों वैद्यक शास्त्र के अभ्यास साथ-साथ हो रहे थे, इसलिये उन्हें दोनों का मेल-मिलाप करने का योग्य नमूना मिल रहा था। ग्रॉंट मेडिकल कॉलेज के अभ्यास के समय में उन्हें कर्नल ग्रे, कर्नल आरनॉट, कर्नल डिमक, कर्नल हॅच तथा मेडार मेन्सर सरीखे विद्वान् और उदार दिल डॉक्टरों का समागम अनायास ही प्राप्त हुआ था। जिस समय आयुर्वेद एक शास्त्र है, चिकित्सा विषय में आर्यावर्त के संपूर्ण वैद्य पूर्ण विश्वास से उससे लाभ उठा रहे हैं तथा आयुर्वेदानुसार चिकित्सा करने वाले विद्वान वर्ग का अस्तित्व हिन्दुस्थान के संपूर्ण स्थलों में चिरकाल से है इस विषय का छाप उनके मन पर दृढ़तर करने के लिये हरवक्त उनके वैद्यराज प्रभुरामजी तथा दूसरे विद्वानों का समागम बहुत ही फायदेमंद हो रहा था।

डॉक्टर पोपट काठियावाड पोरबंदर के स्थायी वतनदार हैं। उन्हें डॉक्टर की उपाधि मिलनेपर थोड़े दिन के बाद ही पोरबंदर के ब्रिटिश एडमिनिस्ट्रेटर ने उन्हें इस स्टेट के चीफ मेडिकल ऑफिसर की जगह के लिये मांगा; और डॉक्टर पोपटजी द्वारा वह अधिकार स्वीकार कर लेने पर सिर्फ तीन ही महीना के भीतर एक बड़ा स्टेट हॉस्पिटल—नामदार राणासाहब श्री भावसिंहजी के हाथ खोल दी, वही हॉस्पिटल आजकल भी पोरबंदर के वस्ती को अतिशय आशीर्वाद रूप हो रही है। यहीं उन्हें शस्त्रवैद्यक का अच्छा अनुभव प्राप्त हुआ और संपूर्ण

Indira Gandhi National Centre for the Arts

हॉस्पिटल उनके अधिकार में होने से आयुर्वेदीय चिकित्सा का बड़े प्रमाण में अनुभव लेने के लिये अच्छा अवसर मिला।

सन् १८९५ में वैद्यराज प्रभुरामजी ने अपनी वृद्धावस्था को देख उन्हें फिर बंबई में आने के लिये कहा और आयुर्वेद पर इतने वर्षों में जो उनकी पूर्ण श्रद्धा हो रही थी इसलिये बड़े उत्साह के साथ वैद्यराज का काम उनके ऊपर सौंपा गया तथा आयुर्वेदीय औषधियाँ बनाने के उनके स्थापित खाते में तरक्की करके उसका "प्रभुराम अनंत औषधालय" (फार्मसी) नाम रखा। सन् १८९६ की प्रारंभ में ही अपने पिताजी की आज्ञा से आयुर्वेदीय पद्धति पुरःसर शिक्षण की एक योजना उन्होंने नियोजित की और उसे डॉक्टरों और वैद्यों की एक कमिटी द्वारा अनुमोदन मिलने पर, उसके अनुसार उसी वर्ष मुंबई हाइकोर्ट के न्यायमूर्ति महादेव गोविंद रानडे, सी. आई. ई. की अध्यक्षता में "आयुर्वेद विद्यालय" नाम की संस्था स्थापित की गयी। इस संस्था में विद्वान अध्यापकों से व्याख्यानों और प्रत्यक्ष शिक्षण के साथ आयुर्वेद का अभ्यास विद्यार्थियों द्वारा किया जाने लगा। इस विद्यालय में पाँच वर्ष अभ्यास करके परीक्षा में उत्तीर्ण होनेवाले को "भिषग्वर और एसोसियेट ऑफ दी आर्यन मेडिकल स्कूल" यह उपाधि देने का ठहराव किया गया था और इसी उपाधि के लिये उत्तीर्ण हुए विद्यार्थियों के पहले संग्रह के एक बड़े समुदाय के समक्ष विद्यालय के स्थापक वैद्यराज प्रभुराम जी की प्रार्थना करने पर बंबई के उस वक्त के न्यायमूर्ति सर लॉरेन्स जॉन्किन्स ने पूर्वोक्त उपाधि दी और इसके बाद प्रतिवर्ष विद्यार्थियों की परीक्षा लेकर वैसी उपाधियाँ देने का क्रम चालू किया गया, इन भिषग्वरों को अपने अभ्यास के बीच में आयुर्वेद के सम्पूर्ण शिक्षण के साथ वैद्यक सम्बन्धी अन्य स्थानों में से होने वाली अनेक तरह की सुविधाओं की भी तजवीज डॉ० पोपट जी की योजना में की गयी है।

सन् १८९६ में मुंबई में प्लेग शुरू होने पर और उसके दिनों दिन गंभीर स्वरूप धारण करने पर नामदार सरकार ने मुम्बई म्युनिसिपलिटी की मदद में रहने वाले अधिकारियों और प्रजा में सुखोत्पादक संबंध बनानेवाली योजना के संबंध में कितनेक बातों में हेरफेर होने से परस्पर असंतोष न बढ़ जाय इसलिये एक शांत और हिन्दी भाषा तथा मंतव्य को समझनेवाला अधिकारी समझ कर डॉ० पोपट जी को नियुक्त किया। इस समय हर रोज होनेवाली असंख्य मृत्यु-संख्या में काम करने पर भी उन्होंने गरीब रोगियों की तरफ अपनी पूर्ण मेहनत के साथ ध्यान दिया। उनकी इस सेवा के योग्य पुरस्कार देकर उन्हें उस जगह पर कायम रहने के लिये योजना बनाने की इच्छा से कहने पर उन्होंने उपकार के साथ स्वीकार न किया तथा आज तक की गई सेवाओं के लिये किसी प्रकार भी पुरस्कार लेना स्वीकार नहीं किया। नामदार सरकार ने उसके दूसरे वर्ष उन्हें "जस्टिस ऑफ दी पीस" का अधिकार दिया और थोड़े ही दिन बाद ऑनरेरी मजिस्ट्रेट का विशेष अधिकार स्वीकार करने के लिये उनसे कहा गया, किन्तु अपने व्यवसाय के लिये बाधक समझ कर उसको स्वीकार करने में अपनी अशक्तता प्रकट की।

वैद्यराज प्रभुराम इस समय वैद्यक व्यवसाय से निवृत्त हो रहे थे और पूर्ण विश्रांति के दश वर्ष बीत जाने पर सन् १९०२ में संन्यास ग्रहण करके फाल्गुन बदी ३० के दिन सायंकाल सात बजे समाधिस्थ हो गये। आयुर्वेद विद्यालय का कार्य इस प्रकार डा० पोपट के अकेले हाथ में ही दिनों-दिन बढ़ता ही गया। उन्होंने विद्यार्थियों को प्रत्यक्ष अनुभव कराने

Indira Gandhi National Centre for the Arts

के हेतु उच्च वर्ण के हिन्दुओं के लिये एक हॉस्पिटल भी स्थापित किया और उसमें वैद्यक, शस्त्र-वैद्यक, नेत्र-वैद्यक तथा सूतिका रोगियों के रखे जाने का भी प्रबंध किया।

इस रीति से शिक्षण तथा अनुभव लेकर उत्तीर्ण करने वाले भिषग्वर वैद्यों द्वारा किया गया उपचार जनता को अनुकूल तथा लाभकारक मालूम होने पर नैसर्गिक रीति से धंधा करने वाले डाक्टर लोग इस पद्धति को पसंद न कर वैद्यों को घृणा की दृष्टि से देखने लगे; इतना ही नहीं बल्कि इन चिकित्सक वर्ग से अपने को भिन्न समझ कर और अपने को ही उनसे श्रेष्ठ समझ इस बात का निवेदन-पत्र नामदार सरकार के पास भेजा कि उन्हीं के वर्ग की चिकित्सा में रजिस्टरी होनी आवश्यक है, और ऐसा कानून बना देने का आग्रह कर उन्होंने सन् १९१४ में वह कानून पास कराया।

इस समय आयुर्वेद विद्यालय को कॉलेज का रूप दिया गया था और उसके स्थापक स्वर्गवासी वैद्यराज प्रभुराम जीवनराम जी के स्मरणार्थ उनका प्रभुराम आयुर्वेदिक कॉलेज नाम रखा गया था। डॉक्टर पोपट को इस परिणाम के हेर-फेर में इस कॉलेज के प्रिन्सिपल की उपाधि दी गई। उन्होंने बंबई युनिवर्सिटी की एल० एम० एंड एस० की उपाधि पहले प्राप्त की थी और नये कायदानुसार रजिस्टर्ड हो चुके थे। इधर मेडिकल कौंसिल ने आयुर्वेद की उन्नति को न सह कर डॉक्टर पोपट को सूचना दे दी कि आप रजिस्टर्ड हो चुके हैं इसलिये आयुर्वेद के साथ तुम्हें संबंध नहीं रखना चाहिये तथा वहाँ से उनका संबंध बंद करने के लिये और आयुर्वेद तथा इनके अनुयायी चिकित्सकों में डॉक्टर पोपट को नीचा दिखाने की इच्छा से तथा आयुर्वेद के श्रेष्ठत्व को नीचा दिखाने वाले मेडिकल कौंसिल की इस करनी के सामने डॉक्टर पोपट को साहसी बनना पड़ा और इस मामले में मेडिकल कौंसिल के साथ दो वर्ष तक पत्र-व्यवहार चलता रहा, तथा बंबई की लेजिस्लेटिव कौंसिल में इसी विषय पर जोश भरा वाद-विवाद हुआ, आखिर मेडिकल कौंसिल ने अपने कोर्ट के तरफ से डॉक्टर पोपट की बात की जाँच करने का निश्चय किया, और १९१७ के अक्टूबर मास में तेरह जजों की बनायी एक मेडिकल कोर्ट पूर्णतः उनकी जाँच करने के लिये नियत हुई। जिसकी आज्ञा के अनुसार आयुर्वेद सरीखे एक उपयोगी शास्त्र को उन्नत स्थिति में पहुँचाने वाले तथा उसका पद्धति पुरःसर शिक्षण देने का प्रयास करने वाले डाक्टर पोपट सरीखे एक विद्वान् ग्रेजुएट को इस तरह केवल एक अंग्रेजी का पक्षपात करने वाले कोर्ट के समक्ष जवाब देने के लिये उपस्थित होना पड़ा, यह ब्रिटिश राज्य के हिंदुस्थान के इतिहास में पहला ही दृष्टांत है। चार घंटे की लंबी जाँच के बीच में जजों और बैरिस्टरों के कठिन सवाल का जवाब देकर 'आयुर्वेद एक शास्त्र है' ऐसा उन्होंने सिद्ध कर दिया, इतना ही नहीं बल्कि जनसमूहों की आयुर्वेदीय-चिकित्सकों पर कैसी भावना थी उसे भी सिद्ध कर दिया। इस रीति से उनके जवाबों से प्रसन्न होकर उस कोर्ट ने डॉक्टर. पोपट को निर्दोष ठहराया और उसी कोर्ट के सम्पूर्ण जजों ने आयुर्वेद को फतेहमंद करने के लिए उन्हें धन्यवाद दिया। इस प्रकार आयुर्वेद-संबंध में उनके ऊपर चले हुए और संपूर्ण भारत भर में चर्चित उस मुकद्दमे का परिणाम उनके पक्ष का होने से आयुर्वेद के संबंध में वह अत्यंत लाभकारी हुआ। डाक्टर पोपट की उम्र हाल में ७१ वर्ष की है। उनकी जाति प्रश्नोरा नागर है। उनके बड़े पुत्र भिषग्वर रतिलाल ए० ए० एम० एस० उनके धंधे में मदद करते हुए अपने पिता की संमति से एवं उन्हीं की देख-रेख में चलती हुई प्रभुराम अनंत फार्मेसी के मैनेजिंग डायरेक्टर तथा

Indira Gandhi National Centre for the Arts

प्रभुराम आयुर्वेदिक कालेज के रजिस्ट्रार और दयालभीम जी आयुर्वेद औषधालय में चिकित्सक रूप में काम करते हैं। चिकित्सा और औषधि बनाने का वैद्यक-धंधा करना हो तो आयुर्वेद का अभ्यास करके ही करना चाहिये,, ऐसा डाक्टर पोपट का अभिप्राय है। इसी तरह बिना परीक्षा दिये जिसे चाहें वैद्यक की उपाधियाँ देना तथा औषधि की परीक्षा न कर सके ऐसे लोगों को या संस्थाओं को चँदा देना उन्हें पसंद नहीं था। वृद्धावस्था वाले धंधा के लिये यदि अयोग्य हों तो भी चिकित्सा तथा शिक्षण के विषय में उनकी संमति लेने में विद्वान-वैद्यों का महत्त्व समझते थे और इसी कारण प्रभुराम आयुर्वेदिक कॉलेज की कमिटी की तरफ से सन् १९२२ में प्राणाचार्य की माननीय उपाधि देने का निश्चय हुआ, जो सर भालचन्द्र, डॉ० देशमुख तथा दूसरे विद्वान चिकित्सकों के साथ डॉ० पोपट को भी दी गई थी। १९२५ में यही उपाधि नामदार गोंडल नरेश डॉ० सर भगवत्सिंह जी को भी दी गयी है। आयुर्वेद की पद्धत्यनुसार अभ्यास के लिये स्वीकृत की हुई प्राणाचार्य डॉ० पोपट की योजनानुसार प्रभुराम आयुर्वेदिक कॉलेज में शिक्षा दी जाती है, और वैद्यक विषय में विद्यार्थियों को औषधियों तथा चिकित्सा के साथ ही शास्त्रोपयोगी ज्ञान होने के बाद उन्हें वैद्यक संबंध में अन्य जगहों के सुधारों का भी संपूर्ण ज्ञान करा दिया जाता है। इस कॉलेज में उत्तीर्ण हुए विद्यार्थियों को "भिषग्वर" और "ग्रेजुएट ऑफ दी प्रभुराम आयुर्वेदिक कॉलेज" उपाधियाँ दी जाती हैं। आयुर्वेद के शिक्षण के लिये अत्यन्त उपयोगी इस संस्था की दिन-प्रति-दिन उन्नति के लिये डाक्टर पोपट जी निरन्तर तन, मन, और धन से प्रयत्न करते हैं।

सम्मेलन का प्रमुख-स्थान

संमेलन के प्रमुख स्थान अहमदाबाद में गुजरात प्रांतिक वैद्य संमेलन की पहली सभा हुई। उस समय प्राणाचार्य डॉ० पोपटजी को सभा का माननीय अध्यक्ष रूप चुना गया था, और उस निमंत्रण को स्वीकार कर वे वहाँ की चार दिन की सभा के लिये उपस्थित रहे थे। उस वक्त अध्यक्ष स्थानापन्न हो उन्होंने वायु, पित्त और कफ की प्रणालिका को जो कि समझना अत्यंत कठिन थी उसे अत्यंत सरलता के साथ और हरेक समझ सके ऐसी रीति से समझा दिया।

सख्त बीमारी

वे १९२७ में काश्मीर नरेश के यहाँ जा रहे थे, किन्तु इटोला के आगे बड़ी बाढ़ आने से फ्रान्टियर मेल में चार दिन रुके हुए उसीमें पड़े थे; उस समय उनकी तबीयत बीमार होने लगी, रात के २ बजे पास के कम्पार्टमेंट में सोने के लिए जाते समय एकाएक काश्मीर की रानी साहबा की छोटी बहन साहबा की खबर मिली कि पैर फिसल जाने से कीचड़ में गिर गयीं और वहाँ हाथ और पैर में सख्त चोट पहुँची, जिसके परिणाम स्वरूप बीमार तबीयत में ही काश्मीर नरेश को मिल कर पीछे आते ही सख्त रीति से बीमार होकर बिछौना पकड़ना पड़ा और छः मास की गंभीर बीमारी में विद्वान डाक्टरों ने भी उनकी आशा छोड़ दी थी।

इस समय उन्होंने प्रभुराम आयुर्वेदिक कालेज का धुरीणत्व किसे दिया जाय इसका निश्चय करने के लिये श्रीयुत गिरधरलाल हरीलाल सॉलीसीटर को बुलाया, और उस समय प्रभुराम आयुर्वेदिक कॉलेज के ट्रस्टियों का चुनाव कर तथा एक परीक्षक मंडल (युनीवर्सिटी) नियुक्त करके वे काम चलावें इस तरह की व्यवस्था करने की योजना बना कर उन्हें सौंप दी।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

श्री प्रभुराम आयुर्वेदिक कालेज और डॉ. पोपट युनिवार्सिटी ओफ आयुर्वेद बम्बई (सन १९३५)।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

ट्रस्टियों की नियुक्ति

अपने सह और दूसरे तीन व्यक्ति साथ लेकर डाक्टर पोपट—यदि बीमारी में अपने उपचार से ही ठीक हो जाँय तो, ट्रस्टी रूप से कायम रह कर काम चलावेंगे, इसके अतिरिक्त जो योजना डॉ० पोपटजी ने निश्चित कर दी है उसके अनुसार आयुर्वेद यूनिवर्सिटी स्थापन करके और आज तक की तन, मन, धन से उनकी सेवा पर ध्यान देकर पारितोषिक रूप मंडल के डाक्टरों ने पोपट यूनिवर्सिटी आफ आयुर्वेद नाम देने का ठहराव किया। सद्भाग्य से डाक्टर पोपटजी इस भयंकर बीमारी से केवल अपने ही उपचारों से अच्छे हो उठे और ट्रस्टी-रूप से अपना कार्य चलाने लगे।

यूनिवर्सिटी की स्थापना

इस यूनिवर्सिटी की स्थापना—बंबई की धारा-सभा के मुखिया आनरेबल सर अली-महम्मदखान देहेलवीयजी ने प्रभुराम आयुर्वेदिक कालेज के ३३ वें वर्ष के पदवी दान सभारंभ समय में उसे डाक्टर पोपट यूनिवर्सिटी आफ आयुर्वेद नाम से चलाने की सलाह सितम्बर १९२९ में ट्रस्टियों दी।

यूनिवर्सिटी-बिल्डिंग

इस संस्था का स्थायी रूप करने के लिये उनके मन में बहुत दिनों से एक निजी मकान बनाने की इच्छा थी और संयोगवश जिस मकान में प्रजा की सेवा करते-करते २० वर्ष से हो गये थे, उसी मकान को ट्रस्टीयों ने योग्य रीति से खरीद लिया।

ऊपर कहे हुए परीक्षक मंडल की कार्यवाही तैयार होते ही १९२४ के जुलाई महीना से संस्था ने परीक्षा लेने का काम शुरू कर दिया और हाल में डा० पोपट की देख-रेख में काम योग्य रीति से चलता है।

स्वर्गवासी वैद्यराज प्रभुराम की स्थापित संस्थायें

१ प्रभुराम अनंत फार्मेसी।
२ आयुर्वेद विद्यालय, उसके अंग सेठ दयाल भीमजी की आर्थिक मदद से।
३ दयाल भीमजी आयुर्वेद औषधालय।
४ वेद-धर्म सभा।
५ बंबई वैद्य सभा।
६ प्रभुराम जीवनराम प्राइज़ फंड।

हाल में प्राणाचार्य डॉ० पोपट की देख-रेख में चलने वाली संस्थायें

१ प्रभुराम अनंत फार्मेसी।
२ आयुर्वेद विद्यालय (प्रभुराम आयुर्वेदिक कालेज)।
३ दयालभीमजी आयुर्वेदिक औषधालय।
४ डा० पोपट युनिवर्सिटी आफ आयुर्वेद।
५ मुंबई वैद्य-सभा।

डाक्टर पोपट प्रभुराम की डाक्टरी, उनके अभ्यास, धंधा शुरू करने पर राज्य के साथ का संबंध, मेडीकल कौंसिल के साथ की लड़ाई वगैरह क्रमशः दूसरी पुस्तकों में दिये जायँगे।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

गुजरात प्रांतीय प्रथम वैद्यसम्मेलन अहमदाबाद के सभापति

प्राणाचार्य डाक्टर पोपट प्रभुराम,

एल्० एम्० ऐण्ड एस्० महोदय का

भाषण

Speech delivered by

Pranacharya Dr. Popat Prabhuram, L. M. S.
President of the Gujrat Ayurvedic Conference.

विद्वान् चिकित्सक, सुशील भगिनी और माननीय गृहस्थो !

आज के इस अनुपम सम्मेलन के अध्यक्ष पद पर मुझे नियत करके आपने जो सम्मान प्रदान किया है, उसके लिये मैं आप सबके प्रति अन्तःकरण से कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। गुजरात के प्रधान नगर अहमदाबाद में आयुर्वेद सम्बन्धी वैद्यसम्मेलन इससे बहुत पहले होना आवश्यक था; क्योंकि प्रख्यात प्रगतिशील बम्बई नगर और पीछे रहे हुए काठियावाड़ का परस्पर सम्बन्ध जोड़नेवाला अहमदाबाद ही कहा जा सकता है। यूरोप और अमेरिका के समान दूर देशों से आकर, सर्व प्रथम भारतवर्ष में प्रवेश करने के लिये, दुर्भाग्यवश बम्बई पहला स्थान है, और इसीलिये वह दुर्भाग्यवश विदेशी जनसमूह, विदेशी विद्या, विदेशी रीति-भाँति और विदेशी आचार-विचार में अधिकाधिक डूब रहा है। उत्तर में अहमदाबाद और दक्षिण में पूना इस दुर्भाग्य के फंदे में नहीं फँसा, इसीसे आर्यावर्त की प्राचीन रीति-भाँति, प्राचीन-विद्या और प्राचीन आचार-विचार को बम्बई ने जितना खोया है उतना खो देने का दौर्भाग्य अहमदाबाद और पूने ने नहीं प्राप्त किया।

ऐसा होने के कारण आज का आवश्यकीय विषय आयुर्वेद, जिसका सच्चा अर्थ जीवनशास्त्र और चिकित्सा होता है, उसकी चर्चा के लिये एक अहमदाबाद ही वास्तविक योग्य स्थल कहा जा सकता है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

प्राचीन काल में पाश्चात्य देश आयुर्वेद से लाभ उठाते थे।

Western Countries took advantage of Ayurvedic Practice in Olden Times.

आयुर्वेद प्राचीन काल में केवल भारतवर्ष में ही नहीं; किन्तु सारे संसार में प्रचलित था ऐसा मानने के लिये हमारे पास सबल कारण हैं। तिब्बी शास्त्र में आयुर्वेद के अनेक सूत्र देखने में आते हैं यह बात उक्त शास्त्र के ज्ञाता सुप्रसिद्ध हकीम अज़मलखाँजी ने अपने व्याख्यान में स्वयम् श्रीमुख से उस समय कहा था जब कुछ समय पहले वे प्रभुराम आयुर्वेदिक

Indira Gandhi National Centre for the Arts

कालेज का निरीक्षण करने आये थे। इस बात से सूचित होता है कि अफगानिस्तान, ईरान, अरबस्तान और तुर्किस्तान जहाँ कि तिब्बी शास्त्र प्रचलित है, वहाँ आयुर्वेद के सिद्धान्तों का उपयोग होता था, आयुर्वेद की, मुख्य निदान और चिकित्सा की, प्रणाली, जो वात, पित्त और कफ पर अवलम्बित है, वह एक अथवा दूसरे रूप में किसी समय यूरोपखण्ड में प्रचलित थी, यह मानने का प्रमाण मिलता है, क्योंकि यह बात तो अब सर्वमान्य ही हो चुकी है कि आयुर्वेद के आधार पर तिब्बीशास्त्र की रचना हुई, उसका अनुवाद अर्बी में हुआ, उससे ग्रीस देश में उसका प्रचार हुआ, और ग्रीक भाषा में उसका अनुवाद होकर लैटिन भाषा में हुआ, जिससे पाश्चात्य वैद्यक शास्त्र का जन्म हुआ। वात, पित्त और कफ की प्रणाली यूरोप में इस प्रकार एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवादित होते समय ठीक न जाननेवाले अथवा जानने के लिये यत्किंचित् भी प्रयत्न न करनेवाले मनुष्यों के हाथ से चली गयी, और वात अर्थात् पवन अथवा wind पित्त अर्थात् वांति (उलटी) में निकलनेवाला द्रव पदार्थ अथवा bile और कफ तथा बल्गम में निकलनेवाला चिक्कण पदार्थ अथवा Phlegm ऐसी खेदकारक विपरीत भावना उनके मन में घर कर बैठी। परिणाम में पीछे होनेवाले यूरोपीय विद्वान् शोधकों की समझ में इस प्रणाली की उपयोगिता समझ में नहीं आयी, और इसीसे वह पाश्चात्य देशों में समूल नष्ट हो गयी। ऐसा होने के कारण आयुर्वेद की निदान तथा चिकित्सा करने की यह उत्तम वात, पित्त और कफ की प्रणाली, केवल आर्यावर्त्त में ही रह गयी, और इसीसे उस प्रणाली को त्याग देने वाले चिकित्सकों को रोगी का बिगड़ा हुआ स्वास्थ्य सुधारने के लिये कितने टेढ़े और लम्बे मार्ग से वह काम करना पड़ता है, यह बात उक्त प्रणाली के अनुसार काम करनेवाले सर्व चिकित्सक भली भाँति जान सकते हैं।

वात, पित्त और कफ यह क्या है ?
What is Vata, Pitta and Kafa ?

गृहस्थो, वात पित्त और कफ यह क्या है और किस प्रकार निदान तथा चिकित्सा में वह चिकित्सकों को उपयोगी होता है ? यह जानना प्रत्येक चिकित्सक के लिये विशेष आवश्यक है। क्योंकि इस प्रणाली से काम करने वाले चिकित्सक को इस प्रणाली के न जानने वाले चाहे जैसे चिकित्सक की अपेक्षा कितनी सरलता तथा कितनी शीघ्रता से यश मिल सकता है यह बारंबार प्रत्यक्ष देखने में आता है।

वात, पित्त और कफ ये वैद्यक विद्या की बारहखड़ी हैं।
Vata, Pitta and Kafa is the Alphabet of Ayurved.

गृहस्थो, विदेशी वैद्यक विद्या के चिकित्सकों की जानकारी के लिये मुझे यह कहने की आवश्यकता है कि, जैसे एक बालक को विद्यारम्भ के निमित्त वर्णमाला और बाराखड़ी सीखने की आवश्यकता है, वैसे ही एक चिकित्सक को वैद्यक शास्त्र के अध्ययन करने के लिये वात, पित्त और कफ की प्रणाली जानने की परमावश्यकता है।

वात यह कोई साधारण वायु नहीं, किन्तु जीवन को सुरक्षित रखने से सम्बन्ध रखने वाली प्रत्येक क्रिया और उस कार्य के सम्बन्ध में काम करने वाले सभी अवयवों को गति देने वाली एक महती शक्ति है। पित्त यह वमन और विरेचन द्वारा निकलने वाला पीला पदार्थ नहीं, किन्तु शरीर में होने वाली भिन्न-भिन्न क्रिया कि जिनमें विशेष करके क्रिया की उष्णता को योग्य

National Centre for the Arts

प्रमाण में संचित रखना, कि जिससे पाचन क्रिया बराबर हो सके, तथा उसके कारण रक्त की उत्पत्ति और वृद्धि हो, इतना ही नहीं बल्कि शरीर-स्वास्थ्य के लिये आवश्यक भिन्न-भिन्न रस भी तैयार होकर अपना काम करें, और इन सब क्रियाओं के होते हुए इनमें से उत्पन्न होने वाले उपयोगी पदार्थों को ग्रहण कर निरुपयोगी पदार्थों को मलमूत्र द्वारा बाहर निकालने के योग्य स्थिति में लाने वाली जो शक्ति है, वही पित्त है। कफ यह खाँसी में बाहर निकलने वाला चिकना पदार्थ नहीं, बल्कि शरीर की उष्णता पर दबाव रख कर शरीर को एक प्रकार की ठंडक देने वाली तथा शरीर का प्रबन्ध उत्तम रीति से चलाने में उपयोगी भिन्न-भिन्न रस और स्निग्ध पदार्थों को उत्पन्न करने वाली एक शक्ति है।

त्रिधातु तथा त्रिदोष का विवेचन

Explanation of Tridhatu and Tridosha.

वात, पित्त और कफ ये तीन शक्तियाँ उस शक्ति की उत्पत्ति के हेतुभूत शरीर के भिन्न-भिन्न अवयवों के एकत्रित कार्यों से उत्पन्न होती हैं और इसी कारण उन अवयवों के कार्यों में न्यूनाधिक्य होने पर इन शक्तियों के कार्य्यों में भी न्यूनाधिकता होना सम्भावित होने के कारण जब तक वात, पित्त और कफ के कार्य शरीर में समान परिमाण में स्थित हों तब तक उन्हें त्रिधातु कहा जाता है, और उनसे शरीर का स्वास्थ्य उत्तम स्थिति में रहता है परन्तु उस कार्य में न्यूनाधिकता होने से शरीर में भिन्न-भिन्न रोग उत्पन्न होना सम्भव है तथा उस समय वे त्रिदोष कहे जाते हैं। यह त्रिदोष और त्रिधातु की प्रणाली रोगी की स्थिति का निदान करने तथा उसकी चिकित्सा करने में एक आयुर्वेदिक चिकित्सक को इतनी अधिक उपयोगी है कि, उसका वास्तविक अभ्यास किये बिना शास्त्रीय रीति से निदान अथवा चिकित्सा करना उसके लिये नितान्त अशक्य हो जाता है। रोगों का निदान और चिकित्सा करने की यह शैली पूर्ण शास्त्रीय तथा इतनी अधिक विद्वत्तापूर्ण है कि, एक बार इसे समझ लेने पर किसी भी भयङ्कर रोग में अपना मार्ग सरलता से ग्रहण करने के लिये यह बहुत ही उपयोगी सिद्ध हो चुकी है।

ऋतु, रोग और त्रिधातु तथा त्रिदोष का पारस्परिक सम्बन्ध।

Connection of different Diseases with different Seasons as well as Tridhatu and Tridosha.

भिन्न-भिन्न ऋतुओं का भिन्न-भिन्न रोगों के साथ कितना निकट का संबन्ध है यह इस प्रणाली द्वारा सहज में जाना जाता है। विदेशी वैद्यक-शास्त्रों में इस बात के समझने के लिये किसी प्रकार का कोई भी शास्त्रीय नियम अथवा पद्धति आज तक उसमें इतना शोध होने पर भी देखने में आयी नहीं। आयुर्वेद के आधार से प्रत्येक साधारण वैद्य भली भाँति समझ सकता है कि अमुक ऋतु में मनुष्य के शरीर में अमुक धातु वात, पित्त अथवा कफ न्यूनाधिक होकर दूषित होता है, और अमुक रोग की उत्पत्ति का कारण होता है। ऐसा होने के कारण विदेशी वैद्यक-शास्त्रवेत्ता जहाँ रोग उत्पन्न हो जाने पर उसके मिटाने के उपायों की योजना करने का सामर्थ्य रखता है, वहाँ आयुर्वेदीय चिकित्सक अमुक ऋतु में अमुक रोग उत्पन्न होने की संभावना है, इसे पहले ही जान कर उसे रोकने के लिये प्रथम से ही उसके

Indira Gandhi National Centre for the Arts

अनुकूल पथ्य सेवन की सूचना रोगी को देता है। आयुर्वेद का यह एक सिद्धान्त है कि ग्रीष्म ऋतु में अमुक, शरद् ऋतु में अमुक, वर्षा ऋतु में अमुक इस प्रकार प्रत्येक ऋतु में अमुक धातु का न्यूनाधिक होना संभव है, तथा वात के न्यूनाधिक होने पर अमुक रोग पित्त के न्यूनाधिक होने पर अमुक रोग और कफ के न्यूनाधिक होने पर अमुक रोग का होना संभव है।

रोग की प्रकृति के साथ वात, पित्त और कफ का सम्बन्ध।

Connection of Patient's temperament with Vata, Pitta and Kafa.

ये न्यूनाधिक वात, पित्त और कफ किसी रोगी पर अधिक तथा किसी रोगी पर न्यून प्रभाव रखते हैं।

वात जिस रोगी पर अधिक प्रभाव रखता है वह वात-प्रकृति वाला कहलाता है, पित्त जिस रोगी पर अधिक प्रभाव रखता है वह पित्त-प्रकृति वाला कहलाता है, और कफ जिस रोगी पर अधिक प्रभाव रखता है वह कफ-प्रकृति वाला कहलाता है। विद्वान् वैद्य अपने रोगी के निरन्तर सहवास द्वारा प्रथम से ही जान सकता है कि, उसका रोगी वात-प्रकृति वाला, पित्त-प्रकृति वाला अथवा कफ-प्रकृति वाला है, और इससे भिन्न-भिन्न ऋतु में कौन-कौन रोग होने की सम्भावना है यह बात पहले से ही उसके ध्यान में आ जाती है। यह वात, पित्त और कफ की प्रकृति वंशपरंपरा तक चलने वाली होने के कारण, बहुधा कई कुटुम्ब वात, पित्त अथवा कफ प्रकृति वाले पीढ़ी दर पीढ़ी देखने में आते हैं। इससे एक विद्वान् वैद्य जो किसी कुटुम्ब की प्रकृति को जानता हो, तो उस कुटुम्ब की चिकित्सा वह सैकड़ों कोसों की दूरी पर से भी कर सकता है।

रोगी की नाड़ी का वात, पित्त और कफ के साथ संम्बंध।

Connection of Patient's Pulse with Vata, Pitta and Kafa.

और इसमें विशेष अद्भुत और महत्त्व की बात यह है कि इन वात, पित्त और कफ की प्रकृति के समय मनुष्य की नाड़ी में भिन्न-भिन्न परिवर्तन होते हैं। प्रत्येक वैद्य को इन परिवर्तनों के जानने की आवश्यकता है और इसका शिक्षण उस वैद्यक-शास्त्र के शिक्षण का एक अति उपयोगी विभाग है। जब कि, प्रत्येक रोग में शरीर की न्यूनाधिक उष्णता के समय हृदय के रोग Heart diseases फेफड़े के रोग Lung diseases इत्यादि भिन्न-भिन्न रोगों में, जो नाड़ी का परिवर्तन होता है, उसे प्रत्येक डाक्टर जानता है तब शरीर में वात, पित्त और कफ के प्रकोप के समय भी नाड़ी में परिवर्तन होना स्वाभाविक है। तदनुसार वात-नाड़ी, पित्त-नाड़ी और कफ-नाड़ी ये नाड़ी के भिन्न-भिन्न नाम साधारण रीति से होते हैं। वात के प्रकरण में वायु के रोग और उनके लक्षण बतलाये जाते हैं, पित्त के प्रकरण में पित्त के रोग तथा लक्षण लिखे रहते हैं और कफ के प्रकरण में कफ के रोग तथा लक्षण बताये जाते हैं।

नाड़ी से रोग का निदान किस रीति से होता है?

How the disease is diagnosed by Pulse?

इसके अनुसार रोगी से कुछ भी पूँछे बिना वात की नाड़ी हो तो अमुक रोग, कफ

Indira Gandhi National Centre for the Arts

की नाड़ी हो तो अमुक रोग और पित्त की नाड़ी हो तो अमुक रोग इस रोगी को होना चाहिये ऐसा एक वैद्य निश्चित कर सकता है। तदनन्तर कदाचित् रोगी से प्रश्न करने का संयोग न बने तो रोगी के शरीर पर दीखते हुए लक्षण और चिन्हों से कुछ भी पूछे बिना रोग का निदान करने में शक्तिमान् होना संभव है। अलबत्ता इस कार्य के लिये अधिक समय के अनुभव तथा हजारों मनुष्यों की नाड़ी देखने का जिसे सौभाग्य प्राप्त हुआ हो ऐसे विद्वान् वैद्य की आवश्यकता है। ऐसे वैद्यों को नाड़ी दिखाने मात्र से रोग की परीक्षा नहीं हो सकती ऐसा मानना तो असम्भवित ही है, किन्तु शिक्षण अथवा अनुभव की न्यूनता के कारण जैसे बैरिस्टर और डाक्टरों से भूल होती है वैसे एक वैद्य भूल करे यह हो सकता है।

इस प्रकार नाड़ी से रोग का निश्चय करने की पद्धति सर्वथा शास्त्रीय है, अतएव पूज्य महात्मा गांधी ने कलकत्ते में "अष्टाङ्गहृदय रुग्णालय" की नींव में शिलान्यास करते समय इस विषय में जो कुछ कहा है वह वैद्यक-शास्त्र और आयुर्वेद के सिद्धांत का परिज्ञान न होने के कारण ही कहा है ऐसा मानना चाहिये।

इस प्रकार सिद्ध हुई प्रणाली से एक आयुर्वेदीय चिकित्सक रोगी से रोग होने पर उसे मिटाने के लिये समर्थ हो इसमें तो संदेह ही नहीं, किन्तु रोगी के रोग उत्पन्न होने के सम्भव को प्रथम से ही जान उसे रोकने के लिये भी योग्य मार्ग का अनुसरण करने को वह न्यून ही समर्थ होता है। सज्जनो, आज भी विद्वान् आयुर्वेदीय चिकित्सकों की रीति है कि, वे अपने रोगी को ऋतु-परिवर्तन के समय उसकी प्रकृति पर ध्यान देकर उसे एक नियत रीति से ही वर्तना चाहिये ऐसी सूचना देते हैं कि जिससे भविष्य में उत्पन्न होनेवाले अनेक महान् रोगों का प्रतिबन्ध प्रथम से ही कर सकते हैं।

सारे संसार में निदान तथा चिकित्सा करने और स्वास्थ्य की रक्षा के निमित्त ऐसे उत्तम रीति से सुसंघटित नियम अन्य किसी वैद्यक शास्त्र में नहीं दिखायी देते। और जब तक आयुर्वेद के अतिरिक्त जिस वैद्यक शास्त्र के साथ हमारा घनिष्ठ सम्बन्ध है उस अङ्गरेजी वैद्यक शास्त्र के ज्ञाता वात, पित्त और कफ की इस प्रणाली को निदान चिकित्सा करने तथा शरीर का स्वास्थ्य सुरक्षित रखने की एक उपयोगी पद्धति के समान स्वीकार नहीं करते, तब तक अङ्गरेजी वैद्यक शास्त्र में चाहे जितना शोध और सुधार हों पर वे आयुर्वेदीय चिकित्सा और निदान की बराबरी करने के लिये कभी समर्थ नहीं हो सकते।

आयुर्वेद की वर्तमान स्थिति।

Present position of Ayurved

सज्जनो, यह विषय मुझे हमारी वर्तमान परिस्थिति और हमारे अस्तित्व की उपयोगिता पर ले जाता है। मेरे प्रिय चिकित्सक बन्धुओं, मेरी सुशील बहिनों, और माननीय गृहस्थों ! जो पद आज आपने मुझे दिया है और जिस पद का न्याय चुकाने के लिये मैं आपके समक्ष उपस्थित हूँ, उस पद पर आयुर्वेद सम्बन्धी किसी प्रकार का पक्षपात किये बिना तथा विदेशी वैद्यक शास्त्र की ओर किसी प्रकार का तिरस्कार किये बिना जैसे न्यायालय में एक गवाह अपना बयान देता है वैसे ही मैं कहता हूँ कि, यदि हम लोग विद्वान् वैद्यों के प्रभाव को सुरक्षित रक्खेंगे तथा नवीन विद्वान् चिकित्सकों को उत्पन्न करने के लिये समर्थ हो सकेंगे तो विदेशी वैद्यक के कितने ही सुधार और संवर्द्धन सम्बन्धी शोध हो चुकने पर भी आयुर्वेद आर्या-

National Centre for the Arts

वर्त में श्रीनगर से लङ्का तक और करांची से कलकत्ता तक अपना सबल हाथ सदा के लिये लम्बायमान करता हुआ इस महान् भारतवर्ष में बसनेवाले करोड़ों मनुष्यों के शरीर, स्वास्थ्य सम्बन्धी उत्तरदायित्व के लिये भिन्न-भिन्न सभी चिकित्सा शास्त्रों में प्रथम स्थान को प्राप्त करेगा।

मेरा यह कथन अक्षरशः सत्य है, मुझे इसमें किसी प्रकार की शङ्का नहीं है। शास्त्रीय पद्धति पर रचा हुआ एक शास्त्र जो निरन्तर योग्य विद्वानों के हाथ में रहेगा तो मैं साहस पूर्वक कहता हूँ कि केवल आर्यावर्त ही नहीं, किन्तु सुदूर देशों में भी उसका प्रचार जो पूर्व काल में किसी समय था और समयानुसार नाश को प्राप्त हुआ है, उसे पुनः उत्पन्न करने के लिये हम लोग साधनभूत होंगे।

माननीय सज्जनो और बहनों, इस प्रसंग पर आपके समक्ष मेरा एक ही प्रश्न है कि जिस उत्साह से आपका आज के इस सम्मेलन में शुभागमन हुआ है उस उत्साह को क्या हम लोग आयुर्वेद के लिये मेरे बताये हुए उत्तम समय की पुनः प्राप्ति कराने के साधन-सम्पन्न करने की ओर ले जा सकेंगे? क्या आयुर्वेद-पारंगत विद्वान् चिकित्सकों को उक्त कार्य में सहायभूत होने के लिये तैयार कर सकेंगे? क्या आर्यावर्त के असंख्य धनवान् गृहस्थों में से थोड़ों को भी अपने साथ सहानुभूति के लिये ले सकेंगे? जो हम लोग ऐसा कर सकें तो इस आयुर्वेद का अधिकाधिक प्रचार होने के विषय में विशेष करके विद्वान् वैद्य, धर्मार्थ औषधालय तथा उत्तम आतुरालय बनाने के लिये शक्तिशाली हो सकेंगे।

इस समय एक गम्भीर प्रश्न का बहुतों के मन में वास्तविक रीति से उठना संभव है कि

क्या आयुर्वेद सम्पूर्ण है?

Is Ayurveda a perfect science?

चरक, सुश्रुतादिक हमारे प्राचीन ग्रन्थ, आधुनिक वैज्ञानिक सुधारों के साथ तुलना करने में निदान तथा चिकित्सा के लिये सब प्रकार से सम्पूर्ण हैं कि नहीं? यह प्रश्न अति महत्त्व का तथा प्रत्येक वैद्य के मनन करने योग्य, विचारणीय एवं उसके सम्बन्ध में एक निर्णय पर त्वरित आ जाने योग्य है। जनता आयुर्वेद के लिये कुछ भी करने के पहले हम लोगों से उक्त प्रश्न का उत्तर माँगती है और उस उत्तर पर वे अपना जीवन हमारे हाथ में सौंपें या न सौंपें इसका मुख्य आधार है।

आधुनिक विज्ञान का सुधार अर्थात् विदेशी मेडिकल साइन्स के नवीन शोध के रूप में वारंवार प्रकट होनेवाले प्रयोग जो असंख्य प्रमाण में हम लोगों के समक्ष होते हुए देखे जाते हैं उनके साथ तुलना करने पर आयुर्वेद सभी विषयों में निदान-चिकित्सा के लिये परिपूर्ण है कि नहीं? इस प्रश्न का उत्तर यदि मैं आयुर्वेद के अनुकूल दूँ तो मेरा आयुर्वेद की ओर पक्षपात माना जायगा। इस कारण विदेशी मेडिकल साइन्स के महान् ज्ञाता डा० पालबर्धन ए० वी० का इस विषय पर जो अभिप्राय है उसे मैं आपके समक्ष उपस्थित करता हूँ। वे कहते हैं कि:—

"I have been extremely struck with the profound meaning of many passages in Charaka, which indeed go beyond anything that I have met before, in Medical Literature of the West".

"चरक के अनेक वाक्यों से मैं इतना अधिक आश्चर्य को प्राप्त हुआ हूँ तथा मैं ऐसा

National Centre for the Arts

मानता हूँ कि पश्चिम की वैद्यक विद्या में मैंने आज तक जो कुछ पढ़ा और देखा है उससे भी चरक के सिद्धान्त आगे बढ़े हुए हैं।" इसी स्थिति के दूसरे सज्जन Mr F. A. S. Krine कहते हैं कि It is wonderful to note the comparatively advanced view held by the sages of India, and how completely they had anticipated discoveries, which we modern, flatter ourselves, are due to the enlightenment of this age".

"भारतीय वैद्यक शास्त्रवेत्ताओं के आगे बढ़े हुए विचारों को पढ़कर मैं बड़े ही आश्चर्य को प्राप्त हो रहा हूँ। मुझे कहना चाहिये कि आधुनिक जिन नवीन शोधों के लिये हमें अभिमान है उन शोधों को वर्षों पहले आर्यावर्त के विद्वानों ने अपनी पुस्तकों में परिपूर्ण रूप से लिख रक्खा है।"

गृहस्थो! इन वाक्यों के अनन्तर और साक्षात् पाश्चात्य विद्वानों के मुख से निकलने पर क्या कभी ऐसा प्रश्न उठ सकता है कि आधुनिक वैज्ञानिक सुधारों के साथ तुलना करते हुए आयुर्वेद परिपूर्ण कहा जा सकता है या नहीं? वर्तमान वैज्ञानिक सुधारों के साथ तुलना करते हुए मेरा दृढ़ सिद्धान्त है कि आयुर्वेद परिपूर्ण है। उसमें जो कुछ अपूर्णता प्रतीत होती हो वह आयुर्वेद शास्त्र की नहीं किन्तु शिक्षा प्रणाली की है। इस कारण मैं अपने विद्वान् वैद्य मित्र, आयुर्वेदानुरागी-गृहस्थ तथा बहिनों को अन्तःकरण से विश्वास दिलाता हूँ कि वर्तमान विदेशी वैज्ञानिक सुधारों की प्रत्येक गहरी से गहरी भूमिका में पहुँचने पर मुझे विश्वास हुआ है कि वैज्ञानिक सुधारों के परिणाम स्वरूप जो सिद्धान्त आज तक जन-समूह के हृदय-पटल पर अंकित किये गये हैं उनकी अपेक्षा चरक, सुश्रुत के सिद्धान्त अधिक आगे बढ़ते हुए, अधिक अनुकूलता वाले और अधिक उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

मलेरिया (विषमज्वर) के लिये कमेटियाँ नियत हुईं, मच्छड़ों की खोज की गयी, कुएँ और नाले बन्द किये गये, वृक्ष और वनस्पतियाँ उखाड़ डाली गयीं, हजारों, लाखों रुपये खर्च हुए और आगे भी होंगे। इस प्रकार साइन्स के ये सब सुधार हो चुकने पर भी हम लोग इस विषय में आज कहाँ पर हैं? (कहना पड़ता है कि) जहाँ थे वहीं पर। मैं तो इससे भी आगे बढ़कर कहूँगा कि पहले से भी गिरी दशा में। इस ज्वर के लिये महात्मा चरक के सिद्धान्तों को आप ध्यान में लें, भिन्न-भिन्न ऋतु के अनुसार बतायी हुई दिनचर्या तथा रात्रि-चर्या के अनुसार बरतें; मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मलेरिया आपके घर में अवश्य नष्ट हो जायगा।

डा० क्लार्क ठीक कहते हैं कि:—"If you treat your patient according to the methods of Charaka, there will be less work for undertakers and fewer chronic invalids in the world."

"जो आप अपने रोगियों की चिकित्सा चरक के सिद्धान्तानुसार करेंगे तो चिता रचने के काम में कमी होगी और जगत् में रोगी मनुष्य बहुत कम देखने में आयेंगे।"

दुःखदायक बात यही है कि नवीन नवीन शोध प्रकट होने के अनन्तर दूसरे अथवा तीसरे ही वर्ष इन शोधों का महत्त्व अनुभवानुसार घट जाता है। इसे क्या साइन्स का सुधार कह सकते हैं? माननीय गृहस्थ और बहनो, हमारे पास ऐसा कोई साधन नहीं कि

National Centre for the Arts

जिसके द्वारा हम ऐसे वैज्ञानिक सुधार के मोहजाल से आपको बचा सकें। हम तो केवल आपको सच्चे सिद्धान्त और सच्चे उपचार बता सकते और विश्वास दिला सकते हैं कि वे आपको नीरोग रख कर आपका आयुष्य बढ़ाने में साधनभूत हो सकेंगे।

विद्वान् वैद्यो, सद्गुणवती बहनो तथा माननीय गृहस्थो, पूर्वोक्त रीति से चरक, सुश्रुत आदि हमारे प्राचीन ग्रन्थ कहाँ तक परिपूर्ण हैं—यह बता चुकने पर ऐसी पूर्णता होते हुए भी आयुर्वेदीय चिकित्सकों की, उनके कामों में जो कुछ न्यूनता देख पड़े, तो वह क्यों देख पड़ती है? इसका उत्तर मैं आपको दूँगा। केवल पुस्तक सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करके जो काम किया जाय किन्तु उसकी प्रत्यक्ष क्रिया की शिक्षा में न्यूनता हो तो, उस काम में न्यूनता प्रतीत होना स्वाभाविक है। गृहस्थो, पूर्णरूप से प्रत्यक्ष शिक्षण मिल सके तो ऐसी शिक्षा प्रणाली तथा तदुपयोगी साधन सामग्री बिना इस न्यूनता को दूर करने के लिये हमारे पास कोई उपाय नहीं। वर्षों तक चरक और सुश्रुत के श्लोकों का अन्वय और अर्थ सीखा करे तो भी एक अनुभवी वैद्य होना बहुत कठिन है। शास्त्र सिद्धान्त पूर्णरूप से समझ लेने पर भी उन्हें प्रत्यक्ष क्रिया में लाना प्रत्यक्ष शिक्षण मिले बिना कदापि नहीं हो सकता। आयुर्वेद के उत्तम सिद्धान्तों का पूर्णरूप से अध्ययन कर उनका प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त कर लेने के अनन्तर ही विद्यार्थी सच्चा वैद्य बन सकता है। अतः हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली पर विद्वान् वैद्यों को बहुत सूक्ष्म रीति से दृष्टिपात करने की आवश्यकता है।

आयुर्वेद का शिक्षण=मातृभाषा की आवश्यकता।

Study of Ayurved; Instructions in Mother Tongue necessary.

आयुर्वेद-शिक्षण के अपने तीस वर्ष के अनुभव से (आप जानते हैं कि प्रभुराम आयुर्वेदिक कालेज को स्थापित हुए तीस वर्ष हो चुके हैं) मैं ऐसे निश्चय पर आया हूँ कि यदि ग्रन्थ विद्यार्थियों की मातृभाषा में लिखे गये हों तो उनको समझने तथा उनका आन्तरिक तात्पर्य ग्रहण करने तक ही नहीं; किन्तु उसमें वर्णित भिन्न-भिन्न क्रियाओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिये भी अधिक उपयोगी होते हैं। ऐसा कह कर मैं संस्कृत भाषा के अग्र स्थान का हरण करना नहीं चाहता, किन्तु जब विद्यार्थी को शिक्षा देने के लिये प्रत्येक संस्कृत श्लोक को उसकी मातृभाषा में समझाने की आवश्यकता पड़ती है, तब यदि उसकी सम्पूर्ण पुस्तक मूल श्लोकों के आधार पर ही अथवा उनके साथ ही विद्यार्थी की मातृभाषा में लिखी गयी हो तो वह विद्यार्थी के लिये अधिक उपयोगी और उसका तात्पर्य ग्रहण करने के लिये अधिक सरल हो सके इसमें कोई सन्देह नहीं। इतना ही नहीं किन्तु इस प्रकार श्लोकों का भाव मातृभाषा में ऐसी उत्तम रीति से इतने विस्तार से विद्यार्थी को ऐसी पुस्तकों द्वारा दिया जा सके कि वह विद्यार्थियों के अन्तःकरण में तत्काल क्रीड़ा करने लगे।

पुस्तकें मातृभाषा में और विषयानुसार लिखानी चाहिये।

Necessity of seperate books in accordance with different subjects.

आयुर्वेद के शिक्षण की सब पुस्तकें विषयानुसार लिखानी चाहिये। विद्वान् चिकित्सक

National Centre for the Arts

बान्धवो ! आप जानते हैं कि आयुर्वेद के चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट वगैरह ग्रन्थों में वैद्यकानुसारी भिन्न-भिन्न बहुत विषयों का समावेश करने में आया है ! जैसे कि, निदान, चिकित्सा, शल्य-शालाक्यशास्त्र, सूतिकाशास्त्र, स्त्रीरोग, बालरोग-चिकित्सा, आरोग्य शास्त्र, विष प्रकरण, कृमि-तन्त्र, त्रिदोष, रुग्णेन्द्रिय विज्ञान, औषधि-गुण-दोष, रसशास्त्र, वनस्पति शास्त्र, शरीर, त्रिधातु, इन्द्रिय-विज्ञान और उपवैद्यक ऐसे भिन्न-भिन्न हैं लेकिन अतिशय उपयुक्त विषय में चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट, रसरत्नसमुच्चय, माधवनिदान, बृहन्निघंटु, शार्ङ्गधर, भावप्रकाश इत्यादि संस्कृत भाषा में रची हुई असंख्य पुस्तकों में एक दूसरे के साथ निश्रित हो गये हैं। ये सब विषय आयुर्वेद के अभ्यास-क्रम में उसके सानुकूल समय पर सिखाने की आवश्यकता है। ऐसा हो तो पहले सिखाये हुए विषयों के ज्ञान से पीछे सिखाने के विशेष उपयुक्त विषयों का शिक्षण अभ्यास करनेवालों को अधिक सरल हो। इसलिये आयुर्वेद की पुस्तकें विषयानुसार लिखी जाँय तो वे विशेष उपयुक्त हों इतना ही नहीं, किन्तु जब जब किसी भी खास विषय में कुछ भी घटाने बढ़ाने के सुधार की आवश्यकता आ पड़े, तब तब उस विषय की खास पुस्तक में उसकी सूचना देने की सरलता हो सके।

यहाँ पर एक दूसरा आवश्यक प्रश्न खड़ा होता है कि जो ऐसी पुस्तकें विषयानुसार विद्यार्थियों की मातृ भाषा में लिखी जायँ तो उसमें पाश्चात्य वैद्यक शास्त्र की मदद लेने की आवश्यकता है कि नहीं ? यह बात बहुत विचारने योग्य और शास्त्रीय ज्ञान से निर्णीत करने योग्य है। सुश्रुताचार्य जी ने अश्मरी (पथरी) रोग हटाने का वर्णन सुश्रुतसंहिता के चिकित्सा स्थान के ७ वें अध्याय में बहुत सूक्ष्मता से किया है, इसलिये इस शस्त्र-क्रिया का वर्णन विद्यार्थियों को पढ़ाने के समय उसमें उपयोग में आते हुए शस्त्र विद्यार्थियों को बतलाने की आवश्यकता है। इन शस्त्रों का सूक्ष्म वर्णन भी सुश्रुत में करने में आया है, लेकिन ऐसे तैयार शस्त्र हम लोग आजकल पाश्चात्य शस्त्रक्रियालय में ही पा सकते हैं ऐसी अपनी स्थिति है। अतएव इस प्रकार की मदद, जब-जब आयुर्वेद को ऐसे विषय और साधनों में त्रुटि देखने में आवे अथवा अमुक विषय में साधनों के अभाव से समझना कठिन पड़े तब-तब वे विषय पाश्चात्य वैद्यक से लेना मैं किसी रीति से अयोग्य नहीं मानता हूँ, सायन्स यानी शास्त्र के सिद्धान्त और साधन कोई भी विद्वान् अपनी बुद्धि से, अनुभव से अथवा प्रयोग से सिद्ध करता है, तो भी उन सिद्धान्त और साधनों पर उसका ही अधिकार नहीं रहता, किन्तु जगत् में जिन-जिन लोगों को वे मान्य हों उन सबका भी उस पर अधिकार रह सकता है। मेरे प्यारे गृहस्थो, इस रीति से मनुष्य मात्र—पीछे वह चाहे किसी भी देश का हो, तो भी जगत् में अस्तित्व धरानेवाले शास्त्र उसको अपनी इच्छा बिना उतने अंश ग्राह्य होते हैं, इसलिये अपने शास्त्रों का हिन्दू राज्य के अस्त होने के बाद समयपरत्वेन जितने अंश नाश हुए हों वे त्रुटियाँ संपूर्ण करने के लिये अपने शास्त्रों के बीज से उत्पन्न हुए भिन्न-भिन्न वृक्षों में से आवश्यक फलों को लेकर उनमें फिर परिवर्तन होने से किसी प्रकार की बाधा हो ऐसा समझ में नहीं आता है।

आयुर्वेद के अभ्यास क्रम का निर्णय करने में इतने सिद्धान्तों पर ध्यान देकर पीछे एक उत्तम विद्यालय को चलानेवाले प्रत्येक विषयों का संपूर्ण रीति से शिक्षण हो सके इतने समय के लिये और प्रारंभ के शिक्षण के लिये तथा पीछे के शिक्षण के लिये उन विषयों का क्रम बना कर उसका पुस्तक द्वारा और प्रत्यक्ष शिक्षण दे सकें ऐसा अभ्यास क्रम बनाने की आवश्यकता है।

...tional Centre for the Arts

आयुर्वेद का अभ्यास-क्रम।

Curriculum for teaching Ayurved.

इस प्रकार का अभ्यास क्रम पाँच वर्ष पर्यंत तो अवश्य होना ही चाहिये। कारण कि उसके सिवाय विद्यार्थियों को परिपूर्ण शिक्षण मिलना बिल्कुल अशक्य है, इसलिये इतने समय का अभ्यास-क्रम ऐसा रखना चाहिये कि, जैसे 'प्रभुराम आयुर्वेदिक कालेज में' रखने में आया है। इसलिये विद्यालय में पहले ढाई वर्ष के लिये अंग्रेजी वैद्यक-विद्या की शिक्षण पद्धति के अनुसार शारीर, त्रिधातु और इंद्रियविज्ञानशास्त्र, उपवैद्यक, औषधि-गुणदोष, वैद्यकीय रसशास्त्र तथा ओषधी क्रिया आदि वैद्यकीय वनस्पति शास्त्र, ये विषय होने चाहिये। इनमें सफल होने पर दूसरे ढाई वर्ष के लिये आरोग्य शास्त्र, न्याय, वैद्यक और विष-प्रकरण, कृमितंत्र, त्रिदोष और रुग्णेन्द्रिय विज्ञान, निदान, चिकित्सा, शल्यशालाक्य शास्त्र और सूतिका शास्त्र, स्त्री-रोग तथा बाल-रोग ये विषय रखने की आवश्यकता है। ये सब विषय आयुर्वेद के अन्यान्य पुस्तकों में से अच्छी तरह सिखाये जा सकते हैं। ऐसे ही पाश्चात्य वैद्यक में रहे हुए इन विषयों के सिद्धान्त का विशेष ज्ञान होने के लिये जानना इसमें कुछ बुराई नहीं है। त्रिधातु और त्रिदोष का विषय तथा स्वास्थ्य वृत्त के आधार पर अस्तित्व में रहा हुआ प्रिवेंटिव मेडिसिन का विषय अंग्रेजी वैद्यक शास्त्र के अभ्यास क्रम में दाखिल करने में आया नहीं है।

अब ये सब विषय कैसी उत्तम रीति से आयुर्वेद के ग्रन्थों में वर्णन किये गये हैं और इस जमाने के अनुसार उनमें कुछ अदल-बदल करने की आवश्यकता है या नहीं और ऐसे ही उनका शिक्षण देने की कौन कौन उत्तम रीतियाँ हैं इस विषय में आपके सामने संक्षेप से बोलता हूँ।

शारीर शास्त्र।

Anatomy.

सारे जगत् का शारीर शास्त्र एक ही होना चाहिये, उसमें कुछ सन्देह नहीं है। आर्यावर्त, यूरोप, चीन अथवा जापान के मनुष्यों की शरीर की रचना में ईश्वर ने किसी प्रकार का भी अन्तर नहीं रक्खा है। सुश्रुताचार्य जी शारीर के विषय में विस्तार से विवेचन करते हैं कि शरीर के सब अवयवों का स्थान और उनके कार्य बतला कर अस्थि, धमनी, शिरा इत्यादि की संख्याएँ विश्वसनीय रीति से बतलाते हैं। मुर्दे की परीक्षा किस तरह से होना चाहिये? और बड़े बड़े अवयवों के साथ छोटे में छोटी रक्तवाहिनी नाड़ियाँ भी किस तरह से जाँचनी चाहिये इसकी जो जो रीतियाँ सुश्रुत में बतलाने में आयी हैं वह किसी भी सुशिक्षित वैद्य से अज्ञात नहीं है। अंग्रेजी वैद्यक विद्यार्थियों को अपने हाथ से मुरदा चीर कर जाँचने को बाध्य करता है इससे वे लोग शारीरिक शास्त्र के सम्बन्ध में बहुत प्रत्यक्ष अनुभव ले सकते हैं और भविष्य में शस्त्र का उपयोग करने के लिये हिम्मतवान् बन सकते हैं। आयुर्वेद का इतिहास अपने को याद दिलाता है, कि ऐसी क्रियाएँ आयुर्वेद के विद्यार्थियों के लिये भी भगवान् बुद्ध के समय से पहले अस्तित्व में थीं। अगर ऐसा न होता तो सुश्रुताचार्य जी ने अश्मरी रोग की शस्त्र क्रिया का जिस सूक्ष्म रीति से वर्णन किया है ऐसा सूक्ष्म वर्णन कभी भी नहीं कर सकते। प्रिय चिकित्सक लोगों, आयुर्वेद के पहले पाठ का आरंभ करने के लिये आप लोगों को

Indira Gandhi National Centre for the Arts

शारीर शास्त्र पूरी तौर से सीखने के लिये मुर्दा चीर कर जाँचने की बहुत आवश्यकता है। शायद ऐसा न बन सके तो चीरे हुए मुर्दों के सब अवयव, शिराएँ, धमनियाँ, स्नायु इत्यादि आँख से देखने की आवश्यकता है। और साधनों के अभाव में यह भी न बन सके तो उस विषय के लिये बराबर तैयार करने में आये हुए नकली अवयव इत्यादि पास रख कर उस विषय के अभ्यास करने की आप लोगों को आवश्यकता है। विद्वान् वैद्य लोगों! वैद्यक शास्त्र के अध्ययन की यह पहली सीढ़ी अच्छी रखने के लिये जो कुछ अच्छी तजवीज आप लोगों से बन सके वह करने की खास आवश्यकता है।

त्रिधातु और इन्द्रिय विज्ञानशास्त्र
Tridhatu and Physiology.

अपनी शिक्षण पद्धति की बारहखड़ी की दूसरी सीढ़ी त्रिधातु और इन्द्रिय विज्ञान-शास्त्र है। शरीर के भिन्न-भिन्न अवयव क्या काम कर सकते हैं और मनुष्य-जीवन के रक्षण करने में अपनी तरफ से वह शास्त्र किस जाति का हिस्सा देता हैं यह इन विषयों को सिखने से जानने में आता है। इन्द्रियों के जो भिन्न कार्य, जैसे कि, यकृत, आमाशय, हृदय, मस्तिष्क, अन्त्र, फुफ्फुस इत्यादि से होते हैं उनका परिपूर्ण अभ्यास करने की आवश्यकता है। इसलिये इस अभ्यास के लिये वाग्भट्ट और चरक की खास मदद लेकर सांप्रत इस विषय का प्रत्यक्ष शिक्षण जो इंग्लिश पद्धति से दिया जाता है उसकी मदद लेने की आवश्यकता है। कारण कि ऐसा करने से ये विषय विशेष सरलता से समझने में आवेंगे और इन सब अवयवों की क्रियाओं का कार्य समझने के बाद उसकी भिन्न-भिन्न पद्धति से इकट्ठे हुए बल से शरीर-स्वास्थ्य के रक्षण करने में अस्तित्व में आये हुए वात, पित्त और कफ से जो क्रियायें होती हैं, वे क्रियायें शरीर को पूर्ण स्वस्थता में रखने के लिये समर्थ होती हैं, अतएव ये वात, पित्त और कफ जो इस वक्त त्रिधातु कहे जाते हैं, उनके सिद्धान्त का परिपूर्ण अभ्यास करने की विद्यार्थियों को मेरी सूचना है। यह उनको उनके कार्य में अतिशय सहायकर्ता हो जायगा।

उपवैद्यक।
Minor clinical work.

अभ्यास क्रम के इसी विभाग में 'उपवैद्यक' नामक एक विषय बढ़ाने की आवश्यकता है। यह विषय शार्ङ्गधर, वाग्भट्ट, चरक, सुश्रुत इत्यादि में भिन्न-भिन्न स्थान पर लिखा गया है और यह रोगी के सम्बन्ध में तथा उसकी परिचर्या के सम्बन्ध में मात्र वैद्यक के अभ्यासियों के हाथ से हो सके ऐसी खास क्रियाओं का प्रत्यक्ष अभ्यास है। इसमें स्नेहविधि, स्वेदविधि, बस्तिविधि, नस्य, धूम्रपान, गंडूष, लेपविधि, औषध तथा पोषण देने की भिन्न विधि, रक्त-स्राव इत्यादि क्रियायें वैद्य की आज्ञा के अनुसार उपवैद्य, परिचारक, अथवा परिचारिका को करने की आवश्यकता है। इन सब विधियों की क्रियायें वैद्य होनेवाले विद्यार्थी का अपनी विद्यार्थी अवस्था में दूसरे विशेष महत्त्व के विषयों का अभ्यास प्रारंभ करने से पहले जान लेने की आवश्यकता है, उपरोक्त विषयों को जाननेवाले विद्यार्थी को उपवैद्य कहना चाहिये।

इन तीन विषयों के साथ ही उससे भी अधिक समय पर्यंत विद्यार्थियों को विशेष उपयुक्त विषय तैयार कराना चाहिये और वे विषय, औषधी गुण-दोष, रसशास्त्र, औषधी-

Indira Gandhi National Centre for the Arts

क्रिया तथा वनस्पति शास्त्र हैं। ओषधीगुणदोष में आयुर्वेद में कही हुई प्रत्येक खनिज, वनस्पति तथा प्राणिज ओषधियों के गुण, दोष और वात, पित्त तथा कफ परत्वे उसकी रचना, ये विषय समाये हैं।

ओषधी-गुणदोष।

Materia Medica.

भिन्न-भिन्न रोगों के ऊपर उपयोग में आती हुई ओषधियों से उस-उस रोग में वात, पित्त और कफ की वृद्धि अथवा न्यूनता को ध्यान में लेकर उसको समान कर सके ऐसी उस रोग की ओषधि रोगी को देने से उसको तुरत फायदा होता है।

अपने को वारंवार दोष देना पड़ता है कि, आयुर्वेद में कही हुई ओषधियाँ साम्प्रत की सायन्टिफिक पद्धति से परीक्षित न होने से वे शास्त्रीय नहीं कही जा सकती हैं। गृहस्थो! आयुर्वेद पर यह आक्षेप बिल्कुल झूठा और निर्मूल है। क्योंकि, आयुर्वेद में उपयोग में आने वाली प्रत्येक ओषधियाँ शास्त्रीय रीति से सिद्ध करने में आयी हुई हैं और सिद्ध करने के लिये खास प्रयोग जो आयुर्वेद में वर्णन किये गये हैं, जिसके आधार से अमुक ओषधि अमुक रोग पर अमुक रीति से उपयुक्त होगी, इसका निर्णय होता है।

वनस्पति औषधियाँ।

Vegetable preparations of Ayurved.

चरक और सुश्रुत के समय में रीति से ओषधियों के गुण-दोषों का निर्णय करने के लिये राज्याश्रय से बहुत जंगल रखने में आते थे, और भिन्न-भिन्न प्राणियों को उन जंगलों में भिन्न-भिन्न वनस्पतियाँ खाने का प्रसंग आवे इस रीति से रखने में आते थे। इसके बाद उन-उन वनस्पतियों के गुण-दोषों का निर्णय करने वाला वैद्य उन प्राणियों को उस वनस्पति से अथवा ओषध से क्या गुण हुआ अथवा क्या दोष हुआ इसकी परीक्षा करते थे और इस पर से उन वनस्पतियों के गुण-दोष का निर्णय करने में आता था। मुझे कहना चाहिये कि आज-कल भिन्न-भिन्न औषधों के गुणदोष का निर्णय करने के लिये जिन-जिन क्रियाओं का उपयोग करने में आता है जैसे कि, गूँगे प्राणियों के शरीर में त्वचा अथवा रक्तवाहिनी के मार्ग से औषधियों के तत्त्व दाखिल करके उनका उस प्राणी पर क्या असर होता है, यह जाँचने में आता है। उन क्रूर प्रयोगों की अपेक्षा से ऊपर बतलायी हुई प्राचीन रीति को अलबत्त मैं अधिक प्रशंसनीय और शास्त्रसंमत मानता हूँ। क्योंकि इस रीति का प्रयोग प्राणियों पर स्वाभाविक रीति से असर करता है और उससे उनके शरीर पर होते हुए परिणाम भी स्वाभाविक देखने में आते हैं, इस प्रकार से प्राचीन काल में करने में आये हुए प्रयोगों से सिद्ध हुई वनस्पतियों की फिर आधुनिक रीति से जाँच करने में उनके गुणदोष में कुछ भी परिवर्तन हुआ हो ऐसा नहीं मालूम पड़ता है, उसका प्रत्यक्ष उदाहरण बतलाना आवश्यक होगा कि, बम्बई सरकार ने बेक्टीरियोलोजीकल और जेनरल रीसर्च पर नियुक्त किये हुए स्व० डा० सरवेयर जिन्होंने एम्० ए० डी० के साथ दूसरी बहुत ऊँची डिग्रियाँ प्राप्त की थी उन्होंने आधुनिक रीति से अतिविष के गुण जाँचने का प्रारम्भ किया, और उन वनस्पतियों का प्राणियों पर भिन्न-भिन्न प्रयोग करने के बाद वे इतना सिद्ध कर सके हैं कि, अतिविष आम और अतिसार रोग पर उपयोगी है। गृहस्थों! इस रिसर्च के लिये इतनी सिरफोडी न कर आयुर्वेद

Indira Gandhi National Centre for the Arts

के शास्त्रीय सिद्धान्तों को अङ्गीकार करने में एलोपैथिक के आधुनिक विद्वानों को कौन बाधा है, यह मैं नहीं समझ सकता। बृहन्निघंटु के ७ वें भाग के २१२ पन्ने में अतिविष के गुणदोष में लिखा है कि, "हरेत् अतिसार आम" अतिविष झाड़ा और आम को मिटाता है। पैसा, वक्त और विद्वत्ता का चिरकाल पर्यंत व्यय करने से निर्णीत किया हुआ आधुनिक सिद्धांत हजारों वर्षों के पहले इस बाबत में शास्त्रीय रीति से प्राचीन विद्वानों के किये हुए सिद्धान्तों के साथ-कैसा अक्षरशः मिलता है यह इससे सिद्ध होता है। जब डा० सरवेयर ने मुझसे यह बात जाना तब उन्होंने कहा कि, "हमारे रिसर्च वर्क का इतना उद्योग होने पर आयुर्वेद में उस वनस्पति के लिये बताये हुए गुणदोष में कुछ भी परिवर्तन मैं देख नहीं पाता" इससे आयुर्वेद के सिद्धान्तों के लिये उन डाक्टर साहब के हृदय में बड़ा ऊँचा स्थान हो गया।

आयुर्वेद की रसक्रिया फूटती नहीं है।

The Mercurial preparations of Ayurved; they cannot produce eruption.

अब मैं आयुर्वेद की रस क्रियाओं के उपर कुछ बोलता हूँ, इस क्रिया में पारद और गन्धक जो अद्भुत काम बजाते हैं, वे किसी भी वैद्य से अज्ञात नहीं। आयुर्वेद के आधार से "पारदः सर्वरोगाणां जेता पुष्टिकरः स्मृतः" पारा हर रोग को जीतने वाला और पुष्टि करनेवाला है। इंग्लिश वैद्यक-शास्त्र के आधार से भी पारद को रक्त-शुद्धि करने वाला माना जाता है। आयुर्वेद में रस-मिश्रित प्रयोग इतने हैं कि, पारद को अपने लोग भी औषधियों में श्रेष्ठ पद देते हैं यह असत्य नहीं कहा जायगा। यह पारद और उसकी क्रियाएँ आयुर्वेदीय चिकित्सकों के बड़े द्रव्य गिने जाते हैं। मुझे कहने में खेद उत्पन्न होता है कि, कितनी जगहों पर वैद्यों का मान उतारने के लिये, वे लोग वैद्यक-चिकित्सा में रोगियों को पारा खिलाते हैं और वह फूट निकलता है ऐसी बातें कह कर देशी मात्राओं के ऊपर असत्य अश्रद्धा उत्पन्न करा देते हैं। जनसमूह के लाभ के लिये इस संमेलन के पास मैं खात्री से कहता हूँ कि आयुर्वेद में लिखी हुई शास्त्रीय पद्धति से तैयार करने में आई कोई भी दवा रोगी को खिलाने से वह फूट आयी ऐसा कोई भी दृष्टान्त कोई भी मनुष्य अथवा कोई भी डाक्टर नहीं बतला सकेगा। आयुर्वेदीय मात्राओं के लिये यह आक्षेप बिल्कुल झूठा और कुछ भी प्रमाण संमत नहीं है। पारद तो क्या! परन्तु ऐसी कोई आयुर्वेदीय औषधि नहीं है कि, जो खिलाने से शरीर में फूट आयी हो। इससे मेरे चिकित्सक बान्धवो! कोई भी रोगी अथवा कोई भी डाक्टर आपकी दवा फूट आयी ऐसा कह कर आपको उपालम्भ दें तो वे झूठे हैं, ऐसा हिम्मत से बोलने में चूकना नहीं! कोई भी रसायन-क्रिया पीछे चाहे वह कच्ची हो या पक्की हो तो भी उसमें शरीर में फूट निकलने का गुण है ही नहीं। फूटने वाले जो-जो औषध हैं वे जिस-जिस रीति से अंग्रेजी वैद्यक-शास्त्र की पद्धति से देने से फूट आते हैं, इसी रीति से ही आयुर्वेद की पद्धति से देने से भी फूट आते हैं, परन्तु इन फूटने वाले औषधों में से एक भी औषध रसायन नहीं है। मैंने बहुत लोगों को कहते सुना है कि, "हम देशी दवा खाते डरते हैं, शायद उसमें रसायन हो और वह फूट निकले" सो यह एक अज्ञानता की पराकाष्ठा है और रोगियों के मन में ऐसे विचार भर देना यह ऐसे समझाने वालों की इस विषय में परिपूर्ण अज्ञानता है। पारद के संयोग से होने वाले असंख्य औषध आयुर्वेद में अत्यन्त क्षेम कार्य करते हैं। मकरध्वज, पूर्ण

Indira Gandhi National Centre for the Arts

चन्द्रोदय रस, रस सिन्दूर, सुवर्ण पर्पटी, पंचामृत पर्पटी, रस पर्पटी इत्यादि औषध शास्त्रीय होकर जिस रोग पर देने में आते हैं, उस पर वे अपना कार्य पूरी तौर से पूरा करके शरीर स्वास्थ्य के रक्षण करने में अत्यन्त उपकारक होते हैं। इन औषधियों ने जैसा उत्तम परिणाम दिखलाया है वैसा सृष्टि के ऊपर अस्तित्व रहने वाली दूसरी किसी भी चिकित्सा-पद्धति की औषधियों के उपयोग से देखने में नहीं आया है। आयुर्वेद के इस विषय का अभ्यास यह आयुर्वेद के एक किसी भी खास अंग के बराबर है, और यह हरएक विद्यार्थी को परिपूर्ण रीति से समझने की आवश्यकता है। यह विषय शार्ङ्गधर, रस-रत्नसमुच्चय, रस-रत्नाकर इत्यादि ग्रन्थों में बहुत उत्तम रीति से विस्तार से लिखा गया है। पाश्चिमात्य डाक्टर जब पारद को कितनेक वर्षों से पहले एक प्रकार का विष समझते थे, तब आयुर्वेदीय चिकित्सकों के पारद और गंधक के मिलाने की रीति और उसके आधार पर तैयार करके आये हुए औषध सर्वोत्तम गुण बतलाने वाले साबित हो चुके हैं।

धातु और उपधातु इत्यादि।

Metalic and other preparations of Ayurved,

धातु तथा उपधातु और रत्न तथा उपरत्न के संबंध में बोलने की आवश्यकता है कि, सुवर्ण जिसको थोड़े वर्ष से पहिले ही अंग्रेजी शोध की प्रणाली से आमाशय के रसों में पाचन न हो सके ऐसी एक धातु निर्णीत करके औषध में निरुपयोगी गिनने में आया था, वह प्राचीन आयुर्वेद में सुवर्णभस्म, राजमृगांक, सुवर्ण पर्पटी, सुवर्णवसन्त इत्यादि नाम से चमत्कारी फायदा करने वाली औषध गिना गया है। आप लोग सुनके आश्चर्यचकित होंगे कि मेरे डाक्टर मित्र भी अब सुवर्ण को Arsenic Aura, Gold chloride, Aura et Sodium chloride ऐसे रूप में शक्तिदायक और रक्तशोधक पद्धति में उपयोग करने लगे हैं। क्षय रोग में वैद्य लोग अभ्रक भस्म देते हैं, उसका जो पृथक्करण देखने में आवे तो उसमें Calcium, Silicon, Manganese, Iron देखने में आता है कि जिन धातुओं को पाश्चिमात्य चिकित्सक ऐसे ही रोगों में रोगियों को देते हैं। वे दिखाते हैं कि आयुर्वेद में औषधि-शास्त्र और रस-शास्त्र खोज, उपयोग और उनसे होने वाले उत्तम परिणामों के विषय में पृथ्वी तल पर दूसरे किसी भी शास्त्र से अधिक प्रमाण में हैं।

वैद्यकीय वनस्पति-शास्त्र।

Ayurvedic Botany.

इसके सिवा शिक्षण के इसी विभाग में वैद्यकीय वनस्पति-शास्त्र का भी समावेश होता है, इस विषय का ज्ञान वैद्यक के हर एक विद्यार्थियों को देना अति आवश्यक है, ऐसा बिना बोले नहीं रहा जा सकता। जिस वनस्पति के आधार से आयुर्वेद में कही हुई भिन्न-भिन्न औषधियाँ बन सकती हैं और जिस वनस्पति के पुट से आयुर्वेद में बताये हुए भिन्न-भिन्न भस्म तैयार करने में आते हैं, उस वनस्पति की पहचान एक वैद्य को न हो तो उसके वैद्यक का शिक्षण और अभ्यास दोनों ही व्यर्थ हैं। गृहस्थो! मेरे विद्वान् डाक्टर मित्रों तथा आयुर्वेद-चिकित्सकों! मैं नहीं समझ सकता कि इस उपयोगी विषय का अभ्यास पाश्चिमात्य वैद्यक-शास्त्र के अभ्यास-क्रम से क्यों निकाला गया है? वैद्य लोग जङ्गलों में फिर कर, हर एक वनस्पति के ज्ञानी होकर उनके गुण-दोष आयुर्वेद की पद्धति के अनुसार निर्णीत

Indira Gandhi National Centre for the Arts

करके उनका औषधों में उपयोग करते हैं, तो भी वैद्यक के इस उपयुक्त अंग के विषय में कुछ भी शिक्षण अथवा समग्र वैद्यक के अंग्रेजी अभ्यास क्रम में देखने में आती नहीं है। गृहस्थो! दुख के साथ मुझे बोलने की फर्ज पड़ती है कि, यह बात मुझे दूसरे एक गंभीर और अत्यन्त भयंकर विषय पर खींच लेती है और वह यह है कि, जब आयुर्वेदीय-चिकित्सक अपनी दवा किस वनस्पति में से किस रीति से बनाने में आई है इसका ज्ञान होने पर पीछे उनका उपयोग करते हैं, तब पाश्चिमात्य डाक्टर लोग उनके औषधों में आये हुए द्रव्यों को न जानने पर भी उनका उपयोग कर देते हैं, इसलिये वैद्यों के ऊपर विना समझे बिना पहचाने औषध देन का जो दोष देने में आता है वह बिल्कुल निर्मूल है।

विद्वान् चिकित्सक लोगों! ये औषधि गुण-दोष, औषधि-क्रिया, रस-शास्त्र और वनस्पति-शास्त्र के अति उपयुक्त विषय जो कि, शार्ङ्गधर, भावप्रकाश, वनस्पति-निघंटु, रस-रत्नसमुच्चय और रस-रत्नाकर इत्यादि ग्रन्थों में विस्तार से लिखे रखे हैं उसका परिपूर्ण अभ्यास करने की आवश्यकता है, इस विषय में पूरा ज्ञान धराने वालों को 'रस-वैद्य' कहना चाहिये।

स्वस्थवृत्त।

Hygiene and Preventive Medicine.

शिक्षण के विषय में इतने तक पहुँचने पर दूसरे अधिक महत्व के विषयों का वैद्यक के विद्यार्थियों को अभ्यास करना है। स्वास्थ्यवृत्त, जिसमें शरीर के स्वास्थ्य का रक्षण करने के लिये किसी भी वैद्यकशास्त्र में आज पर्यंत लिखे हुए नियमों की अपेक्षा वाग्भट्ट, चरक, सुश्रुत इत्यादि ग्रन्थों में विस्तार से लिखे हुए नियम अधिक श्रेष्ठ हैं और वे शरीर स्वास्थ्य के रक्षण करने के साथ रोग न हो, उसके लिये भी उत्कृष्ट नियम देते हैं जैसे कि, दिनचर्या, रात्रिचर्या और शरीर-स्वास्थ्य का रक्षण करने के लिये एक मनुष्य को कैसा बर्ताव करना चाहिये, किस प्रकार के अनाज, फल, शाक वगैरह का कैसा उपयोग करना चाहिये? भिन्न-भिन्न प्रकार के अन्न, फल, शाक इत्यादि में कौन-कौन गुण-दोष रहे हैं? भिन्न ऋतुओं में जो भिन्न-भिन्न रोग होने का संभव है वे किस रीति से न हों, इसके वास्ते कौन-कौन उपाय करना चाहिये? व्यायाम, स्नानविधि, दंतधावनविधि, गरम पानी के गुण, ठंडे पानी के गुण, कुँआ, नदी, समुद्र, इत्यादि के पानी का गुण, दूध की स्वच्छता, उपवास की आवश्यकता, वमन और विरेचन की आवश्यकता, छाछ, मक्खन, तैल, मधु और शकर इत्यादि की उपयोगिता, पोशाक, रोग होने के कारण, रक्त-शुद्धि करने का मार्ग, इत्यादि बहुत विषयों का वर्णन करने में आया है, जो विस्तार से लिखे जाँय तो उनकी एक बड़ी पुस्तक हो जाय। यह विषय अंग्रेजी में हाइजिन के नाम से कहा जाता है परन्तु इसमें हाइजिन से अधिक, रोग न होने के नियम हैं अर्थात् प्रिवेन्टिव मेडिसिन भी है उसको हर एक वैद्यक-विद्यार्थी को सीखने की आवश्यकता है।

विषप्रकरण और न्याय वैद्यक।

Poisons and Medical Jurisprudence.

उससे आगे बढ़ कर विष-प्रकरण और न्यायवैद्यक जिसके ज्ञान के लिए वैद्यक का उद्योग करने वालों को बहुत परिश्रम करना पड़ता है, किन्तु इस ज्ञान के प्राप्त करने की आवश्यकता है। इसमें समय-समय पर ज्ञान वा अज्ञान से व्यवहार में लेने वाले भिन्न-भिन्न विषों में क्या

National Centre for the Arts

क्या लक्षण होते हैं, यह विषय आता है। इसका वर्णन आयुर्वेद में बहुत अच्छी तरह से दिया गया है। सुश्रुत के कल्प स्थान में यह बात विस्तारपूर्वक कही गयी है। बहुत वक्त वैद्यों के हाथ में ऐसे रोगी आते हैं और जो कोई भी विष एक मनुष्य को दूसरे किसी के हाथ से दिया गया हो तो उसके लक्षणों पर से यह किस प्रकार का विष है इसका निर्णय करने का और उस पर नियुक्त किये गये जिम्मेदार अधिकारी के सामने वह मामला पेश करने का जिम्मा उस चिकित्सक पर रहता है, इसमें न्याय का प्रश्न खड़ा होने से वैद्यक संबंधी न्यायशास्त्र के इस विषय से और उसके बाद साक्षी देने के कार्य का हर एक वैद्य को ज्ञान होने की आवश्यकता है। सुश्रुत जी विषों के चिह्न इत्यादि का सूक्ष्म वर्णन करने बाद इस विषय के अन्दर अधिक अभ्यन्तर प्रवेश करके जैसे साम्प्रतकाल में समाप्त हुई बड़ी लड़ाई में जर्मनों ने जहरीली हवा का प्रयोग किया था ऐसे ही प्राचीन काल में लड़ाई के समय शत्रु लोग तालाब नदियों के पानी, वनस्पति, अन्न, धूम और हवा को भिन्न-भिन्न विषों से जहरीला बना देते थे, उन विषों को पहचान कर सैनिकों को उनमें से बचाने को बड़े कार्य करने की उस विषय में सूचना देते हैं। सामान्य रीति से पीने के पदार्थ, शाक, दन्त-धावन, अभ्यंग, लेप, नस्य, जूते इत्यादि में जहर डाल कर मनुष्यों के प्राण लेने के दृष्टान्त पुनः पुनः देखने में आते हैं, उससे भी मनुष्यों को बचाने का कार्य भी वैद्यक को करना पड़ता है। विष-प्रकरण और न्याय-वैद्यक का इस रीति से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है इससे उसका अभ्यास वैद्य को आवश्यक है।

त्रिदोष और रुग्णेन्द्रिय-विज्ञान।

Tridosha and Pathology.

उसके पीछे का अतिशय उपयोगी विषय त्रिदोष, रुग्णेन्द्रिय-विज्ञान और कृमितंत्र यह है। त्रिधातु और त्रिदोष विषय में मेरे व्याख्यान के प्रारम्भ में मैं बहुत बोल चुका हूँ। त्रिधातु याने वात, पित्त और कफ ये दूषित हो तब इनको त्रिदोष कहते हैं और इनसे शरीर में भिन्न-भिन्न रोगों के चिह्न और लक्षणों का प्रारंभ होता है। त्रिदोष के वात, पित्त और कफ इन तीन दोषों में से कोई भी एक दोष अच्छी तबियत के समय में भी मनुष्य के कोई भी अवयव को थोड़े वक्त के लिये विकृत बना कर स्वयं प्रधान हो जाता है। ऐसे ही ऋतु परत्वे ये दोष अपने अनुकूल प्रकृति वाले मनुष्य के शरीर में उत्पन्न होकर अपने अनुकूल रोगों को उत्पन्न करते हैं। त्रिधातु और त्रिदोष के अस्तित्व का एक प्रत्यक्ष दृष्टान्त मैं इस जगह पर आपको सुनाता हूँ, अच्छी तबियत वाले मनुष्य का एक प्रत्यक्ष दृष्टान्त आप लोगों की आज्ञा से ग्रहण करूँ तो अपने महान् 'वाइसराय लार्ड हार्डिञ्ज' जिनको दिल्ली में प्रवेश करते समय बम्ब लगा था, उनको आप सब जानते हैं कि आपने अपना स्वभाव उस वक्त बहुत नियम में रक्खा था, क्योंकि आप कफ प्रकृति प्रधान थे, इससे कफ के जो खास गुण दृढ़ता, शांति, उत्साह, पुरुषार्थ, ज्ञान और बुद्धि ये सब आप में इतने अंश वाले थे कि, आपने अपनी कफ-धातु को उस वक्त दूषित होने न दिया, अन्यथा उनमें दृढ़ता के बदले शिथिलता आ जाती और इस प्रकार के हुक्म करते लेकिन उत्साह से अपने हाथी को आगे चलाने का आपने हुक्म दिया, उसके बदले वे कदाचित् इस जलूस को वहीं खड़ा करके अपने लिये गाड़ी अथवा मोटर लाने का हुक्म देते, यह उन्होंने अपना पुरुषार्थ और अनुभव-सिद्ध पूरा ज्ञान बता के अपने मनको शांत किया, उसके बदले अज्ञान-बता के उस समय अयोग्य

Indira Gandhi National Centre for the Arts

हुक्म देते, परन्तु ऐसा न करके अपनी बुद्धि के प्रभाव से उन्होंने यह बड़ी क्रिया बिना हरकत से चालू रहने दी। कदाचित् इससे उलटा पित्त धातु दूषित होने का प्रत्यक्ष दृष्टान्त जलियान वाला बाग में देखने में आया था और इस स्थल में बनी हुई बात में दोनों दलों का पित्त दूषित होकर उसके परिणाम में क्रोध के लक्षण देखने में आये थे इससे आप लोग जानते हैं ऐसे खेदकारक वृत्तान्त बनने पाये।

जब तन्दुरुस्त मनुष्यों की बाबत में इस प्रकार के आकस्मिक वृत्तान्त के समय भी उसके शरीर में रहा हुआ धातु, वात, पित्त और कफ का प्रकोप हो के दूषित होता है, तो शरीर के भीतर रहे हुए अवयवों में ऋतुपरत्वे कुछ विकृति होने से धातु बिगड़े यह असंभावित नहीं है। मनुष्य के शरीर के साथ वात, पित्त और कफ इस तीन प्रकार की शक्ति धातु-रूप से निरोगी स्थिति में और दोष-रूप से रोगी स्थिति में निरन्तर रही हुई है। इससे कोई रोगी के रोग का निदान करते समय जिस अवयव में रोग हुआ हो उसका निदान करने की आवश्यकता है इतना ही नहीं, किन्तु उसके शरीर में रहे हुए वात, पित्त और कफ का जो-जो धातु दूषित हुआ हो उसका भी निदान करने की आवश्यकता है। रोगी मनुष्य के निदान के समय में ये दोनों निदान ही संपूर्ण निदान कहा जाता है इसलिये त्रिदोष और रुग्णेन्द्रिय-विज्ञान ये दोनों वैद्यों को संपूर्ण निदान करने के लिये अति उपयोगी और अभ्यास करने योग्य एक उत्तम विषय है।

कृमितंत्र।

Bacteriology.

अब मैं हम कृमितंत्र विभाग पर आते हैं। कृमितंत्र विभाग को अंग्रेजी में Bacteriology कहते हैं। बहुत लोगों का अभी तक यह मत है, कि आयुर्वेद शास्त्र में इस विभाग का अस्तित्व नहीं है। बम्बई मेडिकल काउन्सिल से "आयुर्वेद अशास्त्रीय है ऐसी पुरानी समझ से मुझ पर नोटिस आयी, कि एक रजिस्टर्ड डाक्टर की हैसियत से मैं अपना सम्बन्ध आयुर्वेद से तोड़ दूँ।" इस विषय में तीन वर्ष तक पत्र द्वारा प्रश्नोत्तर होने के पश्चात् काउन्सिल की ओर से मेरी जाँच की गयी। उस समय कौंसिल के सदस्य एक डाक्टर साहब ने इस सम्बन्ध में मुझसे पूछा था। गृहस्थो! अभी तक बहुत लोग मानते हैं कि यह विषय आयुर्वेद में नहीं है, परन्तु यह जानकर आपको आश्चर्य होगा कि अंग्रेजी बेक्टिरोलाजी का पहला वाक्य यह है–

The Bacteria are found invariably in the blood tissues or excretions of persons suffering from various diseases. They are Rod shaped (Bacilli) Globular (Micrococci) Twisted (Spirilla) ठीक अक्षरशः ऐसा ही वाक्य चरक के विमान स्थान में ऐसे ही विषय के आरम्भ में देखने में आया है; उसमें कहा है, 'किन दृश्याः कृमयः' ऐसे जन्तु जो दृष्टिगोचर नहीं हो सकते वे अनेक रोग उत्पन्न करने के कारण स्वरूप होते हैं। ये जन्तु शोणितज अर्थात् रक्त में, श्लेष्मज अर्थात् कफ में और पुरीषज अर्थात् मल में दृष्टिगोचर होते हैं, वे लोमादि अर्थात् बाल के सदृश छोटे Rod shaped (Bacilli) केशादि अर्थात् बाल के सदृश लम्बे, टेढ़ा हो जाय (Spirilla) और 'लोमद्वीपाः' बाल टेढ़े होकर गुच्छे हो जायँ उनके सदृश (Micrococci) होते हैं। यह हूबहू अथवा एक दूसरे का अनुवाद हो ऐसा कृमितंत्र चरकशास्त्र में वर्णित है। मेरे विद्वान् डाक्टर मित्र तो ऐसा नहीं

Indira Gandhi National Centre for the Arts

कह सकते, कि वर्तमान बेक्टिरोलाजी में से चरक में यह वाक्य लिया होगा। यदि वे ऐसा नहीं कहते तो इसका उलटा सच्चा होना चाहिये। चरक में सूत्र-रूप से पढ़कर उसके प्रमाण के लिये भिन्न-भिन्न प्रयोग कर पाश्चात्य डाक्टरों ने इसे एक नये शास्त्र के रूप में जनता के सामने पेश करने का श्रेय प्राप्त किया है। मैं यह पहले बता चुका हूँ कि चरक सुश्रुत के अनुवाद अरबी, यूनानी और लेटिन भाषाओं में हुए हैं और इसी लेटिन भाषा में से अंग्रेजी वैद्यक का बीज बोया गया है।

स्वस्थवृत्त, न्यायवैद्यक और विषप्रकरण तथा कृमितंत्र, त्रिदोष और रुग्णेन्द्रिय-विज्ञान आदि वैद्यकशास्त्र के विभागों के पूर्ण जानकार को भिषक् कहते हैं।

अब हम वैद्यक विषयों के उन कार्यों पर, जिन्हें सर्वसाधारण करते हुए देख सकते हैं और जिन कार्यों के करने के लिये सब विषयों को पूर्ण रूप से जाने बिना योग्य नहीं हो सकते, उन तीन विषयों पर आता हूँ। वे तीन विषय ये हैं—निदान-चिकित्सा, शल्य-शालाक्य-शास्त्र अथवा शस्त्रवैद्यक और नेत्र-रोग, सूतिका शास्त्र तथा स्त्री और बाल रोग हैं। पहले कहे हुए विषयों को तैयार करने के बाद वैद्यक का काम करने को तैयार होना चाहिये। यही इन तीन विषयों के सम्बन्ध का है।

निदान, चिकित्सा।

Theory and practice of Medicine.

निदान, चिकित्सा का महान् विषय प्रत्येक वैद्यक प्रवृत्ति वालों को जानने तथा अध्ययन करने योग्य है। इसमें रोग का अर्थात् जो अवयव विकृत हुआ हो उसका निदान करना और उसके साथ रोगी के शरीर में जो वात, पित्त, कफ दोष हैं, उनमें जो धातु दूषित हुआ हो उसका भी निदान करना आवश्यक है। आयुर्वेद में किसी रोग की चिकित्सा करने के पहले उसके सम्बन्ध के दोनों तरह के निदान करना आवश्यक है। इसीसे मैं इस निदान को सम्पूर्ण निदान कहता हूँ। अंग्रेजी पद्धति के अनुसार विकृत हुए ही अवयव का केवल निदान करना मेरी समझ में अधूरा निदान करना है। इस अपूर्ण निदान के कारण ही हम अनेक तीव्र रोगियों को जीर्ण रोग में जाते हुए देखते हैं। आयुर्वेदिक पद्धति के अनुसार अवयव की विकृति और शरीर का कौन धातु दूषित हुआ है इन दोनों का निदान होने से रोग के अच्छा होने में देर नहीं लगती और अवयव सुधरने तथा त्रिधातु समान होने से रोगी पुनः पूर्ण स्वस्थ हो जाता है। इस विषय में मैं आपको एक ऐसे रोग का उदाहरण देता हूँ जो निरन्तर आपकी दृष्टि में आता रहता है। अंग्रेजी चिकित्सा पद्धति के अनुसार मलेरिया बुखार के लिये क़िनाइन एक अनुभूत उपाय है। अब एक स्थान में एक ही स्थिति में चार मलेरिया के रोगियों को रखिये और उन्हें एक ही तरह की खुराक और एक ही प्रमाण में कीनाइन दीजिये। परिणाम में बहुत बार आप देखेंगे कि केवल मलेरिया के ही रोगियों को एक सी मात्रा में एक सी दवाई देते हुए भी एक अथवा दो रोगी को लाभ नहीं होता और दिन-दिन उसकी स्थिति खराब होती जाती है। प्रत्येक डाक्टर को ऐसे केस देखने पड़े हैं, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। मैं अपने डाक्टर मित्रों से पूछता हूँ कि ऐसा होने का कारण क्या है? मुझे कहना चाहिये कि अंग्रेजी वैद्यक शास्त्र में इसका कोई जवाब नहीं है। ऐसी स्थिति क्यों उत्पन्न हो जाती है, इसका उत्तर आयुर्वेद दे सकता है, वात, पित्त और कफ की प्रणाली से प्रत्येक औषध का

Indira Gandhi National Centre for the Arts

विभाग करने से प्रत्येक वैद्य यह कह सकता है कि क्वीनाइन पित्तप्रकोप करने वाली दवा है। इस प्रणाली के अनुसार जिन चार रोगियों में से अच्छे नहीं हुए उनकी पित्त प्रकृति होनी चाहिये। पित्त प्रकृति वाले को कोई पित्तप्रकोप करने वाली दवा चाहे कितने भी लाभ की दृष्टि से दी जाय वह उसके पित्त को बढ़ा कर दूषित करेगी। इसलिये रोग में गुण करना तो दूर रहा उलटे रोगी को वमन-तृषा आदि उपद्रव खड़े हो जाते हैं और ज्वर भी घटने के स्थान पर बढ़ता ही जायगा। डाक्टर वाशिङ्गटन, यार्क रॉयल सोसायटी आफ ट्रापिकल मेडीसिन और हाइजिन की गत वार्षिक सभा में कितने ही मलेरिया के रोगियों के सम्बन्ध में कहते हैं:— The amount of daily doses of Quinine, the length of time it is continued, and the manner of its administration do not exert any influence. बहुत समय तक भिन्न-भिन्न रीति से पृथक् पृथक् प्रमाण में क्वीनाइन देने पर भी मलेरिया पर कोई असर नहीं होता। इस प्रकार के रोगियों का मलेरिया मिटाने की आशा से अधिकाधिक मात्रा में क्वीनीन देने से तो परिणाम में उन रोगियों को सहज ही लाभ नहीं जान पड़ेगा, बल्कि रोग के साथ उनका पित्तदोष बढ़ने से उनकी मृत्यु हो जायगी। इतने अधिक समय तक डाक्टर का इलाज करने के बाद अन्त में रोगी की जब अत्यन्त खराब दशा हो जाती है उस अवस्था में यदि कोई सुशिक्षित वैद्य पहुँच जाय तो वह केवल उसका पित्तदोष शमन करने के लिये क्वीनाइन के साथ अथवा बिना क्वीनाइन के नीम, गिलोय, खड़सलिया अथवा प्रवाल देता है। परिणाम में बहुत दिनों का बुखार वैद्य की एक ही पुड़िया से मिट जाता है। मेरे विद्वान् डाक्टर मित्रो तथा वैद्यो! मुझे दुःख के साथ कहना पड़ता है कि शास्त्रीय रीति से होते हुए ऐसे चमत्कारिक गुणों को बम्बई की लेजिस्लेटिव काउन्सिल में डाक्टर सर नरिमान ने इसे एक अकस्मात् संयोग बता कर आयुर्वेद का महत्त्व कम करने का यत्न किया था। ऊपर बताये हुए बुखार उतारने के शास्त्रीय कारण कोई अकस्मात् संयोग नहीं है, बल्कि निदान तथा चिकित्सा की एक शास्त्रीय पद्धति का एक शास्त्रीय परिणाम है। इस उदाहरण से यह बात अच्छी तरह समझ में आजायगी कि आयुर्वेदिक पद्धति से किया हुआ निदान शास्त्रीय और सम्पूर्ण निदान है और उसके आधार से रोगी की चिकित्सा करने से केवल रोग का ही नाश नहीं होता, बल्कि रोग उत्पन्न करने वाले तथा रोग से उत्पन्न होने वाले दोष भी नष्ट हो जाते हैं। परन्तु वात, पित्त और कफ की प्रणाली को अलग रख जो निदान किया जाता है वह अपूर्ण होता है और उसके अधार पर की हुई चिकित्सा अधूरी रह कर रोगी को पूर्ण आरोग्य प्रदान नहीं करती। इस प्रकार के प्रमाण मिल सकते हैं। कुछ समय हुआ एक राज्य परिवार की एक छोटी कुमारी कफ-ज्वर से पीड़ित थी। उसके साथ उसे वात-प्रकोप भी हुआ। इंगलिश पद्धति के अनुसार कहा जाय तो फेफड़ों में भयंकर सूजन हो गयी थी और इसके साथ पेट फूलना और हिचकी भी आने लगी थी। स्थिति इतनी भयंकर हो गयी थी कि उसके जीवन की आशा छोड़ दी गयी थी। जिस समय अन्त के सब कामों की तैयारी हो रही थी उस समय मुझे वहाँ जाने का अवसर मिला। नाड़ी और श्वास की ओर नजर रखने से रोग की भयंकर स्थिति देखकर भी मुझे उसमें कुछ आशा दिखायी पड़ी। मैंने कफ और वात का प्रकोप पूर्ण रूप से देखा परन्तु पित्त का प्रकोप बिल्कुल नहीं देखा। इस एक लक्षण से मुझे उपचार करने की हिम्मत हुई और सब लोगों के आनाकानी करने पर भी मैंने उपचार करने के लिये उसे माँग लिया।

National Centre for the Arts

मुझसे कहा गया, कि अब इसकी चिकित्सा का अर्थ अन्तिम धार्मिक क्रियाओं में बाधा डालने जैसा साहस है। परन्तु रोगी में जो एक दोष की कमी दिखाई दी थी, उसे देख कर यदि मैं कुछ नहीं करता तो मेरे मन में सन्ताप बना रहता, कि मैंने अपने कर्तव्य का पालन नहीं किया। केवल इसलिये मैंने उसके उपचार करने का आग्रह किया। वैसा करने से धीरे-धीरे रोगी को लाभ होने लगा और जो डाक्टर एक के बाद एक देखने को आये सबको अंग्रेजी पद्धति के अनुसार रोगी का भविष्य निराशाजनक मालूम पड़ा, परन्तु आयुर्वेदिक पद्धति के अनुसार जब तक तीनों दोष पूर्ण रूप से नहीं हो जाते तब तक रोगी को नहीं मरना चाहिये इस विश्वास पर मैंने उपचार जारी रखा और आज ईश्वर की कृपा से वह पूर्ण स्वस्थ है। गृहस्थो और प्रिय चिकित्सक बन्धुओं! मुझे यह उदाहरण यहाँ नहीं देना चाहिये था। ऐसा करना वैद्यक-विवेक के विरुद्ध है। फिर भी वात, पित्त और कफ की त्रिधातु और त्रिदोष की प्रणाली के अनुसार काम करने से, जो औषधि का प्रयोग करे तो भी आयुर्वेद चिकित्सकों को कितना यश मिल सकता है इसका मैंने एक प्रत्यक्ष उदाहरण देने का साहस किया है उसके लिये मैं क्षमा माँगता हूँ। इस प्रमाण से आयुर्वेद में चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट, माधवनिदान आदि निदानचिकित्सकों ने निदान व चिकित्सा का विषय अत्यन्त सूक्ष्म रीति से और अत्यन्त विद्वत्ता पूर्वक वर्णन किया है और अंग्रेजी पद्धति के अनुसार जैसी चिकित्सा होती है उसकी अपेक्षा यह चिकित्सा कितनी पूर्ण है यह बात उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट है। इसके लिये वैद्यक विद्यार्थियों को उसका पूर्ण रूप से अध्ययन करने की अत्यन्त आवश्यकता है।

शल्य-शालाक्य-शास्त्र।

Surgery and Eye diseases.

इसी विभाग में शल्य-शालाक्य शास्त्र यह दूसरा महत्व का विषय है। इस विषय में पाश्चात्य चिकित्सकों ने जो वृद्धि की है वह अवश्य ही प्रशंसा करने योग्य है। योग्य स्थान पर चिकित्सा की योग्य पद्धति का सन्मान करना एक शास्त्रीय चिकित्सक की हैसियत से अपना धर्म है। मुझे कहना चाहिये कि शस्त्रवैद्य लोग अपनी जल्दबाजी के कारण जहाँ शस्त्र-क्रिया की जरूरत नहीं है वहाँ वह करके गलत निदान न करें तो उन्हें और भी अधिक यश प्राप्त हो सकता है। सुश्रुताचार्य ने इस विषय को बड़ी पद्धति के अनुसार लिखा है। भिन्न-भिन्न शस्त्रों का वर्णन कर तथा पृथक्-पृथक् शस्त्रों का किस प्रकार उपयोग करना चाहिये यह बताकर, यह भी वर्णन किया है कि अमुक रोग पर अमुक प्रकार के शस्त्र का प्रयोग करो। पथरी रोग के लिये जिस शस्त्र-क्रिया का वर्णन किया है वह वर्तमान विद्वान् डाक्टरों की इस सम्बन्ध की शस्त्र-क्रिया में छेद कहाँ करना चाहिये, छेद कितना लम्बा होना चाहिये, क्रिया करने के पहले क्या-क्या तैयारी करनी चाहिये व क्रिया समाप्त कर चुकने पर क्या तजवीज करनी चाहिये इत्यादि का सविस्तर वर्णन सुश्रुत में किया गया है। सुश्रुत में और भी ऐसी अनेक शस्त्र-क्रियाओं का वर्णन किया है जिन्हें कुछ वर्ष पूर्व अंग्रेज चिकित्सकों ने हमारे पास से ग्रहण कर उसका Indian operation (इण्डियन आपरेशन) नाम रक्खा है। इस क्रिया में शरीर के एक भाग से त्वचा निकाल कर उसका एक हिस्सा उस अङ्ग में ही जुड़ा हुआ छोड़ देते हैं, अर्थात् त्वचा को जीवित रखकर नाक, कान अथवा दूसरे अवयवः उसमें हूबहू पूर्व आकृति के अनुसार जोड़ देते हैं। इस शस्त्रक्रिया का रहस्य इतने ही में नहीं है। रक्ताभिसरण

Indira Gandhi National Centre for the Arts

(रक्तसंचालन) के विषय को प्राचीन आर्य्य जानते थे। सूक्ष्म तथा अत्यन्त तीव्र शस्त्रों की आवश्यकता वे समझते थे। युद्ध समय के घाव व कटे हुए हाथ-पैरों को शस्त्रक्रिया से पुनः अच्छी स्थिति में लाना उन्हें मालूम था। ये सब क्रियायें करने के बाद रोगी को धनुर्वात आदि दूसरे उपद्रव न हों इसके लिये क्या-क्या तजवीज करनी चाहिये, यह सब वे अच्छी तरह जानते थे। यह बात उपरोक्त वर्णन से सिद्ध होती है। खेद है कि कुछ वैद्य यह मानते हैं, कि शस्त्रोपचार योग्य प्रत्येक रोग औषधोपचार से मिट सकते हैं। इस विश्वास के कारण तथा बुद्ध के समय के प्रचारित धार्मिक विश्वासों के कारण, नेत्ररोग तथा अन्य रोग की शस्त्रोपचार की चिकित्सा आयुर्वेदीय चिकित्सा में कम हो गयी, जिससे चिकित्सा के इस अंग को विकसित करने के हेतु और साधनों में न्यूनता हो गयी। अंग्रेजी शास्त्र में इस विषय के अनुभव तथा प्रत्यक्ष क्रिया करने से अत्यन्त विकास हुआ है। आयुर्वेदिक चिकित्सा में भी योग्य शिक्षण और प्रत्यक्ष अनुभव कर चिकित्सा के इस अङ्ग को आगे बढ़ाने की आवश्यकता मैं मानता हूँ।

सूतिकाशास्त्र—स्त्रीरोग और बालरोग।

Midwifery, Diseases of Women and Children.

इसी तरह सूतिकाशास्त्र जिसमें शस्त्रों, यंत्रों इत्यादि की आवश्यकता पड़ती है, उसके पृथक्-पृथक् प्रयोग चरक, सुश्रुत में भिन्न-भिन्न स्थानों में आये हैं। उसमें लिखा है, कि प्रसव किस तरह कराना, टेढ़ा हुआ गर्भ किस तरह निकालना। संयुक्त गर्भ हो तो क्या करना, जरा किस प्रकार डालनी, राक्षसी गर्भ हो तो उसका किस प्रकार सिर छेदना, एक-एक करके कौन-कौन अवयव, हाथ-पैर इत्यादि काट कर बाहर निकालना आदि यह सब वर्णन गर्भिणी व्याकरण-शरीराध्याय में चरक तथा दूसरे ग्रंथों के आधार पर बहुत अच्छी तरह किया गया है। गर्भ सम्बन्धी शस्त्र-क्रिया कैसी गंभीर है, उस समय वह कैसी हिम्मत से की जाती थी इसका वर्णन उस अध्याय में बहुत अच्छी रीति से किया गया है। ये क्रियाएँ आयुर्वेदिक चिकित्सा से धर्म के निमित्त अथवा औषधोपचार से सब हो सकता है इस विश्वास के कारण नष्ट हो गयीं। उन्हें पुनर्जीवित करने की अत्यन्त आवश्यकता है, क्योंकि निदान, चिकित्सा के इस अङ्ग का भी पूर्ण ज्ञान हुए बिना कोई पूर्ण वैद्य नहीं हो सकता। इसके साथही साथ स्त्री-रोग चिकित्सा तथा बाल-रोग चिकित्सा का भी अभ्यास करना आवश्यक है। प्रत्येक वैद्य जानता है कि चरक-वाग्भट्ट में इन विषयों का विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है। विशेष कर, कितनेक वैद्य तो इस विषय का खास अनुभव कर केवल इसी विषय की चिकित्सा ऐसी उत्तम रीति से करते हैं कि जिससे विद्वान् डाक्टर भी चकित हो जाते हैं। गृहस्थो, यह निदान, चिकित्सा, शल्य-शालक्य-शास्त्र, सूतिका-शास्त्र स्त्री-रोग और बाल-रोग का परिपूर्ण अभ्यास कर जो विद्वान् वैद्य योग्य चिकित्सा करने के योग्य हों उसे भिषग्वर अर्थात् एक विद्वान् चिकित्सक कह सकते हैं।

अभ्यास, परीक्षा और योग्यता।

Study, Examinations and Qualifications.

प्रिय चिकित्सक बन्धुओं! आयुर्वेद के शिक्षण और अभ्यास क्रम पर इतना कहने के बाद मैं आप से विनती करता हूँ कि शास्त्रीय विषयों और शास्त्रों में कोई भी व्यक्ति अथवा

Indira Gandhi National Centre for the Arts

कोई शास्त्र में परिपूर्ण होगा ऐसा विचार कभी नहीं रखना चाहिये। जिस प्रकार जगत् आगे बढ़ता जाता है उसी भाँति मनुष्य की बुद्धि की तीव्रता और दृढ़ता अधिक होना संभव है। ऐसा होने के कारण मनुष्य के जीवन-संरक्षण के नियमों में भी समय के अनुसार फेरफार सुधार और वृद्धि होना संभव है। अपने महान् ऋषि, मुनि हमें जो सिखा गये हैं उसको मध्य कार्य-बिन्दु मान कर चिकित्सा के प्रत्येक अंग का हम लोग किस प्रकार विकास कर सकते हैं, इसपर विशेष ध्यान देना चाहिये। उपरोक्त सब विषयों के साथ अपने हाथ से अथवा अन्य से दिनो-दिन जो विकास होती है, उसमें कितना ग्राह्य है और कितना अग्राह्य उसका विचार कर अपने शास्त्र में उसके अनुसार सुधार और वृद्धि करना यह एक शास्त्रीय बुद्धिमत्ता है।

सुशील बहनो, माननीय गृहस्थों तथा विद्वान् चिकित्सक-बन्धुओं! आयुर्वेद कितना अगाध है, उसमें कैसे विषय कितने गहरे गोता लगा कर लिखे गये हैं, एक भावी चिकित्सक को उन विषयों के परिपूर्ण अभ्यास करने की कितनी आवश्यकता है, वह अभ्यास किस प्रकार किया जाय और अभ्यास-क्रम में कैसे अनुक्रम से किस-किस विषय का अभ्यास करना चाहिये, वह अभ्यास पूरा करने के बाद परीक्षा कर किस-किस योग्यता की पदवी मिलनी चाहिये, उस विषय का परिपूर्ण विवेचन मैंने आपके समक्ष किया है। मैं अपने विद्वान् चिकित्सक बन्धुओं से फिर प्रार्थना करता हूँ कि भावी चिकित्सक वर्ग को ऐसी पूर्णता प्राप्त हो सके इसके लिये सब साधन तैयार करना चाहिये। इस दृष्टि-बिन्दु को ध्यान में रख कर 'प्रभुराम आयुर्वेदिक कालेज' का अभ्यास-क्रम और उस विषय की दी जाने वाली योग्यता उपाधि निश्चित हुई है। वह योग्यता वर्षों से हमारे बीच काम करने वाले विद्वान् आयुर्वेदिक चिकित्सकों में परिपूर्ण रूप से स्थित है जो विदेशी चिकित्सक तथा जन-समूह के समूह को देखने में आती है उसका श्रेय हमारे प्राचीन आयुर्वेद को ही है।

आयुर्वेदिक चिकित्सकों का स्थान, जनता से विनय।

Position of Qualified Ayurvedic practitioners. A word to the Public.

अब मैं जन-समुदाय, सुशील बहनों और माननीय गृहस्थों से पूछता हूँ कि ऐसे गहन आयुर्वेद का उत्तम पद्धति के अनुसार अभ्यास करके आने वाले एक आयुर्वेदिक चिकित्सक को भिन्न-भिन्न वैद्यक-पद्धति के चिकित्सक-समूह में कौन-सा स्थान देंगे? यदि आप ऐसे चिकित्सकों का मान कम कर देंगे तो आप आयुर्वेद का नाश करने में केवल साधन भूत होंगे इतना ही नहीं, बल्कि उसके अन्दर वर्णित स्वास्थ्य-रक्षा के प्रत्येक नियमों का भी उसी के साथ नाश हो जायगा। आप देख सकेंगे कि उपरोक्त रीति से सूक्ष्म अभ्यास करके जो चिकित्सक तैयार होंगे उनकी चिकित्सा-पद्धति दूसरी चिकित्सा-पद्धतियों की अपेक्षा उत्तम और लाभकारक है। जिस आयुर्वेद चिकित्सा की प्रणाली ने प्राचीन काल में अत्यन्त लाभ पहुँचाया और जो आज भी पहुँचा रही है उसके प्रत्येक कार्य्य में उत्तेजन देना उसका मान बढ़ाना और शिक्षण और निदान-चिकित्सा सम्बन्ध में उसके लिये तन, मन, धन से उसकी सहायता करना आपका जन्म-सिद्ध कर्त्तव्य है; क्योंकि आप जानते हैं कि अपने जन्म के समय तथा माता के दूध के पहले आपने इस चिकित्सा का उपभोग किया है।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

अपने डाक्टर मित्रों से विनती।

A word to our friends the Doctors.

अब मैं अपने डाक्टरों से सविनय कहूँगा कि आयुर्वेद शास्त्रीय नहीं है यह कह आप जो हमसे दूर रहते हैं, वह मेरी उपरोक्त बतायी हुई घटनाओं से क्या आप शास्त्रीय स्वीकार करेंगे ? संगठन और सहयोग के इस युग में आप हमसे दूर कैसे भागते हैं। आवश्यकता के अनुसार एक दूसरे के सहायक होने में आपको क्या हर्ज है। आघात और प्रत्याघात यह प्राकृतिक नियम है। आप यदि जनसमूह में हमें नीचा दिखाने का यत्न करेंगे तो हम आप के प्रति किस प्रकार सम्मान बनाये रख सकते हैं ? बम्बई मेडिकल काउन्सिल में मेरी तीन घंटे तक जाँच करने के बाद कोई यह सिद्ध न कर सका कि आयुर्वेद अशास्त्रीय है हमारे और आपके अलग-अलग रहने से जितनी आपकी हानि और हमारी हानि है, उसकी अपेक्षा हजार गुनी जनता की हानि है। इस अलगाव के कारण जनता को आपसे हमारे पास हमसे आपके पास दौड़ना पड़ता है। जनता के इस कष्ट की ओर और इस प्रकार उखड़-पट्टी के कारण एक दूसरे के उलटे उपचार से जो असंख्य मृत्यु होती है उसकी ओर क्या आप दया की दृष्टि से नहीं देख सकते ? आयुर्वेद के अभाव के कारण वैद्यों को अपने से अलग रख परस्पर की सलाह के अभाव से जो हजारों रोगी मरते हैं क्या उसे आप आँख मीच कर देखते रहेंगे। यदि आप ऐसा करेंगे तो आपके लिये हम और जनता क्या फैसला करेगी यह स्वयं जनता निर्णय कर लेगी।

महाशयो, विद्वान् चिकित्सको तथा सुशील बहनो, मैंने आपका बहुत समय लिया है। आपके समक्ष जो कुछ कहना था, वह मैंने संक्षेप में कहा है। मुझे जान पड़ता है, कि बहुत सी बातें कहनी रह गयीं। मैंने जो कुछ कहा है उसमें सत्य और न्याय को आगे रखा है, फिर भी यदि किसी को मेरा भाषण सन्तोषजनक मालूम न हुआ हो तो मैं उसके लिये क्षमा याचना करता हूँ और परम कृपालु परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि आयुर्वेद को उत्तेजन देकर यह कार्य्य वह परिपूर्ण करे।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

वैद्यशास्त्री-प्राणाचार्य

नारायणशंकर देवशंकर महोदयस्य

जीवन वृत्तान्तम् ।

(१) श्री जयपुर राजकीय संस्कृतायुर्वेद महाविद्यालये पू० स्व० राजवैद्य श्री कृष्णराम गुरु सन्निधावभ्यासः कृतः ।

(२) वटपत्तने (बडोदरानगरे) व्याकरणशास्त्रस्य, साहित्यशास्त्रस्य, धर्मशास्त्रस्य, आयुर्वेदशास्त्रस्य च परीक्षादत्ता ।

(३) पश्चात् वाराणस्यां वर्षद्वयं स्थित्वामहाभाष्यस्याध्ययनं गवर्मेन्ट संस्कृत महाविद्यालये कृतम् ।

(४) तदनन्तरं श्रीनगरे (अहमदाबादनगरे) श्री "आयुर्वेद चिकित्सालस्य" स्थापना कृता (सं० १९५१–सने–१८९५) तदङ्गभूता "आयुर्वेद पाठशाला"ऽपि च संस्थापिता । गतवर्षे "पाठशालायाः" गवर्नमेंट दफ्तरे रजिस्टरं कृत्वा ट्रस्टडीडपत्रं कृतं । पाठशाला कार्यार्थं "व्यवस्थापकाः निर्णिताः । तत्र यथायोग्यं धनमपिदत्तम् । तत्रैव त्रिंशत् विद्यार्थिनः पठन्ति । पाठशालायां जयपुर राजकीय परीक्षायामुत्तीर्णोऽध्यापको नियोजितः । विद्यार्थिनामभ्यासक्रमो विद्यापीठ नियमावल्यनुसारेण प्रचलति । निम्नदर्शिता अन्येचाध्यापकाः अध्यापनं कुर्वन्ति ।

(१) वैद्यरत्न माधवप्रसादः (२) वैद्यशास्त्री शंभुप्रसादः (३) डॉ० बालकृष्णश्च । तत्रमदीयं व्यवस्थापकत्वं। धनोपार्जने समिति स्थापिता । एवं शनैः शनैः कार्यं प्रचलति। विंशति सहस्रपर्यन्तधनसंचयस्सञ्जातः । धनोपार्जने गृहस्थानां समितिस्स्थापिता । श्री धन्वन्तरिकृपया धन बाहुल्येन महाविद्यालस्य स्थापना भविष्यतीति। एवं 'आयुर्वेद प्रचारार्थकार्यं" करोमि ।

(५) अहमदाबादनगरे शेठ अंबालाल दलपतराम धर्मार्थमायुर्वेद औषधालये व्यवस्थापकोहं ।

(६) डी० जी० लोकलबोर्ड संस्थापित चतुर्दश "आयुर्वेदीयौषधालयानि प्रचलन्ति । तेषां समितौ सभापतिरहम् ।

(७) श्रीपाटणआयुर्वेद महाविद्यालयेसमितौ सभ्यः परीक्षकश्च ।

एवं बड़ोदरा, श्रावणमासदक्षणापरीक्षायामपि परीक्षकोहम् । मुम्बापुर्यां श्रीप्रभुराम आयुर्वेद महाविद्यालयेऽपि ।

(७) विद्यापीठस्य "अष्टादशवर्ष पर्यन्तं" परीक्षकत्वेन सेवा सततं कृता ।

(९) श्री गुजरात प्रान्तीय वैद्यसम्मेलनस्य मुम्बई नगरे ता० १९–१२–२६ तारिकायां द्वितीयाधिवेशने सभापतिरहम् ।

(१०) कराचीनगरे महासम्मेलनस्याधिवेशने स्वास्थ्य-सम्भाषापरिषदि सभापतिरहम् ।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

(११) मैसूरनगरे सने १९३१ संवत्सरे महासम्मेलनं जातं तत्राऽपि रसायनतद्विद्य-सम्भाषापरिषदि सभापतिरहम् ।

(१२) अहमदाबादनगरे गतमहासम्मेलनेस्वागताध्यक्षोऽहम् । भाषणम् संस्कृते-हिन्दी भाषायां च ।

(१३) कराचीनगरस्य-मैसूरनगरस्य च भाषणं वैद्यसम्मेलन पत्रिकायां मुद्रितम् ।

(१४) अहमदाबाद वैद्यसभायामिदानीं माननीयप्रमुखोहम् । तथा च श्रीगुजरातकच्छ कठियावाड़प्रान्तीयस्यापि समितेश्चाऽपि माननीयप्रमुखोहम् ।

एवमायुर्वेदप्रकर्षार्थं सप्ततिवर्षाणिसञ्जातानि तथाऽपि सेवा करोमि । पुस्तकान्यपि लिखितानि । स्वागताध्यक्षरूपेणमदीय भाषणं पुस्तके ७ सप्तमपृष्टे द्दष्टव्यम् । श्रीगुर्जरप्रान्तीय वृन्तान्तमपि भाषणे द्दष्टव्यम् । भाषणपुस्तकस्य ९ नवमेपृष्टे वृत्तान्तमस्ति भाषणम् वाचयित्वा यद्गृहीतव्यमस्ति तदवस्यमेवगृहीतव्यमिति ।

(१) श्रीगुजरातप्रान्तिक वैद्यसम्मेलनस्य द्वितीयाधिवेशनस्यमदीयं भाषणम् ।

(२) श्री नि० भा० व० आयुर्वेदमहासम्मेलनस्य २५ अधिवेशने स्वागताध्यक्षरूपेण मदीयं भाषणम् ।

॥ श्री धन्वन्तरये नमः ॥

गुजरात प्रान्तीय द्वितीय वैद्यसम्मेलन के सभापति

प्राणाचार्य वैद्यशास्त्री नारायणशङ्कर देवशङ्कर का भाषण

यो विश्वं विदधाति पाति सततं संहारयत्यञ्जसा ।
सृष्ट्वादिव्यमहौषधींश्च विविधान् दूरीकरोत्यामयान् ॥
बिभ्राणोऽञ्जलिना च कास्त्रिभुवने पीयूषपूर्णघटम् ।
तं धन्वन्तरिरूपमीशममलं वन्दामहे श्रेयसे ॥

विद्वान आयुर्वेदानुरागी चिकित्सकों, सज्जनो और सन्नारियो !

परम पुनीत श्री मुंबा देवी की कृपा से जिसके पैरों को सागर अपनी आनंदोर्मि की तरंगो से धो रहा है, जहाँ हिन्दू, मुसलमान, पारसी आदि भिन्न-भिन्न जातियाँ भ्रातृ-भाव से हिल-मिल कर रहती हैं और जहाँ श्री और सरस्वती का संयोग हो रहा है, ऐसे इस सुविख्यात रमणीय नगर में पधारे हुए महाशयों के समक्ष इस सम्मेलन में मेरे जैसे साधारण ज्ञान वाले मनुष्य का सभापति का आसन ग्रहण करना, एक प्रकार की धृष्टता ही है क्योंकि मुझसे अधिक विद्वान्, बुद्धिमान और वयोवृद्ध अनेक महाशय यहाँ विराजमान हैं तथापि स्वागत-कारिणी समिति की आज्ञा को शिरोधार्य कर मैं नम्र भाव से इस पद को स्वीकार करता हूँ कि मेरे इस कर्तव्य में भगवान श्री धन्वन्तरि सहायभूत हों। मेरे विचारानुसार तो सभापति होना और सभा का दास होना दोनों समान ही है, अतः सेवा करने की जो आज्ञा मुझे मिली है उसके लिए मैं अपना अहोभाग्य समझता हूँ और उसके पालन में आप सबकी सहानुभूति प्राप्त करने की याचना करता हूँ।

मैं आज आपके समक्ष जो कुछ कहना चाहता हूँ, वह नवीन नहीं है क्योंकि दुनियाँ में जो कुछ कहा, लिखा अथवा शोधा जाता है वह सब चर्वित-चर्वण ही है। फिर भी यदि एक ही बात बारंबार कही जाय तो भी मेरे नम्र मत के अनुसार उसमें से कुछ न कुछ फल अवश्य निकलेगा। चरक, सुश्रुत और वाग्भट्ट जैसे आयुर्वेद शास्त्र के धुरंधर ग्रन्थकारों ने जो सिद्धान्त, पद्धति और प्रणाली बनायी है उसपर यह आक्षेप किया गया है कि आयुर्वेद अवैज्ञानिक, अशास्त्रीय है, इस आक्षेप का उत्तर जहाँ तक मुझसे हो सका है दोनों शास्त्रों की तुलना करके दिया है और दूसरी सब चिकित्सा-पद्धतियों की अपेक्षा आयुर्वेद विशेष वैज्ञानिक और शास्त्रीय है, यह दिखाने का भी मैंने प्रयास किया है।

आयुर्वेद का इतिहास

आयुर्वेद के बहुत प्राचीन ग्रन्थों में से ब्रह्मसंहिता आदि ग्रन्थ इस समय अप्राप्य हैं

Indira Gandhi National Centre for the Arts

किन्तु ये ग्रन्थ पुरातन समय में थे यह चरक, सुश्रुत आदि आयुर्वेद के ग्रन्थों से सिद्ध होता है। चरक, सुश्रुत और वाग्भट्ट ये तीन ग्रन्थ आयुर्वेद के ग्रन्थों में मुख्य और मूलभूत हैं। इन तीन ग्रन्थों को वृद्धत्रयी कहते हैं। इन तीनों में चरक और सुश्रुत, वाग्भट्ट की अपेक्षा अधिक प्राचीन और स्वतंत्र हैं। वाग्भट्ट ने इन दोनों ग्रन्थों का आधार लिया है। सुश्रुत चरक की अपेक्षा अधिक सुव्यवस्थित लगता है। इन ग्रन्थों का काल-निर्णय ठीक-ठीक नहीं किया जा सकता किन्तु चरक औषध-संग्रह के लिये विख्यात था और सुश्रुत शस्त्रवैद्य के लिए प्रसिद्ध था। यूरोप की अर्वाचीन औषध-विद्या और वैद्य-विद्या केवल तीन सौ वर्ष पुरानी मानी जा सकती है। इसके पहले यूरोप के लगभग सभी प्रदेशों में झाड़-फूँक की पद्धति चलती थी। हमारे आयुर्वेद का ज्ञान अरब और यूनान प्रजा के द्वारा यूरोप में फैला था और अर्वाचीन वैद्यक शास्त्र के उद्भव में यह प्राचीन ज्ञान अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुआ।

चरक और सुश्रुत की पुस्तकों में दी हुई औषधों का वर्णन और रोगी की चिकित्सा पर से प्रत्यक्ष निरीक्षण करने की प्रथा के लिए हमें आश्चर्य एवं अभिमान उत्पन्न हुए बिना नहीं रह सकता।

ऋग्वेद से लेकर सिकंदर के समय तक समस्त पृथ्वी भर में आयुर्वेद ही वैद्यक-शास्त्र का श्रेष्ठ एक ही प्रमाणभूत शास्त्र था, इसमें दो मत नहीं है। एक दूसरे देश की प्रजा द्वारा आयुर्वेद का प्रकार समस्त संसार में हुआ और लोगों ने अपनी-अपनी भाषा में शास्त्रों की रचना की। वस्तुतः यूनानी और पश्चिम की एलोपैथी ये दो पद्धतियाँ आयुर्वेद की ही पुत्रियाँ हैं। मित्रो! आयुर्वेद शास्त्र के इतिहास और आयुर्वेद पर रचे हुए ग्रन्थों द्वारा हम भूतकाल की स्थिति की कल्पना कर सकते हैं कि आयुर्वेद यह संपूर्ण कला-कौशल से बना हुआ महल था। काल के आक्रमण ने इस महल को तोड़ डाला है, अग्नि और चोरी से इसके कितने ही ग्रन्थ नष्ट हो गये हैं और जिस काल-बल और कारणों से भारतवर्ष की अधोगति और दुर्दशा हुई है, जिन कारणों से हमारा धर्म, संसार और व्यापार छिन्न-भिन्न हुआ है उन्हीं कारणों से भूतपूर्व प्रकाशमान आयुर्वेद की भी अवनति हुई है।

हमारा आयुर्वेद यह केवल दवा का, रोगों का, शास्त्र नहीं था, वह केवल स्थूल शरीर और स्थूल द्रव्यों पर खिलवाड़ करने वाली पदार्थ विद्या नहीं था बल्कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, उसी प्रकार इहलोक और परलोक के तत्त्वज्ञान का सूक्ष्म से सूक्ष्म ज्ञान कराने वाला आयुर्वेद शास्त्र था और अभी भी है। आयुर्वेद की नींव केवल पदार्थ-विद्या पर नहीं रची गई थी बल्कि शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति के लक्ष्य-बिंदु को सामने रखकर रची गई थी।

प्रिय चिकित्सको! क्या वर्तमानकाल के वैद्यकशास्त्र की बातें आयुर्वेद में नहीं थीं? मैं दृढ़ता के साथ कहता हूँ कि सूत्ररूप में अथवा बीजरूप में ये सब बातें हैं। आयुर्वेद का शारीरशास्त्र और शस्त्रोपचार विद्या (Anatomy and Surgery) इन्द्रिय विज्ञानशास्त्र (Physiology) आरोग्य शास्त्र (Hygiene) वनस्पति शास्त्र (Botany) औषधगुण परिचय (Materia Medica) आदि प्रत्येक विषय के ग्रन्थ काल की गति से नष्ट हो गये हैं तो भी वर्तमान समय में उपलब्ध ग्रन्थों के तथा उसमें दिये हुए रोग-निदान और उपचार आदि बातों से आयुर्वेद में उपरोक्त सब अंग परिपूर्ण दशा में अवश्य रहे होंगे, यह मानने का हमें अच्छा कारण है। किसी कवि ने सत्य कहा है:—

Indira Gandhi National Centre for the Arts

अन्यानि शास्त्राणि विनोदमात्रं, न तेषु किंचिद्सुविदष्टमस्ति ।
चिकित्सित ज्योतिष तंत्रवादाः पदे पदे प्रत्ययमावहन्ति ॥

काव्य के मधुर रस से प्यास नहीं बुझती, व्याकरण की धातु-शुद्धि से शरीर की धातु शुद्धि नहीं होती, उसी प्रकार दुःखी मनुष्य का दुःख ब्रह्मज्ञान की शुष्क बातों से दूर नहीं होता। इसलिए आधि-व्याधियों को दूर करने में यदि कोई शास्त्र समर्थ है तो वह केवल आयुर्वेद का चिकित्सा-शास्त्र ही है।

आयुर्वेद यह वेद ही है

ऋग्, यजुस्, साम और अथर्व ये चार वेद हैं; और आयुर्वेद, धनुर्वेद, गांधर्व वेद और अथर्व वेद ये उनके चार उपवेद हैं। चरक, सुश्रुत आदि संहिताओं से मालूम पड़ेगा कि जिस प्रकार वेद ईश्वर प्रणीत हैं उसी प्रकार उपवेद भी ब्रह्मा के ही बनाये हुए हैं। वेद में आयुर्वेद सम्बन्धी बहुत सी आश्चर्यजनक बातें मिलती हैं। महर्षि गौतम ने आयुर्वेद संबंधी मंत्रों के आधार से सब वेदों की सत्यता अनुमान द्वारा सिद्ध करने की युक्ति बताया है।

आयुर्वेद के आठ अंग

शल्य, शालाक्य, काय-चिकित्सा, भूतविद्या, कौमारभृत्य, अगदतंत्र, रसायनतंत्र और वाजीकरणतंत्र, ये आयुर्वेद के आठ अंग है, इससे ये अष्टांग कहे जाते हैं।

आयुर्वेद की परंपरा

सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मा ने वेद के साथ यह अष्टांग आयुर्वेद लगभग हजार अध्याय की संहिता के रूप में बनाया था। आरंभ में ब्रह्मा ने प्रजापति को आयुर्वेद के आठ अंगों की शिक्षा दी। प्रजापति से अश्विनीकुमार ने सीखा, उन्होंने इन्द्र को सिखाया। इन्द्र से ऋषियों को ज्ञान प्राप्त हुआ। जिन्होंने आयुर्वेद का पृथ्वी पर प्रचार किया।

आयुर्वेद अपौरुषेय है

ऊपर कहे अनुसार आयुर्वेद अपौरुषेय मानते हैं—ईश्वर-प्रणीत मानते हैं। माता, पिता, गुरु, ऋषि आदि से लेकर ईश्वर का वाक्य शब्द-प्रमाण कहा जाता है। इस शब्द-प्रमाण के लिए आयुर्वेद पर यह आक्षेप किया जाता है कि आयुर्वेद में "बाबा वाक्यं प्रमाणं" ऐसा अधिक है। हममें स्वतंत्र-विचार से कार्य करने की अपेक्षा अंधश्रद्धा से कार्य करने की प्रथा अधिक प्रचलित है। आर्यों की धर्मभावना का रहस्य समझनेवाले उपर्युक्त आक्षेप कर ही नहीं सकते। आर्यों के मतानुसार वेद यह नित्य, सत्य बात है। सत्य को अलग रख देने से मनुष्य की स्वतंत्रता को कोई भी रुकावट बाधा नहीं डालती। इसमें वेद द्वारा निर्दिष्ट मार्ग का अनुसरण करने से मनुष्य का बुद्धि-स्वातंत्र्य अथवा विचार-स्वातंत्र्य नष्ट नहीं होता।

'शब्द प्रमाण' के "प्रमाण" शब्द का अर्थ अंग्रेजी में ऑथोरीटी (Authority) किया गया है। यह अनुवाद ही गलत है। पैश्चात्य लोग इस शब्द को सत्तावाचक समझते हैं और जहाँ सत्ता होती है वहाँ स्वातंत्र्य नहीं हो सकता ऐसा उनका कहना है। हमारा "प्रमाण" शब्द सत्तावाचक नहीं है। हमारे शास्त्रकारों ने सत्ता का भी विशेष तात्पर्य नहीं रखा है, वे द्रष्टा थे, वैज्ञानिक रीति से विषय को जानते थे, इसी से उनके बचनों के प्रति अपूर्व आदर के

Indira Gandhi National Centre for the Arts

कारण ही हम शब्द-प्रमाण को मानते हैं। चरक और सुश्रुत ये आयुर्वेद के प्रमाण-भूत ग्रंथ माने जाते हैं। ये दोनों ग्रन्थकार यद्यपि एक दूसरे से बहुत स्थान पर अभिप्रायों में एक दूसरे से भिन्न पाये जाते हैं। फिर भी उनकी भिन्नता में उत्तम प्रकार की दक्षता और वैज्ञानिक दृष्टि दिखाई देती है।

आयुर्वेद का धर्म के साथ सम्बन्ध

आयुर्वेद के विरुद्ध एक दूसरा आक्षेप यह है कि आयुर्वेद के तत्व न्याय, सांख्य, दर्शन, वेद, पुराण इतिहास आदि ग्रन्थों में फुटकल पड़े हैं। वैद्य-विद्या के तत्वज्ञान को धर्म के साथ मिलाकर इसे विज्ञान-रहित बना दिया गया है। यह आक्षेप भी ठीक नहीं है। आर्यों के मतानुसार मनुष्य का उच्च से उच्च पुरुषार्थ एवं अंतिम ध्येय पूर्णता प्राप्त करने का है अर्थात् साक्षात्कार कर मुक्ति प्राप्त करने का है जिसके लिये तन और मन आरोग्य रहना आवश्यक है। मनुष्य-जन्म को सार्थक बनाने के लिए शारीरिक स्वस्थता की विशेष आवश्यकता है, इसी से कहा भी गया है 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्''। संक्षेप में आर्यों के प्रत्येक विचार तत्व-ज्ञान, विज्ञान और धर्म से परिपूर्ण है। इन तीनों में एक दूसरे का समावेश हुआ है और यह पद्धति ही शुद्ध वैज्ञानिक है।

आयुर्वेद वैज्ञानिक है

पाश्चात्यों का यह कहना है कि आयुर्वेद शास्त्रीय और वैज्ञानिक नहीं है। आयुर्वेद जैसा वैज्ञानिकशास्त्र और विज्ञान की दृष्टि से, जैसा आयुर्वेद विषयों की चर्चा करता है। वैसा विज्ञान तो पाश्चात्य वैद्यकशास्त्र में ढूंढने से भी नहीं मिलता। आयुर्वेद विज्ञान एवं कला दोनों की दृष्टि से देखता है।

वैज्ञानिक दृष्टि से हम इसे नीचे लिखे विभागों में विभक्त करेंगे और प्रत्येक विभाग पर विचार करेंगे जिससे विश्वास हो जायगा कि सच्चे विज्ञान को छोड़कर इसमें कहीं भी त्रुटि नहीं है।

१—तीन जाति के प्रमाण—(१) प्रत्यक्ष, (२) अनुमान और (३) शब्द

२—पञ्चभूत सिद्धान्त

३—त्रिधातु सिद्धान्त

४—त्रिदोष सिद्धान्त

५—निदान और चिकित्सा

६—रस, गुण, वीर्य-विपाक और प्रभाव की गुण वाली औषधियाँ।

वैज्ञानिक दृष्टि से उपर्युक्त वर्गीकरण इतना अधिक सफल हुआ है कि इसके लिए फीलाडल्फीया (अमेरिका) के सुप्रसिद्ध डा० ज्योर्जक्लॉर्क एम० ए० एम० डी० कहते हैं कि—''चरक के प्रत्येक अध्याय को पढ़कर मैं इस सिद्धान्त पर पहुँचा हूँ कि वर्तमान काल के डाक्टर फर्माकोपिया की वर्तमान समय की नवीन औषधियों का त्याग कर केवल चरक की बतायी हुई प्रणाली के अनुसार यदि रोगियों का निदान और चिकित्सा करें तो अकाल मृत्यु की संख्या बहुत अधिक घट जाय और अनेक रोगों से पीड़ित जीर्ण रोगी भी बहुत कम देखने में आवें।"

Indira Gandhi National Centre for the Arts

त्रिधातु

वात, पित्त और कफ, ये तीन धातु हैं, इन्हीं से छोटे से छोटे और बड़े से बड़े शरीर के अवयव बने हैं; इसीसे इन्हें धातु कहा जाता है। धातु शरीर का आधार रूप माना जाता है। इसका अभाव ही शरीर का अभाव है। सम विषम होने पर ही दोष-युक्त और व्याधि की उत्पत्ति होती है। जब धातु नियमित स्थिति में होता है तब इसे "प्रसाद-स्थिति" में और अनियमित में "मलस्थिति" में स्थित कहा जाता है। हम धातु को उसके कार्य-कारण संबंध से भिन्न-भिन्न स्वरूप में देखते हैं। धातु अथवा दोष प्रसाद-भूत धातु के अर्थ में एवं कीटभूत मल के अर्थ में व्यवहृत किया जाता है।

विज्ञान की दृष्टि से शारीरिक-क्रिया का आधार वात, पित्त और कफ, इस त्रिधातु पर है और मानसिक क्रिया का आधार सत्व, रज और तम त्रिगुण पर है। संपूर्ण संसार की उत्पत्ति इन तीनों गुणों से होती है। ये तीनों प्रकृति के गुण हैं। वेद में समस्त संसार को उत्पन्न करने वाली तीन गुणों से युक्त इस प्रकृति के संबंध में उल्लेख है और इसीसे प्रत्येक वस्तु त्रिगुणात्मक कही जाती है। सत्व, रज और तम ये तीन गुण जीवित मनुष्य में क्रमानुसार वात, पित्त और कफ के रूप में दिखाई देते हैं, मृत मनुष्य का शव पञ्चभूत की ठठरी है। मनुष्य की ठठरी में जबतक जीव है तभी तक उसमें जीवन है। जीवित मनुष्य के शरीर में जीव का भी अस्तित्व है, मुर्दे में नहीं है। ये दोनों पञ्चभूतात्मक वात, पित्त और कफवाले कहे जाते हैं, इसीसे वे पञ्चभूतात्मक तथा त्रिधातुवाले कहे जाते हैं। शव में त्रिधातु हो नहीं सकता। इस प्रकार शरीर के दो प्रकार के पृथकरण हैं, पञ्चभौतिक और त्रिधातु। इन दोनों का संयोग नीचे लिखे अनुसार होता है।

आकाश और वायु, वात (जो राजसिक है) की सीमा में प्रवेश करता है, तेज पित (जो सात्विक है) की सीमा में प्रवेश करता है और पृथ्वी और अप कफ (जो तामसिक है) में प्रवेश करता है। इस प्रकार पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाश ये पंचमहाभौतिक ठठरी में जीव का प्रवेश होता है उस समय इस जीव का शरीर वात, पित्त और कफ का बना हुआ है ऐसा कहा जाता है। यह वात, पित्त और कफ वाला जीव धारण करने वाला शरीर रज, सत्व और तम गुण वाला त्रिगुणात्मक बना; इस प्रकार मनुष्य की प्रकृति के अनुसार वातल, पित्तल और श्लेश्मल ऐसे तीन विभाग हुए। प्रत्येक मनुष्य की इन तीन में से कौनसी प्रकृति है यह जानने की विशेष आवश्यकता है क्योंकि इसपर से आयुर्वेद मनुष्य के आरोग्य और अस्वस्थता को परखने की आज्ञा देता है। शरीर के भीतर की क्रियायें वात, पित्त और कफ से नियमित हुआ करती हैं। हम जो कुछ भोजन करते हैं उससे रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र इससे सात धातु वात, पित्त और कफ की वारंवार होने वाली क्रियाओं से बनते हैं। इनमें से एक ओजस् धातु भी बनता है। यह ओजस् सात धातुओं का सत्व अथवा साररूप कहा जाता है। शुक्र धातु आदि की कियायें यदि ठीक-ठीक अपना कार्य संपादन नहीं करतीं तब ओजस् धातु को बहुत हानि पहुँचती है और कभी-कभी इस ओजस् की कमी के कारण जीव का चलना एक दम रुक जाता है। शरीर की इस सात धातु की क्रिया आयुष्य को भी निश्चय करती है, इससे इस शास्त्र का नाम आयुर्वेद हुआ है।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

त्रिदोष

हम ऊपर देख चुके हैं कि वात, पित्त और कफ शरीर में सम विषम होने पर दोष का रूप लेते हैं, इस प्रकार शरीर में ये दो रूप से रहते हैं—धातु-रूप और मल-रूप में। धातु-रूप में वायु, पित्त और कफ सूक्ष्म और इन्द्रियों को अगोचर हैं, केवल क्रियाओं द्वारा इनका अनुमान हो सकता है और मल-रूप में वायु, पित्त और कफ इन्द्रीय-गोचर हैं।

वात—"वा गति गंधयोः" इस धातु से वायु पद बना है। वायु शरीर के तमाम आशय और यन्त्रों को धारण करता है और इसकी क्रियाओं को चलाता है। इसके प्राण, उदान, समान, व्यान और अपान ऐसे पाँच रूप हैं। इसका कार्य हृदय, कंठ, उदर, त्वचा और गुह्य आदि स्थानों में स्पष्ट मालूम पड़ता है। छोटी बड़ी सभी क्रियाओं का प्रवर्तक वायु है, मन की प्रवृत्तिओं का नियन्ता और चालक है, सभी इन्द्रियों में चैतन्य देने वाला है और शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध का वहन करने वाला है। यह दोष को सुखा डालता है और मल को बाहर निकालता है।

वायु रूक्ष, शीतल, लघु, सूक्ष्म, चल, विषद और खर है। इससे विपरीत गुण वाले द्रव्यों से यह शान्त होता है। कुपित अवस्था में वायु शरीर में नाना प्रकार के विकार उत्पन्न करता है। मनुष्य का बल, रंग, सुख और आयुष्य का यह नाश करता है, मन में विकृति उत्पन्न करता है और इन्द्रियों की शक्ति का नाश करता है।

पित्तः—"तपसंतापे" इस धातु से पित्त शब्द बना है। शरीर में ताप का मूलभूत जो सूक्ष्म अतिन्द्रिय वस्तु है वह पित्त है। शरीर में तेजोगुण का कार्य पित्त ही करता है। शरीर में समान गर्मी रखना, चमड़े की शोषण-शक्ति, मन की तेजस्विता, दृष्टि की उज्वलता और लोहू का लाल रंग यह तेजोगुण का प्रधान कार्य है। इसी से पित्त को, भ्राजक, पाचक, साधक, आलोचक और रंजक कहा गया है। पित्त उष्ण, द्रव, पीला, नील, परिणाम में सत्व-गुणी, सारक, कड़वा, लघु, स्निग्ध और पाक में अम्ल है। इससे विपरीत गुण वाले द्रव्यों से यह शान्त होता है। कुपित अवस्था में विस्फोटक, उष्मा आदि रोग उत्पन्न करता है।

कफः—"श्लिष आलिंगने", इस धातु से श्लेष्म शब्द बना है। यह सोम गुणात्मक है और यह भी पित्त के समान अतिन्द्रिय वस्तु है। पित्त अग्निरूप और श्लेष्म जलरूप है। श्लेष्म संधियों को तेल जैसे पदार्थ से चिकना, रखता है, कंठ, जिह्वा आदि स्थानों को स्निग्ध रखता है। कफ अन्न के क्लेदन और धातुओं के पोषण में पानी का कार्य करता है। यदि शरीर में श्लेष्म न हो तो थोड़े ही दिवस में शरीर भस्म हो जाय। इसके क्लेदन, अवलंबन, रसन, स्नेहन और श्लेष्मन स्थान-भेद से पाँच नाम हैं। यह स्वेद, गुरु, स्निग्ध, पिच्छिल, शीतल तथा तमोगुणी है विदिग्ध होने पर खारा होता है। नाक और मुँह में से जो कफ निकलता है वह तो मलरूप मात्र है। इसे शरीर का आधार नहीं माना गया है।

तर्पण, शोषण और संचारण से चन्द्र, सूर्य और वायु जिस प्रकार जगत को धारण करते हैं इसी प्रकार वायु, पित्त और कफ शरीर को धारण करते हैं। ये शरीर के स्वयं रूप हैं, इतना ही नहीं बल्कि आयुर्वेद के हेतु, लक्षण और औषध स्कंध के तीन प्रधान स्कंध रूप हैं।

आयुर्वेद की पूरी इमारत इन तीन धातुओं पर रची गई है। इन तीन धातुओं का आयुर्वेद ने कैसा सुन्दर अर्थ समझाया है और उनका कैसा कर्तव्य बताया है फिर भी पाश्चात्य

National Centre for the Arts

वैद्यक शास्त्र वाले हमारे इस त्रिधातु सिद्धान्त को समझने की चेष्टा न कर उसे उखाड़ फेंकने का प्रयत्न कर रहे हैं, यह कैसी शोचनीय बात है ! सद्गुणी वैद्यो ! वात, पित्त और कफ का अनुवाद अंग्रेजी में इन्होंने विंड, बाइल और प्लेग्म शब्द में किया है। पारिभाषिक शब्दों का ज्ञान न होते हुए भी एक के बदले दूसरा अर्थ अपनी भाषा में करना भूल नहीं तो और क्या है ? वात, पित्त और कफ का लक्षांसवाँ अर्थ भी इन शब्दों से नहीं निकलता। इस प्रकार का अर्थ का अनर्थ कर ये लोग आयुर्वेद की हँसी करते हैं और कहते हैं कि आयुर्वेद वैज्ञानिक नहीं है। अतः उनका मन्तव्य उन्हीं को मुबारक हो।

त्रिधातु और सेल्युलर थियरी

ऐसा कोई भी सिद्धान्त पाश्चात्यों में नहीं है जिसके साथ त्रिधातु सिद्धान्त से तुलना की जा सके। इनकी एक सेल्युलर थियरी है जिसे ग्रीक लोग ह्यूमोरल थियरी के नाम से पुकारते थे। सेल्युलर सिद्धान्त से त्रिधातु सिद्धान्त बहुत आगे बढ़ जाता है, इन दोनों की तुलना की ही नहीं जा सकती। वात को इन लोगों ने नर्व फोर्स के स्थान पर माना है किन्तु वात नर्वफोर्स से कहीं अधिक काम करता है क्योंकि उसमें बहुत सी मानसिक क्रियाओं का भी समावेश होता है।

शरीर और मन का सम्बन्ध

जहाँ तक सत्वगुण प्रधान होता है वहाँ तक आनंद, ज्ञान और शांति का साम्राज्य होता है। रजोगुण और तमोगुण बढ़ने से ही मन में काम, क्रोध, ईर्षा, द्वेष, मद, मान और अहङ्कार आदि पैदा होते हैं। चरक कहते हैं कि 'रजोगुण और तमोगुण ये मन के दोष हैं। वात, पित्त और कफ ये शरीर के दोष हैं।" शरीर और मन का परस्पर घना सम्बन्ध है। मनुष्य के शरीर की रचना उसके मन के अनुरूप होती है और मन शरीर के अनुसार होता है।

शारीरिक स्थूल शरीर, मानसिक शरीर और आत्मा, इन तीनों के योग से मनुष्य कहा जाता है। पाश्चात्य स्थूल शरीर को ही मनुष्य कहते हैं। रोग में मन और शरीर दोनों एक समान भाग लेते हैं किन्तु पाश्चात्य डाक्टर इस बात को स्वीकार नहीं करते।

रोग की उत्पत्ति

हमारे आयुर्वेद के सिद्धान्तों के अनुसार मनुष्य प्राणी के तीन भाग हैं—आत्मा, मन और शरीर। इनमें आत्मा सदा निर्विकार और निर्दोष रहता है और उसे किसी प्रकार रोग आदि नहीं होता। रोग का मन और शरीर दो अधिष्ठान हैं।

मिथ्या आहार-विहार द्वारा वात, पित्त और कफ विषमावस्था को पहुँचते हैं तब दोष गिना जाता है। रोग की उत्पत्ति बाह्य और आभ्यंतर दो प्रकार से होती है।

१—बाह्यकारण—असात्मेन्द्रिय संयोग अर्थात् पञ्चेन्द्रिय द्वारा होने वाले रोग। ये अतियोग, हीनयोग और मिथ्यायोग, इस प्रकार तीन रीति से हो सकते हैं।

२—प्रज्ञापराध—समस्त शक्ति के दोषों से होने वाले शारीरिक, मानसिक और वाचिक रोग।

३—परिणाम—ऋतु, जल-वायु आदि में होने वाले परिवर्तन से उत्पन्न रोग।

आभ्यन्तर कारण—धातु-वैषम्य और गुण-वैषम्य। नीचे के कारणों से धातु में विषमता उत्पन्न होती है:—

Indira Gandhi National Centre for the Arts

१ संचय, २ प्रकोप, ३ प्रसर, ४ स्थानसंश्रय, ५ व्यक्ति और ६ भेद। इन कारणों को क्रियाकाल भी कहा जाता है।

पाश्चात्य वैद्यक के अनुसार व्याधि के कारण नीचे लिखे अनुसार हैं:—

वाह्य, सर्दी हो जाना अथवा गर्मी का प्रमाण बढ़ जाना, वातावरण में परिवर्तन, विद्युत, आघात, अयोग्य खुराक, हवा की कमी, लू, विष और जन्तु विषयक।

आयुर्वेद में कहे गये वाह्य हेतु में इन कारणों का समावेश हो जाता है किन्तु इन दोनों में एक मुख्य भेद यह है कि आयुर्वेद की दृष्टि मानसिक है और पाश्चात्य वैद्यक की पदार्थ विषयक। आयुर्वेद कहता है कि शरीर पर व्याधि का आक्रमण दो मार्ग से हो सकता है, इन्द्रियों द्वारा और मन द्वारा। ऊपर लिखे अनुसार जो छः भाग किये गये हैं उनमें अज्ञान अथवा भविष्य में ज्ञात होने वाले कारणों का भी समावेश हो सकता है। अतः इसमें भी हमारा आयुर्वेद विज्ञान का पूर्णतः अनुसरण करता है।

पाश्चात्य वैद्यक के एक महान शोधवेत्ता सर जेम्स मेकेन्जी कहते हैं कि—"पाश्चात्य वैद्यक शास्त्र के निदान में तीन प्रकार की कमी है—(१) प्रारंभिक अवस्था में ही बढ़ते हुए रोग का निदान-उपाय इसमें नहीं है। (२) निदान में प्रत्येक चिह्न से पूर्व चिह्न जानने की कमी और इस कमी से उपचार में होने वाली गड़बड़ी। (३) क्लिनिक की अपेक्षा लेबोरेटरी को अधिक महत्व। रोगी की प्रकृति, सत्व और सात्म्य आदि की परीक्षा करने की चाभी पाश्चात्य वैद्यक विद्या में नहीं है। वह केवल रोग का निदान करता है।"

वाग्भट्टाचार्य ने अपने अष्टांग हृदय सूत्र स्थान प्रकरण १२ श्लोक ६६ से ६८ में निदान और चिकित्सा के सम्बन्ध में जो रीति दी है वह अति उत्तम है।

तस्माद्विकार प्रकृतीरधिष्ठानान्तराणि च।
बुद्धा हेतु विशेषांश्च शीघ्रं कुर्यादुपक्रमम्॥
दूष्यं देशं बलं कालमनलं प्रकृतिं वयः।
सत्वं सात्म्यं तथाहारमवस्थाश्च पृथग्विधाः॥
सूक्ष्म सूक्ष्माः समीक्ष्यैषां दोषौषध निरूपणे।
योवतते चिकित्सायां न स स्खलति जातुचित्॥

आयुर्वेद में प्रकृति-स्थापन नामक उपचार है। चयकाल के पहले अर्थात् रोग प्रारंभ होने के पहले रोगी को जो असल स्थिति हो उसे स्थिति पर लाना। यह बात दूसरे किसी भी शास्त्र में नहीं है। रोगी को ऊपर-ऊपर से आराम हुआ कि बस, रोग मिट गया ऐसा पाश्चात्यों का मानना है किन्तु रोग तो छिपी रीति से मौजूद रहता है जब कि हमारा आयुर्वेद अच्छे प्रकार से स्वस्थावस्था को प्राप्त करा देता है :—

समदोषः समाग्निश्च समधातु मलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

रोग की परीक्षा

त्रिभिरेतैर्विज्ञानोपायैः (दर्शन स्पर्शन प्रश्नैः) रोगाः प्रायशो वेदितव्या इत्येके। तत्तु न सम्यक्। षड्विधिर्हि रोगाणां विज्ञानोपायः। तद्यथा पञ्चभिः श्रोतादिभिः प्रश्नेन चेति।

Gandhi National Centre for the Arts

दर्शन, स्पर्श और प्रश्न से भी रोग की परीक्षा की जा सकती है किन्तु यह मत ठीक नहीं है क्योंकि रोग को तो पंचेन्द्रियों और प्रश्न से समझ लेना चाहिये। सुश्रुताचार्य का यह अभिप्राय है कि रोग को अच्छी तरह समझने के लिए छाती पर कान रखकर देखना, हाथ से यकृत, प्लीहादि को स्पर्श कर देखना, आँख से जीभ और विकृत लक्षणों को देखना, जीभ से रस आदि की परीक्षा करना, नाक से विकृत अवस्था की बास कैसी आ रही है, यह देखना और रोगी से भिन्न-भिन्न प्रश्न कर उसकी दशा का अनुभव प्राप्त कर लेना चाहिये अर्थात् आयुर्वेद के लिए माइक्रासकोप, स्टेथस्कोप, थरमामीटर आदि नये नहीं हैं। इस प्रकार के दूसरे यंत्र वैद्यों के पास थे नहीं तो कान से रोगी की परीक्षा और अदृश्य सूक्ष्म कृमियों की परीक्षा किस प्रकार होती रही होगी।

आयुर्वेदिक औषधियाँ

आयुर्वेद में त्रिदोष सिद्धान्त का अनुसरण कर औषधों का पाँच प्रकार से निर्णय किया गया है:—

१ गुण—औषधि में कौन कौन से भौतिक तत्व हैं, उसका निर्णय।

२ रस—स्वाद से निर्णय। स्वाद छः प्रकार का है—मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त, और कषाय।

३ वीर्य—(बल-सामर्थ्य) यह दो प्रकार का है उष्ण और शीत। किसी किसी ने इसको आठ भाग में विभक्त किया है। उष्ण, शीत, स्निग्ध, रूक्ष, विषद, पिच्छिल, मृदु और तीक्ष्ण। औषधि के दूर के कारण और वीर्य में सम्बन्ध है। औषधि में वीर्य का गुण ही तो रस और विपाक दोनों को दबा कर ये औषधियाँ बहुत ही अच्छा परिणाम देती हैं।

४ विपाक—शरीर में औषध जाने के पश्चात् दूसरे द्रव्यों के साथ पाचन होने के बाद जो औषध की क्रिया होती है उसे विपाक कहते हैं।

५ प्रभाव—दो जाति की औषधियाँ होती हैं और वे दोनों रस, वीर्य और विपाक में मिलती हुई होने पर भी व्याधि-निवारण की क्रिया में दोनों में जो अन्तर पड़ता है उसे प्रभाव कहते हैं। औषधियों में जो वीर्य (बल अथवा सामर्थ्य) का बल है वही व्याधि दूर करता है। भौतिक और रसायनिक गुणों का औषधि में से नाश करने के पश्चात् ही यह गुण झलक उठता है।

पाश्चात्य डाक्टर औषध को पहले किसी पशु पर आजमा कर देखते हैं। उसका परिणाम अच्छा दिखाई पड़ने पर मनुष्य पर उसका उपयोग करते हैं। यह पद्धति तो मुझे भूलपूर्ण मालूम होती है। जो औषध अन्य प्राणी के शरीर को अनुकूल हो वही मनुष्य के लिए विषवत् हो सकती है। इसी प्रकार स्वस्थ प्राणी को जो औषध अनुकूल हो वही अस्वस्थ मनुष्य के लिए अनुकूल हो यह अनुमान भी गलत है। हमारे महर्षिगण मनुष्य शरीर पर ही अनुभव कर ऊपर बतायी हुई गुणवाली औषधियों की परीक्षा करते थे।

जीवाणुवाद

महाशयो! ऐसा कहा जाता है कि आयुर्वेद में कृमि रोग के संबंध में कुछ भी नहीं दिया है। पाश्चात्य वैद्यक में इसे अत्यधिक प्राधान्य दिया गया है। आयुर्वेद में इसका स्थान

National Centre for the Arts

है किन्तु उसे इतना महत्व नहीं दिया गया है। रोग के बाह्य कारणों में कृमि रोग का कारण, आगन्तुक के पहले विभाग में आ जाता है। पाश्चात्य त्रिदोष के साथ कृमिरोग के सिद्धान्त की तुलना कर कहते हैं कि सब रोगों के कारणभूत ये कृमि ही हैं। किन्तु यह संभव नहीं प्रतीत होता। बहुत से जन्तु वर्षों से हमारे पेट में कुछ भी हानि पहुँचाये बिना पड़े रहते हैं और कभी कभी तो वे मित्र रूप में काम करते हैं। परन्तु जब पेट में अज्ञात प्रसंग आ बनता है तभी ये शत्रु बन जाते हैं, अब तक इनका कोई जोर नहीं चलता था किन्तु जब भीतर कुछ खराबी आ गई तब उनका भी बल प्रकट हुआ अतः इन दोनों का परस्पर बीज और भूमि का संबंध है। त्रिदोष का सिद्धान्त इसे भूमि की दृष्टि से देखता है और कृमिवाद का सिद्धान्त इसे बीज की दृष्टि से देखता है। कृमिवादी कहते हैं कि जन्तुओं का नाश करो इससे आप सही सलामत होंगे किन्तु जन्तुओं को नष्ट करना असंभव है, जन्तु तो सर्व-व्यापी हैं। उचित मार्ग तो यह है कि आप अपनी भूमि को ऐसी बनाइये कि उसमें बीज बोने पर उग न सके। सर जेम्स गुडहार्ट जिनका नाम पाश्चात्य वैद्यों में पूजा जाता है, अपने "हारवेनओरेशन" नामक पुस्तक में एक स्थल पर लिखते हैं कि "निदान विद्या अभी ठीक नहीं हो सकी है, अभी पूर्णता प्राप्त नहीं कर सके हैं, संभव है कि जन्तु कारण रूप न होकर परिणाम रूप हों।" इससे भी मालूम हो जायगा कि पाश्चात्य अब जो समझने लगे हैं वह आयुर्वेद में पहले से ही है।

शल्यतंत्र (सर्जरी)

मित्रों! अब आप के समक्ष आयुर्वेद का कला की दृष्टि से विवेचन करने की आज्ञा माँगता हूँ। इसमें क्या सर्जरी थी? सुश्रुत के मतानुसार चिकित्सा का यह प्रथम अंग समझा जाता था। प्राचीनकाल में सुश्रुत संप्रदाय के वैद्य रोगी की जीव-रक्षा के लिए उसका हाथ पैर काट डालते थे। जलोदर रोग में सुश्रुत के चिकित्सा स्थान के १४ वें अध्याय में वर्णित व्रीही-मुख शस्त्र और द्विद्वारा नाड़ी से चार-पाँच बार में बिलकुल पानी निकाल दिया जाता था। यह विधि पाश्चात्य 'पेरेसेन्टेसीस' विधि से कहीं अधिक उत्कृष्ट है। अश्मरी रोग में सुश्रुत के चिकित्सा के सातवें अध्याय में बस्ती चीर कर पथरी निकालने की विधि बड़ी ही सरल वर्णित है। सुश्रुत के शारीर स्थान के आठवें अध्याय में वर्णित यकृत और प्लीहादि रोग में हाथ पैर का शिरादाह और शिरावेध से जो उत्तम परिणाम होता है उसे आज भी डाक्टर नहीं जानते। इसी प्रकार और बहुत से अद्भुत शस्त्र-चिकित्सा का वर्णन सुश्रुत में है जिसे पढ़कर विश्वास-पूर्वक कहना पड़ता है कि ऐसा वर्तमान समय की सर्जरी भी नहीं कर सकती किन्तु इस समय शोचनीय बात इतनी ही है कि यह शल्यतंत्र इस समय बिलकुल ही नष्टप्राय हो गया है जिससे पाश्चात्य अपनी सर्जरी की प्रशंसा करते हैं। आयुर्वेद-शास्त्र में यदि शस्त्र-विद्या का स्थान न होता तो आज जो ऑपरेशन (हॉसडी ऊपर का) इण्डियन ऑपरेशन के नाम से प्रसिद्ध है, वह देखने में ही न आता।

मैंने ऊपर आयुर्वेद की विज्ञान तथा कला की दृष्टि से समालोचना की है। आयुर्वेद पूर्ण वैज्ञानिक है और पाश्चात्य वैद्य विद्या की अपेक्षा कहीं अधिक बढ़ा चढ़ा हुआ है। वैद्यक विशाल विषय है। पाश्चात्य वैद्यक-शास्त्र का अध्ययन कर जो उसमें ग्रहण करने योग्य बातें दिखायी दें उनका ग्रहण कर लेना चाहिये तभी पाश्चात्य और आयुर्वेद का वैद्य अच्छी रीति से

...ational Centre for the Arts

काम कर सकता है। पाश्चात्य डाक्टर आयुर्वेद का अध्ययन किये बिना झूठा आक्षेप करते हैं, यह उचित प्रतीत नहीं होता, इसमें उदारता तो है ही नहीं। हमारा आयुर्वेद संपूर्ण होता हुआ भी उदार है और भेद-भाव छोड़कर अपनी कमी की पूर्ति दूसरों के गुण को लेकर करता है। इस सम्बन्ध में महर्षि चरकाचार्य का अभिप्राय यह है कि:—

तदेव युक्तं भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते। सचैव भिषजां श्रेष्ठो रोगेभ्यो यः प्रमोचयेत्। नचैवह्यस्तिसुतरामायुर्वेदस्य पारम्, तस्मादप्रमत्तः शश्वदभियोगमस्मिन् गच्छेत्। कृत्स्नोहि लोको बुद्धिमतामाचार्यः शत्रुश्चाबुद्धिमतामतश्चाभिसमीक्ष्य बुद्धिमताऽमित्रस्याऽपि धन्यं यशस्यमायुष्यं पौष्टिकं लौकिकमभ्युपदिशतो वचः श्रोतव्यमनुविधातव्यञ्चेति।

(च० वि० अ० ८)

जो आरोग्यता दे वही सच्ची औषध, जो रोगों से मुक्त करे वही सच्चा वैद्य है। आयुर्वेद का पार नहीं है। अतः इसमें निरन्तर लगे रहना चाहिये। बुद्धिमान के लिए समस्त संसार उसका गुरु है। मूर्ख मनुष्य के लिए संसार शत्रुवत लगता है। चतुर मनुष्य को शत्रु की शिक्षा यदि वह हितकर हो, प्रसंशनीय हो, आरोग्य बढ़ाने वाली हो, और लोगों के लिये अनुकूल हो तो उसे स्वीकार कर लेना चाहिये।

आयुर्वेद का रसशास्त्र

आयुर्वेद की रसादि क्रिया पर यह आक्षेप किया जाता है कि उनके उपयोग से दवायें शरीर से फूट निकलती हैं। ऐसी ही लोगों में कहूक्ति भी प्रसिद्ध है—'जो खाय रसायन वह जाय मसान' किन्तु आयुर्वेद में कोई भी रसायन ऐसा नहीं है जिसमें ऐसा गुण हो। जो लोग रसायन को फूट निकलने वाली दवा कहते हैं वे रसायन शब्द का अर्थ ही नहीं समझते रसायन शब्द का अर्थ यह है—"रसायनं च तज्ज्ञेयं यज्जरा व्याधिनाशनम्" जो जरा और व्याधि का नाश करता है उसे रसायन कहते हैं चाहे वह वनस्पति हो अथवा रसादि।

धातु घटित औषधों का प्रधान प्रवर्तक रसवैद्य संप्रदाय है। रस शब्द का अर्थ पारा होता है। इस रसादि धातु से जरा-मरण को भी टाला जा सकता है तब वह रोग को दूर करे तो इसमें नवीनता ही क्या है? क्योंकि—

पारदः सर्वरोगाणां जेता पुष्टिकरः स्मृतः।
सुज्ञेन साधितः कुर्यात् संसिद्धिं देहलोहयोः॥

यहाँ पर मुझे केवल इतना ही कहना है कि हाल में रेडियम जैसी धातु ने पाश्चात्य वैद्यक में बहुत प्रकाश डाला है। रेडियम के योग से कैन्सर जैसा भयंकर रोग भी दूर किया जा सकता है ऐसा पाश्चात्य विद्वानों का कहना है। परन्तु हमारे आयुर्वेद में रसादि दवाओं की बहुत सी ऐसी बनावट हैं जिसके सेवन से पाश्चात्य विद्वान् जिस रोग को आसाध्य मानते हैं उन्हें हम सरलता पूर्वक मिटा सकते हैं।

सज्जनों! उपरोक्त कथन से आप सबको विश्वास हो गया होगा कि आयुर्वेद संपूर्ण रीत्या वैज्ञानिक है। जो कुछ मैंने प्रमाण उपस्थित किया है उसकी सचाई जानने के लिए अथवा इससे अधिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए मद्रास कमिटी की रिपोर्ट आप देखें जिसमें बहुत छान-बीन के पश्चात् मद्रास सरकार इस निर्णय पर पहुँची है कि आयुर्वेद वैज्ञानिक है, इसमें उच्च प्रकार का विज्ञान भरा हुआ है एवं इसकी सहायता करने की आवश्यकता है।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

आयुर्वेद की उन्नति के उपाय और वैद्यों का कर्तव्य .

महाविद्यालय की आवश्यकता

प्रिय चिकित्सको ! अब हमें जो कर्तव्य करना है उसका थोड़ा दिग्दर्शन कराऊँगा। हमने अपने अनुभव से देखा है कि आयुर्वेद का औषधि-भंडार विशाल है अतः उसकी उन्नति के लिए हमें कटिबद्ध हो जाना चाहिये। आयुर्वेद शास्त्र के पठन-पाठन का प्रचार करने के लिए सुशिक्षित और अनुभवी वैद्यों को तैयार करना चाहिये। इस प्रकार वैद्य तैयार होने से ही गुजरात प्रान्त के बड़े-बड़े शहरों में आयुर्वेद विद्यालय और महाविद्यालयों की स्थापना हो सकेगी। आयुर्वेद का सर्वांग पूर्ण महाविद्यालय की स्थापना का निश्चय गत संमेलन के अवसर पर हुआ था, उस निश्चय के अनुसार महाविद्यालय खोलने की विशेष आवश्यकता है। इस समय गुजरात प्रान्त एवं बड़ोदा राज्य में जो संस्थाएँ आयुर्वेद की शिक्षा दे रही हैं उनके संचालकों को धन्यवाद दिये बिना मैं नहीं रह सकता। साथ ही निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ द्वारा ली जाने वाली परीक्षायें भी आयुर्वेद की प्रगति का साधन है अतः इसके लिये भी उसके कार्यकर्ताओं का मैं अभिनंदन करता हूँ।

संग्रह-स्थान—महाविद्यालय में एक संग्रह-स्थान भी होना चाहिये जिसमें वनस्पतियों के भिन्न-भिन्न नमूने, अस्थिपिंजर, खनिज और उद्भिज औषधियों का बृहद् संग्रह हो।

प्रयोग-शाला—उसमें एक प्रयोग-शाला भी होना आवश्यक है जिससे शास्त्रीय और अनुभूत प्रत्यक्ष प्रयोगों से पूर्ण निश्चय हो सके और वैद्यक शास्त्र का असरकारक ज्ञान प्राप्त हो सके। वैद्यों को क्रिया प्रवीण और शास्त्र-प्रवीण होने की विशेष आवश्यकता है क्योंकि—

शास्त्रप्रवीणाः क्रियया विहीनाः क्रियाप्रवीणाः किल शास्त्रहीनाः।
एतादृशा यद्यपि सन्ति किं तैर्वैद्यास्तएवोभयथा प्रवीणाः॥

पुस्तकालय—इसके उपरान्त हमें एक ऐसे पुस्तकालय की आवश्यकता है जिसमें पाश्चात्य, पौर्वात्य एवं यूनानी वैद्यक शास्त्र की पुस्तकों से पूर्ण एक बड़ी पुस्तक-शाला हो। इस पुस्तकशाला में सभी भाषा की नवीन प्रकाशित पुस्तकों के साथ ही साथ अप्राप्य, अधिक मूल्य वाली अथवा अप्रकाशित पुस्तकों का भी संग्रह होना चाहिये।

रुग्णालय—इस महाविद्यालय के लिए एक अच्छी दवाशाला की भी आवश्यकता होगी जिसमें रोगी रखे जा सकें जिनकी चिकित्सा विद्यार्थी कर सकें।

विद्यार्थी-भवन—विद्यार्थियों के रहने के लिए विद्यार्थी-भवन की आवश्यकता भी प्रतीत होती है। यह भवन यथा शक्ति दवाखाना के पास होना चाहिये जिससे विद्यार्थियों को अनेक प्रकार के रोगियों को देखने का प्रत्यक्ष ज्ञान का लाभ हो सके।

अभ्यासक्रम, परिचारिकायें और दाइयाँ—अपना कार्य सरल और ठोस बनाने के लिए गुजरात में स्थापित होने वाले महाविद्यालयों में सबका अभ्यास क्रम एक समान होना चाहिये और सब पाठशालाओं के विद्यार्थियों की परीक्षा एक संस्था द्वारा ही होना चाहिये जिससे व्यवहार नियमपूर्वक निभ जाय। स्त्री रोगियों के लिये दाइयों की आवश्यकता है, विशेषतः प्रसूति का ज्ञान होना उन्हें आवश्यक है जिससे प्रसूति रोग से होनेवाली मृत्यु रोकी जा सके।

उपवैद्य—वैद्यों के लिए सुशिक्षित उपवैद्य अथवा कम्पाउण्डर की भी आवश्यकता है जो उनकी लिखी हुई औषधियाँ, रोगियों को, वय के अनुसार मात्रा एवं अनुपान सहित दे

National Centre for the Arts

सकें। निरक्षर और अज्ञान कम्पाउण्डरों द्वारा अथवा शिक्षित कम्पाउण्डरों की लापरवाही से रोगियों के जीवन के अंत होने के दृष्टान्तों की कमी नहीं है अतः इस वर्ग के लिए भी विशेष प्रमाण-पत्र देने की आवश्यकता है, इससे हम लोगों की बहुत बड़ी कठिनाई दूर हो जायगा।

फर्माकोपिया

हममें से भिन्न-भिन्न वैद्य एक ही दवा बनाने में भिन्न-भिन्न द्रव्यों का उपयोग भिन्न-भिन्न ग्रन्थ के पाठानुसार करते हैं। इसके बदले में यदि सब वैद्य पाश्चात्य-पद्धति के अनुसार एक-ही पाठ ग्रहण करें तो इससे बहुत लाभ हो और हमारा काम सफल हो जाय। इसपर आप अपना निश्चित विचार प्रकट करेंगे और एक निर्णय पर पहुँचेंगे, यह मेरी विनती है।

आरोग्याश्रम

गुजरात प्रान्त में दिन-प्रतिदिन प्राणघातक क्षयरोग का ज़ोर बढ़ता जाता है, उसपर विचार करने से हमें आरोग्याश्रम की विशेष आवश्यकता प्रतीत होगी। जिस-जिस स्थान का जल-वायु ऐसे रोगियों के लिए अनुकूल हो उस स्थल पर क्षयरोग की चिकित्सा के लिए आरोग्याश्रम बनवाने की विशेष आवश्यकता है। प्रान्त के राजा महाराजाओं एवं धनिकों को आरोग्याश्रम की उपयोगिता समझा कर जिस प्रकार हो सके शीघ्रातिशीघ्र आरोग्याश्रम खोलने का प्रयत्न करना चाहिये क्योंकि क्षय जैसी भयानक व्याधि से भारत देश आज दुर्दशा को प्राप्त हो रहा है।

हस्तलिखित पुस्तकों का संशोधन और प्रकाशन

आयुर्वेद के हस्तलिखित प्राचीन ग्रन्थों में से—जो अब तक अप्रकाशित हैं—जो कुछ मिल सकें उनका संग्रह कर प्रकाशित करने की विशेष आवश्यकता है। ऐसी पुस्तकें बड़ोदा सेन्ट्रल लायब्रेरी, रॉयल एशियाटिक सोसाइटी बम्बई तथा कलकत्ता, संस्कृत कालेज कलकत्ता, क्वींस कॉलेज बनारस, आनन्दाश्रम पूना, मैसूर, नैपाल, बीकानेर पाटन आदि स्थानों के पुस्तकालयों से एवं भिन्न-भिन्न प्रान्तों के विद्वान वैद्यों के घर से मिल सकती हैं। मेरा विश्वास है कि इन ग्रंथों का संशोधन और प्रकाशन होने से आयुर्वेद की बहुत अच्छी उन्नति हो सकेगी। इसके अतिरिक्त जैन-साधुओं और यतियों के पास भी आयुर्वेदिक दवाओं के प्राचीन नुस्खे और टिप्पणियाँ मिल सकती हैं, उनका भी संग्रह कर छपवाना चाहिये। विषय-प्राधान्य ग्रन्थों के सम्बन्ध में रा० वैद्यराज जयशंकर भाई लिखित "आयुर्वेद की उन्नति का खुलासा" नामक निबंध में जो सूचनायें दी हैं उनपर भी मेरी विनती है कि आप विशेष ध्यान दें।

पारिभाषिक शब्दकोष

अंग्रेज़ी में परिभाषा निश्चय करने के लिए जैसी मेडिकल डिक्शनरी है, उसी प्रकार आयुर्वेद की परिभाषा निश्चय करने के लिए एक शब्दकोष की विशेष आवश्यकता है। इस शब्दकोष से आयुर्वेदीय परिभाषा के शब्दों का अर्थ सरल रीति से समझ में आयेगा, इतना ही नहीं बल्कि वर्तमान औषधों के निर्णय में भी संभ्रम होना बंद हो जायगा।

वैद्य सभाओं का प्रबंध और वैद्यों का संगठन

इस युग में समाज बल बहुत ही श्रेष्ठ बल समझा जाता है। प्रत्येक समाज अपने संघ बल का प्रबन्ध करता है उसी प्रकार वैद्यों को भी अपना संघबल एकत्र कर उसके द्वारा अपना

Indira Gandhi National Centre for the Arts

स्वत्व प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये। जबतक वैद्य-समाज अपना संगठन नहीं करता तब तक जनसमाज से वह अपना हिस्सा योग्य प्रमाण में प्राप्त न कर सकेगा और वर्तमान काल का दुर्दशा भी ऐसे प्रबन्ध भाव से ही है। इससे वैद्य सभाओं के प्रबंध की आवश्यकता स्पष्ट दिखाई देगी। गुजरात प्रान्तीय वैद्यसम्मेलन भी ऐसी वैद्य-सभाओं की आभारी है।

मेरी उपरोक्त सूचना के अनुसार यदि कार्य किया जाय तो हमारे आयुर्वेद के प्रति अत्यन्त अभिरुचि उत्पन्न हो जाय और पाश्चात्य वैद्यक का मोह धीरे-धीरे कम हो जाय।

औषधों की संदिग्धता और उसका निर्णय

हमारी औषधों में से कितनी ही संदिग्ध रह गई हैं उनका भी निर्णय करने की विशेष आवश्यकता है। हमारी औषधियाँ निम्नाङ्कित छः कारणों से संदिग्ध रह गई हैं।

१—आयुर्वेद के शिष्ट ग्रन्थों में लगभग सात सौ वनस्पतियों का उपयोग लिखा है किन्तु उनमें से कईयों का पीछे ग्रंथकारों द्वारा उपयोग किया जाना नहीं मालूम पड़ता। निघंटु में उनका उल्लेख ही नहीं है। इस कारण से चरक सुश्रुत की बहुत सी वनस्पतियाँ देशकाल के बदल जाने से दिखाई नहीं देती तब उनका उपयोग ही कहाँ से हो?

२—बहुत सी औषधियों का ग्रन्थों में अत्यन्त उपयोग है किन्तु परंपरा टूट जाने से दिखाई नहीं देती जैसे जीवक, ऋषभक आदि।

३—ग्रंथों में लिखित बहुत सी वनस्पतियाँ इस समय उपयोग में नहीं आती क्योंकि उनका नाम तो ज्ञात है किन्तु वे सब स्थान पर सरलता पूर्वक प्राप्य नहीं है। जैसे शालिपर्णी, रास्ना आदि।

४—प्रान्तभेद के कारण बहुत सी वनस्पतियाँ संदिग्ध रह गई हैं जैसे श्योनाक, काकनाशा, शंखपुष्पी, ब्राह्मी आदि।

५—बहुत सी अब तक संदिग्ध और अज्ञात थीं किन्तु उन औषधियों को शास्त्र के साथ मिलान करके देखने से संदिग्ध मालूम होती हैं। जैसे जीवन्ती, त्रिकन्टक आदि।

६—कितनी ही को वनस्पति शास्त्री संदिग्ध मानते हैं जैसे दारुकी। यह प्राचीन स्वर्णक्षीरी नहीं है। वनस्पति शास्त्री के कथनानुसार यह अमेरिका में उत्पन्न होती है।

इन छः कारणों से उत्पन्न संदिग्धता दूर करने की विशेष आवश्यकता है, जिसके लिए "आयुर्वेदीय वनस्पति प्रचारक" नाम की एक संस्था यदि बनायी जाय तो बड़ा लाभ हो सकता है।

इसके अतिरिक्त वैद्यसम्मेलन-पत्रिका (पु० १० सं० २) में जो संदिग्ध औषधियों की सूची छपी हुई है, उनका निर्णय होना अत्यन्त आवश्यक है।

निघंटु में परिवर्तन-परिवर्द्धन

वनस्पति के सम्बन्ध में वनस्पतिशास्त्र के ज्ञाता गुजरात के सुप्रसिद्ध वृद्ध वैद्य जयकृष्ण इन्द्रजी भाई ने "वनस्पति शास्त्र" और "कच्छ की जड़ी बूटी" नामक पुस्तकें प्रकाशित कर हमारा महद् उपकार किया है। इन ग्रंथों में वनौषधि की परीक्षा, गुण-दोष आदि का वर्णन बड़ी अच्छी रीति से किया गया है। इस सम्बन्ध में मेरी इतनी ही विनती है कि नवीन निघंटु तैयार करने में उनकी एवं उनके ग्रंथों की सहायता प्राप्त करनी चाहिये।

Gandhi National Centre for the Arts

औषध द्रव्यों की मात्रा और अनुपान

आयुर्वेद के अमूल्य रस-औषध जैसे हिरण्यगर्भ, सूतशेखर, राजमृगाङ्क, मृगांक आदि की बनावट एक समान होनी चाहिये क्योंकि ऐसी औषधों के बनाने में गुरुभेद देखने में आता है। साथ ही ऐसी औषधों के अनुपान-संबंधी भी बहुत मतभेद देखने में आते हैं। आयुर्वेद शास्त्र में मात्रा महामात्रा और दूसरी औषधियाँ प्रत्येक रोग पर अनुपान भेद से दी जाती हैं। देखने में आता है कि वर्तमान समय में यह पद्धति बहुत कम हो गई है जिससे दवा अपना पूरा असर नहीं करती। यह अनुपान-पद्धति अवश्य ही लाभदायक है अतः विद्वान् वैद्यों की एक समिति द्वारा निर्णय कर, पुस्तक रूप में छपाने से साधारण जनसमाज के लिए बहुत उपयोगी होगा।

इसके अतिरिक्त औषध-द्रव्य और प्रयोग की मात्रा सम्बन्धी भी एक सम्मन नियम बनाने की बहुत आवश्यकता है क्योंकि—"स्थितिर्नास्त्येव मात्रायाः कालमग्निं वयो बलं। प्रकृतिं दोषदेशौच ज्ञात्वा मात्रां प्रयोजयेत्।"

इस प्रकार यद्यपि आयुर्वेद का एक सिद्धांत है फिर भी नवीन चिकित्सक और अनुभव-रहित वैद्यों के लिए मात्रा के निश्चित नियम की आवश्यकता है। निघंटु में भी मात्रा सम्बन्धी उल्लेख कहीं दिखाई नहीं देता, इसलिए प्रसिद्ध प्रयोगों की, वर्तमान काल के अनुकूल, मात्रा का अनुभवी वैद्यों द्वारा निर्णय होना चाहिये।

मानपरिभाषा और उसका निर्णय

मानपरिभाषा के सम्बन्ध में भी भिन्न-भिन्न ग्रंथों में अन्तर देखने में आता है, इतनाही नहीं बल्कि भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भी जिस मानपरिभाषा का व्यवहार में उपयोग होता है उसमें भी अन्तर देखने में आता है। इससे उत्पन्न होने वाली गड़बड़ी को दूर करने के लिए समस्त भारतवर्ष की मानपरिभाषा एक समान ही होने की विशेष आवश्यकता का अनुभव मैं करता हूँ।

विशेष चिकित्सक

इसके उपरान्त कई एक रोगों के लिए विशेष चिकित्सकों को भी बड़ी संख्या में तैयार करने की आवश्यकता है। आज संग्रहणी, क्षय, अर्श, भगंदर, उपदंश, आदि के लिए विशेष चिकित्सक थोड़ी संख्या में हैं और वे बड़ी अच्छी रीति से रोगों को दूर कर सकते हैं। इसके उपरांत रजबी तथा हाडवैद्य भी जिस स्थान पर डॉक्टर ऑपरेशन करके निराश हो जाते हैं वहाँ विजय प्राप्त करते हैं। ऐसे चिकित्सकों को हमें मान भरी दृष्टि से देखना चाहिये और यह प्रयत्न करना चाहिये कि ऐसे लोग अपनी चिकित्सा का प्रचार बड़े प्रमाण में कर सकें।

डाक्टरों द्वारा आयुर्वेद की सेवा

गृहस्थो ! बंगाल और मद्रास के डाक्टर स्व० कविराज यामिनी भूषणराय, कविराज गणनाथ सेन, स्व० कविराज विजयरत्न सेन, कविराज राजेन्द्र नारायण सेन शास्त्री, डा० सुरेन्द्र चन्द्र भट्टाचार्य आदि अनेक विद्वानों ने आयुर्वेद के लिये अपना तन, मन और धन समर्पण किया था और कर रहे हैं। स्व० कविराज यामिनी भूषण राय ने सदिच्छा से प्रेरित

Indira Gandhi National Centre for the Arts

होकर पचास हजार से भी अधिक व्यय कर आयुर्वेदिक कॉलेज चलाने में सहायता की है। जो कुछ बंगाल और संयुक्त प्रान्त ने आयुर्वेद के लिए त्याग किया है उसके सामने गुजरात का त्याग नहीं के समान है। गुजरात प्रान्त में "प्रभुराम आयुर्वेदिक कॉलेज" बहुत समय से चल रहा है और प्राणाचार्य डाक्टर पोपेट प्रभुराम, अपने पिता के आयुर्वेद के सबल सिद्धान्तों का स्वयं डाक्टर होते हुए भी प्रचार कर रहे हैं। इसके उपरान्त डा० सुमन्त मेहता और डा० बालाभाई नाणावटी ने भी आयुर्वेदोद्धार के लिए कठिन परिश्रम किया है जिसके परिणाम स्वरूप पाटण आयुर्वेदिक कालेज आज चल रहा है। उपरोक्त दोनों कालेजों में दोनों पद्धतियों का अनुसरण कर अभ्यास क्रम रखा गया है। मेरी इच्छा है कि इसी प्रकार के और भी कॉलेज खुलें एवं वैद्य तथा डाक्टर आयुर्वेद के उद्धार के लिए एकमत होकर कार्य करें।

आयुर्वेद की उन्नति के लिए राज्याश्रय की आवश्यकता

मद्रास, संयुक्त प्रान्त आदि प्रान्तों में सरकार द्वारा आयुर्वेदिक महाविद्यालय-स्थापन करने के लिए लाखों रुपयों की सहायता दी गई है। मैं आशा करता हूँ कि हमारी मुंबई सरकार भी आयुर्वेद की उन्नति के लिए ऐसे ही महाविद्यालय की स्थापना करेगी! इस संबंध में गतसम्मेलन में बंबई सरकार से प्रार्थना करने का प्रस्ताव हुआ था और प्रार्थना पत्र भेजा भी गया था। इस सम्बन्ध में बंबई लेजिस्लेटिव काउंसिल में प्रश्न करने पर सरकार की ओर से उत्तर मिला था कि मद्रास सरकार ने जिस महाविद्यालय की स्थापना की है उसका परिणाम देखने पर यदि उचित समझा गया तो यहाँ भी उसीके अनुसार कार्य किया जायगा। यहाँ पधारे हुए वैद्य महाशयों को इस सम्बन्ध में योग्य विचार कर, मद्रास, बंगाल और संयुक्त प्रान्तों की सरकार ने जैसे महाविद्यालय की स्थापना की है, वैसा ही बंबई सरकार करे और सिविल हॉस्पिटलों में आयुर्वेद के लिए भी एक विशेष विभाग रखा जाय, इसका प्रयत्न करना चाहिये।

म्यूनिस्पैलिटी और लोकलबोर्डों से भी हमें विनती करनी चाहिये कि जिस प्रकार भी हो सके अधिक प्रमाण में अपने प्रान्त में देशी दवाखाना खोलकर आयुर्वेद को उत्तेजन दें।

अहमदाबाद म्युनिस्पैलिटी ने इस संबंध में गत संमेलन के पश्चात् वैद्यसभा की विनती को ध्यान में रखकर एक देशी दवाखाना के लिये ग्रांट देने का निश्चय किया है। जिला लोकल बोर्ड भी म्यूनिस्पैलिटी का अनुकरण कर स्वयं दवाखाना खोलेंगे ऐसी आशा है। म्यूनिस्पैलिटी को अहमदाबाद के दानशील गृहस्थों से हॉस्पिटल खोलने के लिए पाँच लाख रुपये की बड़ी रकम मिली हैं उसमें आयुर्वेद के लिए विशेष भाग रखा जाय, इसका प्रयत्न करने की विशेष आवश्यकता है।

साथही प्रान्त के आयुर्वेदानुरागी राजा-महाराजा भी इस सम्बन्ध में अपने राज्य में धर्मादा आयुर्वेदिक दवाखाना, पाठशाला की स्थापना करें, इसका प्रयत्न करना चाहिये।

सुज्ञ सज्जनों, विद्वान चिकित्सको और सुशील सन्नारियो! आपका मैंने बहुत अमूल्य समय लिया है, जो कुछ मुझे कहना था उसे मैंने संक्षेप में कहा है जिसमें बहुत सी बातें कहने की रह गई होंगी किन्तु अब मैं आपका और समय लेना नहीं चाहता। आपने शांति पूर्वक जो मेरा वक्तव्य सुना है उसके लिए मैं आपका आभारी हूँ। यदि भाषण में कहे गये शब्दों से किसी को कुछ असंतोष हुआ हो अथवा कुछ भूल दिखाई दी हो तो आप "प्रमादो

...ational Centre for the Arts

श्री राजकीयसंस्कृतमहाविद्यालय-बडोदा. संवत् १९९२ आयुर्वेदविभाग अध्यापकमण्डल (सन १९३५)।

वैद्यराज पं. हरिप्रसाद सी. भट्ट.	वे. शा. सं. लक्ष्मीनाथ ब. शास्त्री.	यशवंत रा. पंडित.
'आयुर्वेदाचार्य।	बी. ए. (ऑनर्स).	डी. ए. एम्.
'भिषगाचार्य-धन्वन्तरि'	प्रिन्सिपाल.	(गृहीतायुर्वेद).

Indira Gandhi National Centre for the Arts

मानुषो भावः" के अनुसार मुझे क्षमा करेंगे। अन्त में धन्वन्तरि भगवान जिन्होंने महान-कृपा कर पृथ्वी पर आयुर्वेद का प्रचार किया है, वही परम कृपालु भगवान हमारे कार्य में सहायभूत हों, ऐसी प्रार्थना कर मैं अपना भाषण समाप्त करता हूँ।

सुधाकुम्भं हस्ते दधदमरतार्थं सुमनसां
रहस्यं जिह्वाग्रे गदहरमथर्वोपनिषदाम् ॥
मणिं श्रीवत्साङ्के हृदि जलनिधेर्योऽजनि पुरा
विनिघ्नन् विघ्नं वः सुखयतु स धन्वन्तरिविभुः ॥

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

Indira Gandhi National Centre for the Arts

॥ श्री धन्वन्तरये नमः ॥

श्री गुंजरात प्रान्तीय वैद्यसम्मेलन, तृतीय अधिवेशन, सूरत के

सभापति वैद्यराज त्र्यंबकलाल त्रिभुवनमुनि का

भाषण

जनको गिरजा माता गिरजा माता च यस्य विख्याता ।
परमेकरदं वंदे परमेकादं भुवां बुधौ वरदम् ॥

हिमालय पर्वत के जामाता अर्थात् शंकर जिसके पिता हैं और हिमालय पर्वत की पुत्री पारवती जिसकी माता हैं ऐसे एक दन्त वाले श्रेष्ठ गणपति जो गम्भीर भवसागर में सहायता करनेवाले और वरदान देनेवाले हैं उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ ।

क्षीरोदधि संभूतं धृत्वा हस्ते सुधामृतं कुंभम् ।
सुरसंघरक्षणार्थं देव धन्वन्तरिं मुदा वंदे ॥

क्षीर-सागर में से अमृत से भरा हुआ घड़ा लिये हुए देवताओं की रक्षा के लिए उत्पन्न हुए धन्वन्तरि भगवान की मैं आनन्द से वंदना करता हूँ ।

राजा भोज द्वारा रचा हुआ निम्नलिखित श्लोक से सर्व ब्राह्मणों को मैं नमस्कार करतो हूँ ।

उच्चैर्गतिर्जगति सिध्यति धर्मतश्चेत्तस्य प्रमाच वचनैः कृतकेतरैश्चेत् ।
तेषां प्रकाशनदशात्र महीसुरै श्चेत्तानंतरेण निपते तनु मत्प्रणामः ॥

यदि इस जगत् में उच्च गति धर्म से प्राप्त होती हो और उस धर्म में प्रमाण स्वरूप वेदों की गणना हो और उन वेदों का उत्कर्ष करनेवाले और प्रचार करनेवाले ब्राह्मणों को छोड़ कर किसको मैं प्रणाम करूँ ।

विद्वान् वैद्यराजगण, सुशील बहनों और सज्जन वृंद !

आप सब बन्धुओं ने मुझे इस सम्मेलन का सभापति मनोनीत कर मेरा जो सन्मान किया है उसके लिए मैं आप सबका अन्तःकरण से आभारी हूँ । यहाँ एकत्रित सर्व बन्धुओं का आन्तरिक हेतु एक ही है और वह आयुर्वेद का अभ्युदय किस प्रकार हो इसपर विचार करना है । प्राचीन समय में भारतवर्ष में रोगियों की चिकित्सा केवल आयुर्वेद की पद्धति से की जाती थी । उस समय दूसरी पद्धतियों का अस्तित्व मात्र भी नहीं था । दूसरे देशों से अत्यधिक संख्या में विद्यार्थीगण हमारी वैद्यक-विद्या सीखने के लिये आते थे । राजा अलेक्जेन्ड्रा ने अपनी सेना में सर्प विष की चिकित्सा करने के लिये भारतवर्षीय वैद्यों को बुलाया था । यह बात इतिहास-प्रसिद्ध है किन्तु इस समय अनेक प्रकार के चिकित्सा-

Indira Gandhi National Centre for the Arts

श्रीमान् प्राणाचार्य, वैद्यराज स्व. वा. त्र्यम्बकलाल त्रिभुवन मुनि बंबई।
अध्यक्ष, गुर्जरप्रान्तीय ३ वैद्यसंमेलन सुरत (सन १९२७)।

Indira Gandhi National
Centre for the Arts

शास्त्र संसार में प्रचलित हैं। सब अपनी-अपनी चिकित्सा-पद्धति की प्रशंसा कर रहे हैं। यहाँ पर उन पद्धतियों का नाम मात्र का उल्लेख मैं करूँगा—अलोपैथी, जिस रीति के अनुसार डाक्टर लोग वर्तमान समय में उपचार करते हैं; होमियोपैथी, (रोग-औषध सादृश्य सिद्धान्त) हाइड्रोपैथी, (जलचिकित्सा) क्रोमोपैथी (सूर्यरश्मि-चिकित्सा अथवा रंग रसायन) अलेक्ट्रो होमियोपैथी (काउन्टमेंटो की चिकित्सा) फादर मुलर स्पेसिफ़िक्स, यूनानी रीति और अपना आयुर्वेद। इन सब में आयुर्वेद सबसे प्राचीन है और उसका प्रचार हिन्दुस्तान, तिब्बत, ब्रह्मदेश, लंका आदि देशों में है किन्तु योरोप और अमेरिका में दो पद्धतियों का विशेष प्राबल्य है। पहली अलोपैथी और दूसरी होमियोपैथी; इनमें से अलोपैथी के मूल सिद्धान्त और अनेक औषधियाँ हमारे आयुर्वेद में से ही लिये गये हैं। प्रारम्भ में वे हमारे त्रिदोष के सिद्धान्त को मानते थे किन्तु जबसे रोगों के जन्तुओं (Germs) की खोज हुई है तब से इन जन्तुओं को रोगों की उत्पत्ति का मुख्य कारण मानते हैं और जन्तुओं को नाश करने वाली दवाओं की खोज में लग गये हैं। कितनी ही नवीन-नवीन दवायें वे प्रसिद्ध में लाते हैं किन्तु थोड़े ही समय पश्चात् ये दवायें अन्धकार में कहाँ लुप्त हो जाती हैं इसका पता भी नहीं लगता। इसके अतिरिक्त दो नवीन सुधार उन्होंने उपचार-शास्त्र में किया है, प्रथम, तात्कालिक गुण देने वाली उग्र औषधियों में से रसायन-क्रिया द्वारा सत्व निकालने का; जिस सत्वमय पदार्थ को आलकोलाइड् कहते हैं और उग्र असर करने में दो मूल पदार्थों से भी बढ़ जाते हैं। इस खोज के प्रारम्भ में ऐसे पदार्थ रोगियों को मुख द्वारा दिये जाते थे; ऐसे सत्वमय पदार्थों से चिकित्सा करने के लिये अमेरिका में एक ग्रन्थ लिखा गया है जो अलकेलॉइड्स थिरेपी (Alkaloid's Therapy) नाम से प्रसिद्ध है। इतने से भी सन्तुष्ट न होकर औषधों को और भी उग्र असरवाली बनाने के लिये उन्होंने पिचकारी द्वारा औषधों को रगों में प्रवेश करना प्रारम्भ किया। यह प्रथा हाइपोडरमिक इञ्जेक्शन्स् (Hypodermic Injections) के नाम से प्रसिद्ध है और इसमें भी इन्ट्रा मसक्यूलर (Intra Muscular) इन्ट्रावेनस (Intravenous) आदि भेद हैं। दूसरी रीति से भी रगों में प्रवेश करनेवाली दवायें बनायी गई हैं। रोगों का कारणभूत माने हुए भिन्न-भिन्न जाति के जन्तुओं में से भिन्न-भिन्न जाति के रस बनाये जाते हैं। फिर किसी रोगी का अशुद्ध रक्त लेकर उसमें से भी उसके लिये रस बनाये जाते हैं। रोग की स्थिति में रोगी के शरीर में से निकलने वाले विकृत पदार्थों में से भी इसी प्रकार के रस बनाये जाते हैं। ऊपर जो सत्वमय पदार्थ का मैं वर्णन कर चुका हूँ उसमें पचासी प्रतिशत जहरीले पदार्थ हैं। यदि ये प्रमाण में बढ़ते जाँय अथवा शरीर में इनका धीरे-धीरे संचय होता जाय तो विनाश कारक परिणाम हुए विना नहीं रह सकता; इन पदार्थों पर विशेष ध्यान देने के लिए यहाँ पर उनका कुछ विशेष विवेचन करता हूँ। मोरफिया (Morphiæ) एपोमोरफिया (Apomorphiæ) कोडीन (Codeine) हिरोइन (Heroin) आदि सत्व अफ़ीम में से बनते हैं। कुचला में से स्ट्रिकनियाँ निकाली जाती है। धतुरा में से डेटुराईन (Dhaturine) बेलाडोना नामक विषैले वृक्ष में से एट्रोपाइन (Atropine) खुरासानी अजवाईन में से हॉयोसियेमाइन (Hyosiyamine) और हायोसिमा (Hyocima) तथा सोमल, पारा, लोह आदि द्रव्यों का भी पिचकारी द्वारा उपयोग करने में आता है। वर्तमान समय में ऐसी परिस्थिति है कि यदि किसी रोग ने भयंकर रूप धारण किया अथवा कुछ विशेष दिन लग गये तो उसमें इन्जेक्शन देने की विशेष रूप से सलाह दी

Indira Gandhi National Centre for the Arts

जाती है; इतने से भी पूरा न पड़ने पर साथ में पीने की दवा भी चलती रहती हैं। इस प्रकार इस एलोपैथिक चिकित्सा पद्धति में मुख्यतः दो बातें देखने में आती हैं एकतो इन्जेक्शन और दूसरा चीड़फाड़ (Operation)। इन इन्जेक्शनों से बहुधा रोगियों को कठिन वेदना होती है। कभी सूजन हो जाती है, कभी ज्वर हो जाता है। ऐसे ऐसे इन्जेक्शन छः बार अथवा इससे अधिक लेना पड़ता है। क्वचित उग्र विषमय दवाओं के असर से यकायक मृत्यु हो जाने के दृष्टान्त भी देखने में आये हैं।

एक एक इन्जेक्शन का पांच, पचीस, पचास और इससे भी अधिक रुपया मूल्य देना पड़ता है। डाक्टरों को घर बुलवाने की फीस अलग। मेरे कहने का मतलब सिर्फ इतना ही है कि बड़े बड़े धनवानों को भी ऐसे खर्च से कष्ट होता है; तब विचारे गरीब मनुष्यों की क्या गिनती है। जिसके घर में दस बीस दिवस लायक भोजन के लिए अन्न भी न हों ऐसे लोगों के लिये यह पद्धति तो बिल्कुल अयोग्य ही है। बहुधा रोगियों को कुछ समय तक रोग-मुक्त हुआ मालूम पड़ता है; किन्तु पुनः पुनः वह रोग उठकर रोगी को तंग करता है। गतवर्ष में प्रकाशित हुए एक एलोपैथिक ग्रन्थ में स्पष्ट लिखा है कि यदि आपको अपना रोग निर्मूल करना हो तो नियमित रूप से दो वर्ष तक औषध का सेवन कीजिये। तदुपरान्त इन्जेक्शन के लिये इन्जेक्शन के सीरम (Serum) भी अधिकांश परदेश से ही आते हैं। यहाँ भारतवर्ष में पास हुए डाक्टरों में से शायद ही कोई इसे बनाना जानता हो। वर्तमान समय में मुख-मार्ग द्वारा दवा लेने में डाक्टरों को अधिकांश अंश में अविश्वास है। इसीलिए वे बारंबार इन्जेक्शन लेने के लिये सलाह देते हैं। साथ-साथ खाने अथवा पीने की दवा तो चलती ही रहती है। अब यदि रोगी रोग-मुक्त हो जाय तो वह इस बात का कैसे निर्णय करे कि वह इन्जेक्शन से रोग-मुक्त हुआ है या पीनेवाली दवा से। मलेरिया के सम्बन्ध में भी कहा जाता है कि यदि तुम्हें मलेरिया से छुटकारा पाना हो तो दो, तीन, मास तक बराबर क्विनाइन (Quinine) का सेवन करो। यह एलोपैथिक पद्धति का आपके समक्ष सारांश रूप में वर्णन किया। एलोपैथिक शब्द का मूल अर्थ तो यह है कि सर्दी ऊपर गरम औषध देना और गर्मी के ऊपर शीतल। किन्तु वर्तमान समय में वे इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं कर सकते और सर्वथा कीटाणुओं को ही रोगों का कारण मानते हैं। अब दूसरी उपचार-पद्धति जिसकी खोज सौ वर्ष हुए हुई है उसका वर्णन सारांश रूप में आपके सामने करूँगा।

जर्मनी के डाक्टर हैनिमेन ने एक ऐसी शोध की कि आरोग्य स्थिति में कोई भी उग्र औषध यदि खाई जाय और उससे शरीर में जैसे लक्षण उत्पन्न हों वैसे लक्षणवाले रोग उसी औषध के सूक्ष्म प्रमाण से दूर हो सकते हैं। उदाहरण-स्वरूप सोमल खाने से कै, दस्त, दाह, तृषा, ज्वर आदि लक्षण शरीर में उत्पन्न होते हैं तो ऐसे ही लक्षण जिस रोग में दृष्टिगोचर हों उस रोग में सूक्ष्म प्रमाण में उसी औषध को देने से रोग दूर होते हैं। Likes are cured by likes हमारे यहाँ भी 'विषस्य विषमौषधम्' यह वाक्य इस होमियोपैथी के सिद्धान्त की पुष्टि करता है। जर्मनी में इसके मूल को रोपे हुए यद्यपि सौ वर्ष ही व्यतीत हुए हैं फिर भी इस थोड़े समय में यूरोप के देशों में, एवं उत्तर दक्षिण अमेरिका, अफ्रिका, आस्ट्रेलिया, हिन्दुस्तान आदि देशों में दिनों दिन उसका अत्यधिक प्रचार होता जा रहा है। इस सिद्धान्त को एलोपैथिक डाक्टर बिल्कुल ही स्वीकार नहीं करते। कई बार इसका बहिष्कार करने पर भी यूरोप अमेरिका आदि सुधरे हुए देशों में इस सिद्धान्त के कॉलेज खोले गये हैं और वहाँ

Indira Gandhi National Centre for the Arts

नियमित पद्धति से शिक्षा दी जाती है। जहाँ एलोपैथिक डाक्टर अपने औषधों की आजमाइश जीवित प्राणियों पर करते हैं, वहाँ ये होमियोपैथिक डाक्टर जीवित निरोगी मनुष्यों पर अपने औषधों का अनुभव करते हैं और उसीसे औषधों का गुणदोष का ज्ञान प्राप्त करते हैं। एलोपैथिक डाक्टर एक औषध का प्रमाण पाँच-दस बूँद अथवा इससे अधिक देते हैं उसी स्थान पर ये डाक्टर एक बूँद का पाँच हजारवाँ भाग, दस हजारवाँ अथवा इससे भी अकल्पनीय प्रमाण में दवा का भाग देकर रोगी को आरोग्य करते हैं। इसपर तुर्रा यह कि इनकी औषध किसी प्रकार कड़वी या बदस्वाद नहीं होती और कोमल प्रकृति के मनुष्य को भी सरलता से अनुकूल हो जाती हैं। एलोपैथिक डाक्टर इस सिद्धान्त को नहीं मानते।

इस होमियोपैथिक से मिलती हुई एक तीसरी पद्धति भी है। इसका फल यह है कि शरीर के सूक्ष्म कणों की जिस क्षारमय द्रव्यों से रचना हुई है उसकी गति में अथवा प्रमाण में न्यूनता होने से रोगों की उत्पत्ति होती है और वही पदार्थ पुनः शरीर के सूक्ष्म प्रमाण में यदि प्रविष्ट हो जायँ तो रोग नष्ट हो जाते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार चलनेवाले डाक्टरों की संख्या भी बढ़ती जाती है और अपने देश में भी उसका प्रचार बढ़ रहा है। इस पद्धति की औषध भी निस्वाद और निर्दोष होती हैं, इसपर भी खूबी तो यह है कि किसी प्रकार का विष काम में लाया नहीं जाता।

यूनानी पद्धति भी बहुत समय से प्रचलित है। अधिकांश में यह आयुर्वेद से मिलती-जुलती है अतः इस सम्बन्ध में अधिक कहने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। इन पद्धतियों का यहाँ वर्णन करने का मूल कारण केवल इतना ही है कि यदि हम अपने आयुर्वेद की रक्षा के लिए तत्पर नहीं होंगे तो बहुत थोड़े ही समय में इन पद्धतियों के विशेष प्रचार से हमारा आयुर्वेद लुप्त हो जायगा। बहुत वर्षों से अंग्रेजी डाक्टर आयुर्वेद पर आक्षेप करते आते हैं कि आयुर्वेद के मूल सिद्धान्त अशास्त्रीय और अवैज्ञानिक हैं जिससे इसे शास्त्र नाम से नहीं पुकारा जा सकता। उनका कहना है कि आर्य वैद्यक का मूल पाया ही बुरे सिद्धान्त पर रचा हुआ है और वात, पित्त, कफ क्या है, उसे वे समझ ही नहीं सकते, इसके सम्बन्ध में पहले सम्मेलनों के अवसर पर बहुत कुछ कहा जा चुका है अतः पृष्टपेषण कर व्यर्थ आप लोगों का समय नष्ट करना है। मैं केवल इतना ही दिखाने का प्रयत्न करूँगा कि यह त्रिदोष सिद्धान्त वैज्ञानिकों द्वारा स्वीकृत प्रोटोप्लेज़्म (Protoplasm) के सिद्धान्त से कहाँ तक मिलता है। आयुर्वेद के ग्रन्थों के अंग्रेजी भाषान्तर हुए हैं जिनमें वायु का पर्याय wind अथवा Gas रखा गया है। श्वासोश्वास लेते समय अथवा मलद्वार से जिस वायु का निःसरण होता है वही वह वायु का केवल स्थूल रूप है किन्तु जो-जो क्रियायें शारीरिक अथवा मानसिक होती हैं वे सब वायु से ही होती हैं और वह उसका सूक्ष्म स्वरूप है। वाग्भट्ट कहते हैं—"तेव्यापिनोपि हृन्नाभ्योरधो मध्योर्ध्व संस्थिता।" इसमें त्रिदोष को व्यापक कहा गया है, व्यापक पदार्थ उसी को कह सकते हैं जो शरीर में सूक्ष्म से सूक्ष्म अणु में विद्यमान रहता है, इसी प्रकार पित्त भी शरीर के प्रत्येक अणु में उष्णता का समानत्व बनाने वाला तत्व है। वमन के साथ जो कड़वा खट्टा पदार्थ निकलता है तथा यकृत में से जो पदार्थ खुराक के साथ मिलकर उससे रुधिर बनाता है वह पित्त का स्थूल स्वरूप है। पित्त का स्वरूप पतला है इसके विपरीत कफ का स्वरूप गाढ़ा है। पित्त कड़वा खट्टा होता है जब कि कफ मधुर और क्षार गुणवाला होता है। कफ शीत प्रधान है और पित्त उष्ण प्रधान है। इस प्रकार थोड़े में

Indira Gandhi National Centre for the Arts

विवेचन कर प्रोटोप्लेज्मिक थियरी में (Protoplasmic Theory) हमारे शरीर की रचना के सम्बन्ध में जो वर्णन किया गया है उनमें से कुछ उद्धरण आपके सम्मुख रखूँगा जिससे दोनों की तुलना हो सके। हमारे शरीर में प्रोटोप्लेज्म नामक पदार्थ जिसे वाइट कॉर्पसल्स (White corpuscles) भी कहते हैं, यह पदार्थ कैसा है उसका वर्णन नीचे लिखे अनुसार किया गया है—

This white corpuscle is a structureless, transparent, colourless, semifluid substance consisting of minute spherical particles of very complex chemical constitution and in continued spontaneous movement. This protoplasm does all the vital work of the organism. It is protoplasm which is the formative agent for all the tissues. According to the situation it lies into nerve muscle, epithelium, areolar tissue, bone. It has the power of taking up fresh pabulum from the blood and converting it into its own substance Thus the whole process of nutrition from the time that mechanical and chemical acts of digestion are over the chain of operation consisting of chylification and sanguification of the taking up of the blood plasma by the tissue and the formation from it of new material. All this is the work of protoplasm. No less is secretion performed by it. Every where active and every where present protoplasm is the agent in nutrition and secretion, so it is the vital function. It enables us to think and feel. It receives impression and conveys volition wherever we have living action i. e. action impossible to the same body when dead, then we have protoplasm at work. A portion of it is differentiated into a system previously unknown i. e. the nervous. This new organism while it lives its own life and carries on its own operation of nutrition and function exerts a regulating influence over the vegetative process which were before and are beneath it. Though they be for their own affairs independent of, it yet they all acknowledge its sway by its control (through the muscular coats of the arteries) of the circulation it determines the all important blood supply of the tissues.

यह सफेद पदार्थ आकृति-विहीन महीन गोल अणुओं का बना होता है जिसकी रसायनिक रचना बड़ी-ही विचित्र, समझ में न आने वाली और हमेशा गतिमान रहती है। यह प्रोटोप्लेज्म हमारे शरीर के जीवन का सब कार्य चलाते हैं, शरीर की सब नाड़ियों का संचालन करते हैं और जहाँ वे शरीर के भाग की-अनुकूल स्थिति में हों वहाँ वे शिरास्नायु, धमनी, त्वचा, अस्थि आदि में बल देते हैं। अपने पोषण के लिए आवश्यक तत्व वे रुधिर में से ले सकते हैं और उन्हें अपने समान बनाते हैं। शरीर में भोजन प्रविष्ट होने के पश्चात पोषण की सब क्रियायें जैसे रस, रुधिर आदि बनाने की, सब इस प्रोटोप्लेज्म से होती है। यह सब प्रोटोप्लेज्म का कार्य है। जिस प्रकार वह पोषण का कार्य करता है उसी प्रकार मल-विसर्जन का कार्य भी वही करता है अतः यही जीवनोपयोगी सब क्रियाओं का मूल स्थान है; हम जो कुछ इच्छा, अथवा विचार कर सकते हैं वह सब इसी की शक्ति के द्वारा ही है। इस प्रोटो-

Indira Gandhi National Centre for the Arts

प्लेज्म के एक भाग में से पूरा नरवस सिस्टम बनता है। यह नरवस सिस्टम अपना पोषण और अपनी सब क्रियायें चलाता है, इतना ही नहीं उसपर अपना पूर्ण अधिकार भी रखता है। यहाँ तक कि उसकी सहायता बिना उस स्थल का काम हो नहीं सकता। रुधिर की गति पर भी उसकी सत्ता होती है; शरीर के सूक्ष्म कणों को आवश्यक रुधिर देने की व्यवस्था उसके हाथ में है।

हमारा शास्त्र इस सम्बन्ध में क्या कहता है उस पर अब हम विचार करेंगे। वाग्भट्ट कहते हैं कि—'ते व्यापिनोपि' अर्थात् ये तीनों दोष शरीर भर में व्याप रहे हैं और जो अति सूक्ष्म होता है वही व्यापक रूप में रह सकता है इसलिए शरीर के प्रत्येक अणु में उसकी उपस्थिति आवश्यक है। सुश्रुत में लिखा है—

वातपित्तश्लेष्माण एव देहसंभव हेतवः

वात, पित्त, कफ यही इस शरीर की उत्पत्ति का मूल कारण है।

त एव व्यापन्नाः प्रलयहेतवः

वे जब बिगड़ते हैं तब शरीर का नाश करते हैं।

भगवान चरक अपने चरक संहिता में वायु का नीचे लिखे अनुसार वर्णन करते हैं—

वायुस्तन्त्रयन्त्रधरः प्राणोदान समान व्यानापानात्मा प्रवर्तकश्चेष्टानामुच्चावचानों नियन्ता प्रणेता च मनसः सर्वं इन्द्रियाणामुद्योतकाः। सर्वेन्द्रियार्थानामभिवोधा सर्वशरीर-धातुव्युहाकरः सन्धानकरः शरीरस्य प्रवर्तको वाचः प्रकृतिः स्पर्श शब्दयोः श्रोत्रस्पर्शनयोर्मूलं हर्षोत्साहयोर्योनिः समीरणोऽग्नेदोषः संशोषणः। क्षेप्ताबहिर्मलानां स्थूलाणुस्रोतसां भेत्ता कर्त्ता गर्भाकृतिनां आयुषोऽनुवृत्ति प्रत्ययभूतो भवत्यकुपितः।

वायु इस शरीर रूपी यन्त्र को धारण करनेवाला है। प्राण, उदान, समान, व्यान और अपान उसके आत्मा रूप हैं। उच्च नीच सर्व चेष्टाओं का प्रवर्तक है। मन को नियम में रखने वाला और प्रसन्न रखनेवाला है। सब इन्द्रियों को उत्तेजित करनेवाला है। सब प्रकार के इन्द्रियार्थ (शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध) को वहन करनेवाला है। वाणी का प्रवर्त्तक, स्पर्श और शब्द का मूल-स्वभाव तथा श्रवण और स्पर्श का मूल है। हर्ष और उत्साह का कारण-रूप और अग्नि के दोष का संशोधन करने वाला है। शरीर के मल को बाहर निकालने वाला, छोटे-मोटे स्रोत का विभेदक, गर्भ की आकृति को बनाने वाला, आयुष की स्थिरता रखने वाला है। शुद्ध वायु उपरोक्त सब कार्य करने में समर्थ है।

प्रोटोप्लेज्म के सिद्धान्त और त्रिदोष सिद्धान्त इन दोनों में किस प्रकार की समानता है, इस पर हम विचार करेंगे। प्रोटोप्लेज्म अति सूक्ष्म अणु रूप है उसी प्रकार हमारा त्रिदोष भी सर्व व्यापी होने से अणु रूप और सूक्ष्म है। प्रोटोप्लेज्म सक्रिय है (Everywhere active) उसी प्रकार हमारा त्रिदोष भी अपनी क्रिया करता है। प्रोटोप्लेज्म में से रस, रक्त, स्नायु इत्यादि पूरा शरीर उत्पन्न होता है उसी प्रकार त्रिदोष में से भी सम्पूर्ण शरीर की उत्पत्ति मानी गई है। जिस प्रकार प्रोटोप्लेज्म में से उत्पन्न नरवस सिस्टम (Nervous System) की क्रिया से हमें ज्ञान-भान होता है उसी प्रकार वायु से भी ज्ञान-भान, इच्छा, इत्यादि क्रियाओं का होना शास्त्र लिखता है। जिस प्रकार शरीर की चेष्टा, चालचलन आदि पर नरवस सिस्टम अपनी सत्ता चलाता है वैसे ही वायु भी सब क्रियाओं और चेष्टाओं में मुख्य भाग लेता है। शास्त्र कहता है—

Indira Gandhi National Centre for the Arts

पित्तं पंगु कफः पंगुः पंगवो मलधातवः।
वायुना यत्र नीयन्ते तत्र वर्षन्ति मेघवत्॥

पित्त और कफ दोनों पंगु हैं, वायु उन्हें बादल के समान जहाँ चाहता है ले जाता है।

प्रोटोप्लेज़मिक सिद्धान्त में जिस वाइट कोरपसल्स का उल्लेख है वह अर्धद्रव (Semifluid) है। अतः द्रवरूप अर्थात् पतले पदार्थ को हम पित्त मान लें और उसमें के घन पदार्थ को कफ मान लें तो हमारा वात, पित्त और कफ का सिद्धान्त यथा शास्त्र सिद्ध हो जाता है। इस प्रकार हमारे शास्त्रीय वात, पित्त कफ सिद्धान्त का आधुनिक विज्ञान-शास्त्र भी समर्थन करता है फिर यह कैसे अशास्त्रीय कहा जा सकता है? सबसे अधिक आश्चर्य की बात तो यह है कि जिसे हम वायु का रोग कहते हैं उन सब रोगों का समावेश अंग्रेज़ी निदान शास्त्र ने Diseases of the nervous system and brain में किया है जिससे स्पष्ट ज्ञान हो जाता है कि यह नरवस सिस्टम और उससे होनेवाली सूक्ष्म क्रियायें ही वायु का स्वरूप है। आदि-वैद्यक में वात, पित्त और कफ का ८०, ४० और २० के क्रम से लक्षण दिया गया है। इसपर से किसी नवीन रोग का निदान और उसके मिटाने के उपाय सरलता से हो सकते हैं। इस त्रिदोष के सिद्धान्त द्वारा हमारा शास्त्र यह उपदेश देता है कि वात रोग का उपचार गरम और स्निग्ध, कफ का गरम और रूक्ष तथा पित्त का शीतल होना चाहिए। यह बात तो सभी के समझ में आ सकती है कि यदि किसी मनुष्य के हाथ पैर बरफ के समान ठंडे हो गये हों तो उस समय डाक्टर भी उसके लिये गरम उपचार ही करेंगे और बरफ न रखकर सेक आदि करने की सलाह देंगे। इसी प्रकार यदि किसी रोगी के संपूर्ण शरीर में दाह हो तब उसे ब्रान्डी, सोंठ, राई जैसे गरम पदार्थ न देकर शीतल उपचार ही करेंगे। इस प्रकार यद्यपि त्रिदोष के सर्दी, गर्मी के सिद्धान्त को वे स्वीकार नहीं करते फिर भी उपचार करने के समय उसी के अनुसार उन्हें चलना पड़ता है। कीनाइन से ज्वर में एक रोगी को लाभ पहुँचता है किन्तु उसी कीनाइन से दूसरे रोगी को लाभ नहीं होता; इसका कारण भी हमारी पद्धति के अतिरिक्त दूसरी पद्धति बताने में समर्थ नहीं है। हम अपने आयुर्वेद के सिद्धान्त के अनुसार कह सकते हैं कि कीनाइन वात, कफ, ज्वर को दूर कर सकती है किन्तु पित्त-ज्वर में उसका विरुद्ध असर होता है। इस प्रकार अनुभव होने पर पित्त-ज्वर में कीनाइन देने की कोई भी वैद्य भूल नहीं करेगा। अतः यह सिद्ध हो गया कि हमारे शास्त्र द्वारा निर्धारित सिद्धान्त बिलकुल ही सच्चे और वैज्ञानिक स्तंभपर रचे गये हैं और उसे सर्वमान्य होना चाहिये। इस सिद्धान्त के अनुसार हमारे देश में हजारों वर्ष से दवा दी जाती है, करोड़ों बार उसका अनुभव हो चुका है और करोड़ों मर्तबा वह रोग मिटाने में विजयी हो चुका है, अब भी हो रहा है और भविष्य में भी होगा; इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

इस स्थल पर, अंग्रेज़ी डाक्टर जो नवीन सिद्धान्त को मुख्य समझ कर, उसीको रोग का कारण रूप मानते हैं, उस संबंध में भी कुछ विचार करना आवश्यक है।

डाक्टर कहते हैं कि शरीर में जन्तु प्रविष्ट हुए और रोग की उत्पत्ति हुई। हमारे सुश्रुताचार्यगण ने भी दृश्य और अदृश्य ऐसे कृमियों का वर्णन किया है किन्तु उनका कहना यह है कि त्रिदोष में बिगाड़ होने पर ही उसमें जीव-जन्तु का पोषण हो सकता है। वर्त्तमान समय में डाक्टर अनेक प्रकार की जन्तुनाशक दवाओं की शोध चला रहे हैं जिसका मुख्य

National Centre for the Arts

उद्देश्य जन्तुओं का नाश करना है; किन्तु जब तक भीतर का भाग बिगड़ा हुआ है तब तक जन्तु बार-बार उत्पन्न होंगे अतः आवश्यकता ऐसी औषध के खोज निकालने की है जिससे यह शरीर-रूपी क्षेत्र में सुधार हो और यह सुदृढ़ बने और इसमें कृमि टिक न सकें। अंग्रेज़ी निदानकार कहते हैं कि कृमि से रोग उत्पन्न होता है, हमारे निदानकार एक पद और आगे बढ़कर कहते हैं कि कृमि उत्पन्न होने का कारण कफादि दोषों के प्रकोप ही हैं। यदि वे अपनी आविष्कृत स्थिति में हों तो बाहर से प्रविष्ट होने वाले जन्तु उन्हें बिगाड़ ही नहीं सकते। प्रकृति की यह कैसी आश्चर्यजनक लीला है कि इस जर्म थियरी (Germ Theory) न मानने वाले भी रोग को अच्छा कर सकते हैं। यदि प्रत्येक रोग का कारण कीटाणु ही है तब उसका कारण दूर हुए बिना अर्थात् कीटाणुनाशक दवा दिये बिना उस रोग को नष्ट नहीं होना चाहिये। किन्तु इसके विपरीत हम सब ने हजारो बार इसका अनुभव किया है कि नीम की गुरुच जैसी साधारण वस्तु से भयङ्कर ज्वरों का नाश होता है। अब तक उसमें किसी भी डाक्टर ने कीटाणु नाशक गुण नहीं बताया है। अमेरिका जैसे उन्नत देश में होमियोपैथी और बायोकेमिक विद्याओं को एलोपैथिक के समान ही आश्रय दिया है, उसी स्थान पर भारतवर्ष ने रजिस्ट्रेशन का झगड़ा लगाकर वैद्यों को डाक्टर की पंक्ति से अलग करने का नियम चलाया है, अपने मन से डाक्टरों ने रोग अच्छा करने का इजारा स्वयं ले रखा है और बारम्बार आयुर्वेद को अशास्त्रीय और अवैज्ञानिक कहने से कहीं चूकते। अभी कुछ ही दिन हुए मेजर हूटन ने सरकार को सलाह दी है कि आयुर्वेद अशास्त्रीय और अवैज्ञानिक होने से उसे सहायता नहीं देनी चाहिये। मैं छाती ठोक कर कहता हूँ कि हमारे आयुर्वेद की रचना सुदृढ़ नीव पर हुई है। यदि इसकी नीव निर्बल होती तो पाँच पचास वर्ष में इसकी इमारत गिर पड़ती। आप ही विचार कीजिये कि यदि आयुर्वेद पद्धति से रोगी अच्छे न होते तो क्या यह हजारों वर्ष तक टिक सकती? मान लीजिये कि एक वैद्य के पास पचास रोगी जाते हैं, यदि वह एक भी रोगी को अच्छा न कर सके तो क्या दूसरे दिन भला एक भी रोगी चिकित्सा के लिये उसके पास जायगा? मद्रास सरकार द्वारा नियुक्त जाँच कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में आयुर्वेद और यूनानी दोनों पद्धतियों को शास्त्रीय सिद्ध किया है और जिस पद्धति का डाक्टर हूटन साहब इतना विरोध करते हैं उसी पद्धति के संबंध में बड़ी-बड़ी डिग्रीधारी उन्हीं के बन्धुओं का क्या मत है उसका प्रमाण मैं यहीं दे सकता हूँ उस बृहद् ग्रन्थ का नाम दी एलोपैथी जजड बाइ इट्स ओन प्रोफेसर्स (The Alopathy judged by its own professors) है। स्थल संकोच से उसमें से यहाँ पर उदाहरण नहीं देता। विशेष खूबी की बात तो यह है कि उसमें लेख लिखनेवाले डाक्टर साहबों ने स्वयं आयुर्वेद के किसी ग्रन्थ का अध्ययन किया हो ऐसा उन लेखों से मालूम नहीं होता, ऐसा करना क्या किसी विद्वान को शोभा देता है? भाइयो! हमारा आयुर्वेद हजारों वर्ष के अनुभव का भंडार है। हमारे पूर्वजों द्वारा प्रदत्त ज्ञान-रूपी खजाना—अमूल्य रत्नागार है। यदि ध्यान देकर हम इसको शोधन करेंगे तो इसमें से अमूल्य रत्न हम प्राप्त कर सकेंगे, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है अतः आलस्य त्याग कर आयुर्वेद के लिए हर एक तरह का प्रयत्न करने के लिए हमें कटिबद्ध हो जाना चाहिये। हमें अनुभव-सिद्ध चमत्कारिक प्रयोगों का संग्रह करना चाहिये, इससे हमें एवं भविष्य में आने वाली हमारी सन्तान को अत्यन्त लाभ पहुँचेगा। दक्षिण द्रविड लिपि में संस्कृत भाषा की पुस्तकें हैं, उनका संशोधन कर यदि देवनागरी लिपि में छपाई जा सके तब भी वैद्यों का अत्यन्त लाभ हो।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

साथ ही अभी तक अप्रकाशित ग्रन्थों को छपा कर प्रकाशित करने से भी बहुत सी बातों पर प्रकाश पड़ सकता है। हमें अभी बहुत कुछ करना है। एक ऐसे निघंटु की आवश्यकता है जिसमें वनस्पतियों का चित्र-सहित विशद वर्णन हो, शस्त्रक्रिया और इन्द्रिय विज्ञान शास्त्र को आधुनिक पद्धति के अनुसार सीखने के लिए ग्रन्थ तैयार करने की विशेष आवश्यकता है और विद्वान वैद्य एवं विद्यानुरागी डाक्टरों को यह कार्य तुरत कर डालना चाहिये। अपने देश में उत्पन्न औषधि ही उस देश के मनुष्य के लिए हितकर है, इस वचन का हमें निरंतर स्मरण रखना चाहिये। हमारी औषधों में गुण है ऐसा निश्चय करके ही विदेशियों ने अपने मेटीरिया मेडिका (Materia medica) औषधि गुण वर्णन-शास्त्र में हमारी औषधों को स्थान दिया है। ब्रिटिश मेटीरिया मेडिका की १९१३ की आवृत्ति में ऐसी औषधें दी हुई हैं, उन्हें आप देख सकते हैं! इतना ही नहीं, आयुर्वेद के दिये हुए रोग मिटाने के उपचार; ऋतुचर्या, दिनचर्या, सद्वृत्त आदि आरोग्यता को कायम रखने के सरल उपदेश भी उसमें वर्णित हैं। सुश्रुत ने अपने रसायनाधिकार में ऐसे उपदेश दिये हैं कि यदि प्रातःकाल उठकर शीतल जल, दूध, शहद और घी इन चार पदार्थों में से एक पदार्थ अथवा दो तीन या चार पदार्थ (जो अपनी प्रकृत्ति के लिए मुआफिक आवे) लिया जाय तो वह जीवन को स्थिर करता है।

शीतोदकं पयः क्षौद्रं सर्पिरित्येकशो द्विशः।
त्रिशः समस्तमथवा प्राक्पीतं स्थापयेद्वयः॥

यह उपाय कितना सरल और प्रत्येक मनुष्य द्वारा होने लायक है। इसी प्रकार की हमारे आयुर्वेद शास्त्र में बहुतसी साधारण वस्तुओं और वनस्पतियों के प्रयोग हैं जिनका यदि सेवन किया जाय तो शरीर दृढ़ हो, और रोगों का भी नाश हो, यहाँ तक कि रोगों की उत्पत्ति शरीर में हो न सके। प्रान्तीय सरकार एवं राजा महाराजा भी अब इस ओर ध्यान देने लगे हैं और उन्होंने आयुर्वेद कालेज, आयुर्वेद-शिक्षालयों को यथेष्ट सहायता देना स्वीकार किया है। इस वर्ष आयुर्वेद की उन्नति के लिए डाक्टर वामन देसाई रचित "औषध संग्रह" रावल बापालाल का "आदर्श निघंटु" पंडित हरिप्रपन्न का 'रसयोग सागर' डा० नाडकरणी का "मेटीरीआ मेडिका" आदि पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। भाइयो! हमें निराश नहीं होना चाहिये। एक बार तात्कालिक फल हमें न दिखाई दे तौभी प्रयत्नशील रह कर यदि सतत् प्रयास हम चालू रखेंगे तो निश्चित किये हुए कार्य में हमें अवश्य सफलता मिलेगी। वर्तमान काल में जिस प्रकार आयुर्वेद का अरुणोदय हुआ दिखाई देता है उसी प्रकार आयुर्वेद रूपी सूर्य के प्रखर किरणों का भी दर्शन होगा। यूरोप अमेरिका में विज्ञान की अभिवृद्धि से नवीन-नवीन शोध के सम्बन्ध में हम सुना करते हैं, अभी कुछ दिन हुए उन्हें ज्ञात हुआ है कि लहसुन के उपयोग से क्षय रोग में लाभ होता है, बहुत से डाक्टर लहसुन का रस क्षय रोग में पिचकारी द्वारा शरीर में प्रवेश करते हैं। एक दूसरे अमेरिकन डाक्टर की राय है कि सब मिलाकर दिन भर में ३० से ६० गेहूँ के वजन भर क्षय रोग वाले रोगी को लहसुन देने से अत्यधिक लाभ पहुँचता है। यह उनके मन से नवीन शोध है किन्तु हमारे सुश्रुत के उत्तरतंत्र में कहा है कि विधि पूर्वक लहसुन का प्रयोग क्षय रोग में करना चाहिये—

रसोनयोगं विधिवत्क्षयार्तः क्षीरेणवा नाग बला प्रयोगम्।
सेवेत वा मागधिका विधानं तयोपयोगं जतुनोऽस्मजस्य॥

Indira Gandhi National Centre for the Arts

श्रीमान् कै वा. वैद्यराज विष्णुशास्त्री पुराणिक भिषक्चूडामणि ।
संस्थापक–श्रीधूतपापेश्वर आर्यौषधिकारखाना **पनवेल** ।

श्रीयुत वैद्यराज गंगाधरशास्त्री पुराणिक ।
संचालक–श्रीधूतपापेश्वर आर्यौषधिकारखाना
पनवेल ।

श्रीमान् कै. वा. वैद्यराज कृष्णशास्त्री पुराणिक ।
संस्थापक–श्रीधूतपापेश्वर आर्यौषधिकारखाना **पनवेल** ।

Indira Gandhi National
Centre for the Arts

दूसरी खोज यह है कि क्षय रोग में ओपेन एअर ट्रीटमेंट (Open air treatment) खुली हवा में रहने जैसी दूसरी चिकित्सा नहीं है। हमारे शास्त्र में लिखा है कि क्षय के रोगी को बकरी के साथ घूमना फिरना, उसी के साथ रहना और उसी का घी दूध खाना चाहिये। इससे स्पष्ट है कि बकरी के साथ जाने में रोगी को जंगल की शुद्ध वायु और सूर्य की किरणों का लाभ प्राप्त होगा, साथही हलकी कसरत भी हो जायगी जिससे रोगी को लाभ हुए बिना नहीं रह सकता।

अजाशकृन्मूत्रपयोघृतासृङ्मांसालयानि प्रतिसेवमानः।
स्नानादिनानाविधिना जहाति मासादशेषं नियमेन शोषम्॥

अभी हाल का विज्ञान यह कहता है कि एक क्षय रोगी के लिए हाइपोफोसफाइट ऑफ लाइम (Hypophosphite of lime) जैसा चूना का क्षार बड़ी ही लाभ जनक वस्तु है, उसी प्रकार हमारे यहाँ भी मोती भस्म, प्रवाल भस्म आदि चूना के क्षारों का क्षयरोग में विशेष उपयोग करने में आता है। थोड़े ही दिनों पहले तक अंग्रेजी में स्वर्ण के सम्बन्ध में कोई भी विवेचन नहीं था। उनका उस समय कहना था कि स्वर्ण में ऐसा कोई भी उत्तम औषध-गुण नहीं है और वह बिना पचे ही निकल जाता है, किन्तु उन्होंने अब स्वर्ण के बहुत से क्षार बना कर उसका उपयोग करना प्रारंभ किया है। एक डाक्टर ने तो स्वर्ण से ऐसी दवा निकाली है कि उससे सर्प का विष उतर जाता है। यही शोध वाग्भट्ट में स्पष्ट रीति से लिखी हुई है।

न सज्जते हेमपात्रे पद्मपत्राम्बुवद्विषम्।

अधिकांश लोगों के मनमें यह शंका है कि डाक्टरों ने पिचकारी द्वारा लोहू में दवा प्रवेश करने की रीति नवीन खोज निकाला है और जिसका प्रचार वे दिनो-दिन बढ़ाते जा रहे हैं, इसका वर्णन आयुर्वेद में नहीं है। किन्तु यह बात नहीं है। हमारे शास्त्र में भी इस खोज का मूल स्पष्टतः दिखाया गया है। रस-शास्त्रों में कहा है—

रक्तभेषज संपर्कान् मृतावस्थोऽपि जीवति

हम ऐसे उग्र उपायों का उस समय उपयोग करते थे जिस समय रोगी को बचाने का दूसरा कोई मार्ग नहीं रह जाता था। किन्तु ऐसी उग्र वस्तुओं का उपयोग वारंवार नहीं किया जा सकता क्योंकि इसका फल लाभ के बदले हानि होता है। हमारे "सूचिका-भरण रस" के सम्बन्ध में वैज्ञानिकों के सामने डा० जगदीशचन्द्र बोस ने एक मेढ़क पर एक्सपेरिमेंट (Experiment) करके दिखा दिया है कि वह वनस्पति-जीवन और उसके हृदय की अंतरंग गति पर आश्चर्यजनक बल देता है। उन्होंने कुमायूँ पर्वत की एक वनस्पति के सत्व से मेढ़क के हृदय की गति को सचेतन किया था। इस सम्बन्ध में खोज करने वाले को ऐसी ही अनेक वनस्पतियाँ जंगलों में प्राप्त हो सकेंगी। चरकऋषि तो यहाँ तक कहते हैं कि जिस औषध का नाम गुण, दोष आदि तुम न जानते हो उसे उस जंगल में रहने वाले ग्वाल, भील, मरवाड आदि से पूछ लो। जल्दी में हमें कोई काम नहीं करना चाहिये। आजकल लोग जल्दी से जल्दी रोग को अच्छा करना चाहते हैं किन्तु उसके बुरे परिणाम की ओर ध्यान नहीं देते। एक कीनाइन को ही ले लीजिये, जिसका संबंध प्रत्येक व्यक्ति से है। इसके सेवन से ज्वर एक बार दब तो जाता है किन्तु आठवें पन्द्रहें उठकर बराबर छः छः महीने तक तंग किये रहता है।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

भाइयों ! जिस प्रकार और प्रान्तों की सरकार ने आयुर्वेद की उन्नति के लिए धन-व्यय करने का निश्चय किया है वैसे ही हमें बंबई सरकार से भी इस ओर ध्यान देने की प्रार्थना करना चाहिये। शायद वह मद्रास सरकार द्वारा खोले गये पाठशाला के सफलता की ओर दृष्टि लगाये हुए है। मद्रास सरकार द्वारा प्रति वर्ष अधिकाधिक दिये जाने वाली ग्रांट से पता लगता है कि पाठशाला दिनों दिन अच्छी स्थिति पर आती जा रही है। हमें शहर-शहर गाँव-गाँव में आयुर्वेद की उन्नति के लिये दवाखाना खोल कर लोगों में प्रचार करना चाहिये।

सद् गृहस्थों, सुशील बहनों एवं विद्वान वैद्य बन्धुओं ! आपका मैंने अत्यधिक समय लिया है इसके लिए और मेरे व्याख्यान में जहाँ कहीं पिष्ट-पेषण जैसा लगता हो उसके लिए क्षमा माँगते हुए, तथा हमारे आयुर्वेद का अभ्युदय दिनों दिन बढ़ता जाय, ऐसी शुभेच्छा के साथ मैं अपना व्याख्यान समाप्त करता हूँ।

Indira Gandhi National
Centre for the Arts

श्रीमान् राजवैद्य पं. एस. एम. शर्मा. (सूरजमल्ल शर्मा) अहमदाबाद,
अध्यक्ष, कच्छ–काठियावाड–गुजरातप्रान्तीय ५ वैद्यसंमेलन, वसई (सन १९३२)।

Indira Gandhi National
Centre for the Arts

॥ श्रीः ॥

अहमदाबाद-निवासी

राजवैद्य पं० श्रीसूर्यमल्लजी शर्मा महोदय का

संक्षिप्त जीवन-चरित्र

शर्मा जी का जन्म उदयपुर राज्यान्तर्गत चौखड़ी ग्राम में जागीरदार पण्डित गिरिधर-लालजी के कुलीन घर में वि० सं० १९५३ चैत्र कृष्ण १३ को हुआ था। आप ९ महीने की उम्र में ही पनेरी जी श्री पं० देवकृष्ण जी जो प्रतिष्ठित खानदान के हैं, उनके सन्तान न होने से गोद आ गये थे, किन्तु १२ वर्ष के बाद उनको सन्तान होने से उसी समय बड़ी प्रसन्नता-पूर्वक उनसे हट गये।

प्रारम्भ में उदयपुर महाराणा हाई स्कूल में मेट्रिक तक अध्ययन कर मेवाड़वासी राजवैद्य मगनलाल लक्ष्मीराम से आयुर्वेद का अध्ययन किया। आप संस्कृत, इंग्लिश, गुजराती, मराठी भाषा के अच्छे ज्ञाता हैं।

आप विद्वत्ता, कार्यदक्षता उत्साह एवं परमार्थ भावना को लेते हुए व्यवसाय के आरम्भ से ही सन्मान एवं कीर्ति प्राप्त किये हुए हैं। आप १५ वर्ष से अहमदाबाद में चिकित्सा-व्यवसाय कर रहे हैं।

आप अहमदावाद वैद्यसभा के ४ वर्ष तक सभापति रह चुके हैं। श्री गुजरात कच्छ काठियावाड़ पंचम वैद्य सम्मेलन वसई के आप ही सभापति थे।

सार्वजनिक कार्य

अहमदाबाद वैद्यसभा, आयुर्वेद वाचनालय आदि संस्थाओं की सेवा तन, मन एवं धन से आपने पर्याप्त की है।

स्वभाव

आप सरल स्वभाव वाले हैं। सर्वसाधारण से आप प्रेम करते हैं। वैद्यों से आप बड़े स्नेह से मिलते हैं। अतिथि-सत्कार के लिये तो आपके हृदय में पूर्ण स्थान मिला हुआ है।

अहमदाबाद में वैद्य सम्मेलन

शर्माजी की पूर्ण इच्छा थी कि अहमदाबाद में वैद्य-सम्मेलन किया जाय। इस सम्मेलन में आपने तन, मन एवं धन से पूर्ण सहयोग दिया। लिखना अरुचिकर न होगा कि सम्मेलन के समय आगत वैद्यों के लिये अपना मकान उनके लिये भोजन, मोटर आदि की सुव्यवस्था से स्वागतकारिणी को भी कष्ट से बचाया। सभापति आदि विशिष्ट-विशिष्ट वैद्य आपके मकान पर ही ठहरे थे। आपके ही पूर्ण सहयोग से यह अभूतपूर्व सम्मेलन हुआ।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

सन्मान

अहमदाबाद में आप शर्माजी के नाम से ही प्रसिद्ध हैं, आप प्रेमालु निस्वार्थ एवं निराभिमानी व्यक्ति हैं तथा आयुर्वेद के आप अनन्य भक्त हैं। अहमदाबाद के धनीमानी सेठ साहूकार सभी आपकी चिकित्सा से लाभ उठाते हैं। जैसे यह लाभ उठाते हैं तदनुसार गरीबों के लिये भी आप उतना ही आदर देते हैं। इसलिये गरीब एवं अमीर सभी के हृदय में आपके प्रति अपूर्व सम्मान है।

ज्ञान

शर्माजी आयुर्वेद के ग्रन्थों के ज्ञान के साथ-साथ वनस्पति शास्त्र के भी अच्छे ज्ञाता हैं। काश्मीर आबू आदि पर्वतों से तथा महात्माओं से आपने यह ज्ञान प्राप्त किया है। आप रसचिकित्सा एवं आसवादि निर्माण में विशेष दक्ष हैं।

आप १॥ वर्ष से बम्बई में विराजते हैं। यहाँ पर बड़े सन्मान एवं योग्यता से आपका चिकित्सा कार्य चल रहा है। यहाँ के धनीमानी मिल मालिक सेठ एवं गरीब आपकी चिकित्सा से लाभ उठा रहे हैं।

आपके बम्बई पधारने से वैद्यसमाज को बहुत गर्व है। ईश्वर आपको चिरायु करें, दिनों-दिन आपको उन्नत करे। भारत में ऐसे सुयोग्य विद्वान् अनुभवी एवं आयुर्वेद के अनन्य भक्त वैद्यों की बड़ी भारी आवश्यकता है।

चिकित्सा-शास्त्र में आप सिद्धहस्त हैं, तदुपरान्त असाध्य कुष्ठ, केन्सर, अपेन्डिक्स, क्षय आदि रोगों के भी विशेषज्ञ हैं।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

श्री धन्वन्तरये नमः

गुजरात कच्छ काठियावाड पञ्चम् प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन के

सभापति राजवैद्य एस. एम. शर्म्मा अहमदाबाद का

भाषण

परम माननीय, धन्वन्तरि तुल्य वैद्य महोदय तथा उपस्थित बन्धुओं! इस वर्ष अध्यक्ष स्थान के लिये सर्वप्रथम प्राणाचार्य, वैद्यराज, पं० सुखरामदासजो टी० ओझा कराची-निवासी का निर्वाचक प्रान्तीय वैद्यों के बहुमत से हुआ था। परन्तु खेद है कि ओझा जी अस्वस्थता के कारण इस स्थान को स्वीकार न कर सके। ओझा जी द्वारा इस स्थान को अस्वीकृत हो जाने पर नियमानुसार क्रमशः बम्बई निवासी आयुर्वेद मार्तण्ड पूज्य पं० यादव जी त्रिकम जी आचार्य और गोंडल-निवासी राजवैद्य पं० जीवरामभाई कालिदास जी शास्त्री से इस पद के लिये प्रार्थना की गई। परन्तु खेद है कि इन दोनों महानुभावों ने भी हमारे दुर्भाग्यवश, अपनी अस्वस्थता के कारणों से इस पद के स्वीकार करने में असमर्थता प्रगट की। अन्त में स्वागताध्यक्ष और पूज्य आचार्य श्रीमान् यादवजी भाई के तथा अन्य वैद्य बन्धुओं के आग्रह से इस पद के लिये अपने आप अयोग्य समझते हुए भी और इस सभा में मुझसे अधिक ज्ञानवृद्ध, वयोवृद्ध, वैद्य महोदयों के विद्यमान होने पर भी, आप महानुभावों ने मुझे इस पद को ग्रहण करने की जो आज्ञा दी है, आप लोगों की उस आज्ञा का पालन करना अपना कर्तव्य समझ कर ही मैं इस पद को नम्रतापूर्वक ग्रहण करता हूँ। इसके लिये मैं आप सबका कृतज्ञ हूँ। जो जिम्मेदारी का पद आप सज्जनों ने मुझे सौंपा है, उसके योग्य मैं कदापि नहीं हूँ। परन्तु मुझे विश्वास है कि आप-जैसे उदार और योग्य आयुर्वेद-प्रेमियों की कृपा से ही मैं यह सेवा करने में सफलता प्राप्त कर सकूँगा। मैं आप महानुभावों का आशीर्वाद चाहता हूँ, जिससे मेरा चित्त स्वार्थ या रागद्वेष की ओर न जाकर आयुर्वेद की शुद्ध सेवा में संलग्न रहे।

मान्यवर भद्र पुरुषों! मैं सर्वाङ्ग सम्पूर्ण आयुर्वेद का पूर्ण ज्ञाता नहीं हूँ, परन्तु आयुर्वेद का सच्चा भक्त अवश्य हूँ। मुझे विश्वास है कि संसार का सुख आयुर्वेद द्वारा ही हो सकता है।

आयुर्वेद किसे कहते हैं—ऋषियों ने लिखा है—शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा के संयोग को आयु कहते हैं। और जिस शास्त्र से आयु का हिताहित का ज्ञान, रोग का निदान और शमन हो, उसे आयुर्वेद कहते हैं।

आज इस भूतल पर जितने देश हैं सभी के आयुर्वेद अलग-अलग हैं। परन्तु सब देशों के आयुर्वेद की उत्पत्ति हमारे आयुर्वेद ही से हुई है।

धन्य है, उस जगदाधार जगदीश्वर निर्विकार को जिसने इस संसार में अपनी इच्छा से अनेक प्रकार के द्रव्यों को प्रगट किया, और ब्रह्मादिक देवता तथा अग्निवेशादि ऋषि मुनियों

Indira Gandhi National Centre for the Arts

ने सहस्त्रों वर्ष तप करके उन्हीं औषधियों के आश्रय से अपने-अपने नाम से संहिता-निर्माण करके अपने शिष्यों को विधिपूर्वक अध्ययन कराया। वह आयुर्वेद शास्त्र भारतवासियों के दुःख दूर करने का और शरीर को स्वस्थ्य रखने का एक महासागर के समान विशद, विशाल और महा गम्भीर अमृत का भाण्डार था। देवासुर संग्राम में देवताओं ने जो अमरत्व प्राप्त किया था, वह इसी आयुर्वेद का प्रताप था। इसी सुधासागर का रसपान करके प्राचीन आर्यगण दीर्घायु और बलवान होकर स्वास्थ्यमय जीवन सम्भोग करते थे। इस आयुर्वेद को पढ़ने से तृणादिक से लेकर शिरोभूषण मणिमाणिक्यादि तक द्रव्यों का आश्चर्य गुण जानकर सृष्टिकर्त्ता का अपार महात्म्य निश्चय होता है। यह आयुर्वेदीय चिकित्सा सम्पूर्ण चिकित्साओं का मूल है, और इसी चिकित्सा का सब जगत् में प्रचार था। जो विचार कर देखा जाता है तो आयुर्वेद की संहिताओं के अतिरिक्त और ग्रन्थों को भी साधारण पुरुषों ने नहीं रचा। वह ऐसे पूर्ण विद्वान् थे जो अपनी ज्ञान दृष्टि से भूत, भविष्य समय को वर्तमान समय के समान प्रत्यक्ष रूप से देखते थे। और अपने योगबल से जगत् के सम्पूर्ण विषयों को भली भाँति जानते थे। उन्हीं त्रिकालदर्शी जगदुपकारी महर्षियों ने संसार के उपकार के लिये उत्तमोत्तम आयुर्वेद के ग्रन्थ निर्माण किये ओर कोई विषय शेष नहीं छोड़ा। आठ भागों में विभक्त करके अलग-अलग स्वतन्त्र ग्रन्थ बनाये। किसी ने शस्त्र-चिकित्सा, किसी ने उर्ध्वजत्रु (कण्ठ से उपर नेत्रादि की) चिकित्सा किसी ने ज्वरातिसार आदि काय-चिकित्सा, किसी ने बाल-चिकित्सा, किसी ने ग्रह-पीड़ित प्राणियों की चिकित्सा, किसी ने विष-चिकित्सा, किसी ने रसायन-चिकित्सा और किसी ने वाजीकरण-चिकित्सा को मुख्य मानकर बड़े-बड़े विलक्षण ग्रन्थ रचे। इसके सिवाय किसी-किसी ने और-और रोगों की चिकित्सा भी उत्तम रीति से अपने ग्रन्थों में लिखी। आयुर्वेद में किसी प्रकार की चिकित्सा का अभाव नहीं है। जिस विषय की आवश्यकता होती थी, वही विषय मिल जाता था। इस कारण भारतवर्ष के मनुष्य विदेशी-चिकित्सा का कभी आश्रय नहीं लेते थे। सदैव आयुर्वेद ही की योग-क्रियाओं से सहज में सर्वरोग-मुक्त हो जाते थे। और उस चिकित्सा में एक बड़ी विशेषता यह थी कि जिसने एक बार रोग से मुक्ति पाई, फिर शीघ्र ही वह रोग की फाँसी में नहीं फसता था। इस आयुर्वेदीय चिकित्सा की कहाँ तक प्रशंसा करें। यह रामवाण की तरह कार्य सिद्ध करने वाली है। हमारी आयुर्वेदीय चिकित्सा पुराने और कठिन महा-भयानक रोगों के समूहों को शमन करती है, इस देश के मनुष्यों के स्वभावानुकूल इसी देश की औषधि हैं। दूसरे देश की कदापि स्वाभावानुकूल नहीं हो सकती, वरन् भारतवासियों के लिये इस देश की औषधि कल्याणकारी और कष्टहारी हैं ही, परन्तु और देशों के लिये भी परम हितकारी है। आप यह निश्चय जान लें कि इस आयुर्वेद विद्या का मूल भारत-भूमि ही है। पीछे और देशों में प्रचार हुआ। जैसे कि ग्रीक, अरब आदि। भारतीय चिकित्सा की प्राचीनता पर निम्नलिखित विद्वानों की सम्मतियाँ:—

प्रोफेसर रायली साहब लिखते हैं—हिन्दुओं का आयुर्वेद पुराना है। अरब और यूनान वालों से बहुत पहले का है।

प्रोफेसर विलसन महोदय लिखते हैं—भारत में बहुत प्राचीन काल से चिकित्सा, ज्योतिष और दर्शन-शास्त्र के पारदर्शी विद्वान मौजूद थे।

पण्डितवर एल्फिन्सटन साहब लिखते हैं—भारतवर्ष से ही यूरोप वालों ने चिकित्सा विद्या सीखी थी, रासायनिक सिद्धान्तों में हिन्दुओं का विज्ञान आश्चर्यजनक है, वे सल्फ्यूरिक

Indira Gandhi National Centre for the Arts

एसिड, नाइट्रिक एसिड, म्यूरेटिक एसिड, तांबा, लोहा, सीसा, कली और जस्ता के औक्साइड; लोहा, तांबा, पारा और संखिये के सल्फ्युरेट; तांबा, जस्ता, लोहा के सल्फेट और सीसा और लोहा के कार्बोनेट, तैयार करना जानते थे और यह चीजें तैयार करने के उनके तरीके बड़े विचित्र थे।

अयुल उल नामक एक अरबी ग्रन्थ में लिखा है—आठवीं सदी में भारत के पण्डित बगदाद की राजसभा में आयुर्वेद और ज्योतिष की शिक्षा देते थे।

चरक, सर्संस, और वेदान ये तीन चिकित्सा ग्रन्थ हिन्दुस्थान से अरब में लाये गये थे। अरब से इन ग्रन्थों का अनुवाद यूरोप में गया। सत्रहवीं शताब्दी तक अरबी चिकित्सा प्रणाली यूरोपीय चिकित्सा की मूल थी। प्राचीन भारतवासियों ने ही पहिले-पहिल शव का चीर-फाड़ कर शरीर-रचना का अध्ययन आरम्भ किया था और शस्त्र-चिकित्सा भी करते थे। यूरोप के दिग्विजयी सिकन्दर की सेना की चिकित्सा के लिये भारतीय वैद्य नियुक्त हुए थे। असाध्य रोगों को नष्ट करने के लिये वह बहुत से भारतीय वैद्यों को बड़े मान से अपने साथ ले गया था। बगदाद के खलीफा हारूँरशीद अपनी चिकित्सा के लिये भारतीय वैद्यों को रखते थे। प्रसिद्ध हकीम जालीन्स अपनी पुस्तक में लिखते हैं—आयुर्वेद विद्या पहिले भारत से मिश्र देश में और वहाँ से यूनान और अरब में गई। एक चिकित्साशास्त्र ही नहीं, और भी अनेक विद्याएँ भारत से ही सब देशों में पहुँची है। अब अधिक कहने की आवश्यकता नहीं, ऐसे अनेक प्रमाण हैं जिनसे साबित होता है कि पृथ्वीतल में जितनी विद्याएँ हैं, उन सबका उद्गम स्थान भारतवर्ष ही है। इसमें जरा भी सन्देह नहीं। वैद्य महानुभावो, जरा विचारिये तो सही कि एक दिन वह था जब कि सिकन्दरे आजम भारतीय वैद्यों को चिकित्सा के लिये अपने साथ बड़े मान और आदर के साथ ले गया था। बगदाद के खलीफा अपनी चिकित्सा के लिये भारतीय वैद्यों को रखते थे। एक दिन वह था कि अरस्तून और अफलातून जैसे चिकित्सक भारत से आयुर्वेद की शिक्षा प्राप्त करके जगत के श्रेष्ठ चिकित्सकों में परिगणित हुए थे और एक दिन आज का है कि भारतीय चिकित्सा निकम्मी समझी जाती है। आयुर्वेद के उस गौरव और आयुर्वेद की उस उन्नति में और आज की अवनति में जमीन आसमान का अन्तर है। कहाँ वे दिन और कहाँ ये दिन। सोचने से बड़ा खेद होता है। खेद होवे उसमें आश्चर्य ही क्या है! एक दिन भारतीय चिकित्सा शास्त्र ने दुनियाँ में सर्वोच्च आसन ग्रहण किया था, और आज उसे सबसे नीचा आसन भी नहीं मिलता। जो विदेशी हमें अर्धसभ्य और मूर्ख बताते हैं उनके पूर्व पुरुष जिस जमाने में सचमुच बनमानुष थे। अपने रहने के लिये घर बनाना भी नहीं जानते थे। उनसे हजारों वर्ष पहले भारतवर्ष में ऐसे वैद्यरत्न हो गये हैं; जिन्होंने मनुष्यों के कटे हुए शिर जोड़ दिए हैं। अन्धों को नेत्रयुक्त कर दिया, बूढ़ों को जवान बना दिया, ऐसे कार्य अश्विनी कुमारों द्वारा हुए हैं। यह आप बन्धुओं को ज्ञात है। भेद इतना ही है कि भारत का सितारा बुलन्दी पर नहीं है। आज इसकी दशा गिरी हुई है। इससे सर्व बातें झूठ प्रतीत होती हैं। पर सूर्य कहीं छिपाये नहीं छिपता। इसी से पक्षपात-शून्य बहुत से यूरोपीय विद्वानों ने भी आयुर्वेद के गौरव की बात मुक्त-कण्ठ से स्वीकार की है। जब तक विदेशियों का पदार्पण नहीं हुआ तब तक भारतीय चिकित्सा विद्या दिन दूनी उन्नति कर रही थी। जब हिन्दू सम्राट् दिल्लीश्वर पृथ्वीराज महाराज का पतन हुआ और मुसलमानी शासन इस देश में जारी हुआ तब मुसलमानी शासन

Indira Gandhi National Centre for the Arts

के जमाने में हकीमों की कदर हुई और वैद्यों की बेकदरी हुई। इसी से आयुर्वेद विद्या का दिन ब दिन प्रचार घटता गया, और उस जमाने में अनेकानेक आयुर्वेद चिकित्सा ग्रन्थ जला दिये गये थे, जिससे इस चिकित्सा की पूर्ण अधोगति हुई है। जब ब्रिटिश गवर्नमेंट इस देश की मालिक हुई, यहाँ ही से हजारों औषधि विलायत लेजा लेजाकर उनके सत्त, पाउडर, गोली, टिंचर तैल वगैरह बना कर उनको मनोमुग्धकारिणी शिशियों और डिब्बियों में बन्द करके उनके ऊपर रंगीन चटकदार खूबसूरत लेबल लगा कर यहाँ भेजने लगे। इसमें शक नहीं कि उन्होंने यह कार्य बड़े कठिन परिश्रम से किया है, इसलिये वे किसी प्रकार भी दोष भागी नहीं। यह तो मनुष्य का धर्म ही है, पर दोष भागी हम और हमारी पिछली सदी में होने वाले पूर्व पुरुष हैं। जो आलसी की तरह चुपचाप बैठे-बैठे देखा किये। अब जब आँख खुली उन्नति-उन्नति पुकारने लगे। अब जब रोग असाध्य हो गया है तो सहज ही में नहीं जा सकता।" अब धीरे-धीरे उसका उपाय सोच कर साध्य बनाने का यत्न करना चाहिये। एलोपैथी की ऐसी उपरी सुन्दरता देखकर यहाँ के लोग उसकी तरफ सब के सब ढल पड़े। क्योंकि औषधियों के कूटने, पीसने, काढ़ा बनाने, औटाने, और छानने की सब दिक्कतें मिट गईं, और शस्त्र-चिकित्सा में डाक्टरों के हाथ की सफाई देख कर यहाँ वालों ने उन्हें देव ही मान लिया है। जिन्होंने अंगरेजी पढ़ी है, जिन्होंने विद्वत्ता सूचक डिग्रियाँ प्राप्त की है, वे भारतवासी हिन्दू सन्तान होते हुए भी आयुर्वेद चिकित्सा को हिकारत की नजर से देखते हैं। जो विलायती दवाओं से कोसों दूर भागते थे जो प्राणों के कण्ठ में आने पर भी मद्य मिश्रित दवा लेना पसन्द न करते थे, वे भी आजकल विलायती दवा गटागट पीते हैं। जिस जमाने में भारत में आयुर्वेद का पूर्ण प्रचार था, तब लाखों पंसारियों की दुकानें अव्वल दर्जे की थीं। उनके यहाँ हर तरह की उत्तमोत्तम औषधियाँ हर समय तय्यार मिलती थीं। वे लोग रोज काम पड़ने से दवाओं के नाम और गुण जानने में आजकल के अधिकांश वैद्यों से अच्छे होते थे। वैद्यगण जिनके यहाँ अच्छी और ताजी औषध मिलती थी, उन्हीं के यहाँ से औषधि खरीदते थे। जो पंसारी सड़ी घुनी दवा रखते थे उनका बहिष्कार करते थे। इसीसे धंधा मारे जाने के भय से वे सदा आयुर्वेद के नियमानुसार नयी पुरानी जैसी जैसी दवाएँ रखनी चाहिये वैसी वैसी ही रखते थे। अब पंसारी वैसा कार्य नहीं करते, काम नहीं पड़ने से उनके नाम भूल जाते हैं। नई पुरानी का तो उन्हें खयाल ही नहीं, पाँच वर्ष हो जाय चाहे युग हो जाय जब तक दवा थैली में रहती है, बेचते रहते हैं। अनेक बार एक के बदले दूसरी दवा देते हैं। पहले वैद्य-चिकित्सा में काम आने वाली प्रत्येक जड़ी-बूटी को भली भाँति पहचानते थे। स्वयं जंगल में जाकर ले आते थे। इसलिए पंसारी भी डरते थे। परन्तु आजकल के अधिकांश वैद्य पंसारियों से भी गये बीते होते हैं, पुस्तकों से नुसखे लिख कर ले जाते हैं और पंसारी से कहते हैं ठीक-ठीक औषध देना। पंसारी दो-चार बार में वैद्यजी के औषधि ज्ञान की थाह ले लेता है और फिर मनमानी करता है। जब असल हथियार की यह दशा है तब चिकित्सा में सफलता कैसे होवे? सभी जानते हैं कि जिसके पास अच्छे-अच्छे हथियार होते हैं वही शत्रु को युद्ध में परास्त कर सकता है। चिकित्सा करना बड़ी होशियारी और जिम्मेदारी का कार्य है। वैद्य की शरण में आये हुए रोगी का जीवन-मरण वैद्य की चिकित्सा चातुरी पर ही निर्भर है। इसलिये पहले जमाने के विद्वान् चिकित्सा-तत्व मर्मज्ञ वैद्य उत्तमोत्तम शिष्यों को इस विद्या की शिक्षा देते थे। जिन मनुष्यों के स्वभाव में

Indira Gandhi National Centre for the Arts

सहृदयता, दयालुता, परोपकारिता नहीं देखते थे उन्हें अपने पास भी नहीं फटकने देते थे। विद्वानों को अपना शिष्य बनाकर और स्वयं निष्कपट भाव से आयुर्वेद विद्या पढ़ाते थे, एक-एक विषय को खोल-खोल कर समझाते, उनकी शङ्काओं का समाधान करते थे और औषधियों की पहचान कराने के लिये उन्हें अपने साथ जङ्गलों और पहाड़ों में ले जाते थे। इस तरह परिश्रम करने पर जब शिष्य आयुर्वेद में पारदर्शी हो जाता था, वनौषधियों के नाम, रूप और गुण के पहचानने में परिपक्व हो जाता था, शल्य, शालाक्य और कायचिकित्सा कर्म में अनुभवी हो जाता था, हस्त-क्रिया में निपुण हो जाता था, तब गुरु महाशय उसकी परीक्षा लेकर उसे चिकित्सा कार्य में हाथ डालने की आज्ञा करते थे। शिष्य भी जब तक पूर्ण पण्डित और अनुभवी न हो जाता था, गुरु का पीछा नहीं छोड़ता था, गुरु से आशीर्वाद लेकर वैद्य का व्यवसाय करता था, कहिये, आजकल वैसे गुरु और शिष्य कहाँ? आजकल पहले की भाँति कौन आयुर्वेद सिखाता है और कौन सीखता है। यद्यपि अब भी भारत में भिषक-श्रेष्ठ प्राणदाता सद्वैद्यों का नितान्त अभाव नहीं है तथापि ऐसे पूर्ण वैद्य अंगुलियों पर गिने जाने योग्य ही हैं। आयुर्वेद के ऊपर अवैज्ञानित्व का आक्षेप करने वालों को भूत-पूर्व अध्यक्ष महोदयों ने सप्रमाण उत्तर देकर आक्षेपों का निवारण भी किया है, तो भी यहाँ मुझे खेद से कहना पड़ता है कि कुछ अन्य चिकित्सा प्रणाली वालों को आयुर्वेद की यह उन्नति खटकती है। सज्जन, विचारशील डाक्टर बन्धु तो इसका आदर करते हैं और भली प्रकार जानते हैं कि आयुर्वेदिक चिकित्सा में ऐसे अमूल्य रत्न छिपे पड़े हैं जिनसे संसार का बहुत उपकार हो सकता है। कई लोग बिना कारण ही आक्षेप किया करते हैं, परन्तु एक बात स्पष्ट है कि कुछ आक्षेप सत्य भी हैं, जैसे देशी चिकित्सा में नियमित रूप से शिक्षा नहीं है, इसमें झूठी डिग्रियाँ देने वाले बहुत हैं, जो चाहे वह वैद्य बन जाय इत्यादि। पर इन त्रुटियों का उत्तरदायित्व हमारे वैद्य-समाज पर नहीं है। अगर सरकार आयुर्वेदीय चिकित्सा प्रणाली को अपना ले और एलोपैथी की तरह उत्तम शिक्षा के लिये जगह-जगह स्कूल कालेज खोले जायँ, तो आशा है कि चन्द साल बाद ही आयुर्वेद-चिकित्सा-प्रणाली में जो त्रुटियाँ नज़र आती हैं, वे सबकी सब मिट जायँ और इस चिकित्सा-प्रणाली में एकदम से परिवर्तन हो जाय। इसके होने से Quacks का नाम निशान भी न रहे।

निदान की आधार शिला

त्रिदोष विचार

आयुर्वेदिक रीति से निदान करने के लिये वात, पित्त और कफ इनको भली भाँति समझ लेना चाहिये। क्योंकि हमारे पूर्वाचार्यों ने सब दारमदार वातादि दोषों पर ही रखा है। वात, पित्त और कफ इनको दोष और धातु कहते हैं। धातु और मल इनसे दूषित होते हैं इसलिये इनको दोष कहते हैं। और देह को धारण करते हैं इसलिये इनको धातु कहते हैं। "वायु" अन्य दोषों और रस, रक्त, मांस, मेद आदि धातुओं को एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाने वाला, रजोगुण युक्त, सूक्ष्म हलका रूखा और चंचल है। सब दोषों में वायु ही प्रधान है। बिना वायु के प्राणी क्षण भर भी जिन्दा नहीं रह सकता, यह शरीर में सफाई करता है, और मल-मूत्र को निकाल कर बाहर फेंकता है।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

वायु के पाँच रहने के स्थान—कण्ठ, हृदय, कोठे की आग, मलाशय और सारे शरीर में। कण्ठ में उदान वायु, हृदय में प्राण वायु, कोठे की अग्नि के नीचे नाभी में समान वायु, मलाशय में अपान वायु और सारे शरीर में व्यान वायु रहता है।

पाँचों वायु के कार्य—उदान वायु गले में रहता है, इसीसे प्राणी बोल सकता है, जब कुपित होता है तब कण्ठ के रोग उत्पन्न करता है, प्राणवायु, यह प्राणों को धारण करता है, और प्राणों की रक्षा करता है, यह कुपित होकर हिचकी और श्वास-रोग उत्पन्न करता है।

समानवायु, यह आमाशय और पक्वाशय में विचरता और जठराग्नि से मिलकर अन्न को पचाता और मल से उत्पन्न मल-मूत्रादि को अलग-अलग करता है। यह कुपित होकर मन्दाग्नि, अतिसार, वायुगोला आदि रोगों को उत्पन्न करता है।

अपान वायु पक्वाशय में रहता है। मल, मूत्र, शुक्र, गर्भ और आर्तव इनको निकाल कर बाहर फेंकता है, यह कुपित होकर मूत्राशय और गुदा के रोग पैदा करता है।

व्यान वायु सारे शरीर में विचरता है। यह रस, पसीना और खून को बहाता है। जाना, नीचे को डालना, ऊपर को फेंकना, आँख मीचना, खोलना ये क्रियायें इसी के आधीन है। यह कुपित होता है तब सारे शरीर के रोग उत्पन्न करता है।

पित्त एक तरह का पतला पदार्थ है, यह गरम है, इसका रंग पीला होता है।

पित्त के पाँच स्थान—अग्न्याशय में पाचक पित्त, यकृत और तिल्ली में रञ्जक, हृदय में साधक, दोनों नेत्रों में आलोचक, सारे शरीर और त्वचा में भ्राजक पित्त रहता है—

पाचक पित्त आमाशय में और पक्वाशय में रह कर सब आहारों को पचाता है इसी को जठराग्नि कहते हैं।

रञ्जक-पित्त रस का रक्त बनाता है।

साधक पित्त बुद्धि धृति यानी मेधा और स्मरण-शक्ति बढ़ाता है।

आलोचक इसका काम रूप ग्रहण करना है।

भ्राजक यह कान्ति करता है, और लेप तैल की मालिश और स्नान आदि को पचाता है, याने सुखाता है।

कफ—सफेद भारी चिकना चिलमिलाशा, शीतल तमोगुण युक्त और मधुर होता है, विदग्ध होने से खारी होता है।

आमाशय में क्लेदन, हृदय में अवलम्बन, कण्ठ में रसन, शिर में स्नेहन और सन्धियों में श्लेष्मण कफ रहता है।

क्लेदन-अन्न को गीला करता है। और अपनी शक्ति से कफ के दूसरे स्थानों को भी जल-कर्म द्वारा सहायता देता है।

अवलम्बन-रस युक्त वीर्य से हृदय के भाग का अवलम्बन और त्रिक नामक हड्डी को संधारण करता है।

रसन-रस को जानता है और कण्ठ में रहता है।

स्नेहन-चिकनाई देकर सब इन्द्रियों को तृप्त करता है।

श्लेष्मण कफ सब सन्धियों को जोड़ता है।

इन तीनों दोषों के कोप, क्षय, वृद्धि, कोप का समय, और शान्ति वगैरह का विवेचन कर आप महानुभावों का ज्यादा समय नष्ट नहीं करना चाहता। आधुनिक काल में जो नई-नई

Indira Gandhi National Centre for the Arts

रीतियाँ निदान सम्बन्धी निकली हैं उन सबसे आयुर्वेद चिकित्सा की निदान पद्धति कितनी सरल और उपयोगी है।

आधुनिक काल में जितनी नई पद्धतियाँ निकली हैं, वे सब पृथक पेचीदा और कठिन हैं। और इसमें रोग का निदान करने के लिये अनेक कीमती यन्त्रों की आवश्यकता रहती है और यन्त्रों के अतिरिक्त अनेक साधन रखने पड़ते हैं।

अपने आयुर्वेदिक शास्त्र की पद्धति के अनुसार किसी खास साधन की आवश्यकता नहीं रहती। आयुर्वेदिक रीति के अनुसार निदान करने में बहुत सी सुविधायें होती है। वैसी अन्य पद्धतियों में नहीं पाई जाती। अगर वैद्य को शास्त्रोक्त पूरे-पूरे लक्षण याद न हों तो भी सरलता पूर्वक रोग पहिचान सकता है। किसी ऐसे नये रोग का निदान करने में कठिनता नहीं पड़ती जिसका वर्णन पुस्तकों में नहीं मिलता हो। यदि रोग का नाम मालूम न हो तो भी वैद्य द्वारा उसकी चिकित्सा बड़ी अच्छी तरह से की जा सकती है। क्योंकि आयुर्वेदिक चिकित्सक वातादि दोषों की परीक्षा अच्छी तरह करके इस बात की खोज निकाल कर कि कौन सा दोष कुपित है या कौन सा दोष घटा या बढ़ा है और कौन समान है, जिनकी घटती बढ़ती देखता है, उन्हें समान करने की कोशिश कर समान करता है। दोषों के समान होने से ही रोगी आराम हो जायगा। क्योंकि आयुर्वेद में दोषों की विषमता का नाम ही रोग है। और इनकी समानता का नाम ही आरोग्य है। ऐसी सर्वोत्तम सरल पद्धति किसी भी अन्य चिकित्सापेथी में नहीं है, और इससे मामूली आदमी भी पूरा लाभ उठा सकता है।

और भी अष्टविध परीक्षा निदान करने की है, जैसे नाड़ी-परीक्षा, मूत्र-परीक्षा, मल-परीक्षा, जिह्वा-परीक्षा, शब्द-परीक्षा, स्पर्श-परीक्षा, रूप-परीक्षा और नेत्र-परीक्षा।

नाड़ी-परीक्षा से वात, पित्त, कफ, द्वन्दज, त्रिदोष और साध्य असाध्य जाना जाता है।

वात से नाड़ी वक्र (टेढ़ी) पित्त से चपल और कफ से मन्द चलती है और सब दोषों के कुपित होने से तीनों लक्षणों वाली होती हैं। यद्यपि नाड़ी देखने का काम महा कठिन है और सबों को पूर्ण ज्ञान होना आसान नहीं है। तो भी अभ्यास बढ़ाने से तथा गुरु-कृपा से नाड़ी का ज्ञान पूर्ण हो सकता है। यदि नाड़ी तीनों दोषों के क्रम से चले तो साध्य है और यदि इनसे विपरीत चले तो असाध्य है—अगर नाड़ी कभी मन्द कभी तेज और कभी खण्डित होकर चले और कभी सूक्ष्म कभी स्थूल इस तरह बड़ी-बड़ी चाल बदल कर चलने लगे, स्थान का परित्याग कर दे तो मृत्यु का कारण होती है।

नाड़ीद्वारा भोजन का ज्ञान भी हो सकता है, तैल गुड़ खाने से नाड़ी पुष्ट चलती है। मांस खाने से नाडी लकडी के आकार का चलती है। दुग्ध-पान से मन्द गति से चलती है। इत्यादि इत्यादि। अपने आयुर्वेद में नाड़ी-स्पन्दन संख्या भी है—

तत्काल के हुए बालक की नाड़ी की	एक पल में	स्पन्दन संख्या	५६ वार
१ वर्ष की अवस्थातक	,, १ ,,	,,	५२ वार
१ से २ वर्षतक	,, १ ,,	,,	४४ वार
२ से ३ ,,	,, १ ,,	,,	४० ,,
३ से ७ ,,	,, १ ,,	,,	३६ ,,
७ से १४ ,,	,, १ ,,	,,	३४ ,,
१४ से ३० ,,	,, १ ,,	,,	३२ ,,

Indira Gandhi National Centre for the Arts

३० से	५० ,,	,, १ ,,	,,	३० ,,
५० से	८० ,,	,, १ ,,	,,	२४ ,,

चूंकि १ मिनट २॥ पल के बराबर होता है यह चाल नवीन मत से लगभग मिलती-जुलती है।

नाड़ी-परीक्षा के प्रधान होने पर भी बहुत से रोगों में अन्यान्य परीक्षा से भी बहुत मदद मिलती है जैसे-प्रमेह में मूत्र-परीक्षा की, अतिसार, संग्रहणी में मल-परीक्षा की, आम वात में जिह्वा-परीक्षा की, कण्ठरोग में शब्द-परीक्षा की, चर्म-रोग में स्पर्श-परीक्षा की, प्लीहा और कामला में नेत्र-परीक्षा की आवश्यकता होती है।

मूत्र-परीक्षा से भी करीब करीब बहुत से रोगों का ज्ञान हो सकता है, वात के दोष में मूत्र जल के समान रूखा और अधिक होता है। पित्त के दोष में मूत्र लाल पीला और थोड़ा होता है। कफ के दोष में मूत्र सफेद गाढ़ा और चिकना होता है।

धातुओं की समानता होने से मूत्र कुएँ के जल की तरह साफ होता है—जल की तरह का और कांजी की तरह का मूत्र निर्दोष होता है।

प्रसूत रोगों में मूत्र ऊपर से पीला, नीचे से काला और बुदबुदे की तरह होता है।

क्षय रोग में मूत्र का रंग काला होता है। अगर सफेद रंग होवे तो रोगी असाध्य समझा जाता है।

पित्तज्वर में पीला, कफज्वर में मूत्र का रंग सफेद व झागदार, वातज्वर में मूत्र का रंग काला और विरामज्वर में ईख के रस के समान होता है।

जलोदर में मूत्र घी के दानों के समान होता है।

आमवात में मूत्र माठे के समान होता है।

रुधिर-कोप में मूत्र उपर से नीला और नीचे से लाल होता है।

मूत्र परीक्षा तैल द्वारा—स्वच्छ पात्र में मूत्र धूप में रखकर, मूत्र में तैल की बून्द डाले—अगर तैल की बून्द डालते ही मूत्र में बबूले या बुदबुदे से हो जाय तो पित्त का प्रकोप जाने, अगर तैल की बून्द मूत्र में सूखी और काली दीखे तो वायु का विकार जानना।

अगर तैल की बून्द मूत्र में तालाब के जलके समान हो जाय तो कफ का विकार जाने।

अगर तैल की बून्द मूत्र पर फैल जाय तो रोग साध्य है अगर न फैले तो असाध्य है।

अगर तैल की बून्द मूत्र में नीचे बैठ जाय तो भी रोग असाध्य है।

इसी तरह मल-परीक्षा, शब्द-परीक्षा, स्पर्श-परीक्षा, वर्ण-परीक्षा, जिह्वा-परीक्षा, रूप-परीक्षा, और नेत्र-परीक्षा आदि से भी हरएक रोग की जाँच हो सकती है।

बहुत प्राचीन ग्रन्थों में निदान के लिये नाडी-ज्ञान का वर्णन नहीं आता है। यह पीछे प्रचलित हुई है। जब कभी नई बात मालूम हुई हमारे यहाँ ग्रहण की गई है। कई औषधियाँ हमारे यहाँ भिन्न-भिन्न देशों की वर्त्ती जाती है। जैसे, केसर, कपूर, चोपचीनी इत्यादि। हम नये आविष्कारों के विरुद्ध नहीं हैं। हमारा दावा तो इतना ही है कि आयुर्वेदिक ग्रन्थों में जो है वह ठीक है।

निदान के सम्बन्ध हमारे यहाँ बहुत से रहस्य होते हुए भी, हमको नई रीतियों से सहायता लेने में तनिक भी विरोध नहीं है, परन्तु यह मानने को भी हम तय्यार नहीं हैं कि इनके बिना निदान असम्भव है।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

निदान के लक्षणों की बारीकियाँ हमारे यहाँ वर्णित हैं, यदि उनको पूर्णतया व्यवहार में लाया जावे तो देशी चिकित्सकों के निदान से भी दुनियाँ विस्मित हो जावे।

आश्चर्य तो यही है कि हमारे यहाँ खाली नाड़ी-परीक्षा तथा मूत्र-परीक्षा ही से बहुत से विद्वान् वैद्य रोगी की सारी अवस्था, आदि से अन्त तक बतला दिया करते थे और अब इस वर्तमान समय में भी ऐसे वैद्योंका अभाव नहीं है पर ऐसे पुरुष बहुत कम हैं। विज्ञान के सहस्त्रों आविष्कार क्यों न हो जाँय, किन्तु हमारे सिद्धान्त गलत नहीं हो सकते।

मद्रास कमिटी की रिपोर्ट में प्रोफेसर मोक्षमूलर ने एक स्थान पर लिखा है कि जहाँ हमारी साइन्स समाप्त होती है वहाँ हिन्दुओं की आरंभ होती है। जो-जो तत्ववेत्ता अनुसंधान करते हैं, वे विस्मित होते हैं कि बड़े-बड़े अनुसंधानों के पश्चात् वे जिन परिणामों पर पहुँचते हैं, हिन्दुओं की पुस्तकों में उनका वर्णन पहिले ही विद्यमान होता है। स्वयं डाक्टर ल्यूकस ने कहा था कि अभी डाक्टरों को भारत से बहुत कुछ सीखना है।

आधुनिक विज्ञान यह सिद्ध नहीं कर सकता कि पारा फिरंग को क्योंकर दूर करता है। जब अनुभव से यह सिद्ध हो गया तो सभी डाक्टर इस बात को मानने लगे।

हमारे पूर्व पुरुषों का ज्ञान इतना बढ़ा हुआ था के वे दावा करते थे कि संसार के सब रोग इसी पारद से निवारण हो सकते हैं, पारा गंधक को खरल करके, इसकी कज्जली करके जिस रोग की औषधि के साथ इसे मिलाते जाओ उससे उसी रोग का इलाज होता जायगा।

अगर आधुनिक विज्ञान वाले पूछें कि यदि सोना मकरध्वज में नहीं मिलता तो इसको साथ मिलाने से क्या लाभ है? हम कहते हैं कि आपकी साइन्स की किसी भी परीक्षा से यह सिद्ध नहीं हो सकता, सेवन करके देख लें।

एक सूक्ष्म नोकदार लोहे के टुकड़े को यदि बालू रेत का पानी चढ़ा दें तो वह शीशे को काटने लगता है, और यदि तैल का पानी चढ़ा दें तो लोहे को काटने लगता है। कहिए साइन्स का कौन सा नियम इसे सिद्ध कर सकता है।

डाक्टर लोग कहते हैं कि पारा पुंसत्व शक्ति का नाश करता है किन्तु हम कहते हैं कि इससे बढ़कर पुंसत्व शक्ति को बढ़ाने वाली कोई दूसरी वस्तु नहीं। वास्तव में बात यह है कि इसमें १८ दोष हैं। उनमें से एक दोष है जिससे यह नपुंसकता उत्पन्न करता है पर यह दोष पारद के शुद्ध करने से नहीं रहता।

वत्सनाभ डाक्टरी पुस्तकों में दिल को घटाने और निर्बल करने वाला माना गया है। परन्तु यदि इसको ३ दिन गौमूत्र में भिगो दें तो यही दिल को ताकत देने वाला होता है।

हमारे शास्त्रों में समभाग घृत और शहद को विष लिखा है, आप इसका अनुभव कर सकते हैं। पर विज्ञान की किसी भी रीति से इसे ऐसा सिद्ध नहीं कर सकते। आप एक व्यक्ति को दो तोला घी और इतना ही शहद मिला कर प्रति दिन खिलाना शुरू करें और दूसरे को अढ़ाई तोला शहद और दो तोला घी अर्थात् समभाग न हों, सेवन करावें। कुछ ही दिनों में आपको ज्ञात हो जायगा कि हमारे शास्त्रकारों की बुद्धि कितनी प्रखर व तीव्र थी। समभाग खाने वाले व्यक्ति की भूख दिन प्रति दिन घटने लगेगी और वह रोगी होता जायगा, परन्तु विषम भाग खाने वाला बलिष्ठ होता जायगा।

घी केला दोनों भारी है परन्तु यदि वह घी में बनाकर खाया जाय तो हलका हो जायगा। निस्सन्देह ज्यों-ज्यों साइन्स उन्नति करेगी, त्यों-त्यों ऋषि द्वारा वर्णित सचाइयाँ

Indira Gandhi National Centre for the Arts

प्रकट होती जायँगीं। हमारे भारतवासी बालकों के गले में तांबा डालते हैं और तांबे के पात्र में जल भर कर पानी पीना उत्तम मानते हैं तांबे के पात्र में जल भर कर रखने से जल की शुद्धि होती है और उसमें कृमि-नाशक गुण प्रकट होता है।

मैं जो कुछ कह रहा हूँ इससे मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि विज्ञान सर्वथा त्याज्य है। सब संसार को उन महानुभावों का कृतज्ञ होना चाहिये जो कि वैज्ञानिक शोध करके नई-नई बात निकालते रहते हैं। परन्तु जिसको नवीन साइन्स और आविष्कार कहा जाता है, वह प्रायः केवल युक्तियों का एक समूह ही होता है। पाश्चिमात्य चिकित्सक लोग इसी के आधार पर सिद्ध कर रहे हैं कि प्राकृतिक चिकित्सा ही ठीक है, औषधियों का प्रयोग अप्राकृतिक है कोई कुछ कहता है और कोई कुछ, डा० लूई कूने ने भी तो साइन्स के आधार पर सिद्ध कर दिया था कि औषधि का प्रयोग रोगोत्पादक है, केवल चार प्रकार के स्नानों से सर्व प्रकार के रोग मिट जाते हैं। नवीन साइन्स ही के आधार पर डा० हनीमैन ने सिद्ध कर दिया कि संसार की सब चिकित्साएँ भ्रम मूलक हैं, केवल होम्योपैथिक चिकित्सा ही वैज्ञानिक है।

आयुर्वेद चिकित्सा में जहां धनियों के लिए बहुमूल्य औषधियाँ मिल सकती हैं। वहाँ निर्धनों के लिए थोड़े से थोड़े मूल्य की औषध भी मिल जाती है। जिनके लिये नाम मात्र का ही व्यय करना पड़ता है। वैद्य लोग प्रायः गरीबों को दवा मुफ़्त देते हैं।

गौदन्ती हरताल को बराबर भून कर पीस कर रख लें, मैलेरिया के रोगियों की अत्युत्तम औषध बन जाती है। श्वेत फिटकरी को भून कर या फुला कर पीस कर रख लें, मैलेरिया अथवा कोई भी पारी से आने वाले ज्वर की उत्तम औषध बन जाती है। सौंफ को भुन कर मिश्री मिला ले तो यह एक उत्तम पसीना लाने वाली औषध बन जाती है। इसी प्रकार प्रत्येक रोग के लिये सरल तथा सस्ती औषधियाँ आयुर्वेद में विद्यमान हैं। इसमें कुछ कठिनाई नहीं, इच्छानुसार इनका प्रयोग करके देखा जा सकता है।

सबसे बड़ी विशेषता तो वास्तव में आयुर्वेद की यही है कि आयुर्वेदिक सिद्धान्त ऋषियों ने अनुभव की कसौटी पर परख कर सूत्र रूप में बाँधे हैं। इसीलिये परिवर्तन शील नहीं। यह भी सबको विदित होना चाहिये कि यदि कोई देश अपने स्वास्थ्य के लिये भी दूसरों के सहारे है तो वह कभी भी स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं कर सकता है। कितना अन्धेर है कि जब तक विदेश से दवाइयों का जहाज न आवे तब तक हम अपनी बीमारी की चिकित्सा भी नहीं कर सकते हैं। हमारे लायक से लायक डाक्टर विलायत के दवासाजों के एजेन्ट मात्र हैं।

भारत और विशेष कर हिमालय पर्वत से बढ़ कर विश्व के किसी भाग में औषधियाँ तथा जड़ी बूटियाँ उत्पन्न नहीं होती हैं इसी से अभी तक यह अवस्था है कि कोई देशी वैद्य जंगल में भी हो और कोई रोगी आवे, तो वह वहीं से जड़ी उखाड़ कर उसको आराम कर सकता है। साधारण एक वृक्ष या जड़ से बीसों रोगों की दवा हो सकती है। घरों में स्त्रियों को भी बीसों दवाओं के गुण मालूम होते थे और वे छोटी-मोटी बीमारियों की चिकित्सा भी कर लेती थीं, पर आजकल अंगरेजी पढ़ी स्त्रियाँ यह ज्ञान नहीं रखती हैं।

धातु और विषैली वस्तुओं को शुद्ध करने का रहस्य भी किसी अन्य पेथी वालों के मगज में नहीं आया है।

इनको यह मालूम नहीं कि सुवर्ण मिलावट से रहित खालिश होने पर भी, इसकी भस्म करने से पहिले इसमें से किन दोषों की शुद्धि करते हैं।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

पारद खालिस होने पर भी १८ दोष अपने भीतर रखता है और जितने दोष दूर करते जाओ उतना ही लाभदायक होता जाता है। साइन्स यहाँ चुप है, कि शुद्धि से क्या हो जाता है, कैसे इन वस्तुओं के अवगुण दूर हो जाते हैं, क्यों विषैला कुंचला अमृत हो जाता है, क्यों जमालगोटा अपनी तीव्रता खो देता है; क्यों सिंगरफ जिसे साइन्स बाजीकरण नहीं कहती शुद्ध करने से उत्तम वाजीकरण हो जाता है।

धातु उपधातुओं के भस्म करने की विधियाँ भी वैद्यों के अतिरिक्त अभी किसी को ज्ञात नहीं है। इनसे ऐसी-ऐसी औषधियाँ बनती हैं जो जादू का सा चमत्कार रोग दूर करने में रखती हैं। हीरा जिसको साइन्स केवल कार्बन (कोयला) कहती है, भस्म भी होता है और क्षय आदि रोगों के लिये रामवाण औषध है। पारद, सिंगरफ, हरताल, संखिया आदि जो आग दिखाते ही उड़ जाते हैं, उनकी ऐसी भस्में बनाते हैं, जो पुनः आग पर रखने से उड़ नहीं सकतीं। धातुओं के ऐसे सत्व निकलते हैं जो किसी साइन्स की रीति से उनमें देखे नहीं जाते।

औषधियों के गुण जानने में भी हमारे पूर्वजों को वह योग-दृष्टि प्राप्त थी कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। रस, गुण, वीर्य और विपाक के अतिरिक्त औषधि का एक प्रभाव होता है—प्रभाव प्रत्येक औषधि का विशेष गुण है जो साइन्स नहीं बता सकता। मोती, मूँगा, सीप, पाषाण, संगजरात का भस्म सब कैलसियम (चूना) होनें पर भी अपने प्रभाव पृथक्-पृथक् रखते हैं। अपामार्ग की जड़ प्रसव-काल में स्त्री के शिर में बाँधने से बच्चा आसानी से उत्पन्न होता है। शहदेवी की जड़ शिर पर बाँध देने से ज्वर कम हो जाता है। शहद और घी समभाग मिलाने से विषैला प्रभाव करता है। ऐसे ही प्रत्येक औषधियों के प्रभाव ग्रन्थों में लिखे हैं। क्या कोई कह सकता है कि सहस्रों वर्ष पहले औषधियों के जो गुण लिखे गये हैं उनमें से आज तक एक भी मिथ्या प्रमाणित हुआ है? यही कारण है कि देशी वैद्य इस गरीबी तथा लाचारी की अवस्था में भी चिकित्सा में वह चमत्कार दिखाते हैं कि बड़े-बड़े वैज्ञानिक भी इन "अयोग्यों" के कार्यों से दंग रह जाते हैं। जब कभी सामना हुआ देशी चिकित्सा की प्रधानता ही प्रमाणित हुई। जो कार्य ऑपरेशन के बिना सम्भव नहीं, वह औषधि द्वारा ही सिद्ध हो जाता है।

औषधि के साथ पथ्यापथ्य और अनुपान भी देशी चिकित्सा की विशेषता में से एक है। एक औषधि विविध प्रकार के रोगों में केवल अनुपान बदल कर प्रयुक्त कर सकते हैं। किसी को शहद में किसी को अद्रक में किसी को मक्खन में और किसी को घृत से देने से कफ पित्त और वात की प्रकृति में एकही औषधि प्रयुक्त हो सकती है। पुनः प्रत्येक औषधि का विशेष अनुपान भी भिन्न-भिन्न होता है। संग्रहणी-शोथ आदि में मण्डूर दिया जाय तो उसका पथ्य दही है। परन्तु यदि दुग्धवटि दी जाती है तो फिर दुग्ध के अतिरिक्त कोई वस्तु नहीं दी जाती। दोनों प्रकार से पूर्ण लाभ होता है। जिन बातों के लिये कहा जाता है कि ये नये अविष्कार हैं, इन सबके मूल हमारे यहां विद्यमान हैं।

वस्ति कोई नया आविष्कार नहीं है। चरक में पहले ही से १८ प्रकार की वस्ति लिखी है। शीतला का टीका भी नैपाल जैसे पहाड़ी प्रदेश में अभी तक पुराने ढंग से प्रचलित है।

वाजीकरण तथा रसायन भी जैसे कि आयुर्वेद में लिखे हैं वैसे ही अब डाक्टर लोग भी शनैः २ अपनी चिकित्सा में सम्मिलित कर रहे हैं। आयुर्वेद में पहले ही रसायन एक आवश्यक अंग है।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

भारत से ही तो आयुर्वेद के सिद्धान्त यूनान ने सीखे, फिर यूनानी तथा इस्लामी तत्त्ववेत्ताओं ने अपने ज्ञान से इसमें वृद्धि की और वह आज यूनानी चिकित्सा कहलाती है। एलोपेथी यूनानी चिकित्सा से ही निकली है अब डाक्टरों ने इसमें पर्याप्त उन्नति की है इनमें से जो सिद्धान्त हमारी चिकित्सा-विधि से विरुद्ध नहीं पड़ते उन सबसे हम अवश्य लाभ उठावेंगे। विद्या जहाँ से भी प्राप्त हो लेना चाहिये। सचाई को जहाँ से भी हो ढूँढना चाहिये। यदि देशी चिकित्सा पद्धति के विरुद्ध आन्दोलन न होता तो इतना कहने की आवश्यकता ही न होती परन्तु जब आक्षेप किये जावें तो उत्तर देना आवश्यक हो जाता है।

बन्धुओं मुझे आशा है कि ज्यों-ज्यों समय बीतता जायगा त्यों-त्यों देशी तथा एलोपेथी चिकित्सा का मिलाप होता जायगा क्योंकि वर्तमान समय में बहुत से बन्धु भी आयुर्वेदिक औषधियाँ प्रेमपूर्वक काम में लेने लगे हैं और आयुर्वेद चिकित्सा के प्रति सहानुभूति दर्शाते हैं। ऐसे सज्जन डाक्टर बन्धुओं को मैं अन्तःकरण से धन्यवाद देता हूँ।

कोई कोई वैद्यबन्धु जो कभी भी सम्मेलनों में भाग नहीं लेते और जिन्होंने सामाजिक सङ्गठन की शक्ति से प्रभाव का रहस्य नहीं समझा है, वे लोग सम्मेलनों की प्रवृत्तियों को निरर्थक मानते हैं और बिना कारण ही दोषारोपण किया करते हैं। उन बन्धुओं से मेरी नम्र प्रार्थना है कि कोई भी कार्य किसी एक व्यक्ति या समष्टि से भी एक हम फलीभूत नहीं हो जाते किन्तु उस कार्य को फलीभूत बनाने के लिये तन, मन और धन से लगातार उसके पीछे लगे रहने से ही फल प्राप्त होता है। निखिल भारतवर्ष के २२ वैद्य सम्मेलन आज तक हो चुके हैं २३ वाँ बीकानेर में होनेवाला है। और अपने प्रान्त का यह पंचम अधिवेशन है और भारतवर्ष के अन्य प्रान्तों में भी प्रान्तीय सम्मेलन बहुत से प्रायः हुआ करते हैं। अगर आप पूछें कि कि इन सम्मेलनों के करने से क्या लाभ हुआ—यदि आप आज से २० वर्ष पहले की स्थिति से आज की स्थिति से मुकाबिला करें तो आपको शीघ्र ही पता लग जायगा कि भारतवर्ष में जो आयुर्वेद की प्रगति नजर आती है वह सब सम्मेलनों द्वारा ही प्राप्त हुई है। सम्मेलन द्वारा उत्तमोत्तम धन्वन्तरि तुल्य महानुभावों के दर्श-स्पर्श होते हैं और उनके रामवाण से अति गोप्य से गोप्य प्रयोगों का भी प्रत्यक्ष लाभ होता है जिनको प्राप्त करने में सारी उम्र क्यों न बीत जाय, नहीं प्राप्त हो सकते। और अनेक शङ्काओं का समाधान भी वहाँ सहज ही में हो जाता है। परस्पर वैद्यों में भ्रातृ-भाव बढ़ता है—सम्मेलन द्वारा अपनी संघ-शक्ति बढ़ सकती है और बढ़ी है। आप लोग संग-बल से कठिन से कठिन कार्य भी सहज ही में कर सकते हैं, अभी समय संगठन का है।

सम्मेलन द्वारा ही—आयुर्वेद विद्यापीठ, वैद्य महासभायें आयुर्वेदिक कालेज–आयुर्वेदिक पाठशालायें कहीं-कहीं नये आरोग्यभवन और कई आयुर्वेदिक औषधालय खुले हैं। मुझे आशा है कि इसी तरह अपनी प्रवृत्ति कार्य करने की जारी रही तो शीघ्र ही आयुर्वेद का गौरव असल की भाँति हो जायगा।

लीजिये, अपने प्रान्त में ही धर्मार्थ औषधालय म्युनिसिपालटी की ओर से लोकलबोर्डों की ओर से और धनिक गृहस्थों की ओर से स्थापित हुए हैं तथा आयुर्वेद विद्यालय भी कई जगह खुले हैं जैसे बम्बई, सूरत, भावनगर, बड़ोदा, पाटण, अहमदाबाद आदि स्थलों में स्थापित हुए हैं। आयुर्वेद की उन्नति कैसे हो?

(१) जगह-जगह आयुर्वेद विद्यालय योग्य प्रबन्ध के साथ खोले जाँय।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

(२) चिकित्सा सम्बन्धी ग्रन्थों का सरल भाषा में प्रकाशन कराया जाय।

(३) संस्कृत और हिन्दी भाषा में वैद्यक परीक्षायें ली जायँ।

(४) वैद्यक धंधा करने की इच्छा रखने वाले मनुष्य जब तक पूर्ण वैद्य न होवें तब तक पूर्ण चिकित्सा कर्म में हाथ न डालें।

(५) आयुर्वेद पढ़ने की इच्छा रखने वाले को पहले हिन्दी और संस्कृत का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये; साथ-साथ अंग्रेजी भाषा का ज्ञान भी होना चाहिये।

(६) अभ्यास कर्म पूरा करने किसी विद्वान् और अनुभवी वैद्य के पास रह कर दवा बनाने और चिकित्सा करने का अभ्यास करना चाहिये।

(७) विदेशी दवाओं से परहेज किया जाय, क्योंकि आजकल बहुत सी विदेशी पेटेण्ट दवाइयों का खूब जोर शोर से प्रचार बढ़ गया है जिनसे लाभ के बदले हानि होती है और अपने आर्यधर्म के विरुद्ध है उनका कुछ वर्णन करना आवश्यक है और उनके बजाय अपनी आयुर्वेदिक औषधियाँ काम कर सकती हैं उनका भी वर्णन कर आप महानुभावों के ध्यान में लाना चाहता हूँ।

विदेशी औषधि का नाम।	उनमें पड़ती धर्मविरुद्ध चीजें।	प्रतिनिधि देशी औषधि।
पेपसिन	डुक्कर, भेड़, वाछड़े वगैरह के होजरी में का निकाला हुआ सत्व	अरण्ड ककडी का क्षीर द्राक्षासव या पाचनवटि
मेलीन्स फूड वा दूसरे फूड्स—	बहुत करके अंडो का रस	बालजीवन
असेन्सस ऑफ चीकन (मुर्गा) ,, बीफ (बैल) ,, मटन (भेड़)	मांस	चन्द्रोदय-द्राक्षासव, जीवन तथा पूर्णचन्द्रोदय
हेजेलीन स्नो	अंडों का रस	बादाम का तैल, गरी का तैल,
काडलीवर ओइल इत्यादि	मछली का तैल	सु. वसन्तमालिनी और मालिश के लिये लाक्षादि तैल
हिमाग्लाबीन	लोही का भाग	लोहभस्म, लोहासव
मेनोलावाइन	मद्य	द्राक्षासव
वाइन कारनीस	दारू और मांस	द्राक्षासव
सार्सापेरिला	दारू	बृहद् मंजिष्ठादि क्वाथ
साबुन	चरबी	शुद्ध देशी साबुन
ओवल्टाइन	अन्डा इत्यादि वस्तु	द्राक्षासव

वर्तमान समय में आयुर्वेद के विद्यालयों में अधिकांश में प्रायः कायचिकित्सा ही की शिक्षा दी जाती है। शस्त्र-चिकित्सा की शिक्षा भी वैद्यों को मिलना अत्यन्त आवश्यक है। शस्त्र-चिकित्सा का ज्ञान नहीं होने के कारण शस्त्र साध्य रोगी जब हमारे पास आता है तो

Indira Gandhi National Centre for the Arts

उसको डाक्टर के पास भेजना पड़ता है। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड आदि धर्मार्थ औषधालयों में जहाँ एक ही चिकित्सक से काम चलाना हो, वहाँ जनता की इच्छा होने पर भी इसी कारण से वैद्य नहीं रखा जाता कि वह सामान्य शस्त्र क्रिया भी नहीं कर सकता, आयुर्वेद विद्यालयों के संचालकों को इस तरफ अवश्य ध्यान देना चाहिये और अपनी आयुर्वेदिक-पद्धति अनुसार ही ऐसे शस्त्र-चिकित्सा के वैद्य तैयार किये जाँय ताकि ऊपर की खामी पूरी हो जाय - यह कार्य बड़े महत्व का है।

हमारे प्राचीन आयुर्वेदीय हस्तलिखित ग्रन्थों का बड़ा भारी संग्रह अभी भिन्न-भिन्न पुस्तकालयों में और वैद्यों के यहाँ मौजूद है इनमें से जो आवश्यक होवे उनका प्रकाशन कराना भी आवश्यक है। मुझे सहर्ष कहना पड़ता है कि ऐसा आदरणीय कार्य हमारे प्रान्त के अग्रगण्य सुप्रसिद्ध आयुर्वेद-मार्तण्ड पूज्य पं० यादव जी भाई आचार्य ने अब तक कम से कम ६० से ज्यादा आयुर्वेदीय प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों को छपा कर प्रकाशित करके आयुर्वेद की बड़ी सेवा कर वैद्य-समाज पर बड़ा उपकार किया है विशेष आनन्द और गौरव की बात तो यह है कि सारे भारतवर्ष के वैद्य महानुभावों ने आपकी योग्यता और कार्यदक्षता से प्रसन्न होकर आपको दो समय (हरिद्वार-ग्वालियर) निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद महासम्मेलनों के अध्यक्ष स्थान का मान भरा आसन देकर आपकी योग्य कदर करके अपने प्रान्त का गौरव बढ़ाया है। वैसे ही आयुर्वेद-भास्कर पूज्य पं० हरिप्रपन्न जी आचार्य ने भी रसयोगसागर जैसा ग्रन्थ निर्माण करके वैद्य समाज का अतिशय उपकार किया है ऐसा बड़ा रस का उत्तम ग्रन्थ इस समय में किसी ने नहीं बनाया।

और भी अनेक विद्वान् वैद्य महानुभावों ने जैसे कि रसवैद्य नगीनदास भाई मालिक ऊँझा फार्मसी ने भारत-भैषज रत्नाकर के चार भाग, वैद्यराज बापालाल गडबडदास शाह ने आदर्श निघण्टु के दो भाग—राजवैद्य जीवराम भाई कालीदास गोंडल निवासी ने रस-रत्न समुच्चय आदि और स्वर्गस्थ वैद्यराज जटाशंकर भाई ने गृहवैद्यक आदि ग्रन्थों तथा स्वर्गस्थ वनस्पति शास्त्री वैद्यराज जयकृष्ण भाई ने वनस्पति शास्त्र के अन्यान्य ग्रन्थों को प्रकट करके आयुर्वेद की अपूर्व सेवा की है इन महानुभावों को जितना धन्यवाद दिया जाय इतना ही कम है हम सब इनके ऋणी हैं।

आर्ष-वैद्यक में, रस-शास्त्र द्रव्यगुण-शास्त्र और चिकित्सा आदि में संशोधन (रिसर्च) होने की बड़ी आवश्यकता है। आयुर्वेद में योगों का संग्रह बड़ा है। यद्यपि पूर्वाचार्यों ने सब योगों को अनुभव करके ही लिखा है तथापि उनमें से विशेष फलप्रद निर्माण करने में सरल और वर्तमान वैद्यों के अनुभूत सब रोगों की चिकित्सा जिनसे बन सके, ऐसे योगों का एक संग्रह विद्यार्थियों के पाठ्य-पुस्तक रूप बनाया जावे तो बहुत अच्छा होवे। बड़े हर्ष की बात है कि पाश्चात्य देशों की भाँति श्रीधन्वन्तरि की कृपा से अपने प्रान्त में बहुत सी फार्मसियाँ स्थापित हो गई हैं। इनसे वैद्य-समाज तथा जन-समाज दोनों ही खूब लाभ उठा रहे हैं। उनके संचालकों से मेरा नम्र निवेदन है कि आप लोगों के कारखानों में बनने वाली औषधियों की बनावट एकही प्रकार की होनी चाहिये। अकसर, ऐसा मालूम हुआ है कि एकही औषध यदि दस भिन्न-भिन्न जगह से मँगाई जावे तो उनके रंग, स्वाद और गुणों में बहुत फर्क दिखाई देता है। इसलिये यदि आप लोग एक आदर्श औषधि-निर्माण-पद्धति (फर्माकोपिया) विद्वान् वैद्यों की सलाह से तय्यार करके प्रत्येक औषधि उसी पद्धति से

Indira Gandhi National Centre for the Arts

बनावें तो आप महानुभावों को विशेष लाभदायक होगा। प्रयोग बनाने में औषधियाँ विशुद्ध अकृत्रिम और नई काम में लिया करें। जो औषध जीर्ण एवं हीन वीर्य हो गई हों उनका विक्रय न करें, ऐसा करने से वैद्यसमुदाय एवं जनता में उनके प्रति विश्वास की अभिवृद्धि होगी और वे निर्भयता से उनकी औषधियों का उपयोग करेंगे तथा उनके व्यापार में भी विशेष लाभ होगा।

औषधों के योग बनाने में औषध द्रव्य जितने ताजे अकृत्रिम तथा विशुद्ध उपयोग में लिये जायँगे उतना ही वह योग विशेष गुणप्रद होता है। परन्तु इस विषय में हमारी दशा बड़ी शोचनीय है। बड़े-बड़े शहरों में अच्छी ताजी औषधियाँ नहीं मिलतीं, पंसारी जो कुछ अच्छी बुरी देता है उसी से काम चलाना पड़ता है। इसलिये छोटे-बड़े शहरों में वैद्यों द्वारा ही औषध-भण्डार खोलने की बड़ी आवश्यकता है।

वैद्य सम्मेलन की ओर से परीक्षोत्तीर्ण और प्राचीन वैद्य जिन्होंने किसी भी प्रकार की परीक्षा नहीं दी है परन्तु पठित—और अनुभवी हैं उन सबों को रजिस्टर करने की आवश्यकता है। रजिस्टर हुए वैद्यों को प्रेक्टिस करने देना अन्य को नहीं ऐसा कानून प्रान्तीय सम्मेलन तथा महा सम्मेलन द्वारा ही प्रचलित होना चाहिये। यह विषय उपेक्षा करने योग्य नहीं है क्योंकि अपने ही प्रान्त में कई देशी राज्यों में ऐसा रजिस्टरी का कानून बन गया है। मुझे आशा है कि आप इस विषय की तरफ अवश्य लक्ष्य देंगे।

वैद्य समाज का कर्तव्य होना चाहिये कि एक केन्द्रीय औषधि उद्यान के रूप में बनाया जावे जिसमें कि प्रत्येक औषधोपयोगी बनस्पति उत्पन्न की जावे जिससे आयुर्वेद प्रेमी सभी व्यक्ति औषध सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर सकें। हर्ष की बात है कि अपने प्रान्त में कई आयुर्वेदिक मासिक पत्रों जैसे कि, वैद्यकल्पतरु, आयुर्वेद-विज्ञान, आरोग्य-सिन्धु, आयुर्वेद-रहस्यार्क, और भाग्योदय आदि द्वारा भी आयुर्वेद का पूर्ण प्रचार हो रहा है।

वैद्यों को पुरुषार्थ करने की आवश्यकता है। उनको चाहिये कि परस्पर मेल रखते हुए एक दूसरे की निन्दा करने की अपेक्षा दूसरे के सामने अपने भाइयों के गुण रखा करें, एक दूसरे की औषधि बर्तने तथा एक दूसरे से परामर्श लेने की प्रथा प्रचलित करें। परामर्श लेने पर एक विद्वान् वैद्य दूसरे वैद्य के रोगी की सम्मति तो दे दे, परन्तु उस चिकित्सक की इच्छा बिना उस रोगी की चिकित्सा न करे; प्रत्येक स्थानों में सभायें स्थापित हों जो कि अपनी उन्नति के साधन सोचती रहें। म्युनिसिपल-डिस्ट्रिक्टबोर्ड और कौंसिल के मेम्बरों द्वारा अपनी माँगें कौंसिल तथा बोर्डों में पेश कराना, जनता को अपनी आवश्यकतायें निरन्तर बताते रहना; यत्न करके आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय खुलवाते रहना आदि भी वैद्य सभाओं के कर्तव्य होने चाहियें। कुछ चिकित्सक आयुर्वेद के भिन्न-भिन्न अङ्गों के विशेषज्ञ (Specialist) भी बनें जिससे दूसरे समय पर उस-उस रोग के सम्बन्ध में उनसे सम्मति ली जा सके, और वे भी अन्य रोगी के सम्बन्ध में दूसरों से परामर्श ले सकें। इसके साथ ही यह ध्यान रखना चाहिये कि आयुर्वेद चिकित्सक को स्वयं स्वच्छ सुथरे रहना चाहिये वैसे ही अपना औषधालय औषध आदि भी सब प्रकार स्वच्छ तथा निर्मल रखनी चाहिये। औषधालय की प्रत्येक वस्तु सुन्दर दिखाई दे ऐसा प्रबन्ध रखना चाहिये।

आजकल झूठे विज्ञापन वालों ने भी अनेक प्रकार के प्रपञ्च रचकर प्राचीन आयुर्वेदीय औषधि और चिकित्सा की दुर्नामता की है इसके लिये वैद्य समाज इस तरफ अवश्य ध्यान

Indira Gandhi National Centre for the Arts

देकर बड़ोदा प्रान्तीय सम्मेलन में पास हुए प्रस्ताव का अवश्य अमल कर इन झूठे विज्ञापन बाजों को योग्य नसीहत देंगे।

हिन्दू राजाओं के जमाने में आयुर्वेद संसार की सभी चिकित्सा विद्याओं की अपेक्षा श्रेष्ठ और भारत सन्तानों की स्वास्थ्य रक्षा का एक मात्र अवलम्ब था। भारतीय चिकित्सा भारतीय सन्तान की मातावत् हितकारिणी थी। पहिले की भाँति सब राजा-महाराजा लोग इसका ही प्रचार अपने राज्यों में करना शुरु करें और इस प्राचीन आयुर्वेद चिकित्सा को पूर्ण राजाश्रय दें ऐसी उन महानुभावों से मेरी प्रार्थना है।

बन्धुओं इस गुजरात कच्छ काठियावाड़ प्रान्त में अनेक धन्वन्तरि-स्वरूप वैद्यरत्न प्रगट हुए हैं जिन्होंने इस आयुर्वेद चिकित्सा को मृतप्राय स्थिति से आज इस उच्च गति पर पहुँचाया है जिनके हजारों शिष्यगण आज भी नितान्त आयुर्वेद की तन, मन और धन से सेवा बजा रहे हैं उन सद्गत महानुभावों से आप अनभिज्ञ नहीं हैं तथापि उन प्रातःस्मरणीय धन्वन्तरि तुल्य महर्षि झन्डुभट्ट जी बावा भाई, पूज्य कताभट्ट जी पूज्य प्रभुराम भाई तथा पूज्य जटाशङ्कर भाई वगैरह-वगैरह हुए हैं इनके हम सब ऋणी हैं।

इस वर्ष में श्रीमान् वैद्यभूषण त्र्यम्बकलाल त्रिभुवन मुनि जी प्राणाचार्य श्रीमान राजवैद्य फूलशङ्कर बावा भाई तथा धीरजराम जयशङ्कर भाई आदि महानुभावों के स्वर्गवास से मुझे अत्यन्त खेद हुआ है। इनके स्वर्गवास से वैद्यसमाज और आयुर्वेद को बड़ी हानि पहुँची है।

बन्धुओं मेरी अन्तिम प्रार्थना यही है कि सब मिलकर यत्न करो जिससे कि अपनी प्रथायें इस देश में प्रचलित रहती हुई कायम रह कर जनता को लाभ पहुँचाती रहें। मनुष्य उद्योग करता है तो परमात्मा सहायता करता है प्रभु अनुग्रह करे।

॥ इति शुभम् ॥

Indira Gandhi National Centre for the Arts

श्रीमान् डॉ. एच्. वी सावनूर. एल्. एम्. एन्ड एस्. बेळगाम।
अध्यक्ष-कर्नाटकप्रान्तीय २ वैद्यसंमेलन बेंगळूर (सन १९२६)।

Indira Gandhi National
Centre for the Arts

कर्णाटकायुर्वेद तृतीय सम्मेलनस्य सभापतेः

आयुर्वेद-भूषण श्री० एम० व्ही० शास्त्री महोदयस्य

अभिभाषणम्

वन्दे वैद्यगुरुं शान्तम् मुक्ताऽऽत्मानं जितेन्द्रियम् ॥
सभ्यांश्चापि प्रवयसो भेषजाऽऽगम सूरिषु ॥
यस्त्यक्त्वा रूपमाद्यं प्रभवति जगतोऽनेकधाऽनुग्रहाय ।
प्रक्षीण क्लेश राशिर्विषम विषधरोऽनेक वक्त्रस्सुभोगी ॥
सर्वज्ञानप्रसूतिर्भुजग परिकरः प्रीयते यस्य नित्यम् ।
देवोऽहीशः सवोऽव्यात् सितविमलतनुर्योगदो योगयुक्तः ॥

मान्याः ! अध्यक्षाः स्वागतिकाः सदस्याश्च !

मय्यविदुषि वैदुष्यं तथाऽकुशलेऽपि कौशल्यं सम्भाव्य सुगृहीताऽभिधाना भवन्तो विदुषा कुशलेन च निर्वाह्येऽस्मिन् महत्याः कर्णाटकाऽऽयुर्वेदस्य सभायाः कर्मणि मामायोजयन्तो विधेये कथं कृतकृत्याः स्युरिति न शक्नोमि वक्तुं अथवा स्वभावसौजन्यं यच्छ्रीमतां मय्यप्येतादृशं गौरवमजनयत् किमुताऽकृत्रिमं भवतां "विजयपुरा" ऽभिजनानां देश वात्सल्यमेवं दक्षिणेषु कर्णाटकेषु विलुप्तं सौहार्दं पुनरप्येधयितुं वा कथमन्यथा सतोऽपि कर्णाटकस्य भिन्नभिन्नेषु सुप्रथितेषु प्रदेशेष्वथवाऽस्मिन्नेव सदसि विद्यावयोवृद्धान् विज्ञानवतो वैद्यतल्लज्ञानुदास्य पश्चिमस्य पारावारस्याऽपि तीरमधिवसति मयि भवतां परीक्षणेक्षणपक्षपातः आस्तां तावत्किमनया दीर्घया शङ्कया परमहमेतावदेव तत्रभवतस्सदस्यान् प्रार्थये क्षन्त्वा मदीयं बाल्यं वैयात्यं साधयितव्यस्य कार्यस्य निर्वहणे भवन्त एव स्वप्रतिभा प्रभावेण धन्यं मां विधतामिति ।

प्रमेयः ।

आर्याः ! सम्भावयामि कर्णाटकाऽऽयुर्वेदमण्डलन्नामाऽऽयुर्वेदमहामण्डलस्यैव दलमथवा शकलं वाऽस्ति । तथा च मण्डलमेतत्तन्नियमावल्याः पञ्चमनिबन्धं तदुपनिबन्धांश्चाऽनुमन्वीत तदधीनत्वात् । यदित्थं सम्मतत्वान्महामण्डलस्य सुदुद्देशेभ्योऽनन्या एव ह्येतल्लघुमण्डलस्याप्युद्देशाः तदेवं भवति तेषामेवोद्देशानामन्तरङ्ग भाव्येन निर्वाहोऽस्माकं प्रमेय इति । प्रमेयांश्च नियमावल्यां निर्दिष्टान् प्रविभज्य प्रतिविभागं विवृद्धान् वार्षिकान्विषयान् मण्डलस्याऽस्यैव ज्येष्ठमन्त्री सदस्यान् भवतस्सम्यक् श्रावयेदिति निश्चिनोमि ।

महाभागाः ! 'न निश्चितार्थाद्विरमन्ति धीराः" इति लौकिकमाभाणकं कृतार्थयन्तो "विजयपुर" निवासिनो भवन्तो भवत्कार्यमार्गं वारंवारं समापतत आधिदैविकान् क्षामाऽतीसारविषूच्यवग्राहादिकान् आधिभौतिकांश्च विपक्षजनजनितान् क्लेशाऽतिशयान् विविधानन्याननुस्मरणीयान् विघ्ननिचयानपि सर्वथाऽगणयित्वा परमया भवकारणस्य भगवतःकरुणयाऽस्मिन् शुभे

Indira Gandhi National Centre for the Arts

दिवसे निरन्तराग्रमायुर्वेदकर्णाटकमण्डलस्य महतीं सभां समधिवेशयितुं समर्था अभूवन्नित्यनुवादिना महता जयघोषेण ध्वनितुं नितान्तमामोदावसरः प्रेक्षावतां सतां।

पारिषद्याः! येनाऽहं सदसोऽस्य पतित्वेनवृतस्तन्मां चपलयत्यस्थाने किमुत स्थाने वाऽभिभाषितुं पक्षषाणि रिक्थानि सारजातानि वा वचनानि तथापि न च तान्यपलापत्वेन नापि च विप्रलापत्वेन परिणमेयुरिति मे प्रत्याशा। यदर्थेऽयं न केवलमस्माकं कर्णाटका नामापि तु निखिलभारतीयानां विज्ञानिनां विशेषतो वैद्यविदुषां समुद्यमः यदर्थं च वर्षे वर्षे तत्तत्प्रदेशेषु च भारतस्यैवं समवेतास्स्मः। यदर्थं चाऽस्माकं भिन्नभिन्नसिद्धान्तानां वैद्यावतंसानां सङ्गमस्सङ्गच्छते। सोऽयमर्थस्त्वायुर्वेदस्य सर्वांशेनाऽभ्युदयः। सत्याञ्चैवमस्माकं स्थितौ तस्यैव प्रधानस्य सारभूतस्याऽऽयुराम्नायस्याऽसकृदाघ्रातचरेऽपि विचारे किञ्चिदिव मदीयमपि तत्र मनोव्यवसायमाधित्साथि। तत्र च सन्दर्भमीषन्निर्वर्ण्यं उद्दिष्टार्थमवतारयिष्यामि। तथाहि प्रवर्तमानस्य १८४९ तमस्य शालिवाहनशकस्याऽन्तिमं शतद्वयमारभ्यैतावदवधि केवलं परतन्त्राणामारण्यककल्पानामस्माकं न वेशमात्रेषु किन्त्वाहारेषु विहारेषु व्याहारेषु व्यापारेषु च परानुकरणञ्चांऽगहारादि देहवृत्तौ चिन्तनादि चित्तवृत्तौ च निरभ्यन्तरं प्राविशदिति। विदितचरोऽयं विदुषां निष्पक्षपातिनां वृत्तान्तः तदेवमातलात्भूतलात् सात्विकप्रकाशप्रसरेषु समूलच्छेदं छिन्नेषु सत्त्वस्कासु भारतीयेषु न केवलं भिषजोऽपि तु पुरोधसोऽर्थसाधका मन्त्रिणस्सामन्तादिसार्वभौमान्ताः राजानः ज्यौतिषिका वैदिका विविध कलावतंसा विद्वांसो विज्ञानिनः कृषकान्ताश्चापरेऽपि किमधिकेन सर्वे च तमोभूयिष्ठास्स्मः। न जाने एतेषु के केषामत्युबावचनीचगतेर्हेतुरिति। परं "नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेणेति" कविवरस्य कालिदासस्योक्तिमेवाऽत्र स्मरामि। तदेवं कालस्वभावात् किमुत प्रकृतिनियमादथवा परमेश्वरसङ्कल्पादुताऽस्माकमेव कर्मविपाकादाऽऽहोस्वित् सद्धर्मस्यैव लोपाद्वा महीतले च नीरन्ध्रतमोविलसिते किं वयमेव निन्द्यास्स्मोऽवैद्याः। कथमपि वा भवतु। यत् 'उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानं अवसादयेदिति" भगवच्छासनमेवाऽस्माकमभ्युदये प्रवृत्तानां प्रमाणमस्तां बलत्तरमित्युक्त्वा समुद्दिष्टार्थं तावदवतारयामि।

उद्दिष्टार्थस्त्वायुर्वेदः। आयुर्वेद इति यौगिकोऽन्वर्थ नामाऽयं शब्दोऽस्य च लक्षण निर्वचनानि चरकादिभिरभिहितानि भूयोभिश्च समासद्भिराधृत्तानीत्याबालवृद्धानां भिषजां विदितचराणीत्येकान्ततस्समुदासेऽत्र तानि, तस्य चाऽऽयुर्वेदस्योत्पत्तिमाविर्भावं, वाऽधिकृत्य तुल्याऽतुल्याऽभिप्रायाभ्यां गिरं गिरन्ति विपश्चितश्चिरत्ना नूत्नाश्च।

तथाहि। अग्निवेशस्त्वस्य तन्त्रस्य प्रथमेऽध्याये "ब्रह्मणाहि यथा प्रोक्तमिति"। सुश्रुतस्तु "ब्रह्मा प्रोवाचेति"। वाग्भटो "ब्रह्मा स्मृत्यायुषो वेदमिति"। "विधाताऽथर्वं सर्वस्वमायुर्वेदं प्रकाशयन्निति" च भावमिश्रः ऋग्यजुस्सामाऽथर्वाऽऽख्यान् दृष्ट्वा वेदान् प्रजापतिः विचिन्त्य तेषामर्थञ्चैवाऽऽयुर्वेदं चकार सः। कृत्वा तु पञ्चमं वेदं भास्कराय ददौ विभुरिति च ब्रह्मवैवर्तपुराणमपि। प्रतिपादयन्ति वाग्भटमन्तरा सर्वेऽप्यायुर्वेदं प्रति ब्रह्मणः प्रवक्तृत्वं कर्तृत्वाचाऽमन्यन्त वाग्भटस्तु हृदये स्मर्तृत्वं ब्रह्मा बुध्वा सनातनमिति संग्रहे बोद्धृत्वञ्च व्याचख्यौ यद्यपि विषयममुं बहवो बहुषु च सभासु सभापतयोऽवर्णयन्। तत्किमनेन पुनरत्राऽनुपठनेनेत्यायादाक्षेपस्तत्रोच्यते सत्यं तथापि विशेषविचारायाऽनुपठनमिति विशेष विचारश्चोत्तरत्र विधास्यते। ब्रह्मणा स्मृतस्य किंवा बुद्धस्याऽथवा प्रोक्तस्य कृतस्य वा वेदग्रन्थस्य परिमाणविषये सोऽनन्तपारं विस्कन्धमायुर्वेदं महामतिरिति वाऽग्निवेशः श्लोकशतसहस्रञ्च कृतवान्,

National Centre for the Arts

स्वयम्भूरिति सुश्रुतः स्वनाम्ना संहितां चक्रे लक्षश्लोकमयीमृजुमिति च भावमिश्रोऽप्यब्रुवन्, एतावता ब्रह्मा लक्षश्लोकात्मिकां ब्रह्मसंहितां नाम चिकित्सासंहितां कृतवानिति पर्यवस्यति। सैवैव संहिता ह्यवशिष्टाऽऽयुर्वेदग्रन्थानां मूलमिति च सिध्यति। परन्तु दुर्दैवशात् सा ब्रह्मसंहिता विलीना नाऽस्माभिरिदानीं उपलभ्यते, तस्मादेवं हि वयं हेतुलिंगौषधिविचारे प्रतिपदं स्खलामः, इत्यवदातश्रुतानां विदितमास्ते पुनरत्र विशेषविचारश्चाऽयं विद्यते। चरकसंहितायामाग्निवेशतन्त्रस्य वातकलाकलीये द्वादशे वातादीनां विचारे, यज्जः पुरुषीये पञ्चविंशे आमयोत्पत्तिविचारे, आत्रेयभद्रकाप्यीये रसविचारे, शरीरस्य षष्ठेऽध्याये—विप्रतिपत्तिवादास्तत्र बहुविधाःसूत्रकारिणामृषीणां सन्तीति गर्भांगोत्पत्ति विचारे आयुर्वेद समुत्थानीये चतुर्थपादे भृग्वङ्गिरोऽत्रिवसिष्ठकश्यपाऽऽगस्त्यपुलस्त्यवामदेवाऽसितगौतमप्रभृतयो महर्षय इति समुत्थानीयविचारे विमानस्य रोगभिषग्जितीयेऽष्टमे भिषग्बुभूषुः शास्त्रमेवाऽऽदितः परीक्षेत। विविधानि हि शास्त्राणि भिषजां प्रचरन्ति लोके इति च शास्त्रविचारे इत्येवमन्यत्राऽपि कालाऽकालमृत्युविचारे। भेषजाऽभेषज साधनविचारे सत्वजीवविचारे एवम्भूतेष्वन्येषु भूयोविचारेषु स्थितप्रज्ञानां सर्वज्ञानां ऋषिवर्याणां स्वतन्त्रत्वेन वादविवादौ च यथाशास्त्रं प्राचलतां, एवं सुश्रुतोऽपि शारीरस्य प्रथमे तद्गुणा एव पुरुषा भवन्तीत्येके भाषन्ते, वैद्यके तु स्वभावमीश्वरं कालं यदृच्छां नियतिं तथा। परिणामञ्च मन्यन्ते प्रकृतिं पृथुदर्शिनः। भौतिकानि चेन्द्रियाण्यायुर्वेदे वर्ण्यन्ते तथेन्द्रियार्था इति, न चाऽऽयुर्वेदशास्त्रेषूपदिश्यन्ते सर्वगताः क्षेत्रज्ञा नित्याश्चेति। शारीरस्य तृतीयें अष्टाविंशे सूत्रे सुभूति शौनक कृतवीर्य पाराशर्य मार्कण्डेयानां मतानि प्रदर्श्य युगपत्सम्भवन्तीत्याह धन्वन्तरिरिति च वर्णितवान्। अत्र दिङ्मात्रं प्रदर्शितम्, एवंभूतानि च परतन्त्रोद्धृतानि वाक्यानि बहूनि सन्ति। नैतावन्त्येव वाक्यानि। सुश्रुतः कण्ठतोऽपि सूत्रस्थानस्य प्रथमेऽध्याये अन्यशास्त्रोपपन्नानाञ्चाऽर्थानामर्थवशादिति व्यक्तमुज्जुघोष। किञ्च सुश्रुत शारीर प्रथमोध्यायः, चरक शारीर प्रथम पञ्चमाऽध्यायौ च बाहुल्येन सांख्यमया एव सन्ति। तदित्थम्भूतायाञ्च दशायां ब्रह्मसंहितैकशरणा आयुर्वेदग्रन्था अथवा संक्षिप्तब्रह्मसंहितामूला इति वा कथयितुं कथम्पार्येत। किञ्चाऽऽयुर्वेदस्य ब्रह्मकर्तृत्वमेवाऽङ्गीकुर्वन्त ऋगादिवेदोपवेदत्वं वाऽऽयुर्वेदे किमिति सम्बध्नीयुरिति हि मे महान् वितर्कस्सञ्जायते। तत्र चैवं समाधानं सङ्गच्छते। क्रमेण स्वतन्त्रपरतन्त्राभ्यां संयुक्तश्चाऽऽयुर्वेदशास्त्रमात्रेयादिभिश्शिष्यबुद्धिविकासार्थं प्रकाशितं चास्ते। तत्र च स्वतन्त्रन्नाम—हेतुलिङ्गौषधज्ञानं स्वस्थातुरपरायणम्। त्रिसूत्रं शाश्वतं पुण्यं बुबुधेयं पितामहः। सोऽनन्तपारं त्रिस्कन्धमायुर्वेदं महामतिरिति अग्निवेशेन निर्दिष्टम्। तेन च हेतून् लिङ्गानि औषधानि च प्रत्येकं प्रत्येकं स्कन्धे यथाक्रमं निरूपितवान् ब्रह्मा स्वसंहितायामिति भवति न चाऽऽयुर्वेदे हेतुलिङ्गौषधेषु सांख्यादीनां मतानि समाददुः। हेतुलिङ्गौषधेभ्यो व्यतिरिक्तविषयाणां ग्रहणेन च पौर्वाऽऽपर्य विरोधो न संघटते। तस्मादायुर्वेदस्य त्रिस्कन्धात्मकस्य ब्रह्मसंहितैव मूलमिति मननं न प्रतिहन्यते—तेन च ऋगादि वेदोपवेदत्वमायुर्वेदस्य समञ्जसं भवतीति न विस्तार्यतेऽयं विषयोऽल्पाऽवकाशत्वात्। "औषधान्यगदोविद्या दैवी च विविधा स्थितिः। तपसैव प्रसिध्यन्तीति" मनूक्तदिशा त्रिस्कन्धश्चायुर्वेदो हि ब्रह्मणो महत एव तपसः फलमिति फलितार्थः। न च सृष्ट्यादौ ब्रह्मज्ञानमन्तरा ज्ञानांकुरो जनेपूत्पद्येत। यदिदानीन्तनानां वैज्ञानिकानामपि ब्रह्मणः एव ज्ञानपम्पराप्रसरो नाऽभविष्यन्नाऽभविष्यदेव चिकित्साज्ञानमपि तेषु, तदित्थं कार्यकारणभाव सम्बन्धे सिद्धे सर्वथा भारतीयानामेव ज्ञानप्रसरोऽन्यत्र व्याप्तो वैज्ञानिकानाञ्चाधुनिकानां सर्वेषा-

Indira Gandhi National Centre for the Arts

मपि ज्ञानप्रकाशे बीजमित्युच्यते कस्मात् ब्रह्मणो ज्ञानमयस्याऽऽयुर्वेदशास्त्रस्याऽत्रैव प्रादुर्भावात्।

पुनश्चाऽत्र विज्ञानकुशलास्सदस्याः प्रार्थ्यन्ते। यदस्मिन्विषयेऽतिमात्रं परिश्रम्येतोऽप्यधिकं तत्वं च याथातथ्येन निष्कासयन्तु। निष्कासयन्तु च चरित्रकुशला अस्यैवाऽऽनुकूल्येन विविधानश्रुतचरान्विषयानिति च।'

यच्च ब्रह्मणा प्रोक्तमायुर्वेदशास्त्रं त्रिस्कन्धं हेतुलिङ्गौषधज्ञानं स्वस्थातुरपरायणमिति चोक्तम् तत्किञ्चिदिव निरूप्यते। हेतवो लिङ्गानि औषधमिति त्रयो भिन्नविषयास्तेषां यथाक्रमं त्रयश्च स्कन्धास्तेन प्रथमो हेतुस्कन्धः, द्वितीयो लिङ्गस्कन्धः, तृतीय औषधस्कन्ध - इत्येतेषु त्रिष्वेव स्कन्धेषु निर्दिष्टाऽऽयुर्वेदविषयः परिसमाप्यते। तमेव किञ्चिद्विस्तृत्य ब्रवीमि। चरकस्याऽष्टौ स्थानानि सुश्रुतस्याऽपि स्थानानि पञ्च तथोत्तरतन्त्रञ्च त्रिस्कन्धलक्षणेऽस्मिन्नेवाऽवगृहन्ते। तथाहि,

(१) हेतुस्कन्ध इति। हेतूनां स्कन्ध इति तत्पुरुषः। हेतुशब्देन निमित्तमायतनं कर्ता कारणं प्रत्ययः समुत्थानं निदानमित्येतेषाञ्च ग्रहणम्। आध्यात्मिकः आधिभौतिकः आधिदैविक इति। असात्म्येन्द्रियार्थयोगः प्रज्ञापराधः परिणाम इति। प्रधानं व्यभिचारीति दूरस्थः निकटस्थ इति। रुग्जनकः दोषप्रकोपकः इति। व्यञ्जक उत्पादक इति। बाह्यः आभ्यन्तर इति। प्राकृतः वैकृत इति। प्रकृतियोगः अप्रकृतियोग इति। आशयाऽऽकर्षीति च। पल्लवीभूतस्यैतस्यैव समुदायः स्कन्ध इत्यर्थः। एतेन स्थूलभुता समुच्चयेन व्याख्याता आध्यात्मिकादयः समावेदयन्ते, अत्रैव द्यावापृथिव्यौ अन्तरिक्षं च।

(२) लिङ्गस्कन्ध इति। लिङ्गशब्देन पूर्वरूपं। लिङ्गं आकृतिः, चिह्नं, संस्थानं, व्यञ्जनम्, रूपमित्यादि शब्देन परीतं लक्षणञ्च, जात्यागतिशब्दाभ्यां परीता षट्प्रकारा सम्प्राप्तिश्च यथा संख्यासम्प्राप्तिः, प्राधान्यसम्प्राप्तिः, विधिसम्प्राप्तिः, विकल्पसम्प्राप्तिः, बलसम्प्राप्तिः, कालसम्प्राप्तिरिति। वर्णस्वरीयादिलक्षणोऽरिष्टराशिः। तथा च पूर्वरूपस्य लक्षणस्य विविधात्मिकायास्सम्प्राप्तेः नानात्मकस्याऽरिष्टस्य चाऽऽश्रयभूतस्य शरीरस्य च शास्त्रं सर्वमस्मिन्नेव लिङ्गस्कन्धे समाविशति।

(३) औषधस्कन्धः। औषधानां स्कन्धः औषधस्कन्धः इति। औषधशब्देन आध्यात्मिकादि त्रयश्चोपायाः सात्म्यशब्दपरीताः अष्टदशप्रकारा उपशया हेतुविपर्यस्त हेतुविपर्यस्तार्थकारिणश्चौषधाऽन्नविहाराः। व्याधिविपर्यस्त व्याधिविपर्यस्तार्थकारिणश्चौषधाऽऽन्नविहाराः। हेतुव्याधिविपर्यस्त हेतुव्याधिविपर्यस्तार्थकारिणश्चौषधाऽऽन्नविहाराः। मन्त्रौषधिमणिमङ्गलबल्युपहारहोमनियमप्रायश्चित्तोपवास-स्वस्त्ययन प्रणिपात तीर्थगमनादि रूपो दैवव्यपाश्रयः। आहारौषध योजनारूपो द्रैव्यव्यपाश्रयः। मनोनिग्रहादि रूपः सत्त्वावजयश्च। वमनविरेचनाऽऽस्थापनाऽनुवासन शिरोविरेचन प्रकारं अन्तः परिमार्जनं। बाह्यस्पर्शप्रधानं अभ्यङ्ग स्वेद प्रदेहपरिषेकोन्मर्दनोद्वर्तनादिरूपं बहिः परिमार्जनम्। छेदन, भेदन, व्यधन, दारण, लेखनोत्पाटन, प्रच्छन, सीवनैषणाऽग्निक्षार जलौकोरूपं शस्त्रप्रणिधानं सन्तर्पणोपक्रमः अपतर्पणोपक्रमश्चाऽन्ये चैतादृशा औषधस्कन्धे समाविशन्ति।

तदिदानीं त्रिस्कन्धस्य हेतुलिङ्गौषधज्ञानस्य ब्रह्मकर्तृकस्याऽऽयुर्वेदस्य स्वरूपं सम्भाव्य किञ्चिदवोचम्।

यदा समन्वेषणेन भारतस्य क्वापि भूभागे अस्मद्भाग्यवशात् ब्रह्मसंहितोपलभ्येत तदा समूलनाशं नश्येदस्माकं चिकित्साविषयस्संदेहः।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

अग्निवेशसदृशैराप्तैरभिहितत्वात् गगनकुसुमवत् ब्रह्मसंहितायाः केवलाऽसम्भवत्वं नैव शक्यते कल्पयितुमिति युवानः खलु चिकित्सकाः प्रयतन्तामस्य चान्वेषणे इति तानभ्यर्थये।

इत्यायुर्वेदमूलभूताया ब्रह्मसंहिताया विषये किञ्चिदुक्त्वा आसिंहलहिमाचलमधिवसतां सद्यस्तनानां चिकित्सकानां हृदयपुण्डरीकाणि संक्षोभयतस्त्रिदोषस्य विचारे किञ्चिद्विवक्षामि।

महाभागाः! पौरस्त्येषु पाश्चात्येषु च वैद्यकृतिषु कृतमुखा नैके चिकित्सकाः कतिपयानारभ्य संवत्सरान् त्रीन् दोषानुद्दिश्य विचारयन्ति विवदन्ते चेति वयं सर्वे मन्यामहे। विवादस्य चाऽस्य तेषां वादमर्यादाऽनुरोधेनाऽपरिसमाप्तत्वात् निर्णयश्चैतदीयो दवीयान् हि विचारे चैवम्भूते गम्भीरे मम मादृशस्य वा नास्त्येव विचारयोग्यताऽवकाश इत्येतत्सत्यं तथापि सभापतिसम्प्रदायमनुसृत्य किञ्चिदपि वक्तव्यं भवत्येवेत्युपक्रमः। तथा चोच्यते—अनुपलब्धत्वात् त्रिदोषसंज्ञा वातपित्तश्लेष्माणो न विद्यन्ते। क्वचिदपि प्राणिशरीरे यदि च विद्येरन् न च ते स्वास्थ्यसंरक्षणे साधकाः। यदि च संरक्षणे साधकास्तथाप्यस्वास्थ्यकरणे न हेतवं इत्येवं ब्रवीमि। तथाहि। अग्निवेशतन्त्रस्य शारीरे प्रथमे 'प्रश्नाः पुरुषमाश्रित्य त्रयो विंशतिरुत्तमाः। कतिधा पुरुषीयेऽस्मिन् निर्णीतास्तत्त्वदर्शिना इत्युक्तदिशा"। त्रयो विंशति प्रश्नेषु कतिधा पुरुषो धीमन् धातुभेदेन भिद्यते, इत्ययं प्रथमः प्रश्नः अस्य च उत्तरत्वे। खादयश्चेतनाषष्ठा धातवः पुरुषः स्मृतः। इत्येकमुत्तरं चेतनाधातुरप्येकः स्मृतः पुरुषसंज्ञकः, इति द्वितीयमुत्तरं। पुनश्च धातुभेदेन चतुर्विंशतिकः स्मृतः। मनो दशेन्द्रियाण्यर्थाः प्रकृतिश्चाऽऽष्टधातुकी। इति तृतीयमुत्तरं दत्तम्। तत्र प्रथमद्वितीययोरुत्तरयोरर्थस्तु स्पष्टः। तृतीयोत्तरस्य तु पुनश्च धातुभेदेन चतुर्विंशतिकः पुरुषः स्मृतः, चतुर्विंशति धातवस्तु—मनो दशेन्द्रियाणि पञ्च चाऽर्थाः खादीनि पञ्चमहाभूतानि बुद्धिरव्यक्तं अहङ्कार इत्यष्टौ प्रकृतयः। साकल्येन चतुर्विंशति तत्त्वानि तेषां समुदायः पुरुषः इति भवति। सतां त्रिदोषाणां कुतोऽत्र न प्रस्तावःखुड्डीका गर्भाऽवक्रान्तौ पुरुषस्याऽनुपहतरेतसः स्त्रियाश्चाऽप्रदुष्टयोनिशोणितगर्भाशयायाः यदा भवति संसर्गः ऋतुकाले यदा चाऽनयोस्तथैव युक्तयोः संसर्गे तु शुक्रशोणितसंसर्गमन्तर्गर्भाऽऽशयगतं जीवोऽवक्रामति सत्त्वसम्प्रयोगाद् तदा गर्भोऽभिनिर्वर्तते इति। तत्रैव चतुर्थेऽध्याये गर्भस्तु खल्वन्तरीक्षवाय्वग्नितोयभूमिविकारश्चेतनाधिष्ठानभूतः इति च प्रोक्तवान् तत्रैव। षष्ठेतु समयोगवाहिनो यदा अस्मिन् शरीरे धातवो वैषम्यमापद्यन्ते तदायं क्लेशं विनाशं वा प्राप्नोति। धातवः पुनः शारीराः समानगुणैः समानगुणभूयिष्ठैर्वाप्याहारविहारैरभ्यस्यमानैर्वृद्धिं प्राप्नुवन्ति। ह्रासन्तु विपरीत-गुणैर्विपरीत गुणभूयिष्ठैर्वाप्याहारैरभ्यस्यमानैः, तत्रेमे शरीरधातुगुणाः संख्यासामर्थ्यरूपकराः। तद्यथा गुरुलघुशीतोष्ण स्निग्धरूक्ष मन्दतीक्ष्ण स्थिरसर मृदुकठिन विशदपिच्छिल श्लक्ष्ण खर सूक्ष्मस्थूल सान्द्रद्रवाः, इति। अत्राऽपि तत्त्वसंख्यानबुध्या वातपित्तश्लेष्मणां परिगणिन न दृश्यते। धातुशब्दस्य चाऽत्र प्राधान्येन वातादिषु न तात्पर्यम् न च गुर्वादयो विंशति गुणाः त्रिदोषानेवाऽऽश्रित्य विद्यन्ते। तस्मादेव हि ग्रन्थकृत् तस्मान्मांसमाप्याय्यते मांसेन भूयोऽन्येभ्यः शरीरधातुभ्यः। तथा लोहितं लोहितेन, मेदो मेदसा, वसा वसयाऽस्थि तरुणास्थ्ना, मज्जा मज्जया, शुक्रं शुक्रेण, गर्भस्त्वाऽऽमगर्भेणेति दृष्टान्तत्वेन प्रतिपादिते सूत्रे अतिक्रमेणापि रसादिशुक्रान्तानां सप्तानां मांसमारभ्य नामानि गृहीतवान्। नह्यत्राऽपि वातादीनां स्मरणं। यद्येते शरीराऽऽधारस्य स्वास्थ्यसंरक्षणस्य वा हेतवः तर्हि शरीरोत्पत्तिकथनप्रसङ्गे इतरधातूनां तत्त्वानां चोपादाननिमित्तानामिव वातादीनां कुतो न गणना।

सुश्रुते, शारीरस्य द्वितीये, वर्णोत्पत्तौ भूतानां पञ्चानामेव नामान्याह। यथा तेजो

Indira Gandhi National Centre for the Arts

धातुः सर्ववर्णानां प्रभवः स यदा गर्भोत्पत्तावब्धातुप्रायो भवति तदा गर्भं गौरं करोति। पृथिवीधातुप्रायः कृष्णं, पृथिव्याकाशधातुप्रायः कृष्णश्यामं, तोयाऽऽकाश धातुप्रायः गौरश्यामानीति दोषाणामत्र प्रसक्तिरेव न विद्यते। तत्रैव गर्भावक्रान्तिशारीरे तृतीये —सौम्यं शुक्रमार्तवमाग्नेयमितरेषामप्यत्र भूतानां सान्निध्यमस्त्यणुना विशेषेणेति। भूतसमवेतत्वमेव निरदिशत्, न दोषसमवेतत्वं, अत्र गर्भाशयगतः शुक्रशोणितजीवसंयोगो गर्भो भवति। गर्भाऽऽरम्भक तत्त्वेभ्यश्शरीरमुत्पद्यते तान्येव तत्त्वानि शरीरं प्रत्युपादानत्वेन नाम कार्ययोनित्वेन सन्ति। कार्ययोनिर्नाम सा या विक्रियमाणा कार्यत्वमापद्यते। न ह्यत्र दोषाणां नामाऽपि गृहीतं तेषाञ्च कार्ययोनित्वप्रतिष्ठापनाया वार्तात्वतिदवीयसी, तस्मादुक्तं अनुपलब्धत्वादिति। किञ्च— प्रमेयमात्रस्य विमर्शका दर्शकाश्च गौतमकणादकपिलपतञ्जलिप्रभृतयस्तथा स्याद्वादनिष्णाता अन्ये च तत्त्वाऽन्वेषकाः किमित प्रमेयत्वेन वातपित्तश्लेष्मणो न जगृहुः। यद्येते गौतमकणादादिभिः प्रमस्तृभिर्दृष्टाः पृथक् प्रमेया इवाऽभविष्यन्। अवश्यं तेषां दर्शनस्य विषयाः अभविष्यन् नैतावदेव अपि त्वाऽऽयुर्वेदतत्त्वमूलेषु सर्वविद्याराशिषु वेदेष्वपि त्रिदोषोच्चारणानि न सन्ति। चरकस्य चतुर्थ शारीरे—मातृजादयोऽप्यस्य महाभूतविकारा एव। तत्रास्याऽऽकाशात्मकमित्यारभ्य पृथिव्यात्मको गन्धः घ्राणं गौरवं स्थैर्यं मूर्तिश्चेत्यन्तैस्सूत्रैः शरीरगतानां पञ्चभूतानां परिणामगुणकर्माण्यभिहितानि। तत्र वातपित्तश्लेष्माणो न वाच्यविषयत्वेन गृहीताः, तस्मात्सुष्ठूक्तमलब्धत्वादिति। उच्यते एतदतिमात्रं साहसं। यदलब्धत्वादिति भवत्यत्र विचार्यते। अत्राऽलब्धत्वं कथं केन कस्य कस्मादिति ह्यनुयोगाः किमत्र अधिकारिप्रमाता प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दैः प्रमेयांश्च सर्वान् स्वतन्त्रसिद्धान्तमनुसृत्य प्रामिमीत। एतावदवधि शब्दप्रमाणमेवाऽधिकृत्य कृतश्चाऽऽक्षेपः। तत्रोच्यते, चरकस्य शारीरस्य प्रथमाऽऽध्याये त्रयोविंशतिप्रश्नेस्वेव कारणं वेदनानां किं? इत्यस्य प्रश्नस्योत्तरत्वेन इत्यसात्म्यार्थसंयोगस्त्रिविधो दोषकोपनः। वेदनानामसात्म्यानामित्येते हेतवः स्मृताः इत्युक्तम्। अत्र त्रिविधोऽसात्म्यार्थसंयोगो दोषकोपनः इति दोषशब्देन वातपित्तश्लेष्मवाचकं त्रिदोषमभिप्रैति। समवेतशारीरधातुविषयकस्य प्रश्नस्योत्तरदाने त्रिदोषाणामवष्टम्भो न कृत इति तु भिन्न तात्पर्यं तच्च उत्तरत्र वर्ण्यते। सुश्रुत शारीरे चतुर्थे—असृजः श्लेष्मणश्चापि यः प्रसादः परो मतः, तं पच्यमानं पित्तेन वायुश्चाऽप्यनुधावति। ततोऽस्याऽन्त्राणि जायन्ते गुदं, बस्तिश्च देहिनः इति, अत्रत्वन्त्रगुदबस्तीनां प्रत्यङ्गानां समुत्पत्तौ वातादीनां कार्ययोनित्वं कथितमेव वातादयोऽत्राऽन्त्रादीनां जन्मन्युपादानकारणत्वेन तिष्ठन्ति। किञ्च धातुरूपेषु वातपित्तश्लेष्मसु भूतरूपेभ्यो वाय्वग्निवारिभ्यो जातेष्वपि तेभ्य एव समुत्पन्नेभ्यश्शारीरेभ्यो धात्वन्तरेभ्यो रक्तादिभ्यो विशिष्यन्ते। तस्मादायुर्वेदशास्त्रे पञ्चमहाभूतान्यङ्गीकृत्यापि दोषसंज्ञानां वातपित्तश्लेष्मणामपि ग्रहणमवार्यम्। गौतमकणादकपिल पतञ्जल्यादयः सूक्ष्माच्च तत्त्वात् स्थूलं वर्णितवन्तः, आयुर्वेदकारास्तु स्थूलात् सूक्ष्ममनुवर्णितवन्तः तेषामुपक्रमभेदात् आयुर्वेदे वातादीनामुपलब्धिरनुपलब्धिश्च न्यायादिषु इति कल्प्यते। न त्वनुपलब्धत्वात् किन्त्वनावश्यकत्वात् ते दोषसंज्ञान् वातपित्तश्लेष्मणः स्वतन्त्रेषु न संजगृहुः। किञ्च सांख्यादीनां दर्शनानां ज्ञानेन्द्रियमात्रव्यापारवत्त्वात् वैद्यकस्य तु ज्ञानकर्मोभयेन्द्रियव्यापारवत्वाच्च दोषग्रहणं गृहीतम्। सर्वविद्याराशिषु वेदेषु यदि त्रिदोषाणां प्रसक्तिर्न विद्येत ततः का हानिरिति वक्तव्यं। आयुर्वेदस्य शब्दप्रमाणविषये वेदानामुत्तमं प्रामाण्यात् तस्मादेव चरकाचार्यः सूत्रस्थानस्यैकादशे तत्राप्ताऽऽगमस्तावद्वेदो यश्चान्योऽपि कश्चिद्वेदार्थादविपरीतः परीक्षकैः प्रणीतः इत्युक्तवान् तस्मात्प्रवरप्रमाणभूतेषु वेदेषु दोषाणां ग्रहणमवश्यं हि यद्येवं तर्ह्यायुर्वेदे समुप-

दिष्टानां वमनविरेचनाऽऽदीनां बहूनामुपायानां चिकित्सोपयोगिनां वेदेष्वनुपलम्भात् ते चोपाया अनादरणीया अनुपबृंहितप्रमाणा वा स्युरत्रैव वेदानामिव वेदार्थाविपरीतानां परीक्षकैः प्रणीतानां अन्यग्रन्थानामपि प्रामाण्यात् अन्येषु चरकसुश्रुतादिषु समुपलम्भात् अनुपलब्धत्वं न संगच्छते किञ्च वेदेषु दोषाणां प्रसक्तिर्न विद्यते इतीयमप्युक्तिरतिसाहसिकी । "त्रिर्नो अश्विना दिव्यानि भेषजा त्रिः पार्थिवानि । त्रिरुदत्तमद्भ्य, ओमानं शंयोर्मम कायसूनवे । त्रिधातु शर्म वहतं शुभस्पती (मं. १ अ. ७ सू. ३४)" इत्यस्यां ऋचि "त्रिधातु शर्म वहतं" इति वाक्यस्य वातपित्तश्लेष्मधातुत्रयशमनविषयं सुखं वहतं इति सायणाचार्यः । तदित्थं वेदेष्वपि त्रिदोषाणां नामनिर्देशोऽस्त्येवेति प्रकृतं तावदभ्युपगच्छामस्तथापि तेषां स्वास्थ्यसंरक्षणत्वं कथं सिध्यति । चरकस्तु सूत्रस्थाने एकादशेऽध्याये त्रय उपस्तम्भाः युक्तियुक्तैरुपस्तम्भैस्त्रिभिरुपस्तब्धं शरीरं बलवर्णोपचयोपचितं यावदायुषोऽनुवर्तते, ते च उपस्तम्भा आहारः स्वप्नः ब्रह्मचर्यमिति प्रोवाच । अत्र च दोषाः शरीरमुपस्तभ्नुवन्तीति नोक्तवान्, उपस्तम्भनञ्च बलवर्णोपचयैरुपचितस्य शरीरस्याऽऽयुषो यावदनुवर्तनं भवति तच्च स्वास्थ्यादभिन्नं तस्मात् अन्नपानविधिं तथा विविधाऽशितपीतीये चरके समुपादिष्टञ्च अनुपाल्यब्रह्मचर्यं तथा निद्राञ्च यथाक्रमं शास्त्रानुरोधेनाऽनुचरन् स्वास्थ्यं रक्षितुं समर्थो भवति नान्यथा, यद्येवं किं तर्हि वृथा त्रिदोषाणामप्रस्तुतानामस्थाने प्रसक्त्या, किञ्च सप्तधातुषु श्रेष्ठत्वेन परिगणितं शोणितमेव स्वास्थ्यहेतुत्वेन कुतोनाऽङ्गीक्रियेत । रक्तस्य महत्त्वं ज्ञात्वा सुश्रुतः—देहस्य रुधिरं मूलं रुधिरेणैव धार्यते । तस्माद्यत्नेन संरक्ष्यं रक्तं जीव इति स्थितिरित्युक्तवान् । चरकोऽपि विधिशोणितीयेऽध्याये तद्विशुद्धं हि रुधिरं बलवर्णसुखायुषा, युनक्ति प्राणिनां प्राणः शोणितं ह्यनुवर्तते, इति शोणितमेव हि मांसादि शुक्रान्तानां धातूनां समुत्पादने निदानमास्ते । लोकेऽपि देहेऽपि च रक्तप्रभावं प्रत्यक्षतः पश्यामः । यदधिकरुधिरस्य प्रस्रवणेन जीवा न जीवन्ति । क्षयेण च रुधिरस्य पुरुषाः उच्चावचानां रुजां क्षेत्राणि भवन्ति । तदेवम्भूतं रक्तधातुं स्वास्थ्यस्य हेतुत्वेनाऽयोजयित्वा दोषाणां केन वा पक्षपातेन हेतुत्वं कल्प्यते । पक्षान्तरे सर्वधातूनां सारतरं सोमात्मकं स्निग्धादिगुणभूयिष्ठं उत्तमञ्च प्राणाऽऽयतनम् ओजो नामकमेव वा धातुं स्वास्थ्यस्य हेतुत्वेनाऽङ्गीकुर्वन्तु ।

ओजसः प्रभावस्त्वेवम् । ओजःसोमात्मकं स्निग्धं शुक्लं शीतं स्थिरं सरम् । विविक्तं मृदु मृत्स्नञ्च प्राणायतनमुत्तममिति (सु. सू. अ १५ श्लो. १४) सुश्रुताऽऽचार्यो निरदिशत् ।

किञ्च त्रिदोषसंज्ञानां वातपित्तश्लेष्मणां आहारकिट्टजन्यत्वात् आहारप्रसादजन्यै रसादिभिर्धातुभिरुपबृंहितस्य जीवत्कलेवरस्य स्वास्थ्ये कथं तेषां साधकत्वं सिध्यति । "तेषां च किट्टजन्यत्वे तु चरकाचार्यः-किट्टात् मूत्रस्वेदपुरीषवातपित्तश्लेष्माणः कर्णाक्षिनासिकास्यलोमकूपप्रजननमलकेशश्मश्रुलोमनखादयश्चाऽवयवाः (सू. अ. २८ सू. २)" इत्याह । किट्टजन्याः अपकर्षकाः दोषाः उत्कर्षकाणां प्रसादजन्यानां रसादीनां धातूनां स्वास्थ्यं संरक्षन्तीति लोकविरुद्धश्चाऽयं न्यायः केन वाऽङ्गीक्रियेताऽन्यच्च विध्युपयुक्तस्य चतुर्विधाऽऽहारस्य भिन्नभिन्नेभ्योंऽशेभ्य समुत्पन्नानां विभिन्नधर्मणां दोषधातूनां वाय्वादीनां रसादीनाञ्च रक्ष्यरक्षककार्यकारणसम्बन्धोऽपि कथं सङ्गच्छते । महदिदमद्भुतं उच्यते । वातपित्तश्लेष्माण एव स्वास्थ्यरक्षणे हेतवस्सम्पद्यन्ते । धातवोऽपि रसादयः दोषाऽपेक्षया शरीरे व्याप्यास्सन्ति प्रसादजन्याः अपि किट्टजन्येभ्यश्शरीरे दोषेभ्यः परिमिताश्च । नहि रसादीनां शरीरे दोषादीनामिव सर्वचरत्वं, धातवस्तु नियते कलेवरप्रदेशे जायन्ते चरन्ति च । वातादयस्तु नियते प्रदेशे जायमाना अपि सर्वशरीरदेशे

Indira Gandhi National
Centre for the Arts

वर्धन्ते चरन्ति च। जन्मनि सत्यपि धातूनां रसादीनां प्राशस्त्ये जीवने धातुसंज्ञकानामेव दोषाणां भवतीति। सत्यमुक्तं दोषाः स्वास्थ्यसंरक्षणे हेतव इति स्वयं रक्ष्या धातवः कथं रक्षेयुर्धात्वाख्यान् परान् तस्मादेव सुश्रुतः व्रणप्रश्नीये एकविंशतितमे सूत्रस्थाने "वातपित्तश्लेष्माण एव देहसम्भव — हेतवः, तैरेवाऽव्यापन्नैरधोमध्योर्ध्वं सन्निविष्टैः शरीरमिदं धार्यतेऽगारमिव स्थूणाभिस्तिसृभिरतश्च त्रिस्थूणमाहुरेके" इति। परन्त्वत्राऽयं खलु विचारणीयोंऽशः। त्रिदोषशब्देन के ग्राह्याः इति? वातपित्तश्लेष्माणो ग्राह्याः इति तर्हि किमिति सन्दिह्यते। सन्देहश्च वातपित्तश्लेष्मणां त्रिदोषाख्यानां द्वैधीभावात् तथाहि ते च अन्तर्गता बहिर्गताः इति, दोषभूता धातुभूता इति, समाः कुपिता इति च (कुपितमित्यौपलक्षणिकं तेन सञ्चित प्रसृतानामपि ग्रहणं) द्वैधीभावमापद्यन्ते। तथा सत्स्वत्रेषु के ग्राह्याः इति हि सन्देहः। उक्तञ्च चरकेण वातकलाकलीये, "वायुस्तन्त्रयन्त्रधरः प्राणोदानसमानव्यानाऽपानात्मा प्रवर्तकश्चेष्टानामुच्चावचानामिति। अग्निरेव शरीरे पित्तान्तर्गतः, कुपिताऽकुपित इति। सोम एव शरीरे श्लेष्मान्तर्गतः कुपिताऽकुपित इति। शरीरविचये शारीरे तु शरीरधातवस्त्वेवं द्विविधाः संग्रहेण मलभूताः प्रसादभूताश्च। तत्र मलभूतास्ते शरीरस्य ये बाधकराः स्युः, अपि च प्रकुपिता वातपित्तश्लेष्माणः" इति च। सुश्रुते तु "व्यापन्नाअव्यापन्ना इति च योगविभागो विद्यते। तैरेवाऽव्यापन्नैरित्युक्त्वा ते एव च व्यापन्नाः प्रलयहेतवः, अविरहितं शरीरं भवति" इति च। तस्मादुक्तं संदेह इति तद्यतः अन्तर्गताः धातुभूताः समाः अव्यापन्नाश्च लौकिकाश्शारीरगताः प्राण्यङ्गधातुत्वेन स्थिताः वाय्वग्निसोमाः एव स्वास्थ्यसंरक्षणे हेतव इत्युच्यते। अनेन च न कापि विप्रतिपत्तिः। तदेवं शब्दप्रमाणेन धातुसंज्ञका अविपन्ना अन्तर्गता अकुपिताश्च। त्रिदोषसंज्ञाः वातपित्तश्लेष्माणः स्वास्थ्यसंरक्षणे हेतव इति सिद्धम् भवतु, तथापि तेऽस्वास्थ्यकरणे न हेतव इत्युच्यते अस्वास्थ्यञ्च सुखनिर्वेदनायाः प्रतिकूलरूपः स्वास्थ्याद्विपरीतलक्षणो रोगाख्यो धर्मोऽस्वास्थ्यादनन्यः, स च रोगः वातविण्मूत्रादीनां शरीरबाधकराणां धारणादुदीरणाच्च भवति। उक्तञ्च वाग्भटेन, "रोगास्सर्वेऽपि जायन्ते वेगोदीरणधारणैरिति"। न ह्यत्र दोषेभ्यो रोगा जायन्ते इत्युक्तं तस्मादपरीक्षितमेवोच्यते दोषाः करणं रोगाणामिति। तथाऽन्यदपि श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणाऽभिधानानां ज्ञानेन्द्रियाणां शब्दस्पर्शरूपरसगन्धैस्तथा वाक्पाणिपादपायूपस्थाऽभिधानानां कर्मेन्द्रियाणां वचनाऽऽदानविहरणविसर्गाऽऽनन्दैश्च हीनमिथ्याऽतियोगा एवं हेमन्तग्रीष्मवर्षाणां शीतोष्णवर्षलक्षणानां स्वधर्मैश्शैत्यादिभिर्हीनमिथ्याऽतियोगाश्च कर्माणि च वाङ्मनःशरीरप्रवृत्तिलक्षणानि तानि च सूचकाऽनृतादीनि वचनानि भयशोकक्रोधलोभादीनि मानसिकानि वेगधारणोदीरणादीनि शारीराणि मिथ्याकर्माणि एतेषां स्वाभाविकात् हीनातिकर्मणां च कायवाङ्मनोभिर्हीनमिथ्याऽतियोगाः प्रज्ञापराधश्च रोगाणां कारणमिति किंवा आहारस्वप्नब्रह्मचर्याणामविधिनाऽनुष्ठानम् तथा स्वनियतप्रमाणात् क्षीणाः वृद्धाश्च रसादिधातवो मलाश्च किञ्चाऽदृष्टं कर्माऽपि वा रोगाणां निजानां हेतवः पुनरागन्तूनां तु चरकस्य त्रिशोफीये सूत्रस्थाने प्रोक्ताः "छेदनादिस्पर्शनान्ताः अभिघाताऽभिषङ्गाऽभिचाराऽभिशापाश्चैवमेतादृशा अन्ये च भावा रोगोत्पादने हेतुत्वेन सन्ति। तस्मादेव कालार्थकर्मणां योगो हीनमिथ्याऽतिमात्रकः। सम्यग्योगश्च विज्ञेयो रोगाऽऽरोग्यैककारणमिति"।

कश्चित्पूर्वाऽपराधजः इति अभिघाताऽभिषङ्गाभ्यामभिचाराऽभिशापतः। इत्यादि निदानप्राचीनि वचनानि दर्शितानि। तस्मादुच्यते वातादयो मा भुवन् रुजां कारणानीति। अयमत्र समुच्चयार्थः रोगोत्पादने तु—वेगोदीरणं वेगधारणं कालस्य अर्थस्य कर्मणश्च हीनमिथ्यातियोगाः

Indira Gandhi National Centre for the Arts

प्रज्ञापराधः अभिघातः अभिषङ्गः अभिचारः अभिशापः अदृष्टं कर्म। वृद्धाः क्षीणाश्च धात्वादयः अन्ये च विविधमुखा आगन्तवः आध्यात्मिकादयोऽन्ये च कारणानि भवन्ति । न च वातपित्तश्लेष्माणः कारणानीति उच्यते । अत्र निर्दिष्टास्सर्वेपि रोगोत्पादने हेतव एवेति प्रतिश्रूयते । हेतुर्नाम कारणं तस्मात्सम्प्रदायानुरोधेन पूर्वं कारणमेव जानीयात् । यत्राश्रिताः कर्मगुणा कारणं समवायि यत् । तद्द्रव्यं समवायी तु निश्चेष्टः कारणं गुणः इति सूत्रस्थानस्य प्रथमेऽध्याये । विमानस्थानेऽष्टमे तु तत्र "कारणन्नाम तद्यत्करोति स एव हेतुः कर्ता सः" इति स चरकः, निमित्त-समवायिकारणयोर्लक्षणं स्वसम्प्रदायमनुसृत्य लक्षयामास । समवायिकारणग्रहणादत्राऽनुक्तस्याऽसमवायिकारणस्याऽपि तदविच्छेदसाहचर्येण भवति । तदेवं समवायि असमवायि निमित्त कारणमिति कारणभेदाः । इदन्त्विदानीं विचार्यते रोगान्प्रत्येतेषामत्र हेतुत्वेन निर्दिष्टानां कीदृशं भवति कारणत्वमिति । नैषां रोगान्प्रति समवायित्वं नाऽपि चाऽसमवायित्वं कुतः इति चेत् यत्समवेतं कार्यम्भवति तत्समवायि । समवायिकारणञ्च चरकाऽऽचार्यः कार्ययोनित्वेन प्रतिपाद्य कार्ययोनिस्तु सा या विक्रियमाणा कार्यत्वमापद्यते । कार्ययोनिर्धातुवैषम्यमिति चाऽऽह । न हि पूर्वनिर्दिष्टाश्च हेतवो विक्रियमाणास्सन्तः कार्यत्वमापद्यन्ते । तस्मात्समवायिकारणत्वाऽसिद्धेस्तेषां समवायिकारणाऽऽश्रयिणोऽसमवायिकारणस्याऽपि सम्भावना तेषु नास्त्येव यदि ते हेतवो रोगान् प्रति निमित्तकारणत्वेन किंवा सहचारिकारणत्वेन तिष्ठन्ति चेदिष्टापत्तिरिति स्वाग्रतं ब्रवीमि तेभ्यस्तादृशेभ्योऽन्येभ्योपि कृमिप्रभृतिभ्यो हेतुभ्योऽथ विक्रियमाणा कथं कार्यत्वमापद्यते इति किञ्चिद्विस्तार्य कथ्यते । रूक्षलघुशीत व्यायामवमनविरेचनाऽस्थापन शिरोविरेचाऽतियोग वेगसन्धारणाऽनशनेभ्य. वायुः प्रकोपमापद्यते। प्रकुपितः प्रविश्याऽऽमाशयमुष्मणः स्थानं ऊष्मणासह मिश्रीभूय आद्यमाहारपरिणामधातुं रसनामानमन्वेत्य रसस्वेदवहानि च स्रोतांसि च पिधाय अग्निमुपहत्य पक्तिस्थानादुष्माणं बहिर्निरस्य केवलं शरीरमनुपद्यते। तदा ज्वरमभिनिवर्तयते इति ।

अस्मिन् दृष्टान्ते प्रकुपितो वायुर्दोषः तस्य प्रकोपणे रूक्षलघुशीताशनव्यायामादयो हेतवः परन्त्वत्र विक्रियमाणो दोषो वायुः न तु रूक्षाद्यशनादयः । वायुरपि प्रकुपितः न तु समः समस्य तस्य धातुसंज्ञत्वात् रोगोत्पादने अयोग्यत्वात् प्रकुपितवायुरत्र कार्ययोनिर्विक्रियमाणः स एव रोगसंज्ञो भवति । स च उष्मणः स्थानं प्रविश्योष्मणासह मिश्रीभूयेति तस्यैव प्रकुपितस्य प्रतिकृतिर्वर्णितास्ति न तथा तत्प्रकोपणहेतूनां तस्मात् दोषव्यतिरिक्तेभ्यः कारणेभ्यः समवाय्यसमवायिकारणत्वं न सिध्यतीति । रोगोत्पादने वायोर्दृष्टान्तेन दोषा एव कारणन्नाम समवायिकारणमित्यर्थः, किञ्च रोगान् प्रति त्रिदोषसंज्ञानां वातपित्तश्लेष्मणां समवायिकारणत्वं वेदेऽपि प्रतिपादितमस्ति । यथा अथर्ववेदस्य प्रथम काण्डस्य तृतीयेऽध्याये द्वादशतमे सूक्ते तृतीयऋचि, "मुञ्च शीर्षक्त्या उत कास एनं परुष्परु राविवेशा यो अस्य । यो अभ्रजा वातजा यश्च शुष्मो वनस्पतीन्सचतां पर्वतांश्च" । अत्र त्रिदोषसम्बद्धानां वाक्यानां व्याख्यानं कुर्वन् सायणाचार्य एवं व्याचख्यौ" ॥ इदानीं वातपित्तश्लेष्मविकारजनितानां सर्वेषामपि व्याधीनां अस्मात्पुरुषा दन्यत्राऽवस्थानं प्रार्थयते यो अभ्रजा इति । यो रोग अभ्रजाः अपो विभर्तीत्यभ्रं प्रवर्षको मेघसंघः तस्माज्जायते प्रवर्षणोदकसंसर्गेण उत्पद्यते इति । अभ्रजाः श्लेष्मरोगः तथा यो वातजाः वातात् कौष्ठयाद्वायोर्जातः उत्पन्नः रोगः यश्च शुष्मः शोषकः पित्तविकारजनितः ज्वरादिरोगोऽस्ति । दोषत्रयोद्भूतः स सर्वोऽपि रोगः एनं पुरुषं विहाय वनस्पतीन् काननस्थान् वृक्षान् पर्वतांश्च मनुष्यसञ्चाररहितान् शिलोच्चयांश्च सचतां समवैतु आश्रयतु इत्यर्थः । इत्थं वेदेऽपि रोगान् प्रति त्रिदोषस्य जनकत्वं समवायिकारणत्वेन प्रतिपादितत्वादिदं सिद्धं यदाप्तोपदेशरूप-

Indira Gandhi National Centre for the Arts

प्रमाणेन दोषाणां रोगान् प्रति समवायिकारणत्वं भवत्येव। तस्मादस्वास्थ्यकारणानि दोषा एवेति निश्चयः।

उपायान्तरेणाऽपि त्रयो दोषा यथा संक्षेपं विचार्यंते। सर्वेऽपि वयमायुर्वैदिका गत्यन्तराभावाद्याथातथ्याद्वा त्रीन्दोषान् व्याधिकारणत्वेन चाऽङ्गीकुर्मः। आप्तवाक्यप्रथितेषु चरकसुश्रुताद्यनेकग्रन्थेष्वत्यधिकान् बाह्यान् आन्तर्यान् हेतून् प्रदर्श्याऽपि सर्वरोगान् प्रति दोषाणामेव सिद्धान्तत्वेन कारणत्वं प्रतिष्ठाप्य तदनुरोधेनाऽऽयुर्वैदिक्यस्सर्वापिचिकित्सा समुपदिष्टाः तदायुर्वेदचिकित्सकेषु दोषाणां प्रत्येकं पञ्चपञ्च भेदान् तेषामेव दोषाणां क्षयस्थानवृद्ध्याऽऽत्मिकां गतिं ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्रूपां गतिञ्च कोष्ठशाखा मर्मास्थिसन्धिगतां चयप्रकोपप्रशमात्मिकां कालकृतां गतिं च धात्वात्मकानाञ्च तेषां गुणकर्मस्थानलक्षणानि च तान्येव दोषात्मकानामपि तेषां सर्वं जानन्ति। जानन्ति च सर्वे दैवयुक्तिसत्त्वव्यपाश्रयाऽत्मिकां तथा अन्तःपरिमार्जन बहिः परिमार्जन शस्त्रप्रणिधानात्मिकां दोषविधेयत्वेन प्रतिपादितां चिकित्साञ्च किमत्राऽस्ते साध्यं चिकित्सकानां दोषान्विहाय रोगानायुर्वेदनाम्ना चिकित्सितुं अपि चाऽस्ति साध्यं त्रिदोषविधेयत्वेन प्रतिपादितानि निदानपूर्वलक्षणलक्षणोपशयसम्प्राप्तिरूपाणि। रोगस्वबोधनसाधनान्यनाश्रित्य परीक्षितुं ज्ञातुञ्च तदुक्तं गत्यन्तराऽभावादिति। तथा चाऽऽयुयुर्वेदोक्तरीत्या परीक्षिता उपक्रान्ताश्च सहस्रशः उल्लाघिता भवन्तीति सर्वे चाऽऽयुर्वैदिका निश्चयेन विदन्ति। तदितिमात्रमायुर्वेदेऽस्माकं श्रद्धा चेति याथार्थ्यादित्युक्तम्। तद्वयं भारतीयाश्चिकित्सकास्त्रीन्दोषाननुक्षणं स्मराम इति तु सामान्यम्। परमासिंहलादाहिमाचलं भारतीयाश्चिकित्साशास्त्रेऽकृतमुखाः केवलं प्राकृता अपि दोषेषु यत्किञ्चिज्जानन्तोऽजानन्तश्च रुग्णान् चिकित्सन्तीति सर्वेषामस्माकं ज्ञातचरोऽयम् विषयः परन्त्ववगम्यते भारताद्बाह्येष्वपि देशेषु त्रिदोषसम्प्रदायोऽधुना व्यवहारेऽस्ति नास्तीति। सत्येवमत्र सन्दर्भे किं तत्र स्यान्मर्म।

अन्यत्रार्वाञ्चः केचन शारीरे कृतदीर्घपरिश्रमाः क्षणे क्षणे रसादीन् सप्तधातून् चर्मनखकेशलोमश्मश्र्वादीन् स्वेदमूत्रपुरीषादीनि च सूक्ष्मेक्षणाऽन्तःप्रकाशकादि यन्त्रजालैः कणशोऽणुशश्च वीक्षमाणा दोषाननुपलब्धा इत्यनंगीकृत्यऽसम्परायिताः स्वभावनियतक्रिया अङ्गप्रत्यङ्गविशेषास्तथा स्वावानश्च स्वास्थ्यस्य कारणं सम्परायिता अस्वास्थ्यस्य च कारणानि तत्र च जीवाऽजीवमूलतत्त्वानां संयोगवियोगात्मिका चिकित्सेयं फलकारिणीति प्रत्यवतिष्ठन्ते। यथोक्तश्च, ते चिकित्सन्ते रुग्णांश्च मोचयन्ति रोगेभ्यः इत्थम्भूते च भिन्नसन्धाने कथञ्च त्रिदोषपद्धतिं स्थापयामः, उच्यते।

अत्र पूर्वप्रस्तुतानां बहुपरिष्कृतानां पूर्वतरप्रस्तुतानामतिमात्रप्राकृतानाञ्च चिकित्सा सिद्धौ सामाजिकं सहवासकृतं ज्ञान-संक्रमणमेवनिदानं। न चैषां विद्यावैभवो नाऽपि च तेषां अदृष्टाऽतिशयस्तत्र कारणम्। तस्मादेतत्सामान्यं फले भवति अतिप्राकृताः बहुपरिष्कृतास्सामान्या वा समापन्नान् रोगिणो यथा-बुद्धि यथा-शक्ति यथाऽनुभवञ्च परीक्ष्य तदनुकूलमुपक्रमंते ते च शारीरगतान् दोषान् जानन्तु मा ज्ञासिषुः तच्चिकित्सापरामृष्टाः दोषाः स्वाऽवस्थां प्राप्नुवन्तः विकृतान् दूष्यादीन् स्वप्रकृतित्वे स्थापयन्ति यथा बालाः पिपासवो जलं पीत्वा शान्ता भवन्ति, न ते विदन्ति पिपासाया जलपानं प्रतिकारणमिति। एवं बहुविधै लौकिकैर्दृष्टान्तै निर्णीयेत यदेषां चिकित्सा फलसिध्या दोषाणाञ्चाऽस्तित्वं बाध्येतेति। तेषां स्थितित्वञ्चैवं सिध्यति विषमाणां शारीराणां वातपित्तश्लेष्मणां व्याधिनिमित्तानां शोधनाय (शरीरादेतान् बहिष्कृत्य) आयुर्वेदशास्त्रे पञ्च च कर्माण्युपदिष्टानि यथा वमनं कायशिरो-

Indira Gandhi National Centre for the Arts

श्रीमान् वैद्यपञ्चानन पं. गंगाधर शास्त्री गुणे, अहमदनगर।

अध्यक्ष कर्नाटकप्रान्तीय ४ वैद्यसंमेलन मंगळूर, (सन १९२८)।

अध्यक्ष, आयुर्वेदमहाविद्यालय, अहमदनगर।

संपादक भिषग्विलास (मराठी मासिकपत्र)।

Indira Gandhi National
Centre for the Arts

विरेचनं अनुवासनं रुधिरमोक्षणमित्येतैः सम्यक्प्रयुक्तैः क्रमेण वमनविरेचनाऽनुवासनानि श्लेष्मपित्तवातान् शरीराद्बहिरानयन्तीति सर्वेऽपि वैद्या अवगच्छन्ति। तथा बहिरानीतेषु तेषु रौक्ष्य शैत्य लाघव सौक्ष्म्य चलत्व वैशद्य खरत्व लक्षणैस्समन्वितं वायुं, औष्ण्यं स्नेहत्वं तैक्ष्ण्य द्रवत्वाऽम्लत्व सरत्व कटुत्व लक्षणैरन्वितं पित्तं, गौरवशैत्यमार्दव• स्निग्धत्व माधुर्य स्थिरत्व पैच्छिल्य लक्षणैस्समन्वितं श्लेष्माणञ्च यथा स्वेनेन्द्रियेण यथा स्वैरिन्द्रियैर्वा साक्षात्कर्तुं शक्नुयुः विशेषतस्तत्तत्प्राचुर्येषु व्याधिषु, यथाऽऽनाहाध्मानादिषु वायुं, पाण्डुकामलाहलीमकादिषु पित्तं श्वासकासयक्ष्मादिषु श्लेष्माणञ्च शोधनेन विना शोधनेन च प्रत्यक्षीकर्तुं समर्थयन्ते। वमनविरेचनाऽनुवासनानि कर्माणि तेषां यथाऽऽसन्नविशेषस्थानान्यालोच्य व्यवस्थितानि तानि किमप्रत्यक्षाणि? परन्त्वेतदत्र न विस्मरणीयं॥ शोधनशोधिताश्चैते प्रकुपितत्वात् शरीरस्य बाधकत्वेन स्थिता न पुनस्साधकत्वेन स्थिता इति। एते च बहुद्रव्ययुक्ता स्थूलतराः लंघनाऽसाध्या लंघनदुस्साध्या वा अन्तिमकार्यरूपा इति ज्ञेयाः। स्थूलतरमन्तिमकार्यत्वं दोषाणां प्रकोपस्य प्रसरस्य चाऽवस्थायाम्भवति। एतत्पूर्वाऽवस्थायां स्थिता चयमर्यादा कार्यात्मका लंघनसाध्या अनुमानगम्याः भवन्ति। एतस्मादपि पूर्वाऽवस्थायां स्थितास्सूक्ष्मरूपाः तथा च कार्यात्मकाः स्वास्थ्यसंरक्षण हेतवोऽनुमानगम्या सूक्ष्मेक्षणाऽन्तः प्रकाशकादिभिर्यन्त्रविशेषैर्दृश्याः दोषा भवन्ति। परमेतेषामपि कारणजाताः सर्वस्रोतस्सु व्यापकत्वेन शरीरसर्वप्रदेशे धात्वन्तरव्यतिकरा सूक्ष्मेक्षणादिभिर्जातुचिददृश्या गुणकर्मभिर्हेतुभिरनुमेयाः केवलं ज्ञानचक्षुषां तपश्चक्षुषामेव विषयीभूताः प्रविभक्तकर्मनिष्ठाः वाय्वग्निसोमात्मका द्यावापृथिव्योरन्तरिक्षे समधिष्ठितमूलप्रभावा देहधारणाद्धात्वभिधानाः सदात्मकाश्च ते व्यवहारसौकर्याय दोषव्यपदेशेनाऽऽकार्यन्ते। एतान् विद्वांसोऽन्यत्राऽन्यदा च सरसं वर्णयेयुः। अवसराऽभावान्न विस्तार्यते। यद्यपि वयं जानीम एतत्कथनमात्रेण न तावत् पाश्चात्यचिकित्सकास्तृप्ता भवेयुर्यावद् बाह्यैः करणसाधनैर्वाय्वादीन् दोषान् न साधयेमः। अपि नाम कोवा भारतीयेषु विद्वत्सु मनूक्तदिशा अन्तःसंज्ञा भवन्त्येते सुखदुःख समन्विताः इति। तरुगुल्मलतादिषु जीवोविद्यते इति न जानाति। न जानाति च रसोपरसादिषु जीवा विद्यन्ते इति। परं तत्तत्त्वं न तावद् विद्वांसो विज्ञानिनो यथाहृदयङ्गममभ्युपागच्छन् यावत् जे. सि. बसुमहाशयः बाह्यैः करणकलापैः तज्जीवजीवनस्थितिं न प्रकाशयत्। एवं भोः तरुण चिकित्सकाः! दोषानपि बाह्यैः करणकलापैः कृतिमुखेन दर्शयितुमचिराद्यतन्तां। सैषा खलु तेषां वस्तुनिश्चयस्यनिर्धारणपद्धतिः। न तावदुद्विग्नाः हताशाः हसनदूषणसाराश्च भवेयुरिति प्रतीक्षे। इदानीं वेदाऽऽयुर्वेदसम्बन्धमधिकृत्य किञ्चिदुच्यते। ब्रह्मवैवर्ते "ऋग्यजुः सामाथर्वाख्यान् दृष्ट्वा वेदान्प्रजापतिः॥ विचिन्त्य तेषामर्थञ्चैवाऽऽयुर्वेदञ्चकार सः॥" इत्युपलभ्यते। अनेन च पूर्वप्रस्तुता ब्रह्मसंहिता नाम चिकित्सासंहिता तु न कस्याप्येकस्य स्वतन्त्रस्य बुद्धिचमत्कृतिः परंत्वशेषाऽनवद्यविद्यानामायतनस्य वेदपुरुषस्यैवाऽऽविष्कृतिर्ब्रह्मणा भाषान्तरेण प्रणीतकृतिरित्यवगम्यते। वेदेष्वपि विशेषतोऽथर्वसु चिकित्साविषया उपलभ्यन्ते। तस्मादेव हि सुश्रुतः इह खल्वायुर्वेदो नाम यदुपाङ्गमथर्ववेदस्येति। चरकश्च तत्रभिषजापृष्टेनैवं चतुर्णामृक्सामयजुरथर्ववेदानां आत्मनोऽथर्ववेदे भक्तिरादेश्येत्यवोचतां वस्तुस्थितौ चतुर्ष्वपि वेदेषु चिकित्साविषयो दरीदृश्यते। तत्रापि चतुर्थे तु वेदे वेदोऽह्याथर्वणः स्वस्त्ययन बलिमङ्गल होमनियम प्रायश्चित्तोपवास मन्त्रादि परिग्रहाच्चिकित्सां प्राह इत्युक्तादिशा त्रिविधासु चिकित्सास्वन्यतमां दैवव्यपाश्रयां नाम चिकित्सां बोधयति। तथा च चरकः त्रिविधमौषधमिति दैवव्यपाश्रयं युक्तिव्यपाश्रयं सत्वावजयश्च। तत्र दैवव्यपाश्रयं मन्त्रौषधि मणिमङ्गल बल्युपहार होमनियम

Indira Gandhi National Centre for the Arts

प्रायश्चित्तोपवास स्वस्त्ययन प्रणिपात तीर्थगमनादि इत्यवादीत्। स्वस्त्ययनेत्यस्मात्सूत्राद-स्मिन् मण्योपध्युपहार प्रणिपाततीर्थगमनान्यधिक्येन सूत्रितानीत्यनेन अथर्वात्तु विशेषेण दैव-व्यपाश्रयां चिकित्सां बोधयतीति फलति। चरकस्त्वथर्ववेदविदां स्वतन्त्रेऽतिमात्रं गौरवं प्रादर्श-यत्। यथा शारीरस्थाने "ब्राह्मणाश्चाऽथर्ववेदविदः (शा. ८ सू. ७९)" "ब्राह्मणश्चाऽथर्ववेद-वित्सततमुभयकालं शान्तिं जुहुयादिति (शा. ८ सू. १०१)" दिङ्मात्रमेतत् दर्शितं अन्यत्र —न्येके सुश्रुते च एवं विधानि बहूनि सन्ति वाक्यान्येतावता किमुपपद्यते व्यवहाराऽनुकूलार्थ-मायुर्वेदं कस्यापि वा वेदस्योपवेदत्वेन मन्यन्तां परमायुर्वेदस्य ऋगादि वेदैर्बलवाननादिश्च सम्बन्धोऽस्तीति निश्चयः। तथाचाऽऽयुर्वेदे तत्वार्थेन गृहीता बहवो विषया वैदिका वेदेपूपल-भ्यन्ते दृष्टान्तार्थमेव काँश्चिद्विषयानत्र गृह्णामि।

यजुर्वेदे—"असुश्चमे चित्तश्चमे मनश्च मे।"

अथर्ववेदे—"अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या। पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याःपुरुष उच्यते इति पुरुषलक्षणं। केनपार्ष्णी केनमांसं केनगुल्फौ केनांऽगुली केनपेशनी केननखानि केनोच्छ्लंखौ कस्मात्गुल्फावधरौ अष्ठीवन्तावुत्तरौ जङ्घे जानुनोस्सन्धि। जानुभ्यामूर्ध्वंशिथिरं कबन्धं श्रोणी यदूरू कुसिन्धं उरो ग्रीवा स्तनौ कफोडौ स्कन्धान् पृष्टी बाहू अंसौ सप्तखानि शीर्षाणि कर्णौ नासिके चक्षाणि मुखम् हन्वोर्हि जिह्वा मस्तिष्कं ललाटं ककाटिकां कपालम् (कां. १० अ. १ सू. २)"

उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात् हृदयात् क्लोम्नो हलीक्ष्णात् मतस्नाभ्यां प्लीन्हो यक्नस्ते। आन्त्रेभ्यः गुदाभ्यो वनिष्ठोरुदरात् कुक्षिभ्यां प्लाशेर्नाभ्यां प्रपदाभ्यां भसद्यं भासदं भंससो अस्थिभ्यो मज्जभ्यः स्नावभ्यो धमनीभ्यः लोम्नित्वचस्य (कां. २ अ. ६ सू. ३३)।

शुक्रमभृतं जनयन्त रेतः। (पू. अ. १९)।

यास्ते शतं धमनयोऽङ्गान्यनुविष्टिताः तासां ते सर्वासां। (का. ६ अ. १० सू. ९०) शतस्य धमनीनां सहस्रस्य हिराणां। अस्थुरिन्मध्यमा इमाः साकमन्ता अरंसत। (का. १, अ. ४, सू. १७)।

विश्वस्मै प्राणायापानायव्ययानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय। (पू. अ. १३ म. १९) इत्यादिभिरेभिर्वाक्यैरायुर्वेदस्य शारीरे विद्यमानानां अंगप्रत्यंगानां नामानि सप्तधातूनां स्नाव्नां धमनीनां सिराणां च नामानि लभ्यन्ते। लभ्यन्ते च मनश्चित्त प्राणानां तथा पुरुषशब्दस्याऽर्थलक्षण निर्वचनानि च सम्यग्वर्णितानि। इमानि यानि पञ्चेंद्रियाणि मनः षष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा संश्रितानि। (का. १०, अ. १, सू. ९) आवृत्य योगविभागात् पञ्चकर्मेंद्रियाणां पञ्चज्ञानेन्द्रियाणां मनसश्च अर्थलाभो भवति। भवति च मनसइन्द्रियत्व सिद्धिश्च—मनसो हृदयं स्थानमिति निर्णयश्चैभिर्मन्त्रैर्भवति। कोऽस्मिन्नापो व्यदधात् विषूवृतः पुरूवृतः सिन्धु सृत्याय जाताः। त्रीव्रा अरुणा लोहिनीस्ताम्रधूम्रा उर्ध्वो अवाचीः पुरुषे तिरश्चीः (कां. १०, अ. १०, सू. २)।

यास्ते शतं धमनयोऽङ्गान्यनुविष्टिता तासां सर्वासां आभ्यां मन्त्राभ्यां लोहितकृष्णयोः शुद्धाऽशुद्धरक्तयो- उर्ध्वाधस्तिर्यग्प्रदेशेषु शरीरस्य सञ्चरणं स्पष्टतयाऽवर्ण्यत। प्रियाऽप्रियाणि बहुलास्वप्नं संबाधतन्द्यः। (कां. १०, अ. १, सू. २)।

अनेन सुःस्वप्नान् दुःस्वप्नान् नानाविधत्वेन कल्पयित्वा तन्द्रा च प्रस्तुता। मिमातिमायुं पयते पयोभिः। (कां. ९, सू. १, मं. ८)।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

वातस्त् ते प्राणमविदं । (कां. ७, अ. १, सू. ७) ।

नाभिः समानानां भूयासं । (कां. १६, सू. २) ।

यकृत् क्लोमानं वरुणो भिषज्यन् मतस्न वायव्यैर्न मिनाति पित्तम् । (यजुः, पू. १९ म. ८५) ।

आसो बलासोऽभवतु । (कां. ९ अ. सू. ९) ।

सप्तप्राणाः सप्ताऽपानाः सप्तव्यानाः (कां. १५ अ. २ सू. १५) ।

· प्राणश्रमेऽपानश्रमे व्यानश्रमे । (पू. अ. १८)" इत्येभिर्मन्त्रैर्वातपित्तश्लेष्मणां (बलासो नाम श्लेष्मा) नामान्याम्नातानि क्रियाश्च तदत्र शारीरं शास्त्रमधिकृत्य दिङ्मात्रमेतदुक्तं । अनेन च वेदाऽऽयुर्वेदयोश्शारीरसम्बन्धं जानीयुर्बुधाः । "यस्मान्मासानिर्मितास्त्रिंशदरः संवत्सरोयस्मान्निर्मितो द्वादशारः । (कां. ४ अ. ८ सू. ३५)" ।

"तस्या ग्रीष्मश्च वसन्तश्च द्वौ पादावास्तां शरच्च वर्षाश्च द्वौ । (कां. १५ अ. १ सू. ३)"

ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धेमन्त शिशिरो वसन्तः ऋतुवस्ते विहिता "हायनीरहोरात्रे पृथिविनी दुहातां । (कां. १२ अ. १ सू. १)" ।

"न पितृयाणं पन्थां जानाति न देवयानम् (कां. १५ अ. २ सू. १२) ये देवयानाः पितृयाणाश्च लोका सर्वान् पथो अनृणा आक्षिपेयम् ।

क्रव्यादमग्निं शशमानमुक्थ्यं प्रहिणोमि पथिभिः पितृयाणैः ।

मा देवयानैः पुनरागा अत्रैवैधि पितृषु जागृहि त्वम् ॥ (कां. १२ अ. २ सू. २)" अत्र पितृयाणन्नाम् दक्षिणायनं, देवयानन्नाम उत्तरायणमित्यर्थः मन्त्रैश्चैतैरायुर्वेदे प्रतिपादितं । क्षणादि विसर्गाऽऽदानात्मकं मासर्तुभिर्विभक्तं कालं जानीयात् ।

"कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरि रेताः । (का. १९ अ. सू. ५३)"

अनेन च मन्त्रेण परिणामात्मकं कालं विद्यात् । "शं न आपो हैमवतीः शमु ते सन्तूत्स्याः सनिष्यदाः वर्ष्याः धन्वन्याः अनूप्याः खनित्रिमा कुम्भेऽभिराभृताः अनभ्रयः खनमानाः दिव्यानामणं स्रोतस्यानां । (कां. १९ अ. १ सू. १)"

एभिर्वाक्यैः कालदेशाऽऽधारोपाधिभिर्विभिन्नात्मकमुदकं विवृणोति । एतन्मूलकमेवाऽऽयुर्वेदे द्रवद्रव्यप्रकरणे उदकविवरणं दृश्यते ।

"अस्थिस्रंसं परुस्रंसं हृदयामयं । (का. ६ अ. ५ सू. १४)"

"अग्निस्तक्मानमपबाधतां, बलासं कासमुद्युगं बलासेन कासीकया तृतीयकं वितृतीयं सदन्दिं शारदं । तक्मानं शीतं रूरं ग्रैष्मं नाशय वार्षिकां (कां. ५ अ. ५ सू. २२). यो अक्ष्यौ परिसर्पति, यो नासे परिसर्पति, दतां यो मध्यं गच्छति, तं क्रिमिं जम्भयामसि । (कां. ५ अ. ४ सू. २३) त्रयोदासा आञ्जनस्य तक्मा बलास आदहिः । (कां. ४ अ. ११ सू. ९) ।

यदान्त्रेषु गवीन्योर्यद्वस्तावधि संश्रुतं । ए. ते. मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् । (का. १ अ. १ सू. ३) ।

स्त्रीणां श्रोणि प्रतोदित इन्द्ररक्षांसि नाशय ।

शीर्षक्तिं शीर्षामयं कर्णशूलं विलोहितं शीर्षण्यं कंकूभेभ्यः रोगं विसल्पकं अंगभेदं अंगज्वरं विश्वांग्यं । य ऊरु अनुसर्पत्यथो एति गवीनिके । यक्ष्मंहिरमाणं ते अंत्रेभ्योप्वा मन्तरोदरात् सर्वेषां विषं निरवोचं काहाबाहं । (कां. ९ अ. ४ सू. ८) तद् विषं सर्पा उपाजीवन्ति । (का. ८ अ. ५ सू. ५) श्रमस्तन्द्रीश्च मोहश्च (का. ८ अ. ४ सू. ८)

Indira Gandhi National Centre for the Arts

इदं तमाय त्वद् वयं विपूचीं विवृहामसि ।"

इत्येवम्भूतैर्बहुभिर्वाक्यैर्मन्त्रैश्च बहून्याम्नातानि सन्ति । रुजाणां नामानि लघुपरिचयार्थमेव श्रोतृणामेतावन्त्यैवोद्धृतानि । विपश्चिजनस्सुनिपुणं समालोचयेयुरनेन वेदाऽऽयुर्वेदयोः रोग सम्बन्धम् । "अप्स्वंन्तरमृतमप्सु भेषजम्, अपो याचामि भेषजम्, अप्सुमे सोमोऽब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा आपः प्रणीत भेषजम् (का. १ अ. १ सू. ४-५-६)"

"उद्यन्नादित्यः क्रिमीन् हन्तु (का. २ अ ६ सू. ३२)"

या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रि युगं पुरा । मनै नु बभ्रूणमहं शतं धामानि सप्त च । शतं वो अम्ब धामनि सहस्रमुत वो रुहः । अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदंकृत ।

पुष्पवतीः प्रसूवरीः वीरुधः (पू. अ. १२ मं ७५-७६-७७) अथोकृणोमि भेषजं यथा सच्छत हायनः । वराहो वेद वीरुदं नकुलो वेद भेषजीं । सर्पागन्धर्वा या विदुस्ता अस्मा अवसे हुवे । या सुपर्णाः आंगिरसी दिव्यायारघटो विदु वयांसि हंसा या विदुर्याश्च सर्वे पतत्रिणः । मृगा या विदुरोपधीस्ता अस्मा अवसे हुवे । यावतीनामोषधीनां गावः प्राश्नन्त्यघ्न्या यावतीनामजावयः । तावतीस्तुभ्यमोषधी शर्म यच्छन्त्वाभृताः यावतीषु मनुष्या भेषजं भिषजो विदुः पुष्पवतीः, प्रसूमतीः, फलिनीरफला (का. ८ अ. ४ सू. ७) यथा नकुलो विच्छिद्य संदधाति हिं पुनः । (कां. ६ अ. १३ सू. १३९)

अत्र शतं धामनि सप्त च इत्यस्मिन्मन्त्रे प्राधान्येन धाम्नां सप्तोत्तरं शतं संख्याय । द्वितीये मन्त्रे धामनिसहस्रमुत इत्य प्राधान्येन सहस्रञ्च सञ्चख्यौ । यानि चाऽजाविमृगपक्षि हंससर्प सुपर्णनकुलवराह गन्धर्व मनुष्यादिभिर्ज्ञायन्ते । तानि सुखार्थं सर्वेभ्य उपयुक्तानि भवन्त्विति वेदो निर्दिशति किञ्चैतानि विनापि भेषजानि । कुष्ठ कृष्णरामा दर्भदूर्वा रोहिण्यश्वत्थ पिप्पल्यपामार्ग पृश्निपर्णी मधुवल्यादीनि बहून्येकैकत्वेन भेषजानि वीर्यगुणकर्मभिराम्नातानि वेदेषु तत्रतत्र उपलभ्यन्ते यदि तान्युद्धृत्याऽत्र कथयेयं तेषामेव कश्चन् महान् स्याद् ग्रन्थः । परमनौचित्याद्बिभेमि । किञ्च विषचिकित्सायञ्च बहूनि भेषजानि बहवोऽन्ये चोपायाः प्रदर्शिताः ।

किंबहुना । "उच्चैर्घोषो दुंदुभिस्सत्वनायन् वानस्पत्यः सम्भृत उस्त्रियाभिः वाचं क्षुणुवानो दमयन्त्स्यसपत्नान्सिंह इव जेष्यन्नभि तंस्तनीहि । (कां ५ अ. ४ सू. २०)" इत्यादिना सूक्तेन निर्वर्णित एव विषयः सुश्रुतस्य कल्पस्थाने दुन्दुभि स्वनीयाऽध्याये व्याख्यातस्य अनेन दुन्दुभिं लिम्पेत पताका तोरणानि च । श्रवणाद्दर्शनात्स्पर्शाद्विषात्सम्प्रमुच्यते इत्यस्य मूलं स्यादिति कथनमन्यथा न स्यादिति विश्वसिमि ।

वेदेषु न केवलं कायचिकित्सैवाऽपि तु शस्त्रप्रणिधानाद्यन्याङ्गचिकित्साश्च भूयस्य उपलभ्यन्ते । तत्तान् चिकित्सकमहाशयान् सप्रणयाऽवनतं सम्प्रार्थ्य निवेदयामि । ये नाम वेदाऽऽयुर्वेदयोश्चिकित्सासम्बन्धं दृढतरं कर्तुमीहन्ते । ते च नितान्तं वेदेष्वायुर्वेदे च परिश्रम्य भूयोभूयश्चिकित्सकजन प्रीतानर्थानाविष्कुर्वन्त्विति । किञ्चाऽत्रैव दृष्टान्तत्वेन निदर्शितैः अप्स्वन्तरमृतं उद्यन्नादित्यः इत्यादि वेदोक्तैर्वाक्यैः स्वास्थ्यसंरक्षणे आपः सूर्यश्च कथं प्रयोजका भवन्तीत्यवगम्येताऽन्यत्र वाय्वादयोपि स्वास्थ्यरक्षणे प्रयोजकत्वेन समाम्नाताः । किञ्च केचनाऽनुपकरणनयनानामदृश्याः क्रिमयो बहून् ज्वरराजयक्ष्मादीनामयान् जनयन्तीत्यधुनातनानां कुशलानामपि भिषजां समालोचनाया वेदेष्वाधारका मन्त्रादश्रूयन्ते तथाहि ।

"क्रिमे विश्वस्य तर्हणी दृष्टमदृष्टमतृहमथो कुरूरुमतृहं । अलगण्डून् ये क्रिमयः पर्वतेषु वनेष्वोषधीषु पशुष्वप्स्वन्तः । येऽस्माकं तन्वमाविविशुः सर्वं तद्धन्मि जनिम क्रिमीणाम् । (कां.

Gandhi National Centre for the Arts

२ अ. ५ सू. ३१)". प्रसङ्गवशात् न केवलमदृष्टान् क्रिमीन् अपि तु बहूनन्यानपि जनज्ञानाय सूचितवान्। किञ्चास्वास्थ्य – कारणानां विविध कीटानां मक्षिकाणां सरीसृपादीनाञ्च नाम कर्माण्यभिहितानि । गौरवात् न विस्तार्यन्ते । तदलङ्करोमि सभासदामस्याम् वेदपुरुष प्रस्तावं प्रमाणधुरन्धरम्।

औचित्यादत्र रसशास्त्रं किञ्चिद्विवक्ष्यामि। अस्य शास्त्रस्य सिद्धाः लोकायतिकाश्च प्रवर्तकाः। तस्माद्रसस्य महारसानामुपरसानां रत्नानां लोहानां तथा चैतदुपयुक्तानामान्येषाञ्च केषाञ्चिद्विज्ञानविषयान् रसार्णव रससमुच्चयादितन्त्रग्रन्थेषु तथाऽर्थशास्त्रेषु च द्रष्टुं शक्नुमः।

"सिद्धानाञ्चोद्देशो। सेत्स्यति रसे करिष्ये महीमह निर्जरामरणां (र. स. अ. १ श्लो. ३६)"

> कर्मयोगेन देवेशि प्राप्यते पिण्डधारणम्।
> रसश्च पवनश्चेति कर्मयोगो द्विधा मतः॥
> मूर्च्छितो हरते व्याधिं मृतो जीवयति स्वयम्।
> बद्धः खेचरतां कुर्यात् रसो वायुश्च भैरवि॥ (रि. प्र. प. श्लो. १८-१९)

इत्युक्तदिशा। निर्जरामरणत्वं दीर्घकालानुबन्धस्य शरीरस्य धारणञ्चाऽऽस्ते। अर्थाजीवन्मुक्तिः स्वास्थ्यसंरक्षणञ्च। लोकायतिकानां पृथिव्या लाभेपालनेचोद्देशः। (अ. १, अध्या. १, सू. १) कोशाऽध्यक्षः कोशप्रवेश्यं रत्नं सारं। (अ. २, अध्या. ११, प्र. २९.) आकराध्यक्षः शुल्बधातुशास्त्र रसपाकमणिरागज्ञस्तज्ज्ञसंखो वा। (अ. २, अध्या. ११, प्र. ३०) इत्यादि कथनानामनुरोधेन पृथिव्या लाभः पालनश्चोद्देशोऽस्ति।

रसकर्मणि तु सिद्ध इव लोकायतिका अप्यपश्चिम विपश्चित आसन्।

"यथा रसजं क्षेत्रजं चैव लोहसंकरजं तथा।

त्रिविधं जायते हेम चतुर्थञ्चोपलभ्यते॥ (र. प. ७, श्लो. ९९) इति त्रिविधानि सुवर्णान्येव निरदिशत्।

अर्थशास्त्रे तु, जाम्बूनदं, शातकुम्भं, हाटकं, वैणवं शृङ्गशुक्तिजं जातरूपं रसविद्धमाकरोद्गतञ्च सुवर्णमिति। सप्तविध सुवर्णानि प्रादर्शयत् वैक्रान्तः सूर्यकान्तः, हीरकं मौक्तिकं चन्द्रकान्तः राजावर्तः गरुडोद्गारः पुष्परागं महानीलं पद्मरागं प्रवालकं वैदूर्यं नीलमिति। त्रयोदश मणिभेदान् सिद्धाः। सौगन्धिकः पद्मरागः अनवद्यरागः पारिजातपुष्पकः बालसूर्यकः वैदूर्यः उत्पलवर्णः शिरीषपुष्पकः उदकवर्णः वंशरागः शुकपत्रवर्णः पुष्परागो गोमूत्रको गोमेदकः नीलावलीयः इन्द्रनीलः कलायपुष्पकः महानीलः जाम्बवाभः जीमूतप्रभः नन्दकः स्रवन्मध्यः शीतवृष्टिः सूर्यकान्तश्चेति मणयः इति चतुर्विंशति मणीन् लोकायतिकाश्च व्याजह्रुः। एवं तन्त्रशास्त्रे प्रतिपादितानां मणीनां लोहानां तेषामेवाऽर्थशास्त्रे प्रतिपादितानाञ्च गणनाभेदो विद्यते। तयोरर्थशास्त्रमेव धात्वादीन् सम्यग्विभज्य प्राददर्शदिति कथनमुत्प्रेक्षणमस्यात् एतत्कथनस्येदं तात्पर्यम्। रसशास्त्रमारम्भे चिकित्साबुध्या न प्रादुरभूत्। परमर्थसाधनबुध्या तस्माद्रसशास्त्रस्योत्कर्षविषये चिकित्सका इव लोकायतिका अपि कारणत्वेन सन्तीति। चिकित्सकाश्चार्थशास्त्रे प्रतिपादितान् धात्वादि विषयान् प्रसमीक्ष्येतोऽपि स्वप्रमेय लाभं लभेरन्निति मे प्रत्याशा।

तन्त्रशास्त्रं, रसखण्डं, प्रयोगखण्डं, वादखण्डं, रसायनखण्डं, मन्त्रखण्डमिति पञ्चधा विभक्तं प्रकृतेऽस्मिच्चिकित्सा प्रपञ्चे तु रसप्रयोगरसायनखण्डान्येव बाहुल्येनोपयुज्यन्ते। खण्डे-

Indira Gandhi National Centre for the Arts

ष्वेतेषु निर्दिष्टाऽर्थान् आयुर्वेदमहामण्डलस्य षष्ठस्य सम्मेलनस्य सभापतयो लक्ष्मीराम स्वामिनो यथोचितं व्याकुर्वन्निति । नाहं कालं भवदीयं हरामि । परन्त्वेतदेव सूचयित्वा विरमामि रसशास्त्रात् ।

महाशयाः ! सभ्याः ! रसरत्नसमुच्चयस्याऽष्टमे परिभाषाप्रकरणे "प्रोक्तानां रञ्जनसारणयोः तथा लेपक्षेपकुन्तधूमशब्दाख्यवेधानाञ्च पारिभाषिकाणां सूतकञ्चाऽभ्रकञ्चैव वज्रीक्षीरसमन्वितम् हाटकेनसमायुक्तं गुटिका खेचरी भवेदिति । (र. प. १२ श्लो. ३७३)" रसार्णवस्य श्लोकस्य चाऽर्थतत्वं विचारयेमस्तेन भारतीया अस्मत्पूर्वजा रसे कीदृशीं परां काष्ठां अगमन्निति सुव्यक्तं जानीमः । परन्त्वत्राऽविश्वासोऽस्मदालस्यञ्च परं निदानं स्यात् । तदेव सुधियः प्रमाणमिति पुरस्तात्साधयामि ।

नाडीविद्या । नाडीविद्यामधिकृत्येदानीं किञ्चिदुच्यते । भारतीयेष्वाधुनिकेषु भिषग्जनेषु नाडीपरीक्षणन्नाम चरकसुश्रुतादिष्वार्षेषु ग्रन्थेष्वनुक्तं किञ्च न परीक्षणान्तरमुपलभ्यते । किमस्याः परीक्षाया मूलमिति कैश्चिद्विचार्यते । यद्यप्यर्वाचीनेषु शार्ङ्गधर—भावप्रकाशादि ग्रन्थेष्वस्या विद्यायास्समुल्लेखनञ्च दृश्यते । यथा करस्याऽङ्गुष्ठमूले या धमनी जीवसाक्षिणी । तच्चेष्टया सुखं दुःखं ज्ञेयं कायस्य पण्डितैरित्यादिना प्रमाणञ्चैवं स्थाप्यतेऽत्र । नाडीविद्यायां नाडीस्पन्दनस्यैव परीक्षणं तत्र स्पन्दने वायुर्निदानं । तथाहि पित्तकफयोः पंगुत्वात् चलनात्मको वायुस्स्पन्दयते नाडीं । स च वायुर्योगवाही तस्य च योगवाहित्वे योगवाहः परं वायुः संयोगादुभयार्थकृत् । दाहकृत्तेजसायुक्तः शीतकृत्सोमसंश्रयादिति चरकः । धमनीषु संसरतोः कफपित्तयोः प्रेरकोवायुः कारणवशात् शीतस्पर्शः क्वचित् क्वचिच्चोष्णस्पर्शः क्वचिच्चाऽनुभयस्पर्शो भवति । किञ्च धमनीषु त्रयोऽपि दोषास्संसरन्तीति सुश्रुताचार्यः कथितवान् । तथाहि नहि वातं शिराः काश्चित् न पित्तं केवलं तथा श्लेष्माणं वा वहन्त्येता अतः सर्ववहास्स्मृता इति (अत्र शिराधमनीनां समान क्रियावत्वं) तस्मात्त्रयोऽपि दोषाः शिरास्विव धमनीष्वपि शोणितेन सार्धं सरन्ति । तत् योगवाही च वायुः कारणानुकूलं क्वचिदुष्णस्पर्शः क्वचिच्छीतस्पर्शः क्वचिच्चाऽनुष्णाऽशीतस्पर्शः भवति । तीक्ष्णमन्दवेगवत्वयोर्विषमवेगवत्वस्य च नाड्यास्स एव कारणं तथा च तद्यथाऽन्त्रकूजनं सन्धिस्फोटकमङ्गुलीपर्वणाञ्च खर विशेषांश्च ये चाऽन्येपि केचिच्छरीरोपगताः शब्दास्तान् श्रोत्रेण परीक्षेत । स्पर्शञ्च पाणिना, प्रकृतिविकृतियुक्तमिति । प्रत्यक्षतोऽनुमानैकदेशतश्च परीक्षणमुक्तं । स्पर्शप्राधान्येनाऽऽतुरस्याऽऽयुषः प्रमाणविशेषं जिज्ञासुः प्रकृतिस्थेन पाणिना केवलमस्य शरीरं स्पृशेत् परिमर्षयेद्वाऽन्येन । परिमृषताऽऽतुरशरीरमिमे भावास्तत्रतत्राऽवबोद्धव्याः । तद्यथा सततं स्पन्दनानां शरीरोद्देशानां स्तम्भः नित्योष्मणां शीतीभावः, मृदूनां दारुणत्वं, श्लक्ष्णानां खरत्वं, सतामसद्भाव इति च चरकाचार्यः । अनेन हृदयस्य परिमर्षणञ्चोक्तम् । एवं नाडीविद्याया बीजरूपाणि वचांसि दृश्यन्ते खल्वार्षेष्वपि ग्रन्थेषु । तदनुयोगिभिस्तथा रसतन्त्रज्ञैश्च साऽतिमात्रं वृद्धिम्प्रापिताऽऽधुनिकेषु वैद्येषु प्रचरन्त्यास्ते इतरचिकित्सका विपुलविमलबुद्धयश्शरणम् ।

सम्भावयामि श्रोतृमहाशयास्त्वेतावतैवोद्विग्ना अभूवन्निति । तस्मादितोऽपि श्रीमतो हि भवत उद्वेजयितुं सर्वथा नाभिलषामीत्यतिसत्वरं विषयममुं चोपसञ्जिहीर्षामि । चरकाचार्यः । "यथावत्सर्वधातुसाम्यं चिकीर्षन्नात्मायमेवाऽऽदितः परीक्षेतेति (च. वि. सू. ९६)" । व्याजहार । तद्वयं समवेतादिचिकित्सका प्राणाऽभिसराः किमुत रोगाऽऽभिसरा वेति विचार्य सर्वथा सर्वकाले च यथा प्राणाऽभिसरास्स्याम् तथा यतेमहि ।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

श्रीमान् डॉ. रायबहादुर सी. बी. रामराव एम्. डी. बेंगळूर।
अध्यक्ष–कर्णाटकप्रान्तीय ४ वैद्यसंमेलन **धारवाड** (सन १९२९)।

Indira Gandhi National
Centre for the Arts

प्राणाऽभिसराणाञ्च गुणलक्षणानि चरकाचार्यस्समग्राणि दशप्राणायतनीयेऽध्याये सम्यगुपदिदेश। तत्रोक्त गुणलक्षणान्येवाऽस्मसु धारयितुमुत्पादयितुञ्चाऽस्माकं प्रयत्नः एव कर्तव्योऽस्माकमास्ते। किं वयन्न जानीमोस्माकञ्च दौर्बल्यं कायचिकित्सायाः पञ्चसु कर्मसु बालत्वं कौमारतन्त्रेऽवैशाल्यं शल्यशालक्ययोस्सत्यप्यल्पीयसि रसायनवाजीकरणयोर्ज्ञानेऽनगदङ्कारता तु भूतविद्याऽगदतन्त्रयोः किन्तु वयन्न शोचामो नष्टं सिराव्यधं, नष्टञ्च जलौकसामवपातं किन्न सीदन्त्यस्माकं गात्राण्यवलोकयितुं क्षारकर्मणां दुर्गतिं दुर्दशां चाऽग्निकर्मणां किं वयं व्यस्मरामाऽस्मत्पूर्वजान्विविधयन्त्रेषु कृतहस्तान् तांश्चिकित्सकान् येऽन्तर्गतेभ्यो नानास्रोतोभ्यो वीक्ष्य नाडीभिर्नाडीयन्त्रैश्चापरैराहतान्यनायासेन शल्यानि क्व च ते सन्ति सद्वैद्यकुलजा विद्वत्प्रवरा शस्त्रचतुरा ये नाम छिन्नोदरेषु बद्धेषु चोदरेष्वसाध्येष्वपि दर्शितशस्त्रपातचमत्काराः।

क्व च ते शीतोष्णकृतज्वरेषु परां काष्ठां उष्णशैत्योपचाराणामदर्शयन्। क्व च ते चोन्मादाऽपस्मारादिषु मानसिकेषु आमयेषु चित्रान्विचित्रांश्चोपायानपि तु तुहिनानां हत्यादींश्चाऽऽबोधयन्। हा! च्युतास्मश्च्युतास्मः किन्न च्युतास्मः। आयुराम्नायमहानाकपृष्ठात्प्रदुष्टा वयम्। तदधुनाऽऽयुराम्नायस्याऽभ्युन्नतेः क्रियाकालस्सन्नद्धोऽस्ति क्रियाकालं न हापयेत् इत्युक्तिं बहुमत्वोद्दिष्टायर्थान् साधयितुं विचारयामः। विचारयतामस्माकं त्रीणि च भव्यानि शकुनान्यभयमतिमात्रं प्रदाय सूचयन्ति। शुभोदर्कं तथापि तत्प्रथमः सर्वकर्णाटकेष्वस्मास्वकुटिलो देशाऽभिमानः, द्वितीयश्च प्राच्यवैद्यकविद्यानां समुन्नत्यै महाराजानां निजानुग्रहः, तृतीयः कृतमुखानां नवीनचिकित्सासु वैद्यविदुषामप्रतिहतोऽकलुषितश्चाऽनुरागः पौरस्त्याऽऽयुर्विद्यासु। त्रयश्चैते दैवसंघटिता इति। त्रीणि शकुनानीत्यवोचम् किं बहुना?। एते च त्रयो योगाः आयुर्वेदसमुन्नत्यै त्रयः उपस्तम्भास्सन्ति। तदस्मत्कर्तव्यानामेतैस्सम्बन्ध एव मण्डलस्य चिन्तनम्। कर्तव्येषु प्रथमञ्च प्रधानञ्चाऽयुर्वेदस्य कर्णाटकमण्डलस्य स्थिरीकरणं यथा वाऽवैद्यकम् द्वादशराजकं भवति मण्डलं तथा वैद्यमण्डलमपि द्वादशराजकम्भवतु। मण्डलं नियमावल्यां निर्दिष्टानुद्देशान् निर्वोढुं गृहीतजननमिव वेत्तुस्सम् विभिन्ना अपि मण्डल माण्डलिकास्संगतास्संवादिनः सम्मताश्च स्युः।

वर्षे वर्षे च सभायां सभायां च परिमिता नेवोत्पादयंतु प्रस्तावान् उत्पादितान् विस्मृत्य कर्मणि प्रस्तावान् संक्रामयन्तु। तत्सभ्याश्च जीवनाय वर्धनाय च मण्डलस्य देयान् सांवत्सरिकान् प्रदद्युर्यथानियमम् तदित्थं पुष्टं सुविरूढं सुदृढञ्च मण्डलमुद्दिष्टान्नियमावल्यां च निर्दिष्टान् साधयितुं सुसाधनं भवति। विद्यासम्पद्भिर्धनसम्पद्भिरुद्योगसम्पद्भिश्च मण्डलमावर्जितं यथा स्यात्तथा विदुषो धन्यान् धनिनः समुद्यमिनश्च सदस्यान् बहून् संघटयितुं प्रयतितव्यं। प्रयतितव्यं तथा च तथैव मण्डलैकाश्रयं विद्यापीठञ्चाऽन्वर्थकं कर्तुं तदिदं प्रथमञ्च प्रधानञ्चेत्युक्तम्।

यदीदमीदृशं च मण्डलमायुर्वेदमहामण्डलस्योद्देशान् शिरसि धृत्वा जिज्ञासते यदि स्वीयं कृतकृत्यम् तर्हि पञ्चदशाऽधिकान् तत्र निर्दिष्टानुद्देशान् कर्मणि परिवर्तयितुं यतताम्। तेन च क्व विद्यतेऽवकाशो यादृशस्याऽभिनवं किमपि सूचयितुं। नैतावन्मात्रमेवाऽपि च कर्णाटकायुर्वेदमण्डलस्य प्रथमद्वितीययोस्सम्मेलनयोः प्रस्तुतेभ्यः सप्तत्रिंशदन्यूनेभ्यः प्रस्तावेभ्योऽप्यधिकं किं प्रस्तोतुं विद्यते वेति न जानामि। न तावदेव परिसमाप्तेति प्रसक्तस्याप्रतिकः। किञ्च मत्पूर्वपूर्वतराभ्यां मण्डलस्याऽस्यैव सम्मेलनसभापतिभ्यां सुनिपुणं निर्दिष्टा आयुर्वेदाऽऽभ्युदाय सदुपायया: किं तेभ्योप्यहं निपुणतरस्तानुपायानतिशेतुं तदेतावदेव ब्रवीमि।

महाभागाः! पूर्वसभापत्योरुपदेशान् सर्वथा कार्ये विवर्तयन्त्विति पुनश्चैकाऽधिकोक्तिः।

Indira Gandhi National
Centre for the Arts

सा चैवं आयुर्वेदे तत्त्वार्थेनाऽभ्युपगतानां दोषदूष्यमलादीनां तथा द्रव्यरसगुणवीर्यादीनाञ्च तत्त्वानि यथायथं निश्चित्य वैज्ञानिकेष्वप्याधुनिकेष्वपि प्रतिपत्तिमुत्पादयितुं योग्यसाधनान्याविष्कर्तुं मण्डलस्याऽस्यैवाऽऽश्रयेण काञ्चन पौरस्त्यपाश्चात्यवैद्यविद्वद्भूषितां विशिष्टां समितिं स्थापयेत् । समितिश्चैषाऽविच्छिन्नाऽनुबन्धेन विचारेण शोधनेन च यावद्ध्येयाऽऽयत्तं व्यवस्य तत्त्वानि प्रकाशयेत् । क्रमेणैकैकम् यथा तथा त्रिदोषस्य षड्रसस्य विपाकस्येत्येवम्भूतानामपरेषाञ्चाऽऽयुर्वेदाऽनुगुण्येन तदनुकूलमेव प्राचीनग्रन्थानां विमर्शनमर्वाचीनग्रन्थानां रचनं तत्सम्बन्धिनीनां पत्रिकाणां लेखनं प्रकाशनञ्चाऽनुसन्दधीत । तान्येवाऽनुसन्धाय कलाशालासु तथाऽन्यत्र वा शिष्यान्बुभुत्सून्नन्यान् वा शासितुं बोधयितुं वा प्रेरयेदिति छेकोक्तिः । सन्दर्भेऽस्मिन् महतो मण्डलोत्सवस्यायुर्वेदमाहित्यमेधयितॄन् सूर्यचन्द्रसालवपूज्यपादवसवराजेन्द्रादीन् कर्णाटकुमारानतीता स्मृत्वा जीवद्ग्रन्थकर्तॄन् पत्रिकाप्रकाशकान् सर्वांश्चायुर्वेदहितैषिणोऽभ्यर्थये । तदित्थं उपक्रान्तेषु सञ्चार्याऽर्थेषु तानेवोपसंहरामि प्रणिपत्य महाभागान् भवतः ।

भवन्तस्स्वागतिका ? भवदध्यक्षा ! अन्ये च सदस्याः ! स्वसौजन्याऽतिशयेन कालमेतावन्तं सावहितमनसो मदीयमनल्पजल्पविजृम्भितं दीर्घोपन्यासं विषमविलसितमप्याकर्ण्य भाषणं गौरवमतिगम्भीरमन्यादृशञ्च प्रदर्शितवन्तः प्रदर्शितवन्तश्चाऽतिशयप्रेमभरं मयि मत्सुहृत्सु च स्वागतोपचारविचारैः । मदभ्यर्हणीयेभ्यः सुधीधुरीणेभ्यः श्रीमद्भ्यः धन्याऽऽलापान् बहून् समर्प्य परित्यज्य च मच्चेतोन्तः पातिनिर्भरप्रतीकप्रतिस्फूर्तीर्विरमामि भाषणप्रसङ्गादस्मात् भवतामेवाऽनुज्ञया, मान्याः ! एवं हि पार्थः,

त्वमादि देवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
वेत्तासि वेद्यञ्च परंच धाम, त्वया ततं विश्वमनंतरूप ॥
वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशांकः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥

॥ इति ॥

Indira Gandhi National Centre for the Arts

श्रीमान् वैद्यराज भिकाजी विनायक डेग्वेकर एम्. ए; एल्. एल्, बी;.
एँम्. एस्. सी., जबलपुर।
अध्यक्ष कर्नाटकप्रान्तियवैद्यसंमेलन, हुबली (सन १९३४ ई.)।
अध्यक्ष, मध्यप्रांतिय ४ वैद्यसंमेलन भंडारा (सन १९३५)।

Indira Gandhi National
Centre for the Arts

The Life Sketch of B. V. Degweker.

Written by Mr. B. V. Degweker M. A. L. L. B.

I passed my matriculation in 1st class in 1907 & since then I have devoted myself to the study of Ayurveda under my late maternal uncle Pt. Damodar Balkrisna Desai a renowned Physician in this parts. I passed my B. Sc. in 1911 in 2nd division. I took M. Sc. degree in Physics in 1st class in 1913 from Allahabad University, took M. A. degree in Mathematics in 1915 and L. L. B. degree in 1st class in 1916. I was all along studying Ayurveda. I worked as Professor of Physics in Hislop College Nagpur for two years from 1915-1917 and since 1917 I have been actually practicing Ayurveda for the last 19 years at Jubbulpore.

Since the year 1922 I have been preparing students to appear at the All India Ayurveda Vidyapitha examinations and from 1925. practically every year some of my students have appeared for Visharad examination. I have been conducting All India Ayurveda Vidyapitha examinations at Jubbulpore centre continuosly for the last 9 years, and am the Provincial Secretary of the Mahamandal for the last eight years.

I have presided over the following four conferences.

I. The third Berar Provincial conference held at Darheva in November 1928.

II. The 1st 'निदान' तद्विध संभाषा परिषद् held at Nasik in June 1929 where Captain Murti was the All India conference President.

III. The Seventh All Karnatak Ayurvedic conference held at Hubli December 1934.

IV. The fourth Central Provinces Ayurvedic conference held at Bhandara in April 1935.

I have contributed articles on Tridosh theory to the following journals.

(1) Journal of Ayurveda Calcutta.

(2) 'Vaidya-Sammelan Patrika' Cawnpur and Poona.

(3) 'Bhishagvilas' Ahmadnagar—I am a member of the editorial Board of this paper.

I am a member of the following bodies of the Nagpur University since the year 1930,

Indira Gandhi National Centre for the Arts

(1) Academic Council
(2) Faculty of Science
(3) Board of Studies in Mathematics
(4) Board of Studies in Physics
(5) Kinkhede Lectureship Committee.

I have been an examiner in B. A. & B. Sc. in the Nagpur University.

I am a Principal of "Hitkarini City College" Jubbulpore since its inception the year 1933. The College teaches all subjects upto B. A. standard and the number of students admitted is 185.

I am every year an examiner in All India Ayurveda Vidyapitha examinations in either Visharad or Acharya since the year 1929.

I am also an examiner nearly every year in the following institutions.

(1) Jaipur Sanskrit College examinations (Ayurveda Section).
(2) Gwalior State Ayurveda examination.
(3) Ahmadnagar Ayurveda "

I am teaching Ayurveda in the Gayatri Sanskrit College Jubbulpore since 1934.

My father was a Sanskrit Scholar and from my childhood I have studied Sanskrit literature. I have also studied Nyaya, Sankhya and Mimansa under a welknown Pandit Lokanath Shastri Vidya-Varidhi and प्रधानाध्यापक Gayatri Sanskit College.

Report of the Provincial Conferences of C. P.

A Vaidya Sabha was started at Jubbulpore in the year 1920, and after 10 years standing, the Sabha could arrange to call the 1st conference of the Central Provinces Ayurvedic practitioners under the name मध्यप्रांत आयुर्वेद मंडल. It was held under the Presidentship of Pt. Jagannath Prasad Shukla of Allahabad in the year 1931 at Jubulpore. The second conference was held at Nagpore in 1932 under the Presidentship of Pt. Shaligram Shastri of Lucknow. The third was called in the year 1933 and was to be held at Chindwara under the Presidentship of Pt. Rameshwar Shastri, but as Pt. Rameshwar Shastri did not attend it, it was held under the Presidentship of Pt. Goverdhan Sharma Changani of Nagpur in May 1934. One Mr. Shandilya Trivedi of Benares who was never a member of this conference was elected secetary and since then a quarrel arose and two parties were formed. One of this party designated itself as Berar-Madhya-Prantiya Ayurveda Mandal and the other was already a Madhya Prantiya Ayurveda Mandala..

The fourth Conference of this 'Madhya Prantiya Mandala' was

Indira Gandhi National Centre for the Arts

held at Bhandara under my presidentship in April 1935 and the next 5th is to be held this year in November at Katni.

The Shandilya party headed by Pt. Goverdhan Sharma Changani passed a resolution of no confidence against me in the working committee in 1934 but a special general meeting of the conference held at Nagpur in 1935 expressed full confidence in me and no confidence in the working committee and thus the conference was held at Bhandara in April 1935 as was decided at Chindwara conference.

The Reception Committee President at Bhandara conference Mr. Kolte B. A. LL. B. Pleader aud M. L. C. moved a resolution in the C. P. Counsil in 1935 for the establishment of a Board of Indian medicine and the resolution was passed but owing to financial stringency it is not put in force.

A committee has been appointed by the 25th All India Ayurvedic Conference held at Ahmedabad to settle the dispute between the two parties formed in C. P. and it is expected that the Committee would give its decision before the next session at Benares.

Indira Gandhi National Centre for the Arts

The Seventh All Karnatak Ayurvedic Conference & Exhibition,

Held at Hubli

On 26th & 27th December, 1934

President's Speech

नमो ब्रह्मप्रजापत्यश्विबलभिद्धन्वंतरि सुश्रुत चरक प्रभृतिभ्यः ।
सुधाकुंभं हस्ते दधदमरतार्थं सुमनसां ।
सहस्त्रं जिह्वाग्रे गदहरमथर्वोपनिषदाम् ॥
मणिं श्रीवत्सांके हृदि जलनिधेर्योऽजनिपुरा ।
विनिघ्नं विघ्नं वः सुखयतु स धन्वन्तरिविभुः ॥

Chairman of the Reception Committee, Members and friends.

1. *Introdnctory:*—I have to express my deep gratitude, for the honour you have done me by calling upon me to preside over the deliberations of this august body. When I received the telegram from the worthy Secretary of the learned Reception Committee of this All-Karnatak Seventh Ayurvedic Conference, requesting me to accept this chair, I hesitated mainly for two reasons. First of all because, I happen to be an utter stranger to these parts; and secondly because, I am not in the least conversant with Canarese, your mother-tongue. I, however, accepted the responsibility with this consolation that this august body is well aware of these two deficiencies in me. It being my duty to be of service to you in the best possible way, I would crave your indulgence for my deficiencies. I am rather confident of your whole-hearted co-operation so as to make this session a complete success.

2. *A suggestion regarding election of the President:*—A suggestion, for which you will kindly cxcuse me, regarding the election of the president for these provincial sessions, may not be out of the way. My experience in my own province *viz.*, the Central Provinces, analogous to that of many of my friends in other provinces tells us that it is, in all cases, advisable to elect a person from one's own province, to the Chair. An outsider is neither expected to be fully aware of the prevailing local conditions concerning the advancement of Ayurveda in its various branches *e. g.* schools, dispensaries, hospitals etc., nor can he conveniently attend the various meetings of the

Indira Gandhi National Centre for the Arts

Executive Committee which have to be held during the following year, in order to give a practical shape to the resolutions passed by the Annual General Meeting. This question may, if necessary, be discussed in our Subject Committee.

3. *Condolence:*—Before I proceed further, I consider it my duty, to express my heart-felt sorrow at the sad demise of those Ayurvedic practitioners of renown, and specially for late Kaviraj Shiromani Pandit Shamdas Bachaspati, the most prominent Ayurvedic physician of the day, an erudite Sanskrit scholar. We must offer our sincerest condolence to the members of the bereaved families and pray that their souls may rest in peace.

4. *Scientific Aspect of Ayurvedas:*—Gentlemen, I now proceed to discuss the scientific aspect of Ayurveda. Before I assert that Ayurveda is a science, it is necessary to explain what is meant by that term. Karl Pearson in his "Grammar of Science" states, "The man who classifies facts of any kind whatever, who sees their mutual relations and describes their sequences is applying the Scientific method and is a man of Science." Science is critical systematic knowledge based on generalisations. It is an investigation into the nature of facts—facts not selected at random—but in their comprehensive entirety. The scientist systematies the date, records his observations and draws certain conclusions therefrom which ultimately assume the form of a formula or a universal truth. He proceeds rationally and logically through all his investigations.

With proper attention to this conception of science we may easily assert that Ayurveda has a rightful claim to that title. To those who have no adequate idea of its real nature, this assertion would appear absurd. Suffice it to say, that Ayurveda includes within its compass various modern sciences such as Physiology, Anatomy, Pathology etc. If these are easily accepted as sciences, what scruples should one have concerning Ayurveda which encompasses all these along with other things in its wide range ?

5. *Mixing Science with Philosophy:*—I may now consider an objection generally levelled against Ayurveda *viz.* that it mixes up Philosophy with Science. To quote Karl Pearson, once more "The scope of Science is to ascertain the truth in every possible branch of knowledge. There is no sphere of enquiry, which lies outside the legitimate field of science. To draw a distinction between Science and Philosophy is obscuratium." Showing thus how close together both the conceptions come,the objection no longer remains peculiar to Ayurveda, but can equally be raised against any science whatever, only to be refuted.

Indira Gandhi National Centre for the Arts

It is true, however, that Ayurveda is based upon the fundamental conceptions established by the Realistic schools of Indian metaphysics *viz.* Nyaya and Samkhya. But as the student of science of our day knows full well, every science is based on certain pre-suppositions or postulates which are established by some other science. These presuppositions are accepted as self-evident and on their basis the whole subsequent structure raised. Thus the science of ethics presupposes the doctrine of the freedom of will, the proof of which lies within the legitimate range of metaphysics, and builds its entire body of principles upon this postulate, Similarly psychology takes for granted the existence of human mind and then proceeds to investigate into its working. In the same manner, the knowledge of the two systems of Samkhya and Nyaya is as essential to the student of Ayurveda as that of physics, chemistry and biology to the student of Allopathy.

It is so far clear that Ayurveda is within its legitimate province when it borrows certain conceptions from those two schools. I would now proceed to show that those conceptions are inevitable to Ayurveda. The systems of Nyaya and Samkhya deal with the creation and evolution of the universe, and living bodies being the part of the same, the link between the Primary Constituent of the Universe on the one hand, and the evolved ones, on the other, which have a direct bearing on the living biological organisms, must be definitely understood before discussing the processes, according to which a living human being maintains his existence or wards off processes which tend to vitiate the equilibrium among the various functions of the body. I would therefore, point out the bare facts regarding the two systems before I proceed to discuss the theories on which Ayurveda is based.

6. *The Nyaya System:*—Kanada, who has propounded the Nyaya System, has classified all the different Bhavas *i. e.* categories *i. e.* anything of which the existence can be conceived into seven groups called Padartha. Of these we shall be mostly concerned with three *viz.* Matter (Dravya), Qualities (Guna), and Actions (Karma), Matter is again of nine kinds which may be conveniently grouped together as Physical (Bhoutika or Panchabhoutika) and metaphysical. Ether (Akasha) Air (Vayu) Fire (Tejas) Water (Ap) and Earth (Prithivi) are included in the Bhoutika class. These five alone are capable of perception by the senses, (Indriya-Gochara) while the other four are not so being Ati-Indriya. All physical matter is Panchabhoutika *i. e.* composed of the five elementary dravyas mixed up together in various proportions. There are atoms of every one of these and a combination of a different number of atoms (Paramanus)

Indira Gandhi National Centre for the Arts

of each of these five elements gives rise to various physical objects which we perceive around us. Thus the different atoms of the eighty and odd so called elements of modern chemistry are not simple bodies but each one of them is composed of the atoms of these five elements in various proportions—a notion which has begun to gain ground in modern electron theory. Whatever it be, the promoters of the Nyaya system hold that this physical universe is made up of these Panchabhoutika paramanus. Even the mind is composed of paramanus, and Kanada holds that when the Panchabhoutika and the Manas Paramanus begin to combine, life is produced. Thus according to him the root cause of the universe is no other than the atoms. These atoms are extremely fine (Sookshma) and indestructible (Nitya). When they begin to combine, the different objects in the universe come into existence. This theory is technically known as Arambha-Vada.

7. *Its Failure:*—This theory may be termed the ancient equivalent of the Atomic Theory of Dalton. But as in the west the atomic theory has now been completely exploded by the evolution theory of Darwin, so also as far back as about three thousand years ago, the atomic theory of Kanada was exploded by Kapila the founder of fhe Samkhya system. Kanada is not only unable to state how the paramanu got into motion in order to combine itself with another one, but also fails to explain how the different progressive stages of the vegatable, animal and human kingdoms belonging to the living part of nature were evolved ; neither can he accord any explanation of the agency by which lifeless lumps could be evolved into animate beings. This has been explained in the west by Lamark and Darwin in the 19th century and by Kapila Muni in the east. They both hold that the universe has been created by the evolution of one single substance which existed before creation commenced. The western Scientists formerly held that the whole creation was the outcome of some ninety and odd elements but later researches showed that some of these elements could be converted one into the other. Recently an experiment is reported to have been performed in Germany, where an electric current was passed continously for eight days through mercury vapour, and a few particles of gold were obtained therefrom. The electron theory, Prof. Einstein's theory of Relativity and Madam Curie's radium experiments have proved that an atom is made up of positive and negative electric charges, and by an addition of these charges, an atom, like say of hydrogen, can be converted into another of a different element. Thus the number of elements has been gradually reduced.

The latest evolution theory of Darwin holds that the whole solar

Indira Gandhi National Centre for the Arts

system is evolved out of a single incandescent mass of vapour, which gradually cooling down, the upper crust underwent a change, and owing to the force of gravity, portion of it being dislodged from the whole formed into different planets, one of them being our earth. As the process of cooling continued vegetable life came first into existence which was followed by animal and last of all human creation.

8. *Sat-Karya-Vada of Kapila:*—Kapila, the founder of Samkhya system of philosphy, enunciates the first and foremost axiom of his theory *viz.* that nothing new is created in the universe, because Shoonya *i. e.* that which did not exist before, would not give rise to anything but Shoonya, a nonexisting entity. There are no two opinions even among the western scientists as regards nothing being produced out of nothing. Therefore whatever attributes one finds in anything which is created, must in a very minute form (Sookshma-Roopa) exist in that form in which it was created. For example, we find that a big banian tree is evolved out of an extremely small seed by extracting necessary substances it requires from earth, air and water, and thus the same seed has just simply changed its form ; in other words, the tree existed though in a very minute form in the seed, and under favourable conditions that form developed into the tree. Similarly, if we burn fuel, its form is changed to ash or smoke, and not that smoke is a new thing obtained by the destruction of the substances in the fuel. If a new substance be supposed to be produced by the destruction of another, why should curds not be obtained from water, or why should we not be able to extract oil from sand, instead of from linseed ? Thus that which exists now must be obtained from something which existed in another form before, in howsoever minute form it may be. This axiom is known as Sat-Karya-Vada in Sankhya philosophy. This axiom and the principle of conservation of energy mathametically proved by modern scientists are practically the same except for this difference that while Sat-Karya-Vada has reference only to the creation of one substance or form matter from another, the sum total of matter and energy in all conditions is always the same.

9. *Prakrti. The Primal Constituent:*—Having admitted the truth of this Vada, it is evident that the creation could not be produced out of Shoonya. It must have evolved out of something which the Samkhyas call Prakrti or Avyakta, which contains the whole universe in a very minute form (Sukshma-Roopa). Thus Sushruta, who follows Kapila in treating of the creation of the universe, in the first canto of Sharira-Sthana, with the heading Sarwa-Bhuta-Chinta-Sharira says:—

सर्वभूतानां कारणमकारणं सत्वरजस्तमो लक्षणमष्टरूपमाखिलस्य जगतः संभवहेतुरव्यक्तं नाम । तदेकं बहूनां क्षेत्रज्ञानामधिष्ठानं समुद्रमिवोदकानां भावानाम् ।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

आयुर्वेद महाविद्यालय (पुना) अध्यापकवर्ग (सन १९३५) ।

लाईन १ बांइओरसेः—१ न्यायरत्न नारायणशास्त्री वाडीकर, २ डॉ. मा. पु. जोशी, L. C. P. S. ३ डॉ. रा. ना. दातार, M. B. B. S. ४ वैद्य त्रिंबकशास्त्री आपटे, भिषगाचार्य, ५ वैद्य पु. ग. नानल, आयुर्वेदाचार्य (अधिपति), ६ वैद्य र. वा. जोशी, आयुर्वेदविशारद, ७ डॉ. बा चिं. [illegible] ८ डॉ. मिस ताराबाई जोगळेकर M. B. B. S. ९ वैद्य गंगाधरशास्त्री जोशी, भिषग्रत्न ।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

It may be stated here, that the discussion about Sattwa Rajas and Tamas Gunas of the Prakrti, and their different combinations, would require a separate chapter to be written, which is not possible to do here and now. I will, therefore, proceed to point out the different stages of evolution, starting from Prakrti as origin.

10. *Buddhi. Second stage of Evolution:*—Common experience tells us that whenever a human being intends doing anything he first resolves to do it by the exercise of the faculty of volition. In other words deliberate volition proceeds every conscious action. Chandogya-Upanishad says that the Primeaval matter first resolved to express itself into many aspects एकोहं बहुस्या प्रजायैय इति, and then the creation started. In accordance with this common experience, the Prakrti too, resolves to create the universe; and thus the first stage in the evolution, is the expression of this attribute of resolution व्यवसायात्मिक बुद्धि as it is technically called-in Prakrta. But the human being, because he is possessed of soul along with everything else, can realise the existence of Buddhi, whereas Prakrti, which is everything except this soul, is not able to realise that existence. This difference is a consequence of the presence of life manifested in man but not in Prakrti Hackel in his 'Parigenesis of the Plastitudes' states "Without the assumption of an atomic soul the commonest and most general phenomena in Chemistry are inexplicable. Pleasure and pain, desire and aversion, attraction and repulsion must be common to all atoms of an aggregate, for the movements of atoms which must take place in the formation and dissolution of a chemical compound can be explained only by attributing to them sensation and will." Thus when we know that even the recent scientists hold that the most lifeless things in the universe do possess a power equivalent to the Buddhi possessed by human beings, but unrealised, we would easily appreciate the reasoning by which the Samkhyas assert that Buddhi is the first stage in the evolution of Prakrit. Hence Sushruta says—

तस्मादव्यक्तान्महानुत्पद्यते तल्लिंग एव । महानिति बुद्धितत्वं ।

नि० सं०

11. *Ahankara. The next Stage:*—The next stage in evolution is Ahankara. Even after the evolution of Buddhi in Prakrti, we find that Prakrti is still homogeneous, while the creation that we see around us, is found to be heterogeneous consisting as it does of man, stone, earth, metals and so on. Unless this attribute of differenciation (Prthaktwa) is manifested, we cannot expect to find different objects in the universe. And therefore the next stage in the process aught to be the evolution of this Ahankara in Prakrti. The root meaning of the word Ahankara is the idea of holding one's own entity separately

Indira Gandhi National Centre for the Arts

from others. To realise that I (Aham *i. e.* Ego) is different from everything else is Ahanakra. This Ahankara cannot be realised by lifeless objects in the universe, while the human being as possessing soul can realise it. But the fact is certain that unless the existence of Ahankara is assumed, the actual existence of different objects with varying shapes, sizes specific gravities and so on cannot be explained. The idea of existing separately from others is what is meant by the term Ahankara. Hence says Sushruta:—

तल्लिंगाच्च महतः तल्लिंग एवाहंकार उत्पद्यते । स च त्रिविधः वैकारिकस्तैजसो भूतादिरिति ।

After this stage Prakrit branches off into two section, (i) organic and (ii) inorganic; Sendriya including vegetable, animal and human beings; and the other Nirindriya or matters. There are eleven elements of the organic section *viz.* the five Dnyan-indriyas or sense-organs the five Kama-indriys or motor-organs, and the Manas (Mind). All these are evolved by the predominence of Satwa Guna in Prakrti; while the five tanmatra dravyas are evolved by the predominence of Tamo-guna and from the basic elements of the inorganic world. Sushruta thus says:—

तत्र वैकारिकादहंकारात्तैजससहायात्तल्लक्षणान्येवैकादशेन्द्रियाण्युत्पद्यन्ते । तद्यथा श्रोत्रत्वक्चक्षुजिह्वाघ्राण वागस्त्योपस्थ पायुपादमनांसीति । तत्र पूर्वाणि पंच बुद्धीन्द्रियाणि इतरानि पंचकर्मेन्द्रियाणि । उभयात्मकं मनः । भूतादेरपि तैजससहायात्तल्लक्षणान्येव पंचतन्मात्राण्युत्पद्यन्ते । तद्यथा । शब्दतन्मात्रं, स्पर्शतन्मात्रं, रूपतन्मात्रं, रसतन्मात्रं, गन्धतन्मात्रं चेति ।

12. *The five Subtle Chief Elements:*—It is desirable, at this stage to discuss why and how the basic elements of the inorganic creation are only five. Scientists of the present day have divided all created substances in the universe into three classes only, *viz*, solids, liquids and gases, but the principle on which the Samkhyas have classified substances is different, as well as interesting and at the same time convincing too. They hold that all objects in the universe are perceived by men, though five senses and five only and the mechanism of these senses is such that each of them can perceive only one attribute. Eyes are unable to perceive smell, while ears cannot see, Twak the cutaneous organ cannot discern whether a pudding is sweet or bitter, nor can the tongue hear; so aslo the nose unable to perceive colour. Thus if five sense-organs (Dnyanendriyas : Shrotra, Twak, Chakshu, Jihwa and Ghrana) and their corresponding perceptions of Shabda (Sound) Sparsha (Touch) Rupa (Form as grasped by the Sight) Rasa (Taste) and Gandha (Smell) are definite, it is evident the only five attributes which form the object of these Dnyanendriyas must go to form the whole creation, for even if we suppose that

Indira Gandhi National Centre for the Arts

there is a sixth attribute, we are not possessed of any means whereby to perceive it. Every one of these attributes can be sub-divided into a number of classes, for example Shabda, although it is one attribute can be harsh, soft, high, sweet, unpleasant; or Sa Re Ma Pa or A B C D etc. as classified in the art of Music; or as palatal, lingual, gutteral, according to the human organs employed in its production. Similarly, Taste, another single attribute, may be classified as sweet, sour, salt, pungeant, bitter and so on. Roopa may vary according to colours as blue, red, green, yellow and so on. These differenciations of the single attributes do admit of further sub-classification. Thus sweetness, one of the tastes, is different in each of these, sugar-cane, milk, mango. In this manner, as each attribute is capable of innumerable subdivisions, by the combinations, of the subdivisions of each of these attributes, we obtain innumerable different substances, each having a different proportion of each of these attributes. This fact adequately explains the obvious variety and diversity of our creation. But howsoever the combination be obtained you cannot perceive more than five of these attributes, because you are endowed with five Indriyas only; which are as it were, God-gifted machinaries for the detection of separate attributes of the five Dnyanendriyas. Thus although it is impossible to obtain any substance which possesses only one single attribute, separately, still Kapila has, from the above discussion rightly arrived at the conclusion that the Prakrti must have evolved five elements; Shabda-Tanmatra, Sparsha-Tanmatra, Roopa-Tanmatra, Rasa-Tanmatra, and Gandha-Tanmatra as the bases for the formation of this creation, the word Tanmatra meaning exclusively. These Tanmatra elements of Tanmatra dravyas are necessarily subtle (Sukshma).

13. *Pancha-Maha Bhutas:*—The Sthula (Gross) Pancha Maha Bhutas are obtained by the combination of these Tanmatra Dravyas. The process is as follows:—We know that the sound is caused by the vibration of particles of any substance and vibration is possible only when the particles of any substance have sufficient space to move from one place to another. Thus sound cannot be produced inside a block of iron. Unless there is space, shabda or sound is impossible; in other words space is the necessary accompaniment of sound. This idia is expressed of the Samkhyas, by the aphorism "Shabda-gunam Akasham". Thus the Sthula Maha-Bhuta (Element) which must exist in the universe if sound is to be produced at all, is Akasha or space. Here we see that Akasha is the seat of one attribute only viz Shabda, and no other. Space cannot be felt by touch, seen, tasted or smelt; and so Daliana in his commentary, states "शब्दतन्मात्राच्छब्दगुण

Indira Gandhi National Centre for the Arts

व्योम" The next Vayu or air combines only two attributes viz. Shabda and Sparsha. It is capable of being felt and heard, but cannot be seen, tasted or smelt, in its unmixed states. Anything in which these two attributes alone combine, would fall under this category, but from the testimony of nature, we find that it is air alone that combines these two attributes. Hence the next Maha-Bhuta is termed Vayu. The third Maha-Bhuta is Tejas, Agni or Fire. It occupies space and can be felt by touch and seen by the sight, but can neither be tasted or smelt, The fourth is Apa or water, which possesses an additional quality of being tasted; and the last is Prthiwi which alone with the other four attributes possesses the quality of being smelt. It should be noted here, that the term Maha-Bhuta is given merely to the combinations of these Tanmatras, and to any material substance itself as perceived in the Physical world around us. The terms Prthwi, Apa, Tejas, Vayu and Akasha, as popularly understood connote the elements as we see them around us in their mixed or alloyed form. But the subtle elements though going by the same appelations stand for their pure unmixed unalloyed form. The subtle difference between the popular and the technical significance of these terms is generally overlooked both by the ignorent layman as well as by the mischievous hypocrites of shallow learning.

14. *Creation:*—It is then by the combination of these Pancha-Maha-Bhutas in different proportions that the inorganic creation is obtained. This process is known as Panchi-karana. A substance is called Parthiwa, if it possesses a larger proportion of Prthwi-Tattwa or maha-bhuta, along with the other four in smaller quantities. Sushruta therefore says in canto 41 of the Sutrasthana :—

पृथिव्यप्तेजो वाप्वाकाशानां समुदायाद्द्रव्याभि निर्वृत्तिः। उत्कर्षस्त्वभिव्यञ्जको भवतीदं पार्थिवमिदमाप्यमिदं वायव्यमिदमाकाशीयमिति।

Thus a lump of earth or an iron ball is a Parthiwa dravya. Even then the iron ball is more Parthiwa than the lump of earth, as it is the harder of the two. The qualities which such substances possess have been collectively described by Sushruta, thus :—

तत्र स्थूलसारसांद्रमंदस्थिरखरगुरुकठिनं गंधबहुलमीषत्कषायं प्रायशो मधुरमिति पार्थिवम्।

But supposing that the lump of earth has been dissolved in a very large quantity of water, the mixture would become an Apya Dravya, because :—

द्रवेशीत स्निग्धस्तिमित मंद गुरुसरसांद्रमृदुपिच्छिलं रसबहुलमीषत्कषायाम्ललवणं मधुररस प्रायमाप्यम्।

Similarly the iron ball which is originally Parthiwa would become Taijasa if it be heated until it is white-hot, because :—

Indira Gandhi National Centre for the Arts

अध्यापक मंडल विदर्भ आयुर्वेद विद्यालय (सन १९३५) अमरावती । स्थापना सन १९३१ ।

Indira Gandhi National
Centre for the Arts

उष्णतीक्ष्ण सूक्ष्म रूक्ष खर लघुं विशदं रूप गुण बहुलमीषदम्ललवणं कटुकरसप्रायं तैजसम् ।

A substance like sulpher which is originally Parthiwa passes through the Apya and the Taijasa stages as it is continually heated and ultimately becomes Vayavya (gaseous). and hence Sushruta says :—

सूक्ष्मरूक्ष खर शिशिर लघु विशदं स्पर्शबहुलमीषत्तिक्तं विशेषतः कषायमिति वायवीयम्

as also श्लक्ष्ण सूक्ष्म मृदु व्यवापि विशद विविक्तमव्यक्तरसं शब्दबहुलमाकाशीयम् ।

This is in short the Panch-Maha-Bhuta theory of matter.

15. *The Theory in relation to Human Physique* :—Having thus established that every portion of matter on the surface of the earth is Pancha-Bhoutika, we now proceed to discuss the various constituents which combine. Now if we minutely study the human system, we find that it consists of substances like blood, bones, nails, flesh and such others, which as they come under one or the other category of Parthiva. Apya Taijas, Vayavya or Akashiya Dravyas are also Panchamahabhutatmaka, with only one difference that there exists life also along with these, which is due to the existence of mind Indriyas (that are, as stated above, God-gifted machinaries as it were) and soul. Charakacharya has clearly stated.

तत्र शरीरंनाम चेतनाधिष्ठानभूतं पंचमहाभूतावकारात्मकं समयोगवाही ।

And Sushruta corroborates it saying :—

अस्मिन् शास्त्रे पंचमहाभूतशरीरिसमवायः पुरुषः ।

Thus the body is also Panchamahabhutatmaka. and therefore a disease in the body is nothing else than Kshaya or Vridhi, (decrease or increase) in the proportion of one or more Panchamahabhutatmaka constituents of the body. But this change in the proportion can naturally occur in innumerable ways as there can be innumerable combinations of these Panchamahabhutas in different proportions. And as there are equally innumerable substances existing on the surface of the earth, each of which is in every respect different from others, one of these can be such as will have just the opposite kind of proportion of the Mahabhutas as compared to that on account of which the disease has occured. Such a substance when introduced in the system would counterbalance the proportion and thereby remove the disease. Sushruta therefore holds :—

अनेन निदर्शनेन न अनौषधिभूतं जगति किंचिद्द्रव्यमस्तीति कृत्वा ततं युक्तिविशेषं वा अभिसमीक्ष्य, स्ववीर्यगुणयुक्तानि द्रव्याणि कार्यकराणि भवन्ति ।

Thus every substance on the surface of the earth is an Aushadhi or treatment for some one or other of the Shareer diseases. These substances have been conveniently divided into three groups, *viz.* Jangama, Parthiva and Audbhida,

Indira Gandhi National Centre for the Arts

मधूनि गोरसाः पित्तं वसा मज्जासृगामिषम्। विण्मूत्र चर्मरेतोस्थिस्नायु श्रृंगनखाः खुराः। जंगमेभ्यः प्रयुज्यन्ते केशलोमानि रोचनाः॥

From this list of substances belonging to living and nonliving animals we see that each and every part is a cure for some disease, hunger and thirst too being included in the disease category. Of the Parthiva substances:—

सुवर्णं समलाः पंचलोहाः ससिकताः सुधा। मनःशिलाके मणयो लवणं गैरिकां जने। भौममौषधमुद्दिष्टं।

These include all metals and their salts and crude ores that are naturally available. There are 4 sub-sections of the 3rd class of substances:—

आद्भिदं तु चतुर्विधम्। वनस्पतिस्तथावीरुद्वानस्पत्यस्तथौषधी।

And their differenciation is :—

१. फलैर्वनस्पातिः। २. पुष्पैर्वानस्पत्यः फलैरपि। ३. औषध्यः फलपाकान्ताः। and ४. प्रतानैर्विरुधः स्मृताः।

Of these botanical products nearly every part is used. Charaka says :—

मूलत्वक्सार निर्यास नालस्वरसपल्लवाः। क्षारः क्षीरं फलं पुष्पं भस्मतैलानि कंटकाः। पत्राणि शुंगाः कंदाश्च प्ररोहाश्चौद्भिदोगणः।

The sage of the past have experimented upon a very large number of the above-noted classes of substances, and have described at length their effects on the human system according to a particular line they have followed which I will just describe. Some of these are to be found only in particular tracts of this vast continent, while others at other places, where the climate is suitable to them.

And therefore it is in such conferences that we have to collect as many of them as possible and exihibit them so that we might come to know all about them by mutual discussion and try them on particular ailments.

Siddha Aushadhis are also a speciality of Ayurveda. There are different processes to be followed in the preparation of different Bhasmas. Modern Chemistry is at present unable to detect why a particular preparation which when chemically analysed is found to contain the same ingredients in the same proportion, should produce an altogether different effect if the process followed in preparing it is different. For instance, Rasasindura and Makaradwaja are two different Siddhayogas, which if chemically analysed are found to contain the same proportion of mercury and sulpher. In fact, both are red oxides of mercury. But Makaradhwaja is far superior in its effect on the human system to Rasasindura. Some light is likely to be thrown on the difference existing in the action of these aparently similar subs-

National Centre for the Arts

tances according to the recent researches of Sir C. V. Raman. His spectroscopic results regarding "Raman lines" show that there is a molecular change in substances apparently similar in composition and it is just possible that this may account for their different effects on the human system.

Constituents of the Human System.

So far I have dealt with the basic elements that form the whole creation including the human system, as well as with all other substances that can be used as treatment for any ailment in the system. But when we come to the practical side of the treatment, it becomes very difficult to find out the changes in the proportion of the Mahabhutas either in the suffering human system or in the substances to be administered in order to set it right. Ayurveda has therefore adopted a different course to remove this difficulty. The sages have divided the main constituents of the human system into three classes, Dosha, Dhatu and Mala.

दोषधातुमल मूलं हि शरीरम् । सु. सू. १८

दोषधातुमला मूलं सदा देहस्य । वा. सू. ११

Difference between Dhatus and Upadhatus.

Before I proceed to discuss these three classes separately I have to make it clear that the word Dhatu has been used in Ayurvedic literature in two different senses. In fact, the word Dhatu according to Sanskrit Grammar is derived from the root 'Dhaya, Dharan, Poshane,' and any constituent of the body which helps to keep up and nourish it, may be called Dhatu. While there is no disease in the body, every constituent of it is a dhatu. But for convenience the word 'dhatu' has been reserved only for those constituents which take part in the general metabolism, and develop the principal constituents from the food that we take every day in order to make up for the waste which is occurring every second in the system. The rest are called Upadhatus. Thus skin (twacha), Snayu, Kandara. Shira etc. are all Upadhatus because they do not go to form any other substances in the body but are the ultimate products ; but still they have their various functions to perform. Thus whenever there is a disease in the human system, which is not Agantuka (Extrinsic), but Nija (Intrinsic), there is originally a change in the proportion of Dhatus and not of Upadhatus. If the disease continues, the Upadhatus too may be ultimately affected but not so in its initial stage. Hence Charakacharya holds that.

विकारो धातु वैषम्यंसाम्यं प्रकृतिरुच्यते ।

and Chakradatta in his commentary on this passage states—

Indira Gandhi National Centre for the Arts

धातवो वातादयो दोषाः रसादयश्च रजः प्रभृतयश्च । तेषां वैषम्यं व्यवह्रयमाणस्वास्थ्य-हेतोः स्वमान्यान्न्यूनत्वं अधिकत्वं वा ।

Thus a disease in the system is nothing else than either an increase (Adhikatwa) or a decrease (Nyunatwa) in the proportion of these dhatus. This proportion has been roughly stated thus—

दशोदकस्यां जलयः शरीरे स्वेनांजलिप्रमाणेन । नवां जलयः पूर्वस्याहार परिणाम धातोः य तं रसइत्याचक्षते । अष्टौ शोणितस्य । सप्त पुरीषस्य । षट् श्लेष्मणः । पंच पित्तस्य । चत्वारो मूत्रस्य । त्रयो वसायाः । द्वौ मेदसः । एको मज्जायाः । मस्तिष्कस्यार्धांजलिः । शुक्रस्य तावदेव प्रमाणम् ।

And therefore the treatment of a disease or (Chikitsa) is nothing else than to rc-establish the original condition. Chikitsa has therefore been defined as—

चतुर्णां भिषगादीनां शस्तानां धातुवैकृते ।
प्रवृत्तिर्धातुसाम्यार्था चिकित्सेत्यभिधीयते ।

Or as put still more concretely and lucidly—

याभिः क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातवः समाः ।
सा चिकित्सा विकाराणां कर्मतद्भिषजां मतम् ।

In fact the very object of promulgating the Ayurvedic science has been stated as

धातुसाम्य क्रिया चोक्ता तंत्रस्यास्य प्रयोजनम् ।

The words Dhatusamya and Dhatuvaishamya referred to in these passages take into account only those dhatus or constituents of the human body which have been referred to above as the root-cause of the body in the Sutra—

दोषधातुमलमूलं हि शरीरम् ।

Distinction between Doshas and Dushyas

Having thus made a distinction between the Dhatus and Upa-dhatus, we have now to consider the three groups in which the constituents has been divided. These are Doshas (mostly secretions) Dhatus (principal tissues), and Malas (excretions). The whole body, even according to the recent anatomists, has been divided into secretions, tissues and excretions. That Avurveda could think of the same divisons so far back as 4000 years ago is a matter of pride for that science. Thus the words Dhatus—which as stated above in compounds like Dhatusamya and Dhatuvaishamya means and includes in a wide sense Doshas, Dhatus and Malas, has been in a narrow sense applied only to principal tissues. They have been enumerated thus:—

१. वायुः पित्तं कफश्चेति त्रयो दोषाः समासतः ।
२. रसासृङ्मांसमेदोस्थि मज्जाशुक्राणि धातवः । सप्तदूष्याः ।
३. मला मूत्रे शकृत्स्वेदादयोपिच ।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

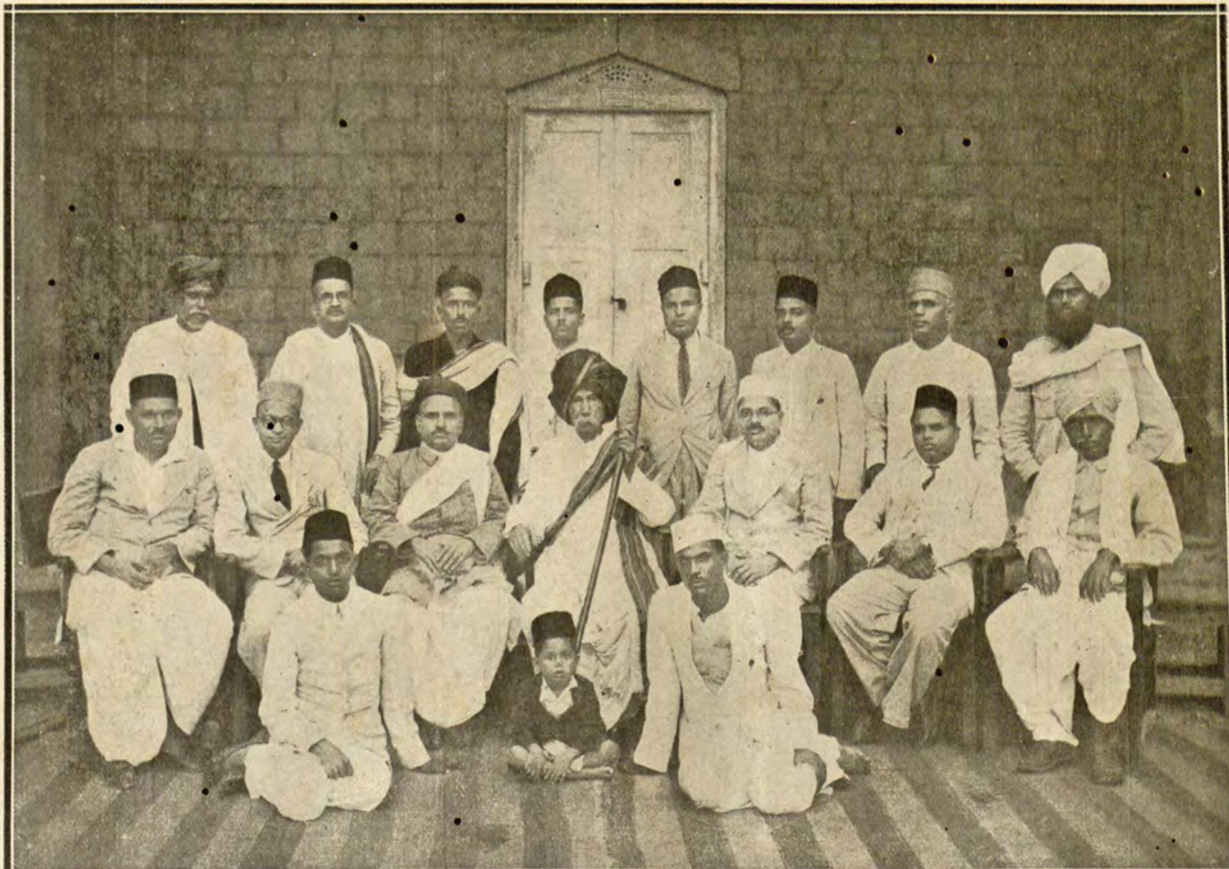

श्रीभारतायुर्वेदविद्यालय (अमरावती) के पदवीदानसमारंभके समय लिया हुआ चित्र ।

Indira Gandhi National
Centre for the Arts

The reason why these 13 dhatus have been distinguished as Dosha, Dhatu and Mala is that although they all support and nourish the body, the 1st three of them *viz*, Vayu, Pitta and Kapha substances have the power of vitiating all the rest 10 constituents, and thus bringing above disease in the system शरीर दूषणाद्दोषाः । while the rest *viz.*, 7 Rasadi and 3 Swedadi are called Dushyas because they cannot themselves bring about disease, but are themselves vitiated by Doshas.

दोषा दुष्टा रसैर्धातून्दूषयन्त्युभये मलान् ।

The last three *viz.* Sweda, Mutra and Shakrit are termed Malas also, because ultimately they are always excreted from the body, although in their initial stage they keep up and nourish it.

पुरीषवातादयोपि शरीरावष्टंभक्ताः प्रसाद एव गुणकर्तृत्वात्—चक्रदत्त ।

That these substances Wat, Pitta and Kapha so long as they are in normal condition in the body (Samyawastha) support and nourish the body is evident from the following passages:—

त्र्यो दोषा धातवश्च पुरीषं मूत्र एवच । देहं संधारयन्त्येते ।

वातपित्तश्लेष्माण एव देहसंभवहेतवः । तैरेवाव्यापन्नै रधोमध्योर्ध्वं संन्निविष्टैः शरीरमिदं धार्यंते आगारमिव स्थूणाभिस्तिसृभिः । अतः भिस्थूणमाहुः ।

नर्ते देहः कफादस्ति नपित्ताञ्च मारुतात् । शोणितादपि वा नित्यं देहएतैस्तु धार्यते ।

विसर्गादानविक्षेपैः सोमसूर्या निलायथा । धारयंति जगद्देहं कफपित्तानिलास्तथा ।

That these three exist in the body even when there is no apparant existence of the rest of the Dhatus *i. e.* from the time of conception until death, is clear from the following :—

नित्याः प्राणभृतां देहे वातपित्तकफास्त्रयः । विकृताः प्रकृतिस्थावातान्बुभुत्सेत पंडितः ।

शुक्रार्त वस्थैर्जन्मादौ विषेणेव विषक्रिमेः । तैश्च तिस्रः प्रकृतयो ।

And that disease is produced in the human system by no other agency than the vitiation in these three substances only is definitely proved by the following statement :—

स्वधातुवैषम्य निमित्तजा ये विकारसंधा बहवः शरीरे ।

न ते पृथक्पित्तकफानि लेभ्यः आगंतवस्त्वेव ततो विशिष्टाः ॥

General Principles to be followed in removing Dhatuvaishamya.

Having so far enunciated and differentiated the various constituents of the human body, and stated that Wat, Pitta or subnormal and Kapha substances are the only constituents which by their abnormal proportion bring about disease in the body, it is necessary to find out how the Dhatu-vaishamya caused by these Doshas can be removed and the original Dhatu-samya re-established.

Charaka holds that :—

Indira Gandhi National Centre for the Arts

सर्वदा सर्वभावानां सामान्यं वृद्धिकारणं । ह्रासहेतुर्विशेषश्च ।
समानगुणाभ्यासोहि धातूनां वृद्धिकारणमिति । प्रकोपनविपर्ययो हि धातूनां प्रशम-
कारणमिति । वृद्धिः समानैः सर्वेषां विपरीतैर्विपर्ययः । वाग्भट्ट ।

Here Arunadatta, the commentator says :—

सर्वेषां दोषधातुमलादीनां शरीराश्रितानां समानैस्तुल्यस्वभावैः वृद्धिः स्वप्रमाणाधिक्यम् ।

Now can there be a Swapramanadhikya of only Karyanumeya substances as Dr. Gananath Sen says ?

These sentences indicate that whenever any substance in the body decreases in quantity, if the same substance could be introduced in the system, the Dhatu-vaidhamya due to it will be removed ; not only this but even if another substance which is Saman-guni *i. e.* possessed of the same attributes as the former be introduced, still Dhatu-samya could be established. Similarly, if on the contrary some constituent of the body has increased in quantity, the introduction of another substance which is Wiparita-guni *i. e.* possessing contrary attributes would remove the Dhatu-vaishamya. Thus if you find that a person is suffering from want of blood which passed away from his body owing to say a severe lathi charge, then according to Ayurveda, you should either inject blood from another in his system, or make him drink blood in some form or other. This remedy has been ordained by Charaka thus :—

एवमेव सर्वधातुगुणानां सामान्योगाद्वृद्धिः । विपर्ययाद्ह्रासः । तस्मान्मांसमाप्यायते । मांसेन भूयस्तर मन्येभ्यः शरीरधातुभ्यः । तथालोहितं लोहितेनैव । मेदो मेदसा ।—— गर्भस्त्वामगर्भेण ।

But a difficulty arises when owing to various reasons, the chief of them all being aversion (Ghrinitwa) one cannot take that substance. Then the sage directs :—

यत्र त्वेवंलक्षणेन सामान्येन सामास्यवतामाहारविकाराणामसान्निध्यं स्यात् । सन्निहितानां वाप्ययुक्तत्वान्नोपयोगो घृणित्वादन्यस्माद्वाकारणात् , स च धातुरभिवर्धयितव्यः, स्यात् । तस्य ये समानगुणाः स्युरहारविकारा असेव्याश्च । तत्र समानगुणभूयिष्ठानामन्य प्रकृतीनाप्याहारविकाराणामुपयोगः स्यात् ।

And then the author goes on to enumerate a number of Samangunabhuyishtha remedies which include all the classes of materials whether Jangama, Parthiva or Audbhida, taking different examples of Dhatus in the wide sense whether they belong to Dosha, Dhatu or Mala sub-section.

शुक्रक्षए क्षीरसर्पिषोरुपयो मधुरस्निग्ध समाख्यातानामपरेषां द्रव्याणाम् । मूत्रक्षये पुनरिक्षुरसवारुणीमंडः द्रवमधुराम्ललवणोपक्लेदिनाम् । वातक्षये कटुतिक्तकषाय ——पित्तक्षये ——श्लेष्मक्षये ——।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

It is not that the Dhatu-vaishamya can be removed simply by the administration of Saman-gunabhuyishtha Ahar-vikar but even—

कर्माऽपि यद्यस्य धातोर्वृद्धिकरं तत्तदासेव्यं। एवमन्येषामपि शरीरधातूनां सामान्य विपर्ययाभ्यां वृद्धिह्रासौ यथाकालं कार्यौ।

From this discussion it is evident that the word Bhava in the sentence सर्वदा सर्वभावानां सामान्यं वृद्धिकारणम्। does not merely indicate an attribute or Guna, but also a substance (Dravya) as well as (Karma) *i. e.* the action or the effect which the substance produces on the human system after it has been digested and assimilated. Chakradatta has clearly stated that

भवंति सत्वमनुभवंतीति भावाः गुणद्रव्यकर्माणीत्यर्थः।

Thus since we cannot directly know which of the Shareera Dhatus has actually increased or decreased in the system, we must find out that decrease or increase by the corresponding reduction or increment in the attributes of that dhatu, as well as of its Karma, *i. e.* the actions for which it was responsible. For example, if we know that Wat is Sheeta and Ruksha and causes the nervous system of the body to work properly, then if we find that a person is feeling more cold, and his body is more dry than what it was ordinarily, and that the nervous system is stimulated to a higher degree than normal, our conclusion would be that the Wat substance has increased in the body. It is therefore necessary now to find out what are the Dravya, Guna and Karma of all the Shareera dhatus and especially of Wat, Pitta and Kapha which have been proved to be the root cause of all diseases; and also to determine the corresponding Dravya, Guna and Karma of all the existing substances to be found on the surface of the earth; so that when we know from these Guna and Karmas which of the Doshas in the body has either increased or decreased, we could introduce in the system such of these substances as would just counterbalance the original Waigunya in the Doshas. In fact these are the two main sections of Ayurveda, the first discussed in Sutrasthana of every work and the second in Nighantoo or materia medica.

Tridosha

The next subject which I would therefore like to discuss now is to determine the dravya, guna and karma of the tridoshas or tridhatus, as they are the principal constituents of the human body. This subject has been the object of discussion from the time Allopathic Science has set its foot on this ancient land of civilisation, and great and eminent Ayurvedists from Dr. Gadre of Poona down to the late Dr. Yaminibhusan Roy, and our worthy President Dr. Gananath Sen and Captain Shriniwas Murti have given their opinions about them. My

Indira Gandhi National Centre for the Arts

profound respect for these worthy gems in Ayurveda encourages me to discuss the topic in my own way, and I hope to be excused if in this discussion I would differ from them in some respects,

Tridoshas are Matter

The first and foremost conclusion for which I would just put forward proofs is that the Tridhatus, or for the matter of that the Tridoshas are actual substances in the body. Ayurveda as stated above holds that

दोषधातुमलमूलं हि शरीरम् ।

Which means that the visible body is composed primarily of three varieties of substances known as Dosha, Dhatu and Mala. Of these, the 7 Dhatus and 3 Malas, and definitely known to be actual substances in the body. They can be seen, separated from the body, examined by all other senses and analysed. Their description in terms of their attributes (Gunas) therefore, has been given in Ayurveda, and their function in the general working of the body has also been clearly described. But all that has been done in short.

Whether the 3 doshas also can be so separated from the body, and analysed is a question, and it will be at some length that I would quote from ग्रंथचतुष्टय *viz.* चरकसुश्रुतवाग्भट and अष्टांगसंग्रह what the Rishis have to say regarding this. Wagbhat says :—

शरीरजानां दोषाणां क्रमेण परमौषधम् ।
बस्तिर्विरेको वमनं तथा तैलंघृतंमधु ।

From this statement it is evident that the Doshas are Shariraja *i.e.* produced in the body, and whatever is produced from the body must be a substance. Similarly from the above quoted statement दोषधातुमल मूलं हि शरीरं it is evident that if the body is composed of (Mulam) doshas they should also be actual substances, because according to Satkaryawada, which has been dealt with above at length while propounding the Panchmahabhutta theory, an existing entity like the human body (the structure alone and not mind soul &c.) will always be developed out of an actually existing substance. Sushruta as has already been quoted says

वातपित्तश्लेष्माण एव देहसंभवहेतवः ।

Now a substance or Dravya has been defined by Charaka as

यत्राश्रिताः कर्मगुणाः कारणं समवायि यत् । तत् द्रव्यं ।

Therefore a Dravya or substance is that which possesses some attributes (Guna) and which produces some sort of action (Karma) on any other part of the universe, either independently or in conjunction with something else.

Indira Gandhi National Centre for the Arts

राजकीय संस्कृत महाविद्यालय (बड़ोदा) अध्यापक वर्ग (सन १९३३)।

Indira Gandhi National
Centre for the Arts

If therefore the Tridoshas do possess some attributes, and if they also take part in the general working of the human system in one way or other, then they ought to be actual substances. Now if we look to any of these four works on Ayurveda, we find that the description of the tridoshas has been given in terms of their attributes thus :—

रुक्षः शीतो लघुः सूक्ष्मश्चलोऽथ विशदः खरः । मारुतः रूक्षशीत लघुदारुण खर विशदा षडिमे वातगुणा भवंति । रौक्ष्यं लाघवं वैशद्यं शैत्यं कतिरमूर्तत्वं चेति वायोरात्मरूपाणि भवंति ।

एवं विधत्वाच्च कर्मणः स्वालक्षण्यमिदस्य भवति । तत्र रूक्षो लघुः शीतः खरः सूक्ष्मश्चलोऽनिलः । वाग्भट

Here अमूर्तत्वमिति अदृश्यत्वं, आत्मरूपमिति स्वरूपम् । So say Chakradutta.

From a careful perusal of this description of Wata, one would naturally conclude that what Ayurvedists call wata is an actual substance existing in the human body. It is Amurta *i. e.* not that it has no form (Murti) but invisible just as an ordinary gaseous substance is. Since is Atmarupa (Swarupa) *i. e.* natural character or form or true constitution has been described, we cannot agree with M. M. Dr. Gananath Sen who has stated in his Siddhanta Nidan on page 13 that

रुक्षादिगुणाः वायोः कार्यानुमेया एव नतु साक्षादिंद्रिय गोचराः अस्मादृशाम् ।

No author or even commentator states that Doshas are. Karyanumeya. Wipaka of a Dravya is said to be Karyanumeya, but not Doshas. In fact Arunadatta Says:—

एवं तत्गुणयोगाद्गुणिनो रभेदोपचाराद्वातादयो गुणतो निर्दिष्टाः ।

Therefore Wat is a certain kind of gas (which one—that we shall see later) like external air which we breathe, which is also Adrishya, because no one can say which is the colour of the air. All the other attributes stated above do exist in any gaseous substance. For instance a gas is always lighter than any solid or liquid. Hence as compared with the other doshas, Pitta and Kapha, it is Laghy (light). It is Sukshma सूक्ष्मः स्रोतः प्रचारित्वात् *i. e.* subtle, minute because it can penetrate the most minute structures in the body as any gas can, and not a solid or liquid. Sukshmatwa cannot always mean अनिंद्रियगोचरत्व *i. e.* imperceptible by sense. Otherwise the word will have no meaning in sentence like

जालांतरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः ।

Wat is Sukshma as compared to Kapha and Pitta which are Sthula because their form and colour can be actually seen by the eye. In the course of a discussion regarding the nature of this Wat amongst the members of a conference which was held in those good old

Indira Gandhi National Centre for the Arts

days, vide Charak chap. 12 of Sutrasthana one of the members put the following question:—

कथं चैनं वायुं असंघातवंत मनवस्थितमनासाद्य प्रकोपनप्रशमनानि प्रकोपयंति प्रशमयंति वा ।

Here Asanghat-vantam qualfies Wayu, and Chakradutta in his commentary clearly states असंघातवंतमिति पित्तश्लेष्मवदवयव संघातरहितं । This means that just as Pitta and Kapha are both possessed of Avayavasanghat *i. e.* a form viz. that they are liquid, have a certain definite, colour, odour etc., this Wayu has nothing of the sort, and is therefore like external air.

So also अनवस्थितमिति चलस्वभावं says Chakradutta *i. e.* if Pitta and Kapha substances were put in a bottle, they would remain there occupying a certain volume, while if Wayu were put in it, it would move about, and thus occupy the whole bottle *i. e.* all the space available. Hence as compared to Pitta and Kapha it is चल-चलः गमनशीलः नैकत्रतिष्ठतीति । It is Ruksha *i. e.* does not contain any lubricating quality; and we know that there is no lubricating quality in any gas whatsoever, and more so in air. Ruksha is a quality which is exactly opposite of Snigdha. It is Sheet *i. e.* cold as compared to Pitta and Kapha, as will be shown later, possess acid properties in a more or less degree, and are therefore Ushna. Pitta being highly acid is Ushna, Kapha slightly acid and therefore contains nearly negligible quantity of Ushnatwa, while Wat is purely Sheet. In fact a gas is naturally neither hot or cold but it is only when it is made hot or cold by external means that it becomes so. Thus Arunadatta says :—

अनुष्णाशीतो वायुरिति काणादैः पठितः । योगवाहः परं वायुः संयोगात् उभयार्थकृत् । दाहकृत्तेजसायुक्तः शीत कृत्सोमसंश्रयादिति । तस्य योगवाहित्वेपि तावन्मात्राद्दाहौदयोच्छैत्यं स्वाभाविकं न निश्यति । शीतगुणव्यावर्णने चेदं प्रयोजनमुष्णेनायमुपशाम्यति इति प्रतिपत्यर्थम् ।

It is clear that a gas if it is heated increases in volume, and then passes out of the system; and thus it is got rid of Upashmyati. It is Khar *i. e.* rough खरः अमृदुः as opposed to Kapha which is smooth—Shleshma, and we know that external air or any kind of gas is rough to feel or touch. It is Wishad *i. e.* clear and clean as compared to Pitta and Kapha which are Visra and Pichhila *i. e*, slimy and smeary. A liquid or a solid may be Pichhila, but a gas is always Vishad. Thus from the attributes in terms of which Ayurveda describes Wat, we conclude that

(1) It is a Dravya-a substance or matter, and that

(2) It is a kind of gas.

Indira Gandhi National Centre for the Arts

Pitta and Kapha Doshas.

Next Pitta is described as :—

सस्नेहमुष्णं तीक्ष्णं च द्रवमम्लसरं कटु । पित्तं लघुतथा विस्त्रं कटु । पित्तं तीक्ष्णं द्रवंपूति नीलं पीतं तथैवच । उष्णंकटुरसं चैव विदग्धंचाम्लमेवच । औष्ण्यं तैक्ष्ण्य लाघवमनति स्नेहो वर्णश्च शुक्लारूणवर्जों गंधश्च विस्त्रः रसौच कटुकाम्लौ पित्तस्य आत्मरूपाणि ।

This description of Pitta exactly coincides with that of a dilute acid like hydrochloric or sulphuric. It is liquid (Drava) slightly oily (Sasneha) as any of the above-mentioned two acids are, and is capable of acting chemically on another substance like food, and therefore Teekhna तीक्ष्णं शीघ्रकारी मंदविपरितं सूचीव भिनत्ति । It is hot to touch, Ushna, as compared to Wata and Kapha which are cold to touch (Sheeta). It is light (Laghu) *i. e.* its specific gravity is lower than that of Kapha, (But not as compared to that Wata) which being of slimy consistency (Pichhila) is always Guru. It is sour and bitter in taste (Katu and Amla) as acids generally are, and yellowish and greenish in colour. All the acids are generally of a yellow colour. It is Visra *i. e.* दुर्गन्धि मत्स्यगन्धि as a bodily acid is likely to be. Thus we conclude that

(1) Pitta is also a Dravya, substance or matter and that

(2) it is liquid with mostly acid properties.

Lastly Kapha is described as

गुरुशीतमृदु स्निग्ध मधुरस्थिरपिच्छिलाः । श्लेष्मणः गुणाः । श्लेष्माशीतो गुरुःस्निग्धः पिच्छिलः शीत एवच । मधुर स्त्वविदग्धः स्याद्विदग्धो लवणः स्मृतः । स्नेहशैत्य शौक्ल्य गौरवमाधुर्यमात्स्र्यानि श्लेष्मण आत्मरूपाणि मृद्यमानोऽङ्गुलग्राही । पिच्छिलः चकचकायमानः इति अरुणदत्तः ।

This Description of Kapha agrees in every respect with that of any mucus secretion in the body. The secretion of the mucus and salivary glands of the mouth which we throw off in spitting is a nice example. It is sweet in taste (Madhur), of slimy consistency (Pichhila) slightly oily (Snigdha), white in appearance (Shukla) not watery like dilute acid, but slightly thick and therefore weighty (Guru Sthira) and cold to touch (Sheet) as compared to pitta. That this secretion becomes saltish (Lavana) whenever there is any disease in the mouth is experienced by everybody when he suffers from cold. It is then that it gets Vidagdha. Thus we conclude that what is known in Ayurveda as Kapha or Shleshma is :—

(1) a Dravya—a substance or matter and that

(2) it is like secretion of any mucus membrane in the system

Indira Gandhi National Centre for the Arts

Principal place in the body where these Tridoshas are produced.

Having thus proved that Wata, Pitta and Kapha are actual substances, let us now try to find out where and how they are produced, and what part they play in maintaining the general equilibrium (Dhatu-samya) in the body. The human structure like that of other living beings consists of a number of organs, grouped together into what are known as system such as Circulatory, Respiratory, Nervous, Digestive and so on. Of these the digestive system which enables the food that we eat everyday to be converted into the different tissues of the body, is from the point of view of supplying the wasted materials, and thus maintaining the equilibrium of all other systems, the most important one. The principal part of the body which is engaged in this work is the alimentary canal known as Mahasrota in Ayurveda, commencing from the cavity of the mouth and extending to the end of the rectum. This Mahasrota, has for convenience of description and according to the primary functions which are performed in it, been divided by Ayurvedists into three parts :—

(1) Amashaya (Stomach)

(2) Pakwamashaya-madhya or Nabhi (Duodenum)

and (3) Pakwashaya (intestines both large and small) and these three have been described to be the chief abodes of the three doshas Kapha, Pitta and Wata respectively.

पक्काशयः वातस्य । पक्कामाशयमध्यं पित्तस्य । आमाशयः श्लेष्मणः । सु० सू० २१

It is these three portions of the alimentary canal which are indicated by the Urdhwa. Madhya and Adhah portions of the body in the statement.

वातपित्तश्लेष्मण एव देहसंभवहेतवः । तैरेवाव्यापन्नैः अधोमध्योर्ध्वसन्निविष्टैः शारीरमिदं धार्यते ।

Ordinarily this alimentary canal is divided into five parts, mouth, stomach, duodenum, intestines and rectum. But of these, the mouth simply helps the food to reach the stomach where the digestion and absorption processes just begin, while the rectum simply stores up and then throws off the waste products of the food. Hence from the point of view of pure digestion and assimilation they are not so important although they help a great deal in these processes. A mucus membrane lines the whole alimentary canal from the mouth down right up to the rectum, and hence the mucus material (Kapha) is no doubt produced in the whole of the canal; but the substance Kapha is obtained in profuse quantity in the stomach and also its accesory the mouth, and so according to the rule व्यपदेशास्तु भूयसा the stomach is said to be its chief abode.

Indira Gandhi National Centre for the Arts

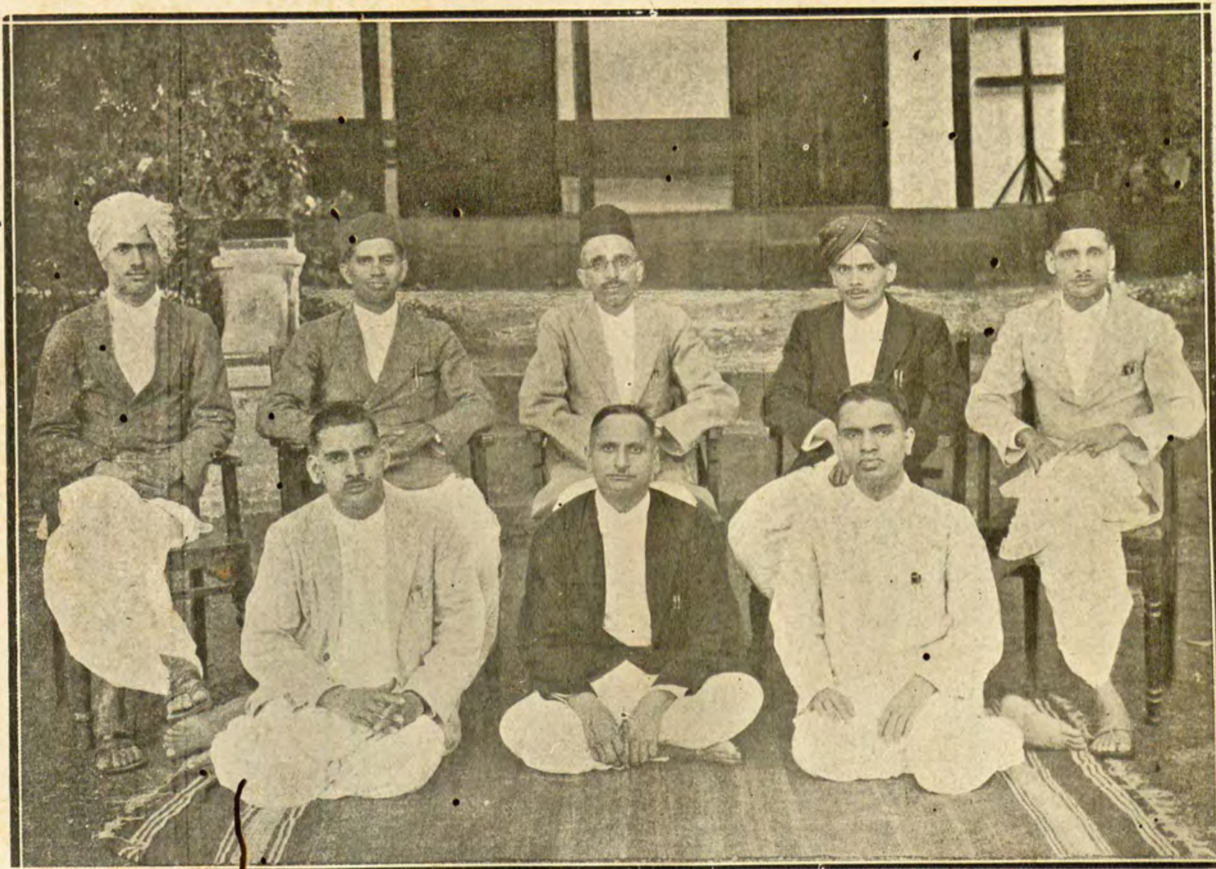

अध्यापकवर्ग श्री आर्याग्लवैद्यकविद्यालय. (सातारा).

Indira Gandhi National Centre for the Arts

We shall now consider how the food which we eat every day is assimilated in the body, and helps to make good the waste, or increase the substance of the different tissues of the body. In fact Characharya while explaining the process has so elaborately and nicely dealt with the actual production of these substances Wata, Pitta and Kapha in the body that we are simply wonderstruck to see how their statements are exactly in coincidence with the modern conceptions of Physiology. He says :—

अन्नस्य भुक्तमात्रस्य षड्रसस्य प्रपाकतः। मधुरात्प्राक्कफोद्भावात् फेनभुत उदीर्यते। परतु पच्यनानस्य विदग्धस्याम्ल भावतः। आशयाच्च्यवमानस्य पित्तमच्छमुदीर्यते। पक्वाशयंतु प्रासस्य शोष्ममाणस्य वन्हिना। परिपिंडित पक्वस्य वायुः स्यात्कटु भावतः।

Wagbhata is still more explicit :—

तत्तु अन्नं सर्वरसमपि पच्यमानं आदौ मधुरी भूतं कफं फेनीभूतमुदरियति। ततो विदग्धभाल्मन्नीभूत मामा शयाच्च्यवमानमच्छं पित्तं। प्राप्य पक्वाशयं कटुकी भूत मलिनम्।

Kapha Secretion.

These statements show that as soon as the food which consists of all the six kinds of tastes मधुराम्ललवण कटु तिक्तकशाय is taken in, chewed and swallowed, and thus reaches the stomach (Amashaya), there is a spontaneous flow in the stomach **(उदीरयति, उदीर्यते)** of a substance known as Kapha which is foamy in appearance **फेनीभूत.** The secretions from the salivary glands and the mucus glands of the mouth having got mixed with it while it was being chewed, and these secretions being all sweet in taste, there is an increase of sweetness already existing in the food taken. **(आदौमधुरी भूतं, मधुरात् प्राक्).** But it is evident that the particles of food can be well acted upon chemically by an acid if instead of being in a mass or semi-solid state, they are reduced to a liquid or a viscous liquid state. Therefore some liquid, which would not allow the food at once to become Amla or Vidagdha, and would at the same time reduce it to a uniform liquid state, is required to be thoroughly mixed up with the food. This is provided by the gastric juice. Sustruta says :—

माधुर्यात्पिच्छिलत्वाच्च प्रक्ले दित्वात्तथैवच। आमाशये संभवति श्लेष्मा मधुर शीतलः आमाशयः—चतुर्विधस्याहारस्याधारः। स च तभोदकैर्गुणैः आहारः प्रक्लिन्नः भिन्न संघातः सुखजरश्च भवति।

The Audaka Gunas are those of Kledak Kapha (gastric Juice) which contains nearly 99·5 p. c. of water.

The process of digestion and absorption begins here in the stomach. A profuse quantity of this gastric juice gets mixed up with the food, and then it passes from the mixture thus obtained to chyle (Rasadhatu), and thence to blood, and through blood to various other

Indira Gandhi National Centre for the Arts

places in the body, where similar other mucus membranes exist. Thus it causes secretion according to the general rule.

वृंद्धिः समानैः सर्वेषां विपरीतैर्विपर्ययः ।

Sushruta, therefore, says that स तत्रस्थः एव स्वशक्त्या शेषाणां श्लेष्मस्थानानां शरीरस्य चोदककर्मणा अनुग्रह करोति ।

From this it is evident that this Amashaya is the chief abode of Kapha.

Moreover Charak says—वमनंतु सर्वोपक्रमेभ्यः श्लेष्मणि प्रधानतम मन्यंते भिषजः । तद्धि आदित एवामाशयमनुप्रविश्य केवल वैकारिकं श्लेष्ममूलमपकर्षति । तत्रावजिते श्लेष्मणि शरीरान्तगताः अन्ये श्लेष्मविकाराः प्रशांतिमापद्यंते । यथाभिन्ने केदारसेतौ शालियवषष्ठिकादीन्यभिष्यं दमानान्यंभसा प्रशो ' आपद्यंते तद्वेतिदिति ।

This shows that the best course according to Charak for removing Dhatu-vaishamya due to Kapha is to administer medicines which would cause vomits, and thus empty the stomach, because 'the Shleshma there which is the root cause of all other diseases in the system due to Kapha is thereby eradicated from the system. Not only that, but owing to the removal of this Shleshma-mula, which, as stated above, nourishes the other four kinds of similar Kapha secretions to be described later on, all other diseases in the system due to Kapha disappear, just as when a field laden with crops is under water, the crops get withered owing te excess of water, but if the dam be opened at a certain point, and the water allowed to get out, the crops again attain their normal condition. This statement clearly proves that it is this Amashayagata Kledak Kspha (gastric juice) which is the root cause to all other diseases in the system due to Kapha. If it is produced in normal quantity, the whole system goes on all right, but if owing to some internal or external cause its quantity is increased, it has to be removed by Wamana. That this gastric juice flows spontaneously as soon as food is taken in the mouth is proved from the following passage from "Haliburton's" Physiology : "Pawlow has by a very ingeneous surgical operation succeeded in the dog in separating off from the stomach a diverticulum, which pours its secretion through an opening in the abdominal wall. The following are his main results :—

(1) Increase in the quantity of food given causes an increase in the amount of gastric juice secreted.

(2) The increase is most abundant in the early periods of digestion वयोहोरात्रि भुक्तानां तेतंमध्यादिगः क्रमात्, is a statement which clearly tells us that Kapha is most abundant in the Adi part *i.e.* early periods of digestion, but it continues to be secreted (उदीर्यंते) as long

Indira Gandhi National Centre for the Arts

as any food remains to be dealt with. When there is no food given, there is no Juice, *but sham feeding or chewing will cause it to flow.*"

That this gastric juice is mostly watery and therefore helps to moisten or liquify the food (क्लेदन) is proved by the fact that—"The effect of the sham feeding was a reflex and abundant flow of gastric juice, which commenced five minutes after (अन्नस्य भुक्तमात्रस्य) the beginning of the meal. *If water, milk or soup was given instead of meat, no such secretion occurred.*" This clearly shows that. since in the case of water, milk or soup the amount taken is already liquid (क्लेदित) there is no necessity of Kledàn, and hence no Kledak Kapha is secreted.

What more proofs are needed to establish that the gastric juice is the Kledak kapha? It is evident from the above comparative statements that the words उदारयति, उदीर्यंते ईरयेत् etc. have been used with thorough significance be the authors, meaning thereby that the particular substance is naturally secreted in that particular substance is naturally secreted in that particular place, as soon as the food is taken in (भुक्तमात्रस्य) This leads one to infer rightly that the Rishis must have observed the phenomenon by actual experiments on living beings. Charakacharya has thus rightly instructed that:—

शरीरसंख्यां योवेद सर्वावयवशो भिषक्। तदज्ञाननिमित्तेन् संमोहेन न युज्यते।
अमूढो मोहमूलैश्च न दोषरीकिभूयते। निर्दोषो निस्पृहः शांतः—प्रशाम्यत्यपुनर्भवः।

As stated above the process of the moistening of the food starts profusely in the stomach, but it begins from the time the food is taken in the mouth. "The saliva is the first digestive Juice to come into contact with the food." Here it should be remembered that all the Juices and secretions that are obtained in the alimentary canal help digestion in one way or the other, and therefore they are called digestive juices. Even Kledana *i. e.* dilution helps digestion and so they may all be called digestive in this wide sense.

"The Saliva is transparent, slightly opalescent, of slimy consistency, and may contain lumps of pure mucin. On standing, it becomes cloudy owing to the precipitate of calcium carbonate, the carbonic acid which held it in solution as bicarbonate escaping. "The gastric juice is clear and colorless. It has a specific gravity of 1003 to 1006. It contains (·2) p. c. of Hydrochloric acid. When the juice remains in the stomach, this is in part neutralised by the food and saliva, and also by pancreatic juice which enters the stomach from the duodenum." Thus the mixture of saliva and gastric juice is what we call Kleda Kapha.

Does not the above description tally exactly with :—

Indira Gandhi National Centre for the Arts

स्निग्धः शीतो गुरुर्मंदः श्लक्ष्णो मृत्स्नः स्थिरः कफः ।

"The action of saliva is twofold, physical and chemical. (1) The physical use of saliva consists in moistening the mucus membrane of the mouth, assisting the solution of soluble substances in the food, and *in virtue of its mucin, lubricating of the bolus of food to facilitate swallowing* (2) The chemical action of saliva is due to its chemical principel ptyaline."

It is, thus, evident that from the time the food is taken in until it has reached the stomach and begins to enter the duodenum the physical process of moistening (क्लेदन) goes on, which is most adundant in the stomach due to the secretion of gastric juice therein. Hence the principal Kapha secretion, which, according to the Ayurvedists, obtained in the Urdhwa part of the Mahasrota, helps the digestion of food by being mixed with it uniformly, and by thus diluting the food it facilitates the action of strong acids which mix with it further on in the duodenum.

Pitta Secretion

Having thus passed out of the Amashya, the food then, reaches the Pakwa-amashaya-madhya (duodenum). Here it is in पच्यमान stage, because the gastric juice therein, although it contains more of water, does still contain a small quantity of Hcl. This causes the digestion to start, and as there is acidity (Amlatwa) in it due to the existence of Hcl, the food, which was Madhura so far becomes sligtly Amla.

Now, in the duodenum, this food comes in contact with another liquid called पाचकपित्त by Ayurvedists, and this liquid also, like the gastric juice flows spontaneously in the duodenum as soon as the food reaches that place. Charakacharya, therefore says:—

परंतु पच्यमानस्य विदग्धस्याम्ल भावतः । आशयाच्च्यवमानस्य पित्तमच्छ मुदीर्यते ।

Here again the use of the word (Udiryate clearly shows that this liquid also is a secretion, which mixes with the food, while it comes down from the stomach (आमाशयाच्च्यवमानस्य). The nature of this pitta has been very elegantly described by Wagbhat in both of his works thus:—

पित्तं पंचात्मकं तत्र पक्वामाशयमध्यगं । पंचभूतात्मकत्वेऽपि यत्तैजस गुणोदयात् ॥ त्यक्त द्रवत्वं पाकादि कर्मणाऽनलशब्दितं । पचत्यन्नं विभजते सार किट्टौ पृथक्तथा ॥ तत्रस्थमेव शेषाणां पित्तानामप्यनुग्रहं । करोति बलदानेन पाचक—नामतत्स्मृतम् ॥

or as in Vridha-Wagbhat—

तत्र यदाम पक्वाशय मध्यस्थं पंचमहाभूतात्मकत्वेऽपि तेजोगुणोत्कर्षात्क्षपितसोमगुणं ततश्च त्यक्तद्रवस्वभावं सहकारि कारणैर्वायुक्लेदादिभिरनुगृहात् दहन पचनादि क्रियया लब्धा-

Indira Gandhi National Centre for the Arts

ग्निशब्द पित्तमन्नं पचति स्तरकिट्टो विभजति, शेषाणिच पित्तस्थानानि तत्रस्थमेवानुगृण्हाति तत्पाचकमित्युच्यते ।

Let us now consider the nature of this Pitta as described above.

(1) First of all it is Pancha-mahabhutatmak, in other words it is also a substance, matter or Dravya, an existing entity like so many other Rasaraktadi substances in the body, and not merely a Shakti or Sukshma Pitta as some of the famous writers on the subject have said.

(2) Secondly, the place where it is secreted is Pakwa-mashaya-madhya *i. e.* the small portion of the alimentary canal joining the stomach and the instestines, which is in fact a part of the intestines themselves and is known as duodenum in the modern treatises on anatomy.

(3) Thirdly, it is liquid, Drava ; but owing to the predominance (उद्रय or उत्कर्ष) in it of the तैजसगुण *i. e.* the heat producing element, the effect, which it would produce on any substance on account of its liquidity or excess of water (सोमगुण) is suppressed (क्षपित) and thus it losses its द्रवस्वभाव. We can understand the nature of this Pitta with reference to a semidiluted acid like Hcl or Sulphuric. If we take a few drops of water, and pour them on a metallic plate or a lump of sugarcandy, it will have practically no effect on the plate, and would simply dissolve the piece of sugar-candy turning it into a liquid solution of sugar. Here the water is a liquid (द्रव) and as it has not given up its द्रवस्वभाव it combines with the sugar-candy, and desolves it still maintaining its द्रवस्वभाव. Now supposing that we mix with that water a small quantity say 1/50th part of strong Hcl, even then the mixture maintains its liquid appearance (द्रवत्व) but its (स्वभाव) character is changed. It no longer has no action on the metallic place ; but on the contrary, acts chemically on it, at once converting a part of it into some salt, and thus dissolving and digesting that part of it.

So also this acid mixture no longer simply dissolves the sugar-candy, but chars and burns each and every particle of the candy which comes into contact with it, and thus by chemical action reduces it to charcoal. Thus the mixture, though still maintaining liquid appearance, has abandoned its liquid character (त्यक्त द्रवस्वभाव) because of the suppression of the simple solubility of water (क्षपित सोमगुण) owing to the increase of heat producing element in it (तजोगुणोत्कर्षात) and this change in the state of water is due to the addition of acid in it.

(4) Fourthly, this Pachak Pitta is termed Agni simply from analogy. Just as a mixture of rice and water put in a vessel on fire would

Indira Gandhi National Centre for the Arts

reduce the rice to a cooked and assimilable food for the human system, so also this Pitta, when it gets mixed with the food that comes down from the stomach, digests it and reduces it to assimilable chyle (रसधातु) which in its turn changes itself into blood, and thus nourishes the whole human system. Charak, therefore, says :—

एवं रसमलायान्नमाशयस्थवधः स्थितः । पचत्याग्निर्यथास्थाल्यामोदनायांबुतंडुलम् ।

But it is not this Pitta which alone does the whole work of digestion.

(*a*) First of all, as stated above, the gastic juice which mixes up with the food in the stomach does the work of liquifying the food (क्लेदन) and this process is also an additional helping factor सहकारि कारण in digestion.

(*b*) Then secondly, when the food goes further in the intestines, the process of absorbtion of chyle through lacteals starts there, and as a result of this, gases are produced, the most abundant among them being Carbon dioxide. This gas, as will be shown later is readily absorbed by the nerves, which in their turn are stimulated due to this absorbtion. This stimulation then increases the quantity of Pitta secreted. In this way this Vayu or gas becomes a helping factor (सहकारि कारण) for digestion. Wagbhat therefore says :—

सहकारि कारणैर्वायुक्लेदादिभिरनुगृहाद् दहन पचनादि क्रियया लब्धाग्निशब्दं ।

It is thus that this Pachak Pitta digests the food (पचत्यन्नं) converts it into a mixture of two substances one of them being the essential part (Sara) which is chyle, and the other the waste product (Kitta). Thus this Pirta is said to—

विभजते सारकिट्टौ पृथक्तथा

(5) Fifthly and lastly, as the Pachak Pitta mixes with the food and is absorbed along with the chyle, and residual secretion which remains in addition to what has been already used up in the process passes on to the blood, and thereby nourishes all other Pitta secretions in the body. शेषाणां पित्तानां बलदानेनानुग्रहं करोति । This is just similar to the nourishment of the different Kapha secretions by means of the Kledak Kapha of the stomach.

That the duodenum is the place where Pachak Pitta is secreted, and that this is the main spring for all other secretion of the Pitta class of the body is also proved by the following statement in Charak.

विरेचनं तु सर्वोपक्रमेभ्यः पित्ते प्रधानतमं मन्यंते भिषजः । तद्धि आदित एव आमाशयमनु प्रविश्य केवलं वैकारिकं पित्तमूलं चापकर्षति । तत्रावजिते पित्ते अपि शरीरान्तर्गताः पित्तविकाराः प्रशान्तिमापद्यंते यथाऽग्नौ व्यपोढे । केवलं अग्निगृहं शीतीभवति तद्वत् ।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

Amongst the remedies prescribed for treating the abnormal increase in the Pitta secretions, the best one is a purgative, because as soon as it reaches the duodenum, it removes the excessive Pitta substance itself. This Pitta is said to be (the Mula) the root cause, because as stated above, it nourishes all other Pitta secretions in the body. As the root cause is thus removed, all other diseases in any part of the body caused on account of abnormal Pitta secretions disappear, just as, if you extinguish the fire a whole house which is in flames becomes at once cold.

From the above discussion, it is evident that according to Ayurvedists Pitta is an actual substance, which flows spontaneously into the duodenum when the food reaches there. Let us see now what this substance is according to modern Physiology.

Physiology tells us that there are two glands, liver and pancreas, the former 'situated in the abdomen on the right side, is the largest gland in the body,' while the later is situated in the back. Both these glands produce secretions, that of the liver being known as bile, while that of the pancreas as pancreatic juice. "Bile is the secretion of the liver which is poured into the duodenum. It is being continuously poured into the intestine, *but there is an increased discharge immediately on the arrival of food in the duodenum* (उदीर्यते). There is a second increase in the secretion a few hours later after the arrival of semi-digested food (chyme) in the intestines. This increase appears to be due to the effect of the digestive products carried by the blood to the liver stimulating the hepatic cells to activity. This is supported by the fact that protied food increases the quantity of bile secreted whereas fatty food which is absorbed not by the portal vein but by the lacteals has no such effect." This proves the general theorem that सर्वदा सर्वभावानां सामान्यं वृद्धिकारणम्. "Bile has little or no action by itself, but combined with pancretic juice, it assists the later in all its activities. This is true for the digestion of starch and of protein, but markedly so for the digestion of fat. Some state that bile has a slight action on fats and carbohydrates ; but it appears to be rather a co-adjutor to the pancreatic juice especially in the digestion of fat than to have any independent digestive activity."

These statements clearly show that the secretions of bile and pancreatic juice together are responsible for digestion, and this combined juice which is poured in the duodenum is therefore Pachakpitta. Halliburton says:—"Bile is a yellowish, reddish-brown or green fluid, according to the relative preponderence of its two chief pigments. It has a musk-like odour, a bitter sweet taste, and a neutral or faintly alkaline reaction." If we compare this description with औष्ण्यं तैक्ष्ण्यं

Indira Gandhi National Centre for the Arts

लाघव मनतिस्नेहो वर्णश्च शुक्ला रुण वर्ज्यों गंधश्च विस्रो रसौच कटुकाम्लौ पित्तस्य रुपाणि।
We find that here the colour of the Pitta has been described as other than white (Shukle·), ann red (Aruna), and Halliburton tells us that the colour of bile is yellow, reddish-brown or green which is exactly what Charak says; its taste is bitter sweet, so also here कटुकाम्लौ the odour is musk like विस्र; like that of a dead rat. All this clearly shows that the two descriptions agree in every respect. It has to be remembered that the Rishis have attempted at their description some 3000 years ago, and therefore some slight discrepancies are likely to occur but one has to make allowance for them.

In this connection I would like to state one important fact which agrees with the Ayurvedic tenets *viz.* that each secretion that gets mixed with the food causes nearly similar secretion to be produced as the digestive process goes on further.

Halliburton says:—"The importance of the work of Parlow arises from the entirely new light thrown upon the digestive process as a whole. We have been too apt to think the occurrence in the alimentary canal as a series of isolated phenomemon. We now see that each step follows an orderly manner as the result of previous steps For example, the acid gastric juice reaches the intestines and there produces secretion from its forerunners, the secretion is taken by the blood stream to the pancreas, where it excites a flow of the pancreatic juice, the juice arrives in the duodenum ready to act on starchy substances and fat. With the assistance of the bile, fatty acid is liberated which in its turn forms more secretion, and so in turn more pancreatic juice."

Charakacharya has, therefore, clearly stated that :—

परस्परोपसंस्तम्भा धातुस्नेह परंपरा। संतत्याभोज धातूनां परिवृत्तिस्तु चक्रवत्।

Having thus proved that what is called Pachakpitta in Ayurveda is nothing else but the combination of bile and pancreatic juice secretions, we now proceed further down the alimentary canal towards the intestines and study the nature of the third Dosha Wata.

Wata substance.

The food which is so far mixed with saliva and gastric juice. and then with the bile and pancreatic juice, now reaches the intestines. "The small intestine, with its folds and villi to increase its surface is the great place for absorption. The superficial area of the small intestine, if it were flat, is about 1.5 squre meters. This by the presence of the villi is increased to about 42 square meters. Absorption, begins in the duodenum, and the products of digestion have largely disappeared by the time the intestinal contents have reached the commencement of the large intestines."

Indira Gandhi National Centre for the Arts

The increase of surface in the intestines is meant to allow the digested food to remain in contact with their inner surface for a pretty long time, so that the chyle (Rasadhatu), which is to be separated and absorbed by means of the "blood vessels and lymphatic vessels and lacteals" may be completely extracted from it. The Rasadhatu being a somewhat thick liquid substance, the original semi-liquid form of the digested food is changed here, and the mass goes on becoming more and more solid as it proceeds along the average 22 feet length of the intestine. The proceeds of absorption has been metaphorically said to be due to Agni by Ayurvedists. Just as a wet cloth gets dry in sunshine, because the sun's rays absorb the water in the cloth, so also here the process of absorption of chyle is said to be due to Pitta or Agni. The separation of the Sara and Kitta *i. e.* essential and non-essential *viz.* chyle and excreta, is stated to be due to Pachakpitta above.

पचत्यन्नं विभजते सार किट्टौ पृथक्तथा ।

Thus as the food reaches the intestines, and the chyle is absorbed there, a third substance termed as Wayu, which is the product of a chemical action between the digestive juices and the food is produced there.

पक्वाशयं तु प्राप्तस्य शोष्यमाणस्य वन्हिना । परिपिंडित पक्वस्य वायुस्यात्कटु भावतः ।

Before I proceed further, it is advisable to discuss the chemical actions which digestive juices along with the bacteria in the intestines produce of the food eaten. Halliburton says:

"The carbo-hydrates are found chiefly in vegetable tissues and many of them form important foods. The most important of these are starch, glucose and lactose or milksugar. Maltose is the chief sugar formed from the starch by the diastic enzymes contained in the *saliva and pancreatic juice.* This starch is widely diffused through the vegetable kingdom. By means of the inverting enzymes such as occur in the intestinal juice, maltose is converted into Glucose. An important property of glucose is that under the influence of yeast, it is converted into ethyl alchohol and carbonic acid.

$$C_6H_{12}O_6 = 2C_2H_6O + 2\ CO_2.$$

Glucose is found in many fruits, honey and in minute quantities in the blood and numerous tissues, organs and fluids of the body. Lactose or milk-sugar occurs in milk. By means of inverting enzymes such as occurring in the intestinal juice, it takes up water, and splits into equal parts of glucose and fructose.

$$C_{12}H_{22}O_{11} + H_2O = C_6H_{12}O_6 + C_6H_{12}O_6$$

The most frequent fermentation which the bacteria in the intestines set up on carbo-hydrates, is the lactic acid fermentation. This

Indira Gandhi National Centre for the Arts

may go on further and result in the formation of carbonic acid, hydrogen and butyric acid. The two stages of the lactic acid fermentation are as follows:—

(1) $C_{12}H_{22}O_{11}$ (Lactose) + H_2O = $4C_3H_6O_3$ (Lactic acid)

(2) $4C_3H_6O_3$ (Lactic acid) = $2C_4H_8O_2$ (butyric acid) + $4CO_2$ + H_2

Cellulose, which is accompanied with starch in alternate layers is broken up by the bacterial action in the intestines into Carbonic acid and methane. This *is the chief cause of the gases in the intestines*, the amouunt of which is increased by vegetable food. The action of the bacteria on amino-acids is also to produce carbon dioxide."

Thus we see that the gases in the intestines produced by the combined action of the secretions like saliva, pancreatic juice, bile intestinal juices and the bacteria consists mostly of this CO_2 on the different tissues of the body and specially nerves. The gases in the intestines are termed Apan-wayu by Ayurvedists. Sushruta says: **पक्वाधानालयोऽपानः** Intestines are said to be the chief abode of Wayu.

पक्वाशय कटी सक्थि श्रोत्रास्थि स्पर्शनेंद्रियं ।
स्थानं वातस्य तत्रापि पक्वाधानं विशेषतः ।

Therefore it follows that like gastric juice (Kledak kapha) in Amashaya, and Pachak Pitta in the duodenum, if this third substance Apan-wayu (mostly CO_2) is also produced in due quantity, the whole process of digestion, absorption and excretion will go on smoothly, but, if for some reason or other its quantity is increased **वातवृद्धी**, then the system gets vitiated, and there is a disease for which a remedy has been prescribed by **चरक** as follows:—

आस्थापनानुवासनं तु खलु सर्वोपक्रमेभ्यः वाते प्रधानतमं मन्यन्ते भिषजः। तदादित एव पक्वाशयमनुप्रविश्य केवलं वैकारिकं वातमूलं छिनत्ति । तत्रावजिते वातेऽपि शरीरान्तर्गताः वातविकाराः प्रशान्तिमापद्यन्ते । यथा वनस्पतेर्मूले छिन्ने स्कंद शाखावरोहकुसुमफलपलाशादीनां नियतो विनाशस्तद्वदिति ।

Just as **वमन** and **विरेचन** have respectively been prescribed as the best remedies for removing the **धातुवैषम्य** due to an abnormal increase of **क्लेदकफ** and **पाचकपित्त** respectively, so also **आस्थापनानुवासन बस्ति** (enemetas) have been suggested as the most effective means of removing the abnormally increased Wata in the intestines. The drugs which are thus introduced by means of the enemas, remove that Wata subtance, from the insestines either by lubricating the inner surface, and thus making the passage clear by removing the obstructing solid stools (**परिपिंडित पक्व**) and thereby allowing these obstructed intestinal gases to pass off, or by absorbing that Wayu by means of oily

Indira Gandhi National Centre for the Arts

(Snigdha) and hot (Ushna) substances thus introduced according to the law.

प्रकोपन विपर्ययोहि धातूनां प्रशमकारणमिति ।

This Wayu is said to be the root cause of all diseases due to Wata, which might appear in any other part of the body, and, therefore, as soon as its abnormality is removed, all other Wat-Vikaras in the body disappear, just as, when we chop off the very root of a tree, its branches, sprouts, flowers, fruits and all other off-shoots wither away. This passage clearly proves that this gas in the intestines (predominantly CO_2) is the Wata which is the root cause of all diseases.

That Wata is predominantly CO_2 is also proved by the statement in Sri-mad-bhagwat-gita *viz.*

प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यंतर चारिणौ ॥

It is wel-known that during the process of श्वासोच्छ्वास the air which we breathe in contains more oxygen, and the one that we breathe out consists of more of carbon-dioxide ; and both these gases are नासाभ्यंतर चारी Pranavayu being predominantly oxygen.

Modern physiology tells us that "The intake of oxygen is the commencement and the output of carbonic acid is the end of a series of changes known as respiration. The intermediate steps take place all over the body and constitute what is known as tissue-respiration."

The carbonic acid gas is thus a substance which is produced in minute quantities all over the body. But its production is greatest in the intestines, which are therefore, its principal abode. This carbon dioxide acts in a peculiar way on the nervous tissues of the body. If it is produced in the normal quantity, it stimulates the nervous system but if produced in either an excess or less quantity, it disturbs the system. This has been proved by Waller's experiments.

"Waller has obtained a number of interesting results on the variation in nerve-action produced by drugs and other agents. *He finds that the effect of Carbonic acid in large doses is to cause a diminution and finally the disappearance of the activity of the nerves.* When this gas is replaced by air, the nerve recovers, and the action currents increase... *Small doses of carbonic acid increase the action currents* and Waller considers that the staircase effect in muscle, and the similarly progressive increase noted in action currents of a nerve as a result of repeated stimulation *is due to the evolution of this gas during activity.*

This hypothesis has been recently confirmed by Baryer and Frolich. They have shown that peripheral nerves participate in respiratory exchanges using up Oxygen and producing Carbonic acid in

Indira Gandhi National Centre for the Arts

minute but measurable amount. Gotch has shown "that cold applied to a nerve acts very much like carbonic acid. Intense cold will cause disappearance of both excitability and conductivity."

It is evident from these experiments of Waller that amongst the different substances which are produced or developed in the body during various chemical changes it is CO_2 or a mixture of O and CO_2 alone has its action on the nervous system "Which is the great master system of the body that presides over, controls and regulates the functions of other systems. "Wata which controls this master system has therefore been, described as

सर्वगः सर्वतंत्राणां विधाता वायुरेव भगवानिति (master),

here Chakradatta says :—

सर्वतंत्राणातंत्रशब्दः कर्मवचनोऽप्यस्ति ।

In its normal state, the following actions have been attributed to it:

दोषधात्वग्नि समतां संप्रापितं विषयेषुच । क्रियाणामानु लोम्यं च करोत्य कुपितोऽनिलः ।

It is well known that the nervous system produces all sorts of secretions which have been above stated as Kapha and Pitta, and thereby helps the conversion of the food that we take every-day into chyle, blood and other tissues. It is thus the system which maintains equilibrium (समता) between the Dosha and Agni sacretions on the one hand, and Dhatus *i. e.* principal tissues on the other. The sensory nervous system is responsible for conveying to the mind the different sensations through Jnanendriyas organs of sense (विषयेषु संप्राप्ति). It is the motor and autonomous nerves which help to carry away all excretions out of the body and are responsible for various kinds of motions.

Thus it is that all the phenomena which have been attributed to Wata are due to action of CO_2 produced in the body on the nervous system as a whole or on some definite branches of it. It is therefore that the word Dhamani is the most suitable one for nerves according to the meaning ध्मानादनिल पूरणात् धमन्यः.

Thus Wat is said to be तंत्रयंत्रधर. Here Tantra means either body or actions ; and as either the body or Tantrayantra-meaning thereby the mechanism which causes actions in the body *i. e.* the nervous system is dependent for its action on the proper production of CO_2 in the system as proved by Waller's experiments, this Wata is तंत्रयंत्रधर. For the same reason it is प्रवर्तक श्चेष्टामुच्चावचानां विविधानां । If it is produced in abnoral quantities it would depress the nerves, and thus retard or ultimately stop their actions- Similary it is

नियंता प्रणेताच मनसः । सर्वेन्द्रियाणामुद्योजकः सर्वेन्द्रियार्थानामभिवोढा,
प्रवर्तको वाचःहर्षोत्साहयोर्योनिः ।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

All these actions are due to sensory and moter nerves. It is also समीरणोग्नेः because when the nerves going to the pancreas are stimulated there is an increase of pancreatic juice secretion. Thus it is clear that each and every action which is attributed to Wata in Ayurveda originates from the nervous system, which in turn depends for its proper working on the production of CO^2 in the normal quantity throughout the system and principally in the intestines. Hence Chakradutta says:—

यद्यपि वायुना वातकारणानां वातशमनानां वा तथा संबंधो नास्ति, शरीर संवद्धैस्तैः तस्य शरीरचारिणः संबंधो भवति। ततश्च वातस्य समानगुणयोगाद्वृद्धिः विपर्ययाद्न्हास उपपन्न एवेति।

It is thus proved that Wata, Pitta and Kapha are actual substances in the body like other seven Dhatus and three Malas. They are mainly produced in the alimentary canal, Pitta and Kapha being secreted in duodenum and stomach respectively; while Wata being formed as a by-product in the intestines; and it is through these substances conveyed by the blood stream all along the body that other froms of Wata, Pitta and Kapha, whether Sukshma or Sthula, are nourished. The blood or the lymph that exudes from the capillaries reaches even the minutest part of the body, and along with it reach also these substances in extremely minute proportions. And so it is said that:—

सर्वं शरीर चरास्तु वातपित्तश्लेष्माणो हि सर्वस्मिन्शरीरे कुपिताऽकुपिताः शुभाऽशुभानिकुर्वंति प्रकृतिभूताः शुभान्युपचय बलवर्णं प्रसादादीनि अशुभानि पुनर्विकृतिमापन्नानि विकारसंज्ञकानि।

Here the word Sarva-shareer-char is very important as it shows that the Tridoshas move about in the body along with the blood stream. The same idea is expressed in the statement.

कुपितानां हि दोषाणां शरीरे परी धावतरं। यत्र संगस्तु वैगुण्याद्व्याधिस्तत्रोपजायते।

Of the different forms of कफ secretions, mucous membranes surrounding the tongue, nasal cavity and lungs, give rise to बोधक, तर्पक and अवलंबक forms, while Shleshak is the secretion of the Synovial membranes lining the joints. Amongst the different Pittas, Ranjak and Bhrajak are actual secretions, while Sadhak and Alochak are Sukshma. Prana Vayu is ordinary air containing more of Oxygen than Co_2, Apan contains more of Co_2 while the other forms should also be different mixtures containing O and CO_2.

∴ This subject needs more research; but there can be no doubt that the Tridoshas are actual substances.

Distinction between Prasad and Mala Dhatus.

Now before I close this discussion, I have to point out the distinction which Ayurvedists have made between Prasad and Mala Dhatus.

Indira Gandhi National Centre for the Arts

minute but measurable amount. Gotch has shown "that cold applied to a nerve acts very much like carbonic acid. Intense cold will cause disappearance of both excitability and conductivity."

It is evident from these experiments of Waller that amongst the different substances which are produced or developed in the body during various chemical changes it is CO_2 or a mixture of O and CO_2 alone has its action on the nervous system "Which is the great master system of the body that presides over, controls and regulates the functions of other systems. "Wata which controls this master system has therefore been, described as

सर्वगः सर्वतंत्राणां विधाता वायुरेव भगवानिति (master),

here Chakradatta says :—

सर्वतंत्राणातंत्रशब्दः कर्मवचनोऽप्यस्ति ।

In its normal state, the following actions have been attributed to it:

दोषधात्वग्नि समतां संप्रापितं विषयेषुच । क्रियाणामानु लोम्यं च करोत्य कुपितोऽनिलः ।

It is well known that the nervous system produces all sorts of secretions which have been above stated as Kapha and Pitta, and thereby helps the conversion of the food that we take every-day into chyle, blood and other tissues. It is thus the system which maintains equilibrium (समता) between the Dosha and Agni sacretions on the one hand, and Dhatus *i. e.* principal tissues on the other. The sensory nervous system is responsible for conveying to the mind the different sensations through Jnanendriyas organs of sense (विषयेषु संप्राप्ति). It is the motor and autonomous nerves which help to carry away all excretions out of the body and are responsible for various kinds of motions.

Thus it is that all the phenomena which have been attributed to Wata are due to action of CO_2 produced in the body on the nervous system as a whole or on some definite branches of it. It is therefore that the word Dhamani is the most suitable one for nerves according to the meaning ध्मानादनिल पूरणात् धमन्यः.

Thus Wat is said to be तंत्रयंत्रधर. Here Tantra means either body or actions; and as either the body or Tantrayantra-meaning thereby the mechanism which causes actions in the body *i. e.* the nervous system is dependent for its action on the proper production of CO_2 in the system as proved by Waller's experiments, this Wata is तंत्रयंत्रधर. For the same reason it is प्रवर्तक श्चेष्टामुच्चावचानां विविधानां । If it is produced in abnoral quantities it would depress the nerves, and thus retard or ultimately stop their actions- Similary it is

नियंता प्रणेताच मनसः । सर्वेन्द्रियाणामुद्योजकः सर्वेन्द्रियार्थानामभिवोढा,
प्रवर्तको वाचःहर्षोत्साहयोर्योनिः ।

Indira Gandhi National
Centre for the Arts